


यजुर्वेदभाषाभाष्य



अर्थात्

परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मित संस्कृतभाष्य का।

भाषानुवाद



(१) भाग

वैदिकयन्त्रालय अजमेर

संवत् १९६२ विक्रमाब्द





प्रथमावृत्तिः २०००



दोनों भागों का मूल्य ३) डाकव्यय ||)



ओ३म्

अथ यजुर्वेदभाषाभाष्यारम्भः क्रियते ॥

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वर
स्तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च ॥
ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं
भाष्यं काम्यमथो क्रियामयजुर्वेदस्य भाष्यं मया ॥१॥
चतुरुपद्वैरङ्कैर्यनिसहितैर्विक्रमसरे
शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ ॥
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमतीष्टं सुविदुषां
प्रमाणैर्निर्युक्तं शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥ २ ॥
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न
आसुव ॥ १ ॥ य० ३० । ३ ।

भाषार्थः—अब यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥ जो निर्गुण गुण-पुंज ने देत सुकृत विज्ञान । प्रणतपाल जगदीश्वरहि करि प्रणामसिद्धि ध्यान ॥ १ ॥ ज्ञानदापि ऋग्वेद का भाष्यारम्भ विधाय । पर उपकार विचारिकरि शीघ्र सुबोध निधाय ॥ २ ॥ शतपथ ब्राह्मण आदि पुनि निघंटु निरुक्ति निहारि । यजुर्वेद जो क्रिया पर यमी ताहि विचारि ॥ ३ ॥ एक सहस्र नवशत अधिक विक्रमसर चौतीस । पौष शुद्ध तेरसि तिथि दिन अर्पीश धारीश ॥ ४ ॥ विक्रम के संवत् १९३४ पौष सुदि १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद के भाष्य बनाने का आरंभ किया जाता है ॥ (विश्वानि०) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका में कर दिया है । ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाशद्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन मनुष्यों को कार्यों में किस २ प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो २ अङ्ग वा साधन हैं सो २ यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं क्योंकि जब तक क्रिया करने का दृढ़ ज्ञान न हो तब तक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रिया प्रकाश अविद्या

की निवृत्ति अधर्म से अप्रवृत्ति तथा धर्म और पुरुषार्थ का संयोग करता है । जो कर्मकाण्ड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकाण्ड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन प्राण वायु इन्द्रिय और शरीर के चलाये बिना एक क्षणभर भी रह सके क्योंकि जीव अल्पज्ञ एकदेशवर्त्ती चेतन है इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि (ऋक्) और (यजु) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिस से मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग सब शिल्पक्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का यत्न करें इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है । और भी इन शब्दों का अभिप्राय भूमिका में प्रकट कर दिया है वहां देख लेना चाहिये क्योंकि उक्त भूमिका चारों वेद की एक ही है ॥ इस यजुर्वेद में सब चालीस अध्याय हैं उन एक २ अध्याय में कितने २ मन्त्र हैं सो कोष्ठ यत्र के सब लिख दिया है और चालीसों अध्याय के सब मिल के १९७५ उन्नीसौ पचहत्तर मन्त्र हैं ॥

अध्यायः	मंत्राः	अ०	मं०	अ०	मं०	अ०	मं०
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५८	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७

परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । इषे त्वेत्यारभ्य भागं-
स्वराड्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । सर्वस्य प्राज्ञ्युष्णिक्

है इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम २ कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना करनी अवश्य चाहिये इस बात का प्रकाश किया है ॥

इषे त्वोर्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आ प्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥ १ ॥

पदार्थान्वयभाषाः-हे मनुष्य लोगो ! जो (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (देवः) सब सुखों के देने और सब विद्या के प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है । सो (वः) तुम हम और अपने मित्रों के जो (वायवः) सब क्रियाओं के सिद्ध कराने हारे स्पर्श गुणवाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियां (स्थ) हैं उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्मणे) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिये (प्रार्पयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे । हम लोग (इषे) अन्न आदि उत्तम उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (ऊर्जे) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये (भागं) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) उक्त गुणवाले और (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देनेहारे आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं । हे मित्र लोगो तुम भी ऐसे होकर (आप्यायध्वम्) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों। हे भगवन् जगदीश्वर! हम लोगों के (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (प्रजावतीः) जिनके बहुत संतान हैं तथा जो (अनमीवाः) व्याधि और (अयक्ष्माः) जिन में राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं वे (अघ्न्याः) जो २ गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य हैं जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन्द्रियां वा पृथिवी आदि लोक हैं उन को सदैव (प्रार्पयतु) नियत कीजिये । हे जगदीश्वर आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिये कोई (अघशंसः) पापी वा (स्तेनः) चोर डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हो । तथा आप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो (अस्मिन्) इस धार्मिक (गोपतौ) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (बह्वीः) बहुतसे उत्तम पदार्थ (ध्रुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात) हों । इस मंत्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में की है उसका ठिकाना पूर्व संस्कृत भाष्य में लिख

रनेवाले कभी नहीं । इस मंत्रमें (कामधुक्षः) इन पदों से वाणी के विषय में प्रश्न है ॥ ३ ॥

सा विश्वायुरित्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । अनुष्टुप्
छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

जो पूर्वोक्त मंत्रमें तीन प्रश्न कहे हैं उनके उत्तर अगले मंत्रमें क्रमसे प्रका-
शित किये हैं ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेना तनच्मि विष्णो हव्यꣳरक्ष ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर आप ! जिस वाणीका धारण करते हैं (सा) वह (विश्वायुः) पूर्ण आयुकी देनेवाली (सा) वह जिससे कि (विश्वकर्मा) संपूर्ण क्रियाकांड सिद्ध होता है और (सा) वह (विश्वधायाः) सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करनेवाली है । पूर्व मंत्र में जो प्रश्न है उसके उत्तरमें यही तीन प्रकारकी वाणी ग्रहण करनेयोग्य है इसीसे मैं (इन्द्रस्य) परमेश्वरका (भागम्) सेवा करने योग्य यज्ञको (सोमेन) विद्यासे सिद्ध किये रस अथवा आनंदसे (आतनच्मि) अपने हृदयमें दृढ करता हूं तथा हे परमेश्वर ! (हव्यम्) पूर्वोक्तयज्ञसंबन्धि देनेलेनेयोग्य द्रव्य वा विज्ञानकी (रक्ष) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—तीन प्रकारकी वाणी होती है अर्थात् प्रथम वह जो कि ब्रह्मचर्य में विद्या पढ़ने वा पूर्ण आयु होनेके लिये सेवन की जाती है । दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रिया वा उद्योगोंसे सुखोंकी देनेवाली विस्तारसे प्रकट की जाती है । और तीसरी वह जो इस संसारमें सब मनुष्यों के शरीर और आत्माके सुखकी वृद्धि वा ईश्वर आदि पदार्थोंके विज्ञानको देनेवाली वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम में विद्वानोंसे उपदेश की जाती है इन प्रकारकी वाणीके विना किसीको सब सुख नहीं हो सकते । क्योंकि इसीसे पूर्वोक्त यज्ञ तथा व्यापक ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करना योग्य है । ईश्वरकी यह आज्ञा है कि जो नियम से किया हुआ यज्ञ संसारमें रक्षाका हेतु और प्रेमसत्यभावसे प्रार्थनाको प्राप्त हुआ ईश्वर विद्वानों की सर्वदा रक्षा करता है वही सबका अध्यक्ष है परन्तु जो क्रिया में कुशल धार्मिक सर्वोपकारी मनुष्य हैं वेही ईश्वर और धर्मको जानकर मोक्ष और सम्यक् क्रियासा-
से इस लोक और परलोकके सुखको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः, स एव । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।

उक्त वार्त्तिक धर्म क्या है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

पदार्थः-हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर मैं (अनृतात्) जो झूठसे अलग (सत्यम्) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारोंसे जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धांत के प्रकाश करानेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतम्) सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य करना है उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं (मे) मेरे (तत्) उस सत्य व्रतको आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (अहम्) मैं उक्त सत्य व्रतके नियम करने को (शकेयम्) समर्थ होऊं और मैं (इदम्) इसी प्रत्यक्ष सत्य व्रतके आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूंगा ॥ ५ ॥

भावार्थः-परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सबका हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुखका हेतु है यही सबको आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसीका त्याग करना है इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! हम लोग वेदों में आप के प्रकाशित किये सत्य धर्मका ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन्! आप हम लोगों पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य धर्म का पालन करके अर्थ काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें।
जैसे सत्य व्रतके पालने से आप व्रतपति हैं वैसेही हम लोग भी आप की कृपा और
अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्य व्रतके पालनेवाले हों तथा धर्म करने की इ
से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखोंको प्राप्त होकर स
वाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को
मन्त्रकी व्याख्यामें कहा।

रथ और दूसरा झूंठका अर्थात् जो पुरुष पापी मन और शरीर से सत्यका आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूंठका आचरण करनेवाले हैं वे असुर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥ ५ ॥

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता आर्च्यांपंक्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ।

किस ने सत्य करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—(कः) कौन (त्वाम्) तुझको अच्छी २ क्रियाओं के सेवन करने के लिये (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) सो जगदीश्वर (त्वा) तुम को विद्या आदिक शुभ गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् वा विद्यार्थी होनेको (युनक्ति) आज्ञा देता है (कस्मै) वह किस २ प्रयोजनके लिये (त्वा) मुझ और तुमको (युनक्ति) युक्त करता है (तस्मै) पूर्वोक्त सत्य व्रतके आचरणरूप यज्ञके लिये (त्वा) धर्मके प्रचार करने में उद्योगीको (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) वही ईश्वर (कर्मणे) उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये (वाम्) कर्म करने और करानेवालों को नियुक्त करता है (वेषाय) शुभ गुणों और विद्याओं में व्याप्तिके लिये (वाम्) विद्या पढ़ने और पढ़ाने वाले तुम लोगोंको उपदेश करता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तरसे ईश्वर जीवोंके लिये उपदेश करता है जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत्त करता है इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वरही पुरुषार्थ और अच्छी २ क्रियाओं के करने की तुह्मारे लिये वेदके द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्यामिरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है तो वह उत्तर देवे कि सर्व व्यापक जगदीश्वर । फिर वह पूछे कि वह हमको किस २ प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है । उस का उत्तर देवे कि सुख और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्यविद्या और धर्म के प्रचार के लिये मैं और आप दोनों को कौन २ काम करने के लिये वह ईश्वर उपदेश करता है । इसका परस्पर उत्तर देवें कि यज्ञ करने के लिये । फिर वह कौन२ पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है । इसका उत्तर देवें कि सब विद्याओं की

प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये। मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात् एक तो अत्यंत पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़के उनका प्रचार करना चाहिये। किसी मनुष्य को पुरुषार्थको छोड़ के आलस्य में कभी नहीं रहना चाहिये ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। प्राजापत्या जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का निषेध करें इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रत्युष्ट॑ᳬ रक्षः॒ प्रत्यु॑ष्टा॒ अरा॑तयो॒ निष्ट॑प्त॒ᳬ रक्षो॒ निष्ट॑प्ता॒ अरा॑तयः। उ॒र्व॒न्तरि॑क्ष॒मन्वे॑मि ॥ ७ ॥

पदार्थः—मुझ को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (रक्षः) दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्टम्) निश्चय करके निर्मूल करूं तथा (अरातयः) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं उनको (प्रत्युष्टाः) प्रत्यक्ष निर्मूल (रक्षः) वा दुष्ट स्वभाव दुष्ट गुण विद्या विरोधी स्वार्थी मनुष्य और (निष्टप्तम्) (अरातयः) छल युक्त होके विद्या का ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को (निष्टप्ताः) निरंतर संतापयुक्त करूं। इस प्रकार करके (अन्तरिक्षम्) सुख के सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और (उरु) अपार सुख को (अन्वेमि) प्राप्त होऊं ॥ ७ ॥

भावार्थः–ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़कर विद्या और धर्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि अधर्म के व्यवहारों से अलग करना चाहिये तथा उन को बहु प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को विद्या धर्म पुरुषार्थ और नानाप्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

धूरसीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

सबके धारण करने वाले ईश्वर और पदार्थ विद्या की सिद्धि हेतु भौतिक अग्नि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धूर॑सि॒ धूर्व॒ धूर्व॑न्तं॒ धूर्व॒ तं यो॒ऽस्मान् धूर्व॑ति॒ तं धू॑र्व॒ यं व॒यं धूर्वा॑मः। दे॒वाना॑मसि॒ वह्नि॑तम॒ᳬ सस्नि॑तमं॒ पप्रि॑तमं॒ जुष्ट॑तमं देव॒हूत॑मम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर! आप (धूः) सब दोषों के नाश और जगत् की रक्षा करने वाले (असि) हैं इस कारण हम लोग इष्ट बुद्धि से (देवानाम्) विद्वानों को विद्या मोक्ष और सुख में (वह्नितमम्) यथायोग्य पहुंचाने (सस्नितमम्) अतिशय करके शुद्ध करने (पप्रितमम्) सब विद्या और आनन्द से संसार को पूर्ण करने (जुष्टतमम्) धार्मिक भक्त जनों को सेवा करने योग्य और (देवहूतमम्) विद्वानों को स्तुति करने योग्य आप को नित्य उपासना करते हैं (यः) जो कोई द्वेषी छली कपटी पापी कामक्रोधादियुक्त मनुष्य (अस्मान्) धर्मात्मा और सब को सुख से युक्त करने वाले हम लोगों को (धूर्वति) दुःख देता है और (यम्) जिस पापी जन को (वयम्) हम लोग (धूर्वामः) दुःख देते हैं (तम्) उस को आप (धूर्व) शिक्षा कीजिये तथा जो सब से द्रोह करने वा सब को दुःख देता है उस को भी आप सदैव (धूर्व) ताड़ना कीजिये ॥ हे शिल्प विद्या को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य! तू जो भौतिक अग्नि (धूः) सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करने वाला (असि) है तथा जो कला चलाने की चतुराई से यानों में विद्वानों को (वह्नितमम्) सुख पहुंचाने (सस्नितमम्) शुद्धि होने का हेतु (पप्रितमम्) शिल्पविद्या का मुख्य साधन (जुष्टतमम्) कारीगर लोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो (देवहूतमम्) विद्वानों को स्तुति करने योग्य अग्नि है उस को (वयम्) हम लोग (धूर्वामः) ताड़ते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो (अस्मान्) हम लोगों को (धूर्वति) पीड़ा करता है (तम्) उस (धूर्वन्तम्) पीड़ा करने वाले अग्नि को (धूर्व) यानादिकों में युक्त कर तथा हे वीर पुरुष! तुम (यः) जो दुष्ट शत्रु (अस्मान्) हम लोगों को (धूर्वति) दुःख देता है (तम्) उस को (धूर्व) नष्ट कर। तथा जो कोई चोर आदि है उस का भी (धूर्व) नाश कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो ईश्वर सब जगत् को धारण कर रहा है वह पापी दुष्ट जीवों को उनके किये हुए पापों के अनुकूल दंड देकर दुःख युक्त और धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम कर्मों के अनुसार फल देके उनकी रक्षा करता है वही सब सुखों की प्राप्ति आत्मा की शुद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देनेवाला विद्वानों के स्तुति करने योग्य तथा प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है दूसरा कोई नहीं। तथा यह प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं की क्रियाओं का सिद्ध करने तथा उनका मुख्य साधन और पृथिवी आदि पदार्थों में सबसे प्रकाश अथवा उनकी प्राप्ति से श्रेष्ठ है ॥ क्योंकि जिस से सिद्ध की हुई आग्नेय आदि उत्तम शस्त्रास्त्र

विद्या से शत्रुओं का पराजय होता है इससे यह भी विद्या की युक्तियों से होम और विमान आदि के सिद्ध करने के लिये सेवा करने के योग्य है ॥ ८ ॥

अह्रुतमसीत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥ ९ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् मनुष्य तुम जो अग्नि में पड़ा हुआ (अह्रुतम्) कुटिलता रहित (हविर्धानम्) होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है उस को (दृंहस्व) बढ़ाओ किन्तु किसी समय में (मा ह्वाः) उसका त्याग मत करो तथा यह (ते) तुम्हारा (यज्ञपतिः) यजमान भी उस यज्ञ के अनुष्ठान को न छोड़े । इस प्रकार तुम लोग (पंच) एक तो ऊपर को चेष्टा होना दूसरा नीचे को तीसरा चेष्टा से अपने अङ्गों को संकोचना चौथा उनका फैलाना पांचवां चलना फिरना आदि इन पांच प्रकार के कर्मों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उस को अग्नि में (यच्छन्ताम्) हवन करो (त्वा) यह जो हवन किया हुआ द्रव्य है उसको (विष्णुः) जो व्यापनशील सूर्य्य है वह (अपहतम्) (रक्षः) दुर्गन्धादि दोषों का नाश करता हुआ (उरुवाताय) अत्यन्त वायु की शुद्धि वा सुख की वृद्धि के लिये (क्रमताम्) चढ़ा देता है ॥ ९ ॥

भावार्थः-जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़ कर शिक्षा देने वाले के शिष्य होके विशेष ज्ञान और क्रिया से भौतिक अग्नि की विद्या को जान कर उस का अनुष्ठान करते हैं तभी शिल्पविद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दारिद्र्य और दुःखों से छूटकर सब सुखों को प्राप्त होते हैं इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिये आज्ञा दी है, जिस का पालन करना सब को उचित है ॥ ९ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

उस यज्ञ के फल का ग्रहण किस करके होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

पदार्थः-मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न कर्त्ता सकल ऐश्वर्य्य के दाता तथा (देवस्य) संसार का प्रकाश करने हारे और सब सुखदायक परमेश्वर के (प्रसवे)

सब जगत् व्याप्त सबका साक्षी सबका मित्र सब मनुष्योंका उपासनाके योग्य और सर्वशक्तिमान् जानकर सबका उपकार विविध विद्याकी वृद्धि धर्ममें प्रवृत्ति अधर्मसे निवृत्ति क्रियाकुशलताकी सिद्धि और यज्ञक्रियाके अनुष्ठान आदि करने में सदा प्रवृत्त रहो इस मंत्रमें महीधरने भ्रांतिसे (अभिविख्येषम्) यह पद (ख्या प्रकथने) इस धातुका दर्शन अर्थमें माना है यह धातुके अर्थसेही विरुद्ध होनेकर के अशुद्ध है ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य ऋषिः स एव । अप्सवितारौ देवते । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अग्निमें जिस द्रव्यका होम किया जाता है वह मेघमंडलको प्राप्त होके किस प्रकारका होकर क्या गुण करता है इस बातका उपदेश ईश्वरने अगले मंत्रमें किया है।

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञन्नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् लोगो! तुम जैसे (सवितुः) परमेश्वरके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अच्छिद्रेण) निर्दोष और (पवित्रेण) पवित्र करने का हेतु जो (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणें हैं उन से (वैष्णव्यौ) यज्ञसंबंधी प्राण और अपानकी गति (पवित्रे) पदार्थोंके भी पवित्र करने में हेतु (स्थः) हों और जैसे उक्त सूर्यकी किरणों से (अग्रेगुवः) आगे समुद्र वा अन्तरिक्षमें चलें (अग्रेपुवः) प्रथम पृथिवी में रहनेवाली सोम ओषधिके सेवन करने तथा (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (आपः) जल पवित्र हों वैसे (नयत) पवित्र पदार्थोंका होम अग्निमें करो वैसेही मैं भी (अद्य) आजके दिन (इमम्) इस (यज्ञम्) पूर्वोक्त क्रिया संबंधी यज्ञको प्राप्त करके (अग्रे) जो प्रथम (सुधातुम्) श्रेष्ठ मन आदि इन्द्रिय और सुवर्ण आदि धनवाला (यज्ञपतिम्) यज्ञका नियमसे पालक तथा (देवयुवम्) विद्वान् और श्रेष्ठ गुणोंको प्राप्त होने वा उनको प्राप्त कराने (यज्ञपतिम्) यज्ञकी इच्छा करनेवाला मनुष्य है उसको (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं ॥ १२ ॥

भावार्थः-इस मंत्रमें लुप्तोपमालंकार है-जो पदार्थ संयोगसे विकारको प्राप्त होते हैं वे अग्निके निमित्तसे अति सूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायुके बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी होजाते हैं परन्तु जैसी यज्ञके अनुष्ठानसे वायु और वृष्टि जल-

की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है वैसी दूसरे उपायसे कभी नहीं हो सकती इससे विद्वानोंको चाहिये कि होमक्रिया और वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा शिल्पविद्यासे अच्छी अच्छी सवारी बनाके अनेक प्रकारके लाभ उठावें अर्थात् अपनी मनोकामना सिद्धि करके औरोंकी भी कामना सिद्धि करें जो जल इस पृथिवीसे अन्तरिक्षको चढ़कर वहांसे लौटकर फिर पृथिवी आदि पदार्थोंको प्राप्त होते हैं वे प्रथम और जो मेघमें रहनेवाले हैं वे दूसरे कहाते हैं ऐसी शतपथ ब्राह्मण में मेघका वृत्र तथा सूर्यका इन्द्र नामसे वर्णन करके युद्धरूप कथाके प्रकाशसे मेघविद्या दिखलाई है ॥ १२ ॥

युष्मा इन्द्रो वृणीतेत्यस्य ऋषिः पूर्वोक्तः । इन्द्रो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अग्नये त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । दैव्याय कर्मण इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्त जल किस प्रकार के हैं वा इन्द्र और वृत्रका युद्ध कैसे होता है सो अगले मंत्र में कहा गया है ॥

युष्मा इन्द्रो॑ऽवृणीत वृत्रतूर्ये॑ यूयमिन्द्र॑मवृणीध्वं वृत्रतूर्ये॑ प्रोक्षि॑ताः स्थ । अ॒ग्नये॑ त्वा॒ जुष्टं॑ प्रोक्षा॑म्य॒ग्नीषोमा॑भ्यां त्वा॒ जुष्टं॑ प्रोक्षा॑मि । दैव्या॑य कर्म॑णे शुन्धध्वं देवय॒ज्यायै॒ यद्वोऽशु॑द्धाः परा॒जघ्नुरि॒दं व॒स्तच्छु॑न्धामि ॥ १३ ॥

पदार्थः—यह (इन्द्रः) सूर्यलोक (वृत्रतूर्ये) मेघके वध के लिये (युष्माः) पूर्वोक्त जलों को (अवृणीत) स्वीकार करता है जैसे जल (इन्द्रम्) वायुको (अवृणीध्वम्) स्वीकार करते हैं वैसेही (यूयम्) हे मनुष्यो तुम लोग उन, जल ओषधी रसों को शुद्ध करने के लिये (वृत्रतूर्ये) मेघके शीघ्रवेगमें (प्रोक्षिताः) संसारी पदार्थों के सींचनेवाले जलों को (अवृणीध्वम्) स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध (स्थ) होते हैं वैसे तुम भी शुद्ध हो । इसलिये मैं यज्ञका अनुष्ठान करने वाला (दैव्याय) सबको शुद्ध करनेवाले (कर्मणे) उत्क्षेपण—उछालना । अवक्षेपण—नीचे फेंकना । आकुंचन—सिमेटना । प्रसारण—फैलाना । गमन—चलना आदि पांच प्रकार के कर्म हैं उनके और (देवयज्यायै) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों की दिव्य क्रिया के लिये । तथा (अग्नये) भौतिक अग्नि से सुख के लिये (जुष्टम्) अच्छी क्रियाओं से सेवन करने योग्य (त्वा) उस यज्ञको (प्रोक्षामि) करता हूं तथा । (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोमसे वर्षाके निमित्त (जुष्टम्) प्रीति देनेवाला और

प्रीति से सेवने योग्य (त्वा) उक्त यज्ञको (प्रोक्षामि) मेघमंडल में पहुंचाता हूं इस प्रकार यज्ञसे शुद्ध किये हुये जल (शुन्धध्वम्) अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं (यत्) जिस कारण यज्ञकी शुद्धि से (वः) पूर्वोक्त जलों के अशुद्धि आदि दोष (पराजघ्नुः) निवृत्त हों (तत्) उन जलोंकी शुद्धिको मैं (शुंधामि) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूं। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है। हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो! (यत्) जिस कारण (इन्द्रः) सूर्य्यलोक (वृत्रतूर्य्ये) मेघके वधके निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जल और (इन्द्रम्) पवन को (अवृणीत) स्वीकार करता है तथा जिस कारण सूर्य्य ने (वृत्रतूर्य्ये) मेघकी शीघ्रता के निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जलोंको (प्रोक्षिताः) पदार्थ सींचनेवाले (स्थ) किये हैं इससे (यूयम्) तुम (त्वा) उक्त यज्ञ को सदा स्वीकार करके (नयत) सिद्धि को प्राप्त करो इस प्रकार हम सब लोग (देव्याय) श्रेष्ठ कर्म वा (देवयज्यायै) विद्वान् और दिव्य गुणों की श्रेष्ठ क्रियाओंके तथा (अग्नये) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीति करानेवाले यज्ञको (प्रोक्षामि) सेवन करें तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोमसे प्रकाशित होनेवाले (त्वा) उक्त यज्ञको (प्रोक्षामि) मेघमंडल में पहुंचावें हे मनुष्यो! इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थ वा सब मनुष्यों को (शुन्धध्वम्) शुद्ध करो (यत्) और जिससे (वः) तुम लोगों के अशुद्धि आदि दोष हैं वे सदा (पराजघ्नुः) निवृत्त होते रहें। वैसेही मैं वेदका प्रकाश करनेवाला तुम लोगों के शोधन अर्थात् शुद्धि प्रकार को (शुन्धामि) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूं ॥ १३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य्य को इस लिये रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश करके उनके रस और जलको छिन्न भिन्न कर दें जिससे वे वायुमंडलमें जाकर फिर वहां से पृथिवीपर आके सबको सुख और शुद्धि करनेवाले हों। इससे मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगंधित पदार्थों के होम से वायु और वृष्टि जलकी शुद्धिद्वारा श्रेष्ठ सुखप्रदान के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये जिससे इस संसार के सब रोग आदि दोष नष्ट होकर उसमें शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें इसी प्रयोजनके लिये मैं ईश्वर तुम सभोंको उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूं कि हे मनुष्यो! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कर्मोंको नित्य किया करो तथा उक्त रीतिसे वायु अग्नि और जल के गुणों को शिल्प क्रिया में युक्त कर के अनेक यान आदि यंत्र कला बना कर अपने में सदैव सुखयुक्त हो ॥ १३ ॥

शर्मास्यवधूतमित्यस्य पूर्वोक्त ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का है और किस प्रकार से करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम्हारा घर (शर्म) सुख देने वाला (असि) हो उस घर से (रक्षः) दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी (अवधूतम्) अलग करो और (अरातयः) दान आदि धर्मरहित शत्रु (अवधूताः) दूर हों उक्त गृह (अदित्याः) पृथिवी की (त्वक्) त्वचा के तुल्य (असि) हो (अदितिः) ज्ञानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को (प्रतिवेत्तु) सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो (वानस्पत्यः) वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने (पृथुबुध्नः) अतिविस्तारयुक्त अन्तरिक्ष में रहने तथा (ग्रावा) जल का ग्रहण करनेवाला (अद्रिः) मेघ (असि) है उस और इस विद्या को (अदितिः) जगदीश्वर तुम्हारे लिये (वेत्तु) कृपा करके जनावें । विद्वान् पुरुष भी (अदित्याः) पृथिवी की (त्वक्) त्वचा के समान (त्वा) उक्त घर की रचना को (प्रतिवेत्तु) जानें ॥ १४ ॥

भावार्थः—ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बनाके उस में सुखपूर्वक वास करो । तथा उस में रहनेवाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो फिर उन में सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है उस का अनुष्ठान करके नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करने चाहिये क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धिद्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्द । निषादः स्वरः ।
हविष्कृदिति याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १४ ॥

पदार्थ —मैं सब जनों के सहित जिस हवि अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिये (बृहद्ग्रावासि) बड़े २ पत्थर (असि) है और (वानस्पत्यः) काष्ठ के मूसल आदि पदार्थ (देवेभ्यः) विद्वान् या दिव्य गुणों के लिये उस यज्ञ को (देववीतये) श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् वा विविध भोगों की प्राप्ति के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं । हे विद्वान् मनुष्य तुम (देवेभ्यः) विद्वानों के सुख के लिये (सुशमि) अच्छे प्रकार दुःख शान्त करनेवाले (हविः) यज्ञ करने योग्य पदार्थ को (शमीष्व)(शमीष्व) अत्यन्त शुद्ध करो । जो मनुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पढ़ते या पढ़ाते हैं उन्हीं को यह (हविष्कृत्) हविः अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करनेवाली जो कि यज्ञ को विस्तार करने के लिये वेद के पढ़ने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध वाणी है सो प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

भावार्थ —जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उस का फल जान के शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं तब वह सुगन्धि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम करके दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है । जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस को सब मनुष्य हविष्कृत् अर्थात् वह यज्ञ का विस्तार करने वाला, यज्ञ का विस्तार करनेवाला उत्तम मनुष्य है ऐसा वारंवार कह कर सत्कार करें ॥ १५ ॥

कुक्कुटोऽसीत्य ऋषिः स एव । वायुर्देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । देवो वः सवितेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । स्वराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ।

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयꣳ संघातꣳ संघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (मधुजिह्वः) जिस में मधुर गुणयुक्त वाणी हो। तथा (कुक्कुटः) चोर या शत्रुओं का विनाश करने वाला (असि) है और (इषम्) अन्न आदि पदार्थ वा (ऊर्जम्) विद्या आदि बल और उत्तम से उत्तम रस को देता है इसी से उस का अनुष्ठान सदा करना चाहिये। हे विद्वान् लोगो तुम उक्त गुणों को देने

वाला जो तीन प्रकार का यज्ञ है उसका अनुष्ठान और हम लोगों के प्रति उस के गुणों का (आवद) उपदेश करो जिस से (वयम्) हम लोग (त्वया) तुम्हारे साथ (संघातम्,संघातम्) जिनमें उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संग्रामों को वारंवार वा (जेष्म) सब प्रकार से जीतें क्योंकि आप युद्धविद्या के जानने वाले (असि) हैं इसी से सब मनुष्य (वर्षवृद्धम्) शस्त्र और अस्त्रविद्या की वर्षा को बढ़ाने वाले (त्वा) आप तथा (वर्षवृद्धम्) वृष्टि के बढ़ाने वाले उक्त यज्ञ को (प्रतिवेत्तु) जानें इस प्रकार संग्राम करके सब मनुष्यों को (परापूतम्) पवित्रता आदि गुणों को छोड़ने वाले (रक्षः) दुष्ट मनुष्य तथा (परापूताः) शुद्धि को छोड़ने वाले और (अरातयः) दान आदि धर्म से रहित शत्रु जन तथा (रक्षः) डाकुओं का जैसे (अपहतम्) नाश हो सके वैसा प्रयत्न सदा करना चाहिये जैसे यह (हिरण्यपाणिः) जिसका ज्योति हाथ है ऐसा जो (वायु) पवन है । यह (अच्छिद्रेण) एक रस (पाणिना) अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और सूर्य्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थों को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करता है (हिरण्यपाणिः) वा जैसे किरण हैं हाथ जिस के वह (हिरण्यपाणिः) किरण व्यवहार से (सविता) वृष्टि वा प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु (देवः) प्रकाशमय सूर्य्यलोक (व) उन पदार्थों को (विविनक्तु) अलग २ अर्थात् परमाणुरूप करता है वैसे ही परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) अपने उपदेश रूप व्यवहार से सब विद्याओं को (विविनक्तु) प्रकाश करें वैसे ही एक कर के प्रीति के साथ (वः) तुम को अत्यन्त आनन्द करने के लिये (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान संग्राम में शत्रुओं का पराजय अच्छे २ गुणों का ज्ञान विद्वानों की सेवा दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने ताप से छिन्न भिन्न करने वाला अग्नि वा सूर्य्य और उनका धारण करने वाला वायु है ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों की उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये ॥१६॥

धृष्टिरसीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ अग्निशब्द से किस किस का ग्रहण किया जाता और इस से क्या क्या कार्य्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धृष्टिरस्यपाऽग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं सेधा देव-

यजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृंᳬह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (धृष्टिः) प्रगल्भ अर्थात् अत्यन्त निर्भय (असि) हैं इस कारण (निष्क्रव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयज्ञम्) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों से मिलाप कराने वाले (अग्निम्) भौतिक वा विद्युत् अर्थात् बिजुली रूप अग्नि को आप (सेध) सिद्ध कीजिये इस प्रकार हम लोगों के मंगल अर्थात् उत्तम२ सुख होने के लिये शास्त्रों की शिक्षा कर के दुःखों को (अपजहि) दूर कीजिये और आनन्द को (आवह) प्राप्त कीजिये तथा हे परमेश्वर आप (ध्रुवम्) निश्चल सुख देने वाले (असि) हैं इस से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उसमें रहने वाले मनुष्यों को (दृंह) उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिये । हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जिस कारण आप अत्यन्त प्रशंसनीय हैं इस से मैं (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख वा दुःख व्यवहार के देने वाले (त्वा) आप को (उपदधामि) हृदय में स्थापन करता हूं। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ । तथा हे विद्वान् यजमान जिस कारण यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (धृष्टिः) अति तीक्ष्ण (असि) है तथा निकृष्ट पदार्थों को छोड़ कर उत्तम पदार्थों से (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (आ वह) प्राप्त कराता है इस से तुम (निष्क्रव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों के प्राप्त कराने वाले (अग्निम्) प्रत्यक्ष वा बिजुलीरूप अग्नि को (आवह) प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करने वाले लोगों को शास्त्रों की उत्तम २ शिक्षाओं के साथ उसका उपदेश (सेध) करो तथा उस के अनुष्ठान में जो दोष हों उन को (अपजहि) विनाश करो जिस कारण यह अग्नि सूर्यरूप से (ध्रुवम्) निश्चल (असि) है इसी कारण यह आकर्षण शक्ति से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उस में रहने वाले प्राणियों को (दृंह) दृढ़ करता है इसी से मैं उस (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण क्षत्रिय वा जीवमात्र के सुखदुःख को अलग २ कराने वाले भौतिक अग्नि को (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये हवन करने की वेदी वा विमान आदि यानों में (उपदधामि) स्थापन करता हूं यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है और सर्वशक्तिमान् ईश्वरने यह भौतिक अग्नि

नाम अर्थात् कच्चे पदार्थ जलाने वाला बनाया है इस कारण भस्म रूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है जिस से कि मनुष्य कच्चे २ पदार्थों को पका कर खाते हैं तथा जिस प्रकार के सब प्राणियों का खाया हुआ अन्न आदि द्रव्य पकता है और जिस प्रकार के मनुष्यलोग मरे हुये शरीर को जलाते हैं वह क्रव्यात् अग्नि कहाता है और जिस ने दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाली विद्युत् बनी है तथा जिस से पृथिवी का धारण और आकर्षण करनेवाला सूर्य्य बना है और जिसे वेदविद्याके जाननेवाले ब्राह्मण वा धनुर्वेदके जाननेवाले क्षत्रिय वा सब प्राणीमात्र सेवन करते हैं तथा जो सब संसारी पदार्थों में वर्त्तमान परमेश्वर है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है तथा जो क्रियाओं की सिद्धिके लिये भौतिक अग्नि है वह भी यथायोग्य कार्य्यद्वारा सेवा करने के योग्य है ॥ १७ ॥

अग्ने ब्रह्मेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । धर्त्रमसीति मध्यस्यार्च्यी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्चि पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी अग्निशब्द से अगले मंत्रमें फिर दोनों अर्थों का प्रकाश किया है ।

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षन्दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर! आप (धरुणम्) सबके धारण करनेवाले (असि) हैं इससे मेरी (ब्रह्म) वेदमंत्रोंसे की हुई स्तुतिको (गृभ्णीष्व) ग्रहण कीजिये तथा (अन्तरिक्षम्) आत्मामें स्थित जो अक्षय ज्ञान है उसको (दृंह) बढ़ाइये मैं (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओंके (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) सब मनुष्योंके सुखके निमित्त वेदके शाखाशाखान्तरद्वारा विभाग करनेवाले ब्राह्मण तथा (क्षत्रवनि) राजधर्म के प्रकाश करने हारे (सजातवनि) जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी मूर्त्तिमान् पदार्थ हैं इन प्राणियोंके लिये अलग अलग प्रकाश करनेवाले (त्वा) आपको (उपदधामि) हृदयके बीचमें धारण करता हूं हे सब के धारण करनेवाले परमेश्वर जो आप (धर्त्रम्) लोकों के धारण करनेवाले हैं इससे कृपा करके हम लोगों में (दिवम्) अत्युत्तम ज्ञानको (दृंह) बढ़ाइये और मैं

(भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (स-
जातवनि) उक्त वेद राज्य वा परस्पर समान विद्या वा राज्यादि व्यवहारों को यथा-
योग्य विभाग करनेवाले (त्वा) आपको (उपदधामि) वारंवार अपने हृदय में धारण
करता हूं तथा मैं (त्वा) आपको सर्वव्यापक जानकर (विश्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः)
दिशाओं से सुख होनेके निमित्त वारंवार (उपदधामि) अपने मन में धारण करता हूं
हे मनुष्यो तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर (चितः) विज्ञानी तथा
(ऊर्ध्वचितः) उत्तम ज्ञानवाले पुरुषों की प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर धरते तथा
(भृगूणाम्) जिनके विद्या आदि गुणोंको प्राप्त होते हैं ऐसे (अंगिरसाम्) प्राणों के
(तपसा) प्रभावसे (तप्यध्वम्) तपो और तपाओ यह इस मंत्रका प्रथम अर्थ हुआ।
अब दूसरा भी कहते हैं हे विद्वान् धर्मात्मा पुरुष जिस (अग्ने) भौतिक अग्नि से
(धरुणम्) सबका धारण करनेवाला तेज (ब्रह्म) वेद और (अन्तरिक्षम्) आकाशमें
रहनेवाले पदार्थ ग्रहण वा वृद्धियुक्त कियेजाते हैं (त्वा) उसको तुम होम वा शिल्प-
विद्याकी सिद्धिके लिये (गृभ्णामि) ग्रहण करो (दृंह) वा विद्यायुक्त क्रियाओं से
बढ़ाओ और मैं भी (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओंके (वधाय) विनाशके लिये (त्वा) उस
(ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) संसारी मूर्त्तिमान् पदार्थों के प्रकाश करने
वा राजगुणों के दृष्टांतरूप से प्रकाश करानेवाले भौतिक अग्निको शिल्पविद्या आदि
व्यवहारों में (उपदधामि) स्थापन करता हूं ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे
अनेक सुखों को धारण करता है इसी प्रकार सब लोगों का (धर्त्रम्) धारण करनेवा-
ला वायु (असि) है तथा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य्य लोकको (दृंह) दृढ करता है
हे मनुष्यो ! जैसे उसको मैं (भ्रातृव्यस्य) अपने शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये
(ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) वेद राज्य वा परस्पर समान उत्तम २ शिल्प-
विद्याओं को यथायोग्य कार्य्यों में युक्त करने वाले उस भौतिक अग्निको (उपदधामि)
स्थापन करता हूं वैसे तुम भी उत्तम २ क्रियाओंमें युक्त करके विद्याके बलसे (दृंह)
उस को बढ़ाओ। हे विद्या चाहनेवाले पुरुष ! जो पवन पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकोंको
धारण कर रहा है तैसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्याकी सिद्धिके लिये
यथायोग्य कार्य्यों में लगाकर उनकी विद्यासे (दृंह) वृद्धि करो तथा जैसे हम अपने
शत्रुओंके विनाशके लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) अग्निके उक्त गुणों
के समान वायुको शिल्पविद्या आदि व्यवहारोंमें (उपदधामि) संयुक्त करते हैं वैसेही
तुम भी अपने अनेक दुःखोंके विनाशके लिये उसको यथायोग्य कार्य्यों में संयुक्त करो
हे मनुष्यो जैसे मैं वायुविद्याका जाननेवाला (त्वा) उस अग्नि वा वायुको (विश्वाभ्यः) सब

(अशाभ्यः) दिशाओंमें सुख होनेके लिये यथायोग्य शिल्पव्यवहारों में (उपदधामि) धारण करता हूं जैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या या होम करने के लिये (चितः) (ऊर्ध्वचितः) पदार्थों के भरे हुए पात्र या यन्त्रादियोंमें स्थापन किये हुए कलायन्त्रोंको (भृगूणाम्) जिनमें पदार्थों को पकाते हैं उन अंगारोंके (तपसा) तापसे (तप्यध्वम्) उक्त पदार्थों को तपाओ ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो तुम विद्वानों की उन्नति तथा मूर्खपन का नाश या सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य बढ़ाने के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि या सब का धारण करने वाला वायु, अग्निमय सूर्य्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यज्ञ सिद्धि या विमान आदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इन को सिद्ध करके दुःखों को दूर करके शत्रुओं को जीतो ॥ १८ ॥

शर्मासीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

इसके अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूप और इस के अंग अगले मंत्र में उपदेश किये हैं ॥

शर्मास्यवधूतᳯरक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वग॑सि प्रति त्वाऽदितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु दिवस्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जो यज्ञ (शर्म) सुख का देने वाला (असि) है और (अदितिः) नाश रहित है तथा जिस से (रक्षः) दुःख और दुष्ट स्वभाव युक्त मनुष्य (अवधूतम्) विनाश को प्राप्त तथा (अरातयः) दान आदि धर्मों से रहित पुरुष (अवधूताः) नष्ट (असि) होते हैं और जो (अदित्याः) अन्तरिक्ष या पृथिवी के (त्वक्) त्वचा के समान (असि) है (त्वा) उसे (वेत्तु) जानो और जिस विद्या रूप उक्त यज्ञ से (पर्वती) बहुत ज्ञान वाली (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्यादि लोकों की (स्कम्भनीः) रोकनेवाली तथा (पार्वतेयी) मेघ की कन्या अर्थात् पृथिवी के तुल्य (धिषणा) वेद वाणी (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) शरीर के तुल्य विस्तारको प्राप्त होती है (त्वा) उसे (प्रतिवेत्तु) यथावत् जानो और जिस सत्संगतिरूप यज्ञसे (पर्वती) उत्तम२ ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करनेवाली (धिषणा) द्यौ अर्थात् प्रकाशरूपी बुद्धि प्राप्त होती है (त्वा) उसे भी (प्रतिवेत्तु) जानो ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को अपने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके

उनसे यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृष्टि या शुद्धि के बढ़ाने वाला है वह अग्नि और मनसे सिद्ध किया हुआ सूर्य्यके प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है ॥ १९ ॥

धान्यमसीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजनके लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये सो अगले मंत्रमें प्रकाश किया है ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनुप्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोसि ॥२०॥

पदार्थः—जो (धान्यम्) यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला सुख का हेतु रोग का नाश करने तथा चावल आदि अन्न या (पयः) जल (असि) है वह (देवान्) विद्वान् वा जीव तथा इन्द्रियों को (धिनुहि) तृप्त करता है इस कारण हे मनुष्यो ! मैं जिस प्रकार (त्वा) उसे (प्राणाय) अपने जीवन के लिये वा (त्वा) उसे (उदानाय) स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा (त्वा) उसे (व्यानाय) सब शुभ गुण शुभ कर्म वा विद्या के अङ्गों के फैलाने के लिये तथा (दीर्घाम्) बहुत दिनों तक (प्रसितिम्) अत्युत्तम सुखबन्धनयुक्त (आयुषे) पूर्ण आयु के भोगने के लिये (धाम्) धारण करता हूं वैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उस को नित्य धारण करो जैसे हम विद्वान् लोगों को (हिरण्यपाणिः) जिस का मोक्ष देना ही व्यवहार है ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करने हारा (सविता) सब ऐश्वर्य्य का दाता ईश्वर (अच्छिद्रेण) अपनी व्याप्ति वा उत्तम व्यवहार से (महीनाम्) वाणियों के प्रत्यक्ष ज्ञान को (प्रत्यनुगृभ्णातु) अपने अनुग्रह से ग्रहण करता है वैसे ही हम भी उस ईश्वर को (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) स्तुतियों से ग्रहण करें और जैसे (हिरण्यपाणिः) पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (सविता) सूर्य्य को (महीनाम्) लोकलोकांतरोंकी पृथिवियों में नेत्रव्यवहार के लिये (अच्छिद्रेण) निरन्तर तीव्रप्रकाश से (पयः) जल को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करके अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे ही हम लोग भी उसे (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) व्यवहार से (महीनाम्) पृथिवी के (चक्षुषे) पदार्थों को दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जो यज्ञ से शुद्ध किये हुये अन्न जल आदि पदार्थ हैं वे सब की शुद्धि बल पराक्रम और दृढ़ दीर्घ आयु के बढ़ाने

के लिये समर्थ होते हैं इस से सब मनुष्यों को यज्ञ कर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेदचतुष्टयी अर्थात् चारों वेद की वाणी है उस के प्रत्यक्ष करने के लिये ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा तथा अपना पुरुषार्थ करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर कृपा करता है वैसे ही हम लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य कृपा करनी चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर वा सूर्य लोक संसार आत्मा और वेदों में सत्य ज्ञान तथा मूर्त्तिमान् पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है वैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सब के सुख के लिये संपूर्ण विद्या मनुष्यों को दृष्टिगोचर कराके नित्य प्रकाशित करनी चाहिये और उन से हम को पृथिवी का चक्रवर्त्ति राज्य आदि अनेक उत्तम २ सुखों को उत्पन्न निरन्तर करना चाहिये ॥ २० ॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । आदौ संवपामीत्यन्तस्य गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । अन्त्यस्य विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

जिन ओषधियों से अन्न बनता है वे यज्ञादि करने से कैसे शुद्ध होती हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसुवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । संवपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन सꣳ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (सवितुः) सकल ऐश्वर्य्य के देनेवाले (देवस्य) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष संसार में वा सूर्य्य लोक के प्रकाश में (अश्विनोः) सूर्य्य और भूमि के तेज की (बाहुभ्याम्) दृढ़ता से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले वायु के (हस्ताभ्याम्) प्राण और अपान से (त्वा) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ का (संवपामि) विस्तार करता हूं वैसे ही तुम भी उस को विस्तार से सिद्ध करो। अथवा जैसे इस उत्पन्न किये हुए संसारमें वा सूर्य्यके प्रकाशमें (ओषधीभिः) यवादि ओषधियों से (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधी (रसेन) आनन्दकारक रस से तथा (जगतीभिः) उत्तम ओषधियों से (रेवतीः) उत्तम जल और जैसे (मधुमतीभिः) अत्यन्त मधुर रसयुक्त ओषधियों से (मधुमतीः) अत्यन्त उत्तम रसरूप जल ये सब मिलकर वृद्धियुक्त होते हैं वैसे हम सब लोगों को भी ओषधियों से जल और ओषधि उत्तम जल से तथा सब उत्तम ओषधियों से उत्तम रसयुक्त जल तथा अत्युत्तम मधुर रसयुक्त ओषधियों से प्रशंसनीय रसरूप जल इन सभों को यथा-

योग्य परस्पर (संपृच्यन्ताम्) युक्ति से वैद्यक वा शिल्प की शास्त्ररीति से मेल करना चाहिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् मनुष्यों को ईश्वर के उत्पन्न किये हुए वा सूर्य्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस संसार में अनेक प्रकार से संप्रयुक्त करने योग्य पदार्थों को सर्व मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल करके उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये जैसे जल अपने रस से ओषधियों को बढ़ाता है और वे उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोग नाश करने से सुखदायक होती हैं । और जैसे ईश्वर कारण से कार्य्य को यथावत् रचता है तथा सूर्य्य सब जगत् को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों का आकर्षण करता है तथा वायु रस को धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे हम लोगों को भी यथावत् संस्कारयुक्त संयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानों का सङ्ग तथा विद्या की उन्नति से वा होम शिल्प कार्य्यरूपी यज्ञों से वायु और वर्षा जल की शुद्धि सदा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

जनयत्यैत्वेत्यस्यर्षिः पूर्वोक्तः । प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य यज्ञो देवता । स्वराड्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (जनयत्यै) सर्व सुख उत्पन्न करने वाली राज्यलक्ष्मी के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (संयौमि) अग्नि के बीच में पदार्थों को छोड़ कर युक्त करता हूं वैसे ही तुम लोगों को भी अग्नि के संयोग से सिद्ध करना चाहिये । जो हम लोगों का (इदम्) यह संस्कार किया हुआ हवि (अग्नेः) अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है (इदम्) वह विस्तार को प्राप्त हो कर (अग्नीषोमयोः) अग्नि और सोम के बीच पहुंच कर (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये होता है और जो (विश्वायुः) पूर्ण आयु और (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (घर्मः) यज्ञ (असि) है उस को जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूं वैसे (त्वा) उसको हे पुरुषो तुम भी (उरु प्रथस्व) विस्तृत करो इस प्रकार विस्तार करने वाले (ते) तुम्हारे लिये

(यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी (अग्निः) यज्ञसम्बन्धी अग्नि (ते) (सविता) अन्तर्यामी (देवः) जगदीश्वर (उद प्रथताम्) अनेक प्रकार सुख को बढ़ावे (मा हिंसीत्) कभी नष्ट न करे तथा यह परमेश्वर (वर्षिष्ठे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ (अधिनाके) जो अत्युत्तम सुख है उस में (त्वा) तुम को (श्रपयतु) सुख से युक्त करे यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ । अब दूसरा कहते हैं । हे मनुष्य ! जैसे मैं जो (विश्वायुः) पूर्ण आयु तथा (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (धर्मः) यज्ञ (असि) है (त्वा) उस यज्ञ को (जनयत्यै) राज्यलक्ष्मी तथा (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये (संयौमि) संयुक्त करता हूं तथा उसकी सिद्धि के लिये (इदम्) यह (अग्नेः) अग्नि के बीच में और (इदम्) यह (अग्नीषोमयोः) अग्नि और सोम के बीच में संस्कार किया हुआ हवि छोड़ता हूं वैसे तुम भी उस यज्ञ को (उद प्रथस्व) विस्तार को प्राप्त करो जिस कारण यह (अग्निः) भौतिक अग्नि (ते) तुम्हारे (त्वचम्) शरीर को (मा हिंसीत्) रोगों से नष्ट न करे और जैसे (देवः) जगदीश्वर (सविता) अन्तर्यामी (वर्षिष्ठे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ जो (अधिनाके) अत्युत्तम सुख है उसमें (त्वा) उस यज्ञ को अग्नि के बीच में परिपक्व करता है वैसे तुम भी उस यज्ञ को (श्रपयतु) परिपक्व करो और (ते) तुम्हारे (यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी भी उस यज्ञ को (उदप्रथताम्) विस्तारयुक्त करे ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालंकार जानना चाहिये—मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी सकल आयु अन्न आदि पदार्थ रोगनाश और सब सुखों का विस्तार हो उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि इसके बिना वायु और वृष्टि जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के बिना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता इसलिये ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है ॥ २२ ॥

मा भेर्मेत्यस्यर्षिः स एव । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

निर्भय होकर उक्त यज्ञ सब को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

मा भेर्मा सं विक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भू-
यात्त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम (अतमेरुः) श्रद्धालु होकर (यज्ञसम्बन्धी यजमान के यज्ञ के अनुष्ठान से (मा भेः) भय मत करो और उस से (मा संविक्थाः) मत चलायमान हो इस प्रकार (यज्ञः) यज्ञ करते हुए तुम को उत्तम से उत्तम (अतमेरुः)

ग्लानिरहित श्रद्धावान् (प्रजा) संतान (भूयात्) प्राप्त हो और मैं (त्वा) भौतिक अग्नि को (एकताय) (द्विताय) (त्रिताय) उक्त गुणयुक्त तथा सत्य सुख के लिये वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा शिल्प कर्म और हवि के होने के लिये (संयौमि) निश्चल करता हूं ॥ २३ ॥

भावार्थः—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान होना कभी न चाहिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे२ कामों से ही उत्तम २ संतान शारीरिक वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥ २३ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव । द्योविद्युतौ देवते । स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ २४ ॥

पदार्थः—मैं (सवितुः) अन्तर्यामी प्रेरणा करने (देवस्य) सब आनन्द के देनेवाले परमेश्वरकी (प्रसवे) प्रेरणामें (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्र और अध्वर्युओं के बल और वीर्य्यसे तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक वायुके (हस्ताभ्याम्) जो कि ग्रहण और त्याग हेतु उदान और अपान हैं उनसे (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य सुखों की प्राप्तिके लिये (अध्वरकृतम्) यज्ञसे सुखकारक कर्म को (आददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं और मेरा किया हुआ जो यज्ञ है सो (इन्द्रस्य) सूर्य्यका (सहस्रभृष्टिः) जिसमें अनेक प्रकार के पदार्थोंके पचाने का सामर्थ्य वा (शततेजाः) अनेक प्रकारका तेज तथा (दक्षिणः) प्राप्त करनेवाला (बाहुः) किरणसमूह (असि) है और जिस (इन्द्रस्य) सूर्य्य वा मेघमंडल का (तिग्मतेजाः) तीक्ष्ण तेजवाला (वायुः) हेतु (असि) है उस से हमको अनेक प्रकार के सुख तथा (द्विषतः) शत्रुओं का (वधः) नाश करना चाहिये ॥ २४ ॥

[भावार्थ]:—ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्योंको अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ [जो] भौतिक अग्निके संयोगसे ऊपरको अच्छे २ पदार्थ छोड़े हैं वह सूर्य्यको स्थिर होता है तथा पवन उसको धारण करता है और वह सबके उपकार हजारों सुखोंको प्राप्त करके दुःखों का विनाश करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

पृथिवीत्यस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उक्त यज्ञ कहाँ जाके क्या करनेवाला होता है इस विषयका उपदेश अगले मंत्रमें किया है।

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलम्मा हिंꣳसिषं व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (देव) सूर्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा (सवितः) राज्य और ऐश्वर्य्यके देने वाले परमेश्वर (ते) आप की कृपा से मैं (देव यजनि) विद्वानों के यज्ञ करने की जगह (ते) यह जो (पृथिवी) भूमि है उस का (मूलम्) वृद्धिकरने वाले मूल को (मा हिꣳसिषम्) नाश न करूं और मैं (पृथिव्याम्) अनेक प्रकार सुखदायक भूमि में (यः) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूं वह (व्रजम्) जल वृष्टि कारक मेघ को (गच्छ) प्राप्तहो वहां जाकर (गोष्ठानम्) सूर्यकी किरणों के गुणों से (वर्षतु) वर्षाता है और (द्यौः) सूर्यके प्रकाश (वर्षतु) वर्षाता है। हे वीरपुरुषो ! आप (अस्याम्) इस पृथिवी में (यः) जो कोई अधर्मात्मा डाकू (अस्मान्) सब के उपकार करने वाले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस दुष्ट शत्रु से (वयम्) धार्मिक शूर हम लोग (द्विष्मः) विरोध करें (तम्) उस दुष्ट (परम्) शत्रु को (शतेन) अनेक (पाशैः) बन्धनों से (बधान) बांधो और उस को (अतः) इस बंधन से कभी (मा मौक्) मत छोड़ो ॥ २५ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञ और ओषधियां इन का नाश कभी न करना चाहिये जो यज्ञ अग्नि में हवन किये हुए पदार्थों का धूम मेघ मंडल को जाकर शुद्धि के द्वारा अत्यन्त सुख उत्पन्न करने वाला होता है इस से यह यज्ञ किसी पुरुष को कभी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवीपर अनेक बन्धनोंसे बांधे और उनसे कभी न छोड़ें जिससे कि वे दुष्ट कर्मों से निवृत्त हों और सब मनुष्योंको चाहिये कि परस्पर ईर्षा द्वेषसे अलग होकर एक दूसरेकी सब प्रकार सुखकी उन्नति के लिये सदा यत्न करें ॥ २५ ॥

अपाररुमित्यस्य सर्वस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। पूर्वार्द्धे स्वराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। उत्तरार्द्धे भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर इस यज्ञसे क्या २ कार्य्य सिद्ध होता है इस विषयका उपदेश अगले मंत्रमें किया है ।

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन्व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (देव) सर्वानन्द के देने वाले जगदीश्वर (सवितः) सब प्राणियों में अन्तर्यामी सत्यप्रकाश करने हारे आप की कृपा से हम लोग परस्पर उपदेश करें कि जैसे यह सब का प्रकाश करने वाला सूर्य्य लोक और पृथिवी में अनेक बन्धन के हेतु किरणों से खैंच कर पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांध कर अच्छे २ गुणोंका प्रकाश करो और जैसे मैं (पृथिव्यै) पृथिवी में (देवयजनात्) विद्वान् लोग जिस संग्राम से अच्छे २ पदार्थ या उत्तम २ विद्वानों की संगति को प्राप्त होते हैं उस से (अररुम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रु जन को (अपवध्यासम्) मारता हूं वैसे ही तुम लोग भी उस को मारो तथा जैसे मैं (व्रजम्) उत्तम२ गुण जानेवाले सज्जनों के सङ्ग को प्राप्त होता हूं वैसे तुम भी उस को (गच्छ) प्राप्त हो जैसे मैं (गोष्ठानम्) पठन पाठन व्यवहार की बताने वाली मेघ की गर्जना के समतुल्य वेदवाणी को अच्छे २ शब्दरूपी बूंदों से वर्षाता हूं वैसे तुम भी (वर्षतु) वर्षाओ जैसे मेरी विद्या की (द्यौः) शोभा सब को दृष्टिगोचर है वैसे (ते) तुम्हारी भी विद्या सुशोभित हो जैसे मैं (यः) जो मूर्ख (अस्मान्) विद्या का प्रचार करने वाले हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस विद्याविरोधि जन को (वयम्) विद्वान् हम लोग (द्विष्मः) दुष्ट समझते हैं (तम्) उस (परम्) विद्या के शत्रु को (अस्याम्) इस सब पदार्थों की धारण करने और (पृथिव्याम्) विविध सुख देने वाली पृथिवी में (शतेन) बहुत से (पाशैः) बन्धनों से नित्य बांधता हूं कभी उस से उस को नहीं त्यागता वैसे हे वीर लोगो ! तुम भी उस को (बधान) बांधो कभी उस को (अतः) उस बन्धन से (मा मौक्) मत छोड़ो और जो दुष्ट जन हम लोगों से विरोध करे तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें उस को उस बन्धन से कोई मनुष्य न छोड़े इस प्रकार सब लोग उस को उपदेश करते रहैं कि हे (अररो)

दुष्ट पुरुष ([illegible]) [illegible] ([illegible]) मत प्राप्त हो तथा (ते) तेरा (शत्रुः) [illegible] विद्यार्थी जन (व्रजम्) [illegible] को ([illegible]) मत प्राप्त करें । हे [illegible] मनुष्यो जैसे मैं (व्रजम्) विज्ञानों के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त होता हूं वैसे तुम भी (गच्छ) उस को प्राप्त हो जैसे यह (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (गोष्ठानम्) पृथिवी का स्थान अन्तरिक्ष को सींचता है वैसे ही ईश्वर वा विद्वान् पुरुष तुम्हारी कामनाओं को (वर्षतु) वर्षावें अर्थात् क्रम से पूरी करें । जैसे यह (देवः) व्यवहार का हेतु (सवितः) सूर्य्य लोक (अस्याम्) इस प्रत्यक्ष [illegible] योग्य (पृथिव्याम्) बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में (शतेन) अनेक (पाशैः) बन्धन के हेतु किरणों से आकर्षण के साथ पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांधो और (यः) जो न्यायविरोधी (अस्मान्) न्यायाधीश हम लोगों से (द्वेष्टि) वैर करता है(च)और (यम्) अन्यायकारी जन पर (वयम्) संपूर्ण हित संपादन करने वाले हम लोग (द्विष्मः) वैर करते हैं (तम्) उस (परम्) शत्रु को (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) उक्त गुण वाली पृथिवी में (शतेन) अनेक (पाशैः) साम दाम दण्ड और भेद आदि उपायों से बांधता हूं और जैसे मैं उस को उग्र दण्ड से बांध कर कभी नहीं छोड़ता वैसे ही तुम भी (बधान) बांधो अर्थात् बन्धनरूप दण्ड सदा दो । कभी उस को (मा मौक्) मत छोड़ो ॥ २६ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करनेवाले काय्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिये उन का बन्धन करना चाहिये परस्पर प्रीति के साथ विद्या और शरीर का बल संपादन करके क्रिया तथा कलायन्त्रों से अनेक यान बना कर सब को सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

गायत्रेणेत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ का ग्रहण वा अनुष्ठान किस से करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ।

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि — चासि

शिवा चांसि स्योना चासि सुषदां चास्यूर्जस्वती चासि पर्यस्वती च ॥ २७ ॥

पदार्थः—जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ (सुक्ष्मा) यह पृथिवी शोभायमान (असि) होती है (च) तथा जिस से सुखकारक गुण (च) अथवा मनुष्यों के साथ यह (शिवा) मङ्गल की देनेवाली (असि) होती है (च) तथा जिसकरके उत्तम से उत्तम सुखों के साथ यह पृथिवी (स्योना) सुख उत्पन्न करनेवाली (असि) होती है (च) और जिस से उत्तम २ सुख करने वाले और चलने के साथ यह (सुषदा) सुख से स्थिति करने योग्य (असि) होती है तथा जिन उत्तम यव आदि अन्नों के साथ यह (ऊर्जस्वती) अन्नवाली (असि) होती है (च) और जिन उत्तम मधुर आदि रस वाले फलों करके यह पृथिवी (पयस्वती) प्रशंसा करने योग्य रसवाली (असि) होती है (त्वा) उस यज्ञ को मैं उस यज्ञ विद्याका जाननेवाला मनुष्य (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) जो कि चित्त को प्रफुल्लित करने वाला है उस से (परिगृह्णामि) सब प्रकार से सिद्ध करता हूं और मैं (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् (छन्दसा) जो कि स्वतंत्रतारूप से आनन्द का देने वाला है उस से (त्वा) पदार्थसमूह को (परिगृह्णामि) सब प्रकार से इकट्ठा करता हूं तथा मैं (जागतेन) जगती जो कि (छन्दसा) अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करने वाला है उस से (त्वा) उस भौतिक अग्नि को (परिगृह्णामि) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं ॥ २७ ॥

भावार्थः—वेदका प्रकाश करनेवाला ईश्वर हम लोगोंके प्रति कहता है कि हे मनुष्यो! तुम लोगोंको वेदमंत्रके बिना पढ़े और उनके अर्थोंके बिना जाने यज्ञका अनुष्ठान वा सुखरूप फलको प्राप्त होना और सब शुभ गुणयुक्त सुखकारी अन्न जल और वायु आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते इसमें यह तीन प्रकारके यज्ञकी सिद्धि यत्नपूर्वक संपादन करके सदा सुखहोमें रहना चाहिये और जो इस पृथिवीमें वायुजल तथा ओषधियोंको दूषित करनेवाले दुर्गंध अवगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं वे सर्वदा निवारण करने चाहिये ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्येत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । विराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

वे दोष कैसे निवारण करने और यहां मनुष्योंको फिर क्या करना चाहिये इस विषयका उपदेश अगले मंत्रमें किया है ।

पुरा क्रूरस्यं विसृपों विरप्शिन्नुदादायं पृथिवीं जीवदानुम् ।

यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते।
प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ॥ २८ ॥

पदार्थ.—हे (विरप्शिन्) महाशय महागुणवान् जन ईश्वर ! आपने (याम्) जिस (स्वधाभिः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त और (जीवदानुम्) प्राणियों को जीव देने वाले पदार्थ तथा (पृथिवीम्) बहुतसी प्रजायुक्त पृथिवी को (उदादाय) ऊपर उठाकर (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक के समीप स्थापन की है इस कारण उस पृथिवी को (धीरासः) धीर बुद्धिवाले पुरुष प्राप्त होकर आप के अनुकूल चलकर यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करते हैं जैसे (चन्द्रमसि) आनन्द में वर्त्तमान होकर (धीरास) बुद्धिमान् पुरुष (याम्) जिस (जीवदानुम्) जीवों को हितकारक (पृथिवीम्) पृथिवी के आश्रित होकर सेना और शस्त्रों को (उदादाय) क्रम से लेकर (विप्रुषः) जो कि युद्ध करने वाले पुरुषों के प्रभाव दिखाने योग्य और (क्रूरस्य) शत्रुओं के अङ्ग विदीर्ण करने वाले संग्राम के बीच में शत्रुओं को जीत कर राज्य को प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष (पुरा) पहिले समय में प्राप्त हुए जिन क्रियाओं से (प्रोक्षणीः) अच्छी प्रकार पदार्थों को सींच के उन को सम्पादन करते हैं वैसे ही हे (विरप्शिन्) महा ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले पुरुष तू भी उस को प्राप्त होके ईश्वर का पूजन तथा पदार्थ सिद्धि करनेवाली उत्तम २ क्रियाओं का सम्पादन कर जैसे (द्विषतः) शत्रुओं का (वधः) नाश (असि) हो वैसे कामों को करके नित्य आनन्द में वर्त्तमान रह ॥ २८ ॥

भावार्थः—जिस ईश्वर ने क्रम से अन्तरिक्ष में पृथिवी पृथिवियों के समीप चन्द्रलोक, चन्द्रलोकों के समीप पृथिवी, एक दूसरे के समीप तारालोक और सब के बीच में अनेक सूर्य्यलोक तथा इन सब में नानाप्रकार की प्रजा रचकर स्थापन की है वही परमेश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है। जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते तब तक राज्यसुख को नहीं प्राप्त हो सकते क्योंकि बिना युद्ध और बल के शत्रुजन कभी नहीं डरते। तथा विद्वान् लोग विद्या न्याय और विनय के बिना यथावत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नहीं हो सकते इस कारण सब को जितेन्द्रिय हो कर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सब के सुख के लिये उत्तम २ प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता सर्वस्य। पूर्वार्द्धे भुरिग्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥ उत्तरार्द्धे त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि । प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥ २९ ॥

पदार्थः—मैं जिस अति विस्तृत शत्रुओं के नाश करने वाले संग्राम से (प्रत्युष्टं रक्षः) विघ्नकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) जिस में सत्य विरोधी अच्छी प्रकार दाहदण्ड को प्राप्त होते हैं वा (निष्टप्तं रक्षः) जिस बन्धन से बांधने योग्य (निष्टप्ता अरातयः) विद्या के विघ्न करने वाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते हैं (त्वा) उस (वाजिनम्) वेग आदि गुणवाले संग्राम को (वाजेध्यायै) जो कि अन्न आदि पदार्थों से बलवान् करने के योग्य सेना है उस के लिये युद्ध के साधनों को (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूं अर्थात् उनके दोषों का विनाश करता हूं और मैं जिस (सपत्नक्षित्) शत्रु का नाश करनेवाले और (अशिता) अति विस्तारयुक्त सेना से (प्रत्युष्टं रक्षः) परसुख का न सहने वाला मनुष्य वा (प्रत्युष्टा अरातयः) उक्त अपगुण वाले अनेक मनुष्य (निष्टप्तं रक्षः) जुआ खेलने और परस्त्रीगमन करने तथा (निष्टप्ता अरातयः) औरों को सब प्रकार से दुःख देने वाले मनुष्य अच्छी प्रकार निकाले जाते हैं (त्वा) उस (वाजिनीम्) बल और वेग आदि गुणवाली सेना को (वाजेध्यायै) बहुत साधनों से प्रकाशित करने के लिये (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार उत्तम २ शिक्षाओं से शुद्ध करता हूं और जो कि (अनिशितः) बड़ी क्रियाओं से सिद्ध होने योग्य वा (सपत्नक्षित्) दोषों वा शत्रुओं के विनाश करने हारे यज्ञ वा युद्ध को (वाजेध्यायै) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (संमार्ज्मि) शुद्धता से सिद्ध करता हूं ॥ २९ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को विद्या और शुभ गुणों के प्रकाश और दुष्ट शत्रुओं की निवृत्ति के लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये तथा सदैव श्रेष्ठ शिक्षा शस्त्र अस्त्र और सत्पुरुषयुक्त उत्तम सेना से श्रेष्ठों की रक्षा दुष्टों का विनाश करना चाहिये जिस करके मनुष्य आदि दोषों के विनाश होने से सर्वत्र शुद्ध गुणप्रवृत्त हो सकते हैं ॥ २९ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ किस प्रकार का और कौन फल का देने वाला होता है
सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है।

अदि॑त्यै॒ रास्ना॑सि॒ विष्णो॑र्वे॒ष्पो॑स्यू॒र्जे त्वा॑ऽद॑ब्धेन त्वा॒ चक्षु॒षाव॑पश्या-
मि। अ॒ग्नेर्जि॒ह्वा॑सि॒ सु॒हूर्दे॒वेभ्यो॒ धाम्ने॑ धाम्ने मे भव॒ यजु॑षे यजुषे ॥ १० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! जो आप (अदित्यै) पृथिवी के (रास्ना) रस आदि पदार्थों के उत्पन्न करने वाले (असि) हैं (विष्णोः) (असि) व्यापक (वेष्पः) पृथिवी आदि सब पदार्थों में प्रवर्त्तमान भी (असि) हैं तथा (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (जिह्वा) जीभरूप (असि) हैं वा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (धाम्ने धाम्ने) जिन में कि वे विद्वान् सुखरूप पदार्थों को प्राप्त होते हैं जो तीनों धाम अर्थात् स्थान नाम और जन्म हैं उन धर्मों की प्राप्ति के तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मंत्र २ का आशय प्रकाशित होने के लिये (सुहूः) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य हैं इस प्रकार के (त्वा) आपको मैं (अदब्धेन) प्रेम सुप्रयुक्त (चक्षुषा) विज्ञान से (ऊर्जे) पराक्रम (अदित्यै) पृथिवी तथा (देवेभ्यः) श्रेष्ठगुणों वा (धाम्ने धाम्ने) स्थान नाम और जन्म आदि पदार्थों की प्राप्ति तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र २ के आशय जनाने के लिये (अवपश्यामि) ज्ञानरूपी नेत्रों से देखता हूं आप भी कृपा करके मुझ को विदित और मेरे पूजन को प्राप्त (भव) हूजिये यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ। अब दूसरा कहते हैं जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) अन्तरिक्ष के (रास्ना) रासरूपी रसादि पदार्थों की क्रिया का कारण (असि) है (विष्णोः) यज्ञसम्बन्धी कार्य्यों का (वेष्पः) व्यापक (असि) है (अग्नेः) भौतिक अग्नि का (जिह्वा) जिह्वारूप (असि) है (देवेभ्यः) तथा दिव्य गुण (धाम्ने धाम्ने) कीर्त्ति स्थान और जन्म इन की प्राप्ति वा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र २ का आशय जानने के लिये (सुहूः) अच्छी प्रकार प्रशंसा करने योग्य (असि) होता है इस कारण (त्वा) उस यज्ञ को मैं (अदब्धेन) सुखपूर्वक (चक्षुषा) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रों से (अवपश्यामि) देखता हूं तथा (त्वा) उसे (अदित्यै) पृथिवी आदि पदार्थ (देवेभ्यः) उत्तम २ गुण (धाम्ने धाम्ने) स्थान २ तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मंत्र २ में हित होने के लिये (अवपश्यामि) क्रिया की कुशलता से देखता हूं ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—सब मनुष्यों को जैसे यह जगदीश्वर वस्तु २ में स्थित तथा वेद के मन्त्र २ में प्रतिपादित और सेवा करने योग्य है वैसे ही यह यज्ञ वेद के प्रति मंत्र से अच्छी प्रकार सिद्ध प्रतिपादित विद्वानों ने रोचित किया

हुआ सब प्राणियों के लिये पदार्थ पदार्थ में पराक्रम और बल के पहुंचाने के योग्य होता है ॥ ३० ॥

सवितुस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वार्द्धे जगती छन्दः । निषादः स्वरः । तेजोऽसीत्यस्याऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ कैसे पवित्र होता है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियन्देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

पदार्थः—जो यज्ञ (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) तथा पवित्र (सूर्य्यस्य) प्रकाशमय सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ मिल के सब पदार्थों को शुद्ध करता है (त्वा) उस यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं (उत्पुनामि) उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूं इसी प्रकार (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) शुद्धिकारक (सूर्य्यस्य) जो कि ऐश्वर्य्य हेतुओं के प्रेरक प्राण के (रश्मिभिः) अन्तराशय के प्रकाश करने वाले गुण हैं उन से (वः) तुम लोगों को तथा प्रत्यक्ष पदार्थों को यज्ञ करके (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं । हे ब्रह्मन् ! जिस कारण आप (तेजोसि) स्वयम् प्रकाशवान् (शुक्रमसि) शुद्ध (अमृतमसि) नाशरहित (धामासि) सब पदार्थों का आधार (नामासि) वंदना करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों के (प्रियम्) प्रीतिकारक (अनाधृष्टम्) तथा किसी की धर्षणा में न आने के योग्य वा (देवयजनमसि) विद्वानों के पूजा करने योग्य हैं इस से मैं(त्वा) आप का ही आश्रय करता हूं । यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ । जिस कारण यह यज्ञ (तेजोसि) प्रकाश और (शुक्रमसि) शुद्धि का हेतु (अमृतमसि) मोक्ष सुख का देने तथा (धामासि) सब अन्न आदि पदार्थों की पुष्टि करने वा (नामासि) जल का हेतु (देवानाम्) श्रेष्ठ गुणों की (प्रियम्) प्रीति कराने तथा (अनाधृष्टम्) किसी को खण्डन करने के योग्य नहीं अर्थात् अत्यंत उत्कृष्ट और (देवयजनम्) विद्वान् जनों को परमेश्वर का पूजन करने वाला (असि) है इस कारण इस यज्ञ से मैं (सवितुः) जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरंतर (प- ... शुद्ध यज्ञ वा (सूर्य्यस्य) ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के गुण ... के उत्पन्न कराने वाले सूर्य्य की (रश्मिभिः) विज्ञानादि प्रकाश वा

किरणों से (वः) तुम [illegible] (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं। यह [illegible] हुआ ॥ ३१ ॥

भावार्थः - इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है-परमेश्वर [illegible] जनाता है कि जो शुद्ध लोगों से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह सूर्य की किरणों के साथ रहकर सब के लिये शुद्ध गुणों और पदार्थों को पवित्र करता है तथा वह उनके द्वारा सब पदार्थों को सूर्य की किरणों से [illegible] शुद्ध उत्तम स्वभाव से सुख [illegible] करता है [illegible] पदार्थों को [illegible] उनके भोजन करने से शरीर को पुष्टि बुद्धि [illegible] शुद्ध गुणों को [illegible] करके सब जीवों को सुख देता है ॥३१॥

ईश्वर ने इस अध्याय में मनुष्यों को शुद्ध कर्म के अनुष्ठान होम और शत्रुओं की निवृत्ति यज्ञक्रिया के फल को जानने, अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करने, विद्या के विस्तार करने, धर्म के अनुकूल प्रजापालने, धर्म के अनुष्ठान में निर्भयता से स्थित होने, सब के साथ मित्रता से वर्तने, वेदों से सब विद्याओं का ग्रहण करने और कराने की शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने की आज्ञा दी है सो यह सब मनुष्यों को अनुष्ठान करने के योग्य है ॥

यह प्रथम अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

ओ३म्

अथ द्वितीयाध्यायारम्भः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥ य० ३० । ३ ।

ईश्वरेणैतद् द्वितीयाध्याये क्रियाणां प्रथमाध्याये प्राणिनां सुखायोक्ता-
नां सिद्धिं कर्त्तुं विशिष्टा विद्याः प्रकाश्यन्ते ॥

कृष्णोऽसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः

अब दूसरे अध्याय में परमेश्वर ने उन क्रियाओं की सिद्धि करने के लिये विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो २ प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित की हैं उन में से वेदि आदि पदार्थों के बनाने की हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं उन में से प्रथम मन्त्र में यज्ञ सिद्ध करने के लिये साधन अर्थात् उन की सिद्धि के निमित्त कहे हैं ॥

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे
त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (आखरेष्ठः) वेदी की रचना से खुदे हुए स्थान में स्थिर होकर (कृष्णः) भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्म रूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त (असि) होता है इस से मैं (अग्नये) भौतिक अग्नि के बीच में हवन करने के लिये (जुष्टम्) प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए (त्वा) उस यज्ञ अर्थात् होमकी सामग्री को (प्रोक्षामि) घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूं और जिस कारण यह वेदी अन्तरिक्ष में स्थित होती है इस से मैं (बर्हिषे) होम किये हुए पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुंचाने के लिये (जुष्टाम्) प्रीति से संपादन की हुई (त्वा) उस वेदी को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सींचता हूं तथा जिस कारण यह (बर्हिः) जल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्धि कराने वाला होता है इससे (त्वा) उसकी शुद्धि के लिये जो कि शुद्ध किया हुआ (जुष्टम्) पुष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हवि है उसको मैं (स्रुग्भ्यः) स्रुवा आदि साधनों से अग्नि में डालने के लिये (प्रोक्षामि) शुद्ध करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री ले के उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्निमें होम करके किया हुआ यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब ओषधियों को पुष्ट करता है उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है ॥ १ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। स्वराड् जगतीछन्दः। निषादः स्वरः ॥

इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करानेवाला होता है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है।

अदि॑त्यै व्युन्द॑नमसि॒ विष्णो॑स्तुपो॒ऽस्यूर्ण॑म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थान् दे॒वेभ्यो॒ भुव॑पतये॒ स्वाहा॒ भुव॑नपतये॒ स्वाहा॑ भूताना॒ऽपत॑ये॒ स्वाहा॑ ॥ २ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) पृथिवी के (व्युन्दनम्) विविध प्रकार के ओषधी आदि पदार्थों का सींचनेवाला (असि) होता है इस से मैं उसका अनुष्ठान करता हूं और (विष्णोः) इस यज्ञ को सिद्ध करानेहारा (स्तुपः) शिखारूप (ऊर्णम्रदसम्) उलूखल (असि) है इस से मैं (त्वा) उस अन्न के छिलके दूर करने वाले पत्थर और उलूखल को (स्तृणामि) पदार्थों से ढांपता हूं तथा वेदी (देवेभ्यः) विद्वान् और दिव्य सुखों के हित कराने के लिये (असि) होती है इस से उस को मैं (स्वासस्थाम्) ऐसी बनाता हूं कि जिस में होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिस से संसार का पति भुवन अर्थात् लोकलोकान्तरोंका पति संसारी पदार्थों का स्वामी और परमेश्वर प्रसन्न होता है तथा भौतिक अग्निसुखों का सिद्ध करानेवाला होता है इस कारण (भुवपतये) (स्वाहा) (भुवनपतये) (स्वाहा) (भूतानां पतये) (स्वाहा) उक्त परमेश्वर की प्रसन्नता और आज्ञा पालन के लिये उस वेदी के गुणोंसे जो कि सत्य भाषण अर्थात् अपने पदार्थोंको मेरे हैं यह कहना वा श्रेष्ठ वाक्य आदि उत्तम वाणी युक्त वेद है उसके मंत्रों के साथ स्वाहा शब्दका अनेक प्रकार उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कामों का विधान किया जाता है इस प्रयोजन के लिये भी वेदी को रचता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम को वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन कर के सब प्राणियों के सुख तथा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार क्रिया युक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही बोलना चाहिये और जैसे मैं न्याय से सब विश्व का पालन करता हूं वैसे ही तुम

लोगों को भी पक्षपात छोड़ कर सब प्राणियों के पालन से सुख संपादन करना चाहिये ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । आद्यस्यभुरिगार्च्ची त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ मध्यभागस्यार्च्चीपङ्क्तिश्छन्दः । अन्त्यस्यपंक्तिश्छन्दः । उभयत्र पंचमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परि दधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणौत्वोत्तरतः परिधत्तान्ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥ ३ ॥

पदार्थः—विद्वान् लोगों ने जिस (गन्धर्वः) पृथिवी वा वाणी के धारण करने वाले (विश्वावसुः) विश्व को बसाने वाले (इडः) स्तुति करने योग्य (अग्निः) सूर्य्यरूप अग्नि की (ईडितः) स्तुति (असि) की है, जो (विश्वस्य) संसार के वा विशेष कर के (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले विद्वान् के (अरिष्ट्यै) दुःख निवारण से सुख के लिये इस यज्ञ को (परिदधातु) धारण करता है इस से विद्वान् उस को विद्या की सिद्धि के लिये (परिदधातु) धारण करे और विद्वानों से जो वायु (इन्द्रस्य) सूर्य्य का (बाहुः) बल और (दक्षिणः) वर्षा की प्राप्ति कराने अथवा (परिधिः) शिल्प विद्या का धारण कराने वाला तथा (इडः) दाह प्रकाश आदि गुण होने से स्तुति के योग्य (ईडितः) खोजा हुआ और (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (असि) है ये वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्प विद्या में युक्त किये हुए (यजमानस्य) शिल्प विद्या के चाहने वाले वा (विश्वस्य) सब प्राणियों के (अरिष्ट्यै) सुख के लिये (असि) होते हैं और जो ब्रह्माण्ड में रहने और गमन वा आगमन स्वभाव वाले (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु हैं वे (ध्रुवेण) निश्चल (धर्मणा) अपनी धारण शक्ति से (उत्तरतः) पूर्वोक्त वायु और अग्नि से उत्तर अर्थात् उपरान्त समय में (विश्वस्य) चराचर जगत् वा (यजमानस्य) सब से मित्र भाव में वर्त्तने वाले सज्जन पुरुष के (अरिष्ट्यै) सुख के हेतु (त्वा) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (परिधत्ताम्) सब प्रकार से धारण करते हैं तथा जो विद्वानों से (इडः) विद्या की प्राप्ति

रक्षा है यह विद्वानों से शिल्प विद्या के द्वारा यंत्रादिकों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक कार्यों को सिद्ध करने वाला होता है ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रमित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्ज स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से अगले मंत्र में उक्त दो अर्थों का प्रकाश किया है ॥

वीतिहोत्रन्त्वा कवे द्युमन्तꣳ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (कवे) सर्वज्ञ तथा हर एक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञानवाले (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हम लोग (अध्वरे) मित्र भाव के रहने में (बृहन्तम्) सब के लिये बड़े से बड़े अपार सुख के बढ़ाने और (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले वा (वीतिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों को विदित कराने वाले (त्वा) आप को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें । यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ। हम लोग (अध्वरे) अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं उस उत्तम यज्ञ में जिस में कि (वीतिहोत्रम्) पदार्थों की प्राप्ति कराने के हेतु अग्निहोत्र आदि क्रिया सिद्ध होती हैं और (द्युमन्तम् अत्यन्त प्रचण्ड ज्वालायुक्त (बृहन्तम्) बड़े २ कार्यों को सिद्ध कराने तथा (कवे) पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले (त्वा) उस (अग्ने) भौतिक अग्नि को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करें यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है—संसार में जितने क्रियाओं के साधन वा क्रियाओं से सिद्ध होनेवाले पदार्थ हैं उन सभों को ईश्वर ही ने रचकर अच्छी प्रकार धारण किये हैं मनुष्यों को उचित है कि उनकी सहायता गुण ज्ञान और उत्तम २ क्रियाओं की अनुकूलता से अनेक प्रकार उपकार लेने चाहियें ॥ ४ ॥

समिद्गौरित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचृद्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै स॒वितुर्बाहू स्थऽऊर्णम्रदसन्त्वा स्तृणामि स्वासस्थन्देवेभ्य आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—(चित्) जैसे कोई मनुष्य सुख के लिये क्रिया से सिद्ध किये पदार्थों की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे ही यह यज्ञ (समित्) वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित (असि) होता है (त्वा) उस को (सूर्यः) ऐश्वर्य्य का हेतु सूर्य्यलोक (कस्याः) सब पदार्थों की (अभिशस्त्यै) प्रकटता करने के लिये (पुरस्तात्) पहिले ही से उनकी (पातु) रक्षा करने वाला होता है तथा जो कि (सवितुः) सूर्य्य लोक के (बाहू) बल और वीर्य्य (स्थः) हैं जिन से यह यज्ञ विस्तार को प्राप्त होता है (त्वा) जिस (ऊर्णम्रदसम्) सुख के विघ्नों के नाश करने (स्वासस्थम्) और श्रेष्ठ अन्तरिक्षरूपी आसन में स्थित होने वाले यज्ञ को (वसवः) अग्नि आदि आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण, ये वसु (रुद्राः) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, और जीवात्मा, ये रुद्र (आदित्याः) बारह महिने (सदन्तु) प्राप्त करते हैं (त्वा) उसी (ऊर्णम्रदसम्) अत्यंत सुख बढ़ाने (स्वासस्थम्) और अन्तरिक्ष में स्थिर होने वाले यज्ञ को मैं भी सुख की प्राप्ति वा (देवेभ्यः) दिव्य गुणों को सिद्ध करने के लिये (आस्तृणामि) अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि मनुष्यों को वसु, रुद्र, और आदित्य संज्ञक पदार्थों से, जो २ काम सिद्ध हो सकते हैं सो २ सब प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं। तथा अग्नि के बीच जिन२ पदार्थों का प्रक्षेप अर्थात् हवन किया जाता है सो २ सूर्य्य और वायु को प्राप्त होता है वे ही उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं जिस से कि पृथिवी में दिव्य ओषधी आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन से जीवों को नित्य सुख होता है इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ५ ॥

घृताच्यसीत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता सर्वस्य । षट्पदि तमाक्षरपर्यन्तं ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । अग्रे निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । सर्वस्य धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ से क्या २ दिव्य सुख होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद। प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

पदार्थः—जो (जुहूः) हवि अग्नि में डालने के लिये सुख की उत्पन्न करनेवाली (स्रुक्) (घृताची) घृतयुक्त (असि) होती है (सा) वह यज्ञ में युक्त की हुई सार ग्रहण की क्रिया है सो (प्रियेण) सुखों से तृप्त करने वाला शोभायमान (धाम्ना) स्थान के साथ वर्त्तमान होके (इदम्) यह (प्रियम्) जिस में तृप्त करने वाले (सदः) उत्तम २ सुखों को प्राप्त होते हैं उन को (आसीद) सिद्ध करती है। जो (नाम्ना) प्रसिद्धी से (उपभृत्) समीप प्राप्त हुए पदार्थों को धारण करने तथा (घृताची) जल को प्राप्त कराने वाली हस्त क्रिया (असि) है (सा) वह उस में युक्त की हुई (प्रियेण) प्रीति के हेतु (धाम्ना) स्थल से (इदम्) यह ओषधी आदि पदार्थों का समूह (प्रियम्) जो कि आरोग्य पूर्वक सुखदायक और (सदः) दुःखों का नाश करने वाला है उस को (आसीद) अच्छी प्रकार प्राप्त करती है तथा जो (ध्रुवा) स्थिर सुखों वा (घृताची) आयु के निमित्त को देने वाली विद्या (असि) होती है (सा) वह अच्छी प्रकार उत्तम कार्य्यों में युक्त की हुई (प्रियेण) प्रीति उत्पन्न करने वाले स्थिरता के निमित्त से (इदम्) इस (प्रियम्) आनन्द कराने वाले जीवन वा (सदः) वस्तुओं को (आसीद) प्राप्त करता है। जिस क्रिया करके (प्रियेण) प्रसन्नता के करने हारे (धाम्ना) हृदय में (प्रियम्) प्रसन्नता करने वाला (सदः) ज्ञान (आसीद) अच्छी प्रकार प्राप्त होता है (सा) यह विज्ञानरीति सब को नित्य सिद्ध करनी चाहिये। हे (विष्णो) व्यापकेश्वर जैसे आप (ऋतस्य योनौ) शुद्ध यज्ञ में (ध्रुवाः) स्थिर वस्तु (असदन्) हो सके वैसे ही उन की निरन्तर (पाहि) रक्षा कीजिये तथा कृपा करके यज्ञ की (पाहि) रक्षा कीजिये (यज्ञन्यम्) यज्ञ प्राप्त करने (यज्ञपतिम्) यज्ञ को पालन करने हारे यजमान की (पाहि) रक्षा करो और यज्ञ को प्रकाशित करने वाले (माम्) मुझे (च) भी (पाहि) पालिये ॥६॥

भावार्थः—जो यज्ञ पूर्वोक्त मंत्र में वायु, रुद्र और आदित्य से सिद्ध होने के लिये कहा है वह वायु और जल की शुद्धि के द्वारा सब स्थान और सब वस्तुओं को प्रीति कराने हारे उत्तम सुख को बढ़ाने वाले कर देता है सब मनुष्यों को उस को

शुद्धि वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर की प्रार्थना और सदा अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ६ ॥

अग्ने वाजजिदित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने॑ वाजजिद्वाजं॑ त्वा सरिष्यन्तं॑ वाजजित॑ꣳ सम्मा॑र्ज्मि । न॒मो दे॒वेभ्यः॑ स्व॒धा पि॒तृभ्यः॑ सुय॒मे मे भूयास्त॒म् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जिस से यह (अग्ने) अग्नि (वाजजित्) अर्थात् जो उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त कराने वाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है इस से मैं (त्वा) उस (वाजम्) वेग वाले (सरिष्यन्तम्) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुंचाने और (वाजजितम्) अर्थात् युद्ध को जिताने वाले भौतिक अग्नि को (सम्मार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूं यज्ञ में युक्ति किये हुए जिस अग्नि से (देवेभ्यः) सुखकारक पूर्वोक्त वसु आदि से सुख के लिये (नमः) अत्यन्त मधुर श्रेष्ठ जल तथा (पितृभ्यः) पालने के हेतु जो वसन्त आदि ऋतु हैं उनसे जो आरोग्य के लिये (स्वधा) अमृतात्मक अन्न किये जाते हैं वे (सुयमे) बल वा पराक्रम के देने वाले उस यज्ञ से (मे) मेरे लिये (भूयास्तम्) होवें ॥ ७ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मंत्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है । क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट देखने में आती है वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों के छिन्न भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है । और यान वा अस्त्रशस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन वा विजय का हेतु हो कर वसन्त आदि ऋतुओं से उत्तम उत्तम पदार्थों का संपादन करके अन्न और जल को शुद्ध वा सुख देने वाले कर देता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ७ ॥

अस्कन्नमद्येत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ।

अस्क॑न्नम॒द्य दे॒वेभ्य॒ आज्य॑ꣳ संभ्रियास॒मङ्घ्रि॑णा विष्णो॒ मा त्वाव॑क्रमिषं॒ वसु॑मतीमग्ने ते छा॒यामुप॑स्थेषं॒ विष्णो॒ स्थान॑मसी॒त इन्द्रो॑ वी॒र्य॑मकृणोदू॒र्ध्वोऽध्व॒र आस्था॑त् ॥ ८ ॥

पदार्थः—मैं (देवेभ्यः) उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये जो (अस्कन्नम्) निश्चल सुखदायक (आज्यम्) घृत आदि उत्तम उत्तम पदार्थ हैं उस को (अंघ्रिणा) पदार्थ पहुंचाने वाला अग्नि से (अद्य) आज (संभ्रियासम्) धारण करूं और (त्वा) उसका मैं (मावक्रमिषम्) कभी उल्लंघन न करूं। तथा हे (अग्ने) जगदीश्वर! ते आप के (वसुमतीम्) पदार्थ देने वाले (छायाम्) आश्रय को (उपस्थेषम्) प्राप्त होऊं। जो यह (अग्ने) अग्नि (विष्णोः) के यज्ञ (स्थानम्) ठहरने का स्थान (असि) है उस के भी (वसुमतीम्) उत्तम पदार्थ देने वाले (छायाम्) आश्रय को मैं (उपस्थेषम्) प्राप्त होकर यज्ञ को सिद्ध करता हूं तथा जो (ऊर्ध्वः) आकाश और जो (अध्वरः) यज्ञ अग्नि में ठहरने वाला (आ) सब प्रकार से (अस्थात्) ठहरता है उस को। (इन्द्रः) सूर्य्य और वायु धारण करके (वीर्य्यम्) कर्म अथवा पराक्रम को (अकृणोत्) करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध होकर बहुतसा अन्न उत्पन्न करनेवाले होते हैं उसको सिद्ध करनेके लिये मनुष्यों को बहुतसी सामग्री जोड़नी चाहिये। उसमे मैं सर्वत्र व्यापक हूं मेरी आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं करनी चाहिये किन्तु जो असंख्यात सुखों का देनेवाला मेरा आश्रय है उसको सदा ग्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिस को सूर्य्य अपनी किरणों से खैंच कर वायुके योगसे ऊपर मेघमंडल में स्थापन करता है और फिर वह उसको वहां से मेघद्वारा गिरा देता है और जिससे पृथिवीपर पड़ा सुख उत्पन्न होता है उस यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है ॥ ८ ॥

अग्ने वेरित्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतान्त्वान्द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर! जो (द्यावापृथिवी) प्रकाशमय सूर्यलोक और पृथिवी यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करते हैं उनकी (त्वम्) आप (वेः) रक्षा करो तथा जैसे यह भौतिक अग्नि (होत्रम्) यज्ञ और (दूत्यम्) दूत कर्म को प्राप्त होकर (द्यावापृथिवी) प्रकाशमय सूर्य्य लोक और पृथिवी की रक्षा करता है वैसे हे भगवन्! (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (स्विष्टकृत्) उनकी इच्छानुकूल अच्छे २ कार्य्यों के

करनेवाले आप हमलोगों की (अव) रक्षा कीजिये जो यह (आज्येन) यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ने योग्य घृत आदि उत्तम २ पदार्थ (हविषा) संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्तूरी केसर आदि पदार्थ वा (ज्योतिषा) प्रकाशयुक्त लोकों के साथ (ज्योतिः) प्रकाशमय किरणों से (स्विष्टकृत्) अच्छे २ वांछित कार्य्य सिद्धि कराने वाला (इन्द्रः) सूर्य्य लोक भी (द्यावापृथिवी) हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्यकी रक्षा करने वाला (अभूत्) होता है वैसे आप (ज्योतिः) विज्ञानरूप ज्योति के दान से हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये इस कर्म को (स्वाहा) वेदवाणी कहती है ॥ ९ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो २ अग्नि पृथिवी सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों को जान के होम और शिल्पसम्बन्धी कर्मका अनुष्ठान करना योग्य है सो २ उन के लिये वांछित सुख के देनेवाले होते हैं। अष्टम मंत्र से कहे हुए यह साधन का फल नवमे मंत्रसे प्रकाशित किया है ॥ ९ ॥

मयीदमित्यस्य ऋषिः स एव। इन्द्रो देवता। भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में उक्त यज्ञ से उत्पन्न होनेवाले फल का उपदेश किया है।

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष उपहूता पृथिवी
मातोपमां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (मयि) मुझ में (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिन्ह तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और सब सुखों को सिद्धकरानेवाले जो विद्वानों को दिया है जिस को वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीति पूर्वक सेवन करते हैं उन्हें तथा (रायः) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को (दधातु) नित्य स्थापन करे और उस की कृपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से (मघवानः) जिन में कि बहुत धन विद्यमान राज्य आदि पदार्थ हैं जिन करके हम लोग पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त हों वैसे धन (नः) हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को (सचन्ताम्) प्राप्त हों तथा इसी प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकार करनेवाले धर्मात्माओं की (आशिषः) कामना (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों और ऐसे ही (नः) हमारी (आशिषः) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो क्रिया हैं वे भी (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों तथा इसी प्रकार (माता) धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करने हारी विद्या और (पृथिवी) बहुत सुख देनेवाली भूमि है (उपहूता) जिसको

[illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible]) [illegible] अनुमान किया हुआ [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) इत्यादि से प्र- [illegible] करते हैं [illegible] गुणों का [illegible] (नः) हमारे गुणों का सा- [illegible] करावें क्योंकि [illegible] अच्छे प्रकार [illegible] प्राप्त होते [illegible] हुए कार्यों को [illegible] ([illegible]) [illegible] मनुष्यों के करने के लिये वेदवाणी इस कर्म को करती है ॥ १० ॥

भावार्थः- जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वेही श्रेष्ठ ज्ञान उत्तम धन और अन्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं और नहीं जो सब को आनन्द देने के कारण इस मंत्र में पृथिवी शब्द से भूमि और विद्या का प्रकाश किया है सो ये सब मनुष्यों को उपकार में लाने के योग्य हैं। ईश्वर ने इस वेदमंत्र से यही प्रकाशित किया है तथा जो नवम मंत्र से अग्नि आदि पदार्थों से इच्छित सुख की प्राप्ति कही है वही बात दशम मंत्र से प्रकाशित की है ॥ १० ॥

उपहूत इत्यस्य ऋषिः स एव। द्यावापृथिवी देवते। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी अगले मंत्र में उक्त अर्थ को दृढ़ किया है ॥

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। प्र-
तिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥ ११ ॥

पदार्थः- मुझ से जो (द्यौः) प्रकाशमय (पिता) सर्वपालक ईश्वर (उपहूतः) प्रार्थना किया हुआ (माम्) सुख भोगनेवाले मुझ को (उपह्वयताम्) अच्छी प्रकार स्वीकार करे इसी प्रकार जो (द्यौः) प्रकाशवान् (पिता) सब उत्तम क्रियाओं का पालने का हेतु सूर्य्य लोक मुझ से (उपहूतः) क्रियाओं में प्रयुक्त किया हुआ (माम्) सब सुख भोगने वाले मुझ को विद्या के लिये (उपह्वयताम्) युक्त करता है तथा जो (अग्निः) जाठराग्नि (स्वाहा) अच्छे भोजन किये हुए अन्न को (आग्नीध्रात्) उदर में अन्न के कोठे में पचा देता है उस से मैं (देवस्य) हर्ष देने (सवितुः) और सब के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए (प्रसवे) संसार में विद्यमान और (त्वा) उस उक्त भोग को (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) आकर्षण और धारणगुणों से तथा (पूष्णः) पुष्टि के हेतु समान वायु के (हस्ताभ्याम्) शो- धन वा शरीर के अंग २ में पहुंचाने के गुण से (प्रतिगृह्णामि) अच्छी प्रकार ग्रहण

करता हूं ग्रहण करके (अग्नेः) प्रज्वलित अग्नि के बीच में पकाकर (त्वा) उस
जन करने योग्य अन्न को (आस्येन) अपने मुख से प्राश्नामि भोजन करता हूं ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है मनुष्यों को अपने आत्मा की शुद्धि
लिये अनंत विद्या के प्रकाश करनेवाले परमेश्वर पिता का आह्वान अर्थात् अच्छी
कार नित्य सेवन करना चाहिये तथा विद्या की सिद्धि के लिये उदर की अग्नि
दीप्त कर और मन्त्रों से अच्छी प्रकार देश के संस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अन्न
नित्य भोजन करना चाहिये सब भोग इस संसार में जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये
दार्थ हैं उन से सिद्ध होते हैं वह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार से भोगना चाहि
और वैसे ही औरों को वर्त्तना चाहिये जो पूर्व मंत्र से पृथिवी में विद्या से प्राप्त हं
वा मान्य के करानेवाले पदार्थ कहे हैं उन का भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनु
को करना चाहिये । ऐसा इस मंत्र से प्रतिपादन किया है ॥ ११ ॥

एतन्त इत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये और किस ने यह विद्या का प्रबंध प्रकाशित किया है सो अ
ले मंत्र में उपदेश किया है ॥

एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन
यज्ञपतिन्तेन मामव ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यसुख वा उत्तम गुण देने तथा (सवितः) सब ऐश्व
का विधान करनेवाले जगदीश्वर वेद और विद्वान् आप के प्रकाशित किये हुए (
तम्) इस पूर्वोक्त यज्ञ को (प्राहुः) अच्छी प्रकार करते हैं कि जिस से (बृहस्पत
बड़ों में बड़ा जो वेदवाणी है उस के पालन करनेवाले (ब्रह्मणे)चारों वेदों के पढ़
से ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् के लिये सुख और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त ह
हैं इस (यज्ञम्) यज्ञसम्बन्धी धर्म से (यज्ञपतिम्) यज्ञ को करने वा सब प्राणियों
सुख देनेवाले विद्वान् और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से (मा) मेरी भी (अव
रक्षा कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने सृष्टि की आदि में दिव्यगुणवाले अग्नि वायु रवि और अंगि
रा ऋषियों के द्वारा चारों वेद के उपदेश से सब मनुष्यों के लिये विद्या प्राप्ति के सा
यज्ञ के अनुष्ठान की विधि का उपदेश किया है जिस से सब की रक्षा होती है क्यों
... और शुद्धि क्रिया के विना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नहीं

सकती इसलिये हम सब को उचित है कि परस्पर प्रीति के साथ अपनी वृद्धि और रक्षा यत्न से करनी चाहिये जो ग्यारहवें मंत्र में यज्ञ का फल कहा है उसका प्रकाश परमेश्वर ही ने किया है ऐसा इस मंत्र से विधान है ॥ १२ ॥

मनोजूतिरित्यस्य ऋषिः स एव । बृहस्पतिर्देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः

जिससे यज्ञ किया जा सकता है सो विषय अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमन्दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामोꣳ३म्प्रतिष्ठ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(जूतिः) अपने वेग से सब जगह जाने वाला (मनः) विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन (आज्यस्य) यज्ञ की सामग्री का (जुषताम्) सेवन करे (बृहस्पतिः) बड़े २ जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ हैं उन का जो पति अर्थात् पालन करने हारा ईश्वर है वह (इमम्) इस प्रकट और अप्रकट (अरिष्टम्) अहिंसनीय (यज्ञम्) सुखों के भोगरूपी यज्ञ को (तनोतु) विस्तार करे तथा (इमम्) इस (अरिष्टम्) जो छोड़ने योग्य नहीं (यज्ञम्) जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विज्ञान प्राप्ति रूप यज्ञ है इस को (संदधातु) अच्छी प्रकार धारण करावे । हे (विश्वेदेवासः) सकल विद्वान् लोगो ' तुम इन पालन करने योग्य दो यज्ञों का धारण वा विस्तार करके (इह) इस संसार वा अपने मन में (मादयन्ताम्) आनन्दित होओ । हे (ओ३म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर आप (बृहस्पतिः) ब्रह्मांडादि के पालन करने हारे (इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) कृपा करके इस यज्ञ वा वेद विद्यादि की स्थापन कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम्हारा मन अच्छे ही कार्मों में प्रवृत्त हो तथा मैं ने जो संसार में यज्ञ करने की आज्ञा दी है उस का उक्त प्रकार से यथावत् अनुष्ठान करके सुखी हो तथा औरों को भी सुखी करो (ओ३म्) यह परमेश्वर का नाम है जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है वैसे ही परमेश्वर के साथ (ओ३म्) ओंकार का सम्बन्ध है तथा अच्छे कार्मों के विना किसी की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती इस लिये सब मनुष्यों को सर्वथा अधर्म छोड़ कर धर्म कामों का ही सेवन करना योग्य है जिससे संसार में निश्चय करके अविद्यारूपी अन्धकार निवृत्त हो कर विद्यारूपी सूर्य्य प्रकाशित हो. बारहवें मन्त्र में जिस यज्ञ का प्रकाश किया था उसके

अनुष्ठान से सब मनुष्यों की प्रतिष्ठा व सुख होते हैं यह इस में प्रकाशित किया है ॥ १३ ॥

एषा त इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वोऽनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।
अग्ने वाजजिदित्यस्य निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यज्ञ में अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिये सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ।

एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चाप्यायस्व । वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि । अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳसं वाजजितꣳसंमार्ज्मि ॥ १४ ॥

पदार्थ —हे (अग्ने) परमेश्वर (ते) आपकी जो (एषा) यह (समित्) अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों की प्रकाश करनेवाली वेदविद्या है (तया) उससे हमलोगों को की हुई स्तुति को प्राप्त होकर आप नित्य (वर्धस्व) हमारे ज्ञान में वृद्धि को प्राप्त हूजिये और (तथा) उस वेद विद्या से हम लोगों की भी नित्य वृद्धि कीजिये इसी प्रकार हे भगवन्! आप के गुणों को जाननेहारे हम लोगों से (च) भी प्रकाशित होकर आप (प्यायस्व) हमारे आत्माओं में वृद्धि को प्राप्त हूजिये इसी प्रकार हम को भी बढ़ाइये। हे भगवन्! (अग्ने) विज्ञानस्वरूप विजय देने और (वाजजित्) सब के वेग को जीतने वाले परमेश्वर हमलोग (वाजम्) जो कि ज्ञानस्वरूप (ससृवांसम्) अर्थात् सब को जाननेवाले (त्वा) आपकी (वर्धिषीमहि) स्तुतियों से वृद्धि तथा प्राप्ति करें (च) और आप कृपा करके हम को भी सब के वेग के जीतने तथा ज्ञानवान् अर्थात् सब के मन के व्यवहारों को जाननेवाले कीजिये। और जैसे हम लोग आप की (आप्यासिषीमहि) अधिक २ स्तुति करें वैसेही आप भी हम लोगों को सब उत्तम२ गुण और सुखों से (आप्यायस्व) वृद्धि युक्त कीजिये। हम आप के आश्रय को प्राप्त होकर तथा आप की आज्ञा के पालने से (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध होते हैं ॥१॥ जो (एषा) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि है (ते) उसकी (समित्) बढ़ाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीप्त करनेवाली लकड़ियों का समूह है (तया) उससे यह अग्नि (वर्धस्व) बढ़ता और (आप्यायस्व) परिपूर्ण भी होता है। हमलोग (त्वा) उस (वाजम्) वेग और (ससृवांसम्) शिल्पविद्या के गुणों को देने तथा (वाजजितम्) संग्राम के जिताने के साधन अग्नि को विद्या की वृद्धि के लिये (वर्धिषीमहि) बढ़ाते हैं (च) और (आप्यासिषीमहि) कलाओं में परिपूर्ण भी करते हैं जिससे यह शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानों तथा वेगवाले शिल्पविद्या के गुणों की

प्राप्ति में संग्राम को जिताने वाले हम को विजय के साथ बढ़ाता है इससे (त्वा) उस अग्नि को हम (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं ॥ २ ॥ १४ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । और एक २ अर्थ के दो २ क्रिया पद आदर के लिये जानने चाहियें जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने और क्रिया की कुशलता में उन्नति को प्राप्त होते हैं वे विद्या और सुख में सब को आनन्दित कर और दुष्ट शत्रुओं को जीतकर शुद्ध होके सुखी होते हैं जो आलस्य करनेवाले हैं वे ऐसे कभी नहीं होसते । और चार प्रकारों से ईश्वर की धर्मयुक्त आज्ञा सूक्ष्म वा स्थूलता से अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य्य भी अनेक प्रकार के हैं ऐसा समझना चाहिये । जो तेरहवें मन्त्र में वेदविद्या कही है उस से सुख के लिये यज्ञ का संधान तथा पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है ।

अग्नीषोमयोरित्यस्य ऋषिः स एव । अग्नीषोमौ देवते । पूर्वार्द्धे ब्राह्मीबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । उत्तरार्द्धे इन्द्राग्नी देवते । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब उस यज्ञ से क्या २ दूर करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

अग्नीषोम॑यो॒रुज्जि॑तिमनूज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वेन॒ प्रोहा॑मि अ॒ग्नीषो॑मौ॒ तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि । इ॒न्द्रा॒ग्न्योरुज्जि॑तिमनूज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वेन॒ प्रोहा॑मि इ॒न्द्रा॒ग्नी तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि ॥ १५ ॥

पदार्थः—मैं (अग्नीषोमयोः) प्रसिद्ध भौतिक अग्नि और चन्द्रलोक के (उज्जितिम्) दुःख से सहने योग्य शत्रुओं को (अनूज्जेषम्) यथा क्रम से जीतूं और (वाजस्य) युद्ध के (प्रसवेन) उत्पादन से विजय करने वाले (मा) अपने आप को (प्रोहामि) अच्छी प्रकार शुद्ध तर्कों से युक्त करूं । जो मुझ से अच्छी प्रकार विद्या से क्रिया कुशलता में युक्त किये हुए (अग्नीषोमौ) उक्त अग्नि और चन्द्रलोक हैं वे (यः) जोकि अन्याय में वर्त्तनेवाला दुष्ट मनुष्य (अस्मान्) न्याय करने वाले हम लोगों को (द्वेष्टि) शत्रुभाव से वर्त्तता है (यं च) और जिस अन्याय करने वाले से (वयम्) न्यायाधीश हम लोग (द्विष्मः) विरोध करते हैं (तम्) उस शत्रु वा रोग

को (अपनुदताम्) दूर करते हैं और मैं भी (एनम्) इस दुष्ट शत्रु को (वाजस्य) यानवेगादि गुणों से युक्त सेना वा संग्राम की प्रसवेन अच्छी प्रकार प्रेरणा से (अपोहामि) दूर करता हूं । मैं (इन्द्राग्न्योः) वायु और विद्युत्‌रूप अग्नि की (उज्जितिम्) विद्या से अच्छी प्रकार उत्कर्ष को (अनूज्जेषम्) अनुक्रम से प्राप्त होऊं और मैं (वाजस्य) ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की प्राप्ति के (प्रसवेन) ऐश्वर्य्य के अर्थ उत्पादन से वायु और बिजुली की विद्या के जानने वाले (माम्) अपने आप को नित्य (प्रोहामि) अच्छी प्रकार तर्कों से सुखों को प्राप्त होता हूं और मुझ से जो अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (इन्द्राग्नी) वायु और विद्युत् अग्नि हैं वह (यः) जो मूर्ख मनुष्य (अस्मान्) हम विद्वान् लोगों से (द्वेष्टि) अप्रीति से वर्त्तता है (च) और (यम्) जिस मूर्ख से (वयम्) हम विद्वान् लोग (द्विष्मः) अप्रीति से वर्त्तते हैं (तम्) उस वैर करने वाले मूढ़ को (अपनुदताम्) दूर करते हैं । तथा मैं भी (एनम्) इसे (वाजस्य) विज्ञान के (प्रसवेन) प्रकाश से (अपोहामि) अच्छी २ शिक्षा दे कर शुद्ध करता हूं ॥ १५ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अग्नि और जल के मेल से कलाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा वायु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दरिद्र के विनाश और शत्रुओं के पराजय से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर और उन मूढ़ मनुष्यों को विद्वान् करके अनेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के योग्य हैं इस प्रकार अच्छे प्रयत्न से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी योग्य है पूर्व मन्त्र में जो कार्य्य प्रकाश किया उसकी पुष्टि इस मन्त्र से की है ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वेति स्यास्य ऋषिः स एव । पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवताः । निचृद्‌ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । व्यन्तुवय इत्यारभ्यान्त्यपर्य्यन्तस्याग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा सञ्जानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् । व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह । चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हम लोग (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं से (त्वा) उस यज्ञ को

तथा (रुद्रेभ्यः) पूर्वोक्त एकादश रुद्रों से (त्वा) पूर्वोक्त यज्ञ को और (आदित्येभ्यः) बारह महीनों से (त्वा) उस क्रियासमूह को नित्य उत्तम तर्कों से जानें और यज्ञ से (द्यावापृथिवी) सूर्य्य का प्रकाश और भूमि (संजानाथाम्) जो उन से शिल्पविद्या उत्पन्न हो सके उन के सिद्ध करने वाले हों और (मित्रावरुणौ) जो सब जीवों का बाहिर का प्राण और जीवों के शरीर में रहने वाला उदान वायु है वे (वृष्ट्या) शुद्ध जल की वर्षा से (त्वा) जो संसार सूर्य्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उस की (अवताम्) रक्षा करते हैं (वयः) जैसे पक्षी अपने २ ठिकानों को रचने और (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं वैसे उन छन्दों से (रिहाणाः) पूजन करने वाले हम लोग (त्वा) उस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और जो यज्ञ में हवन की आहुति (पृश्निः) अन्तरिक्ष में स्थिर और (उक्षा) शोभित (भूत्वा) होकर (मरुताम्) पवनों के संग से (दिवम्) सूर्य के प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त होती है वह (ततः) वहां से (नः) हम लोगों के लिये (वृष्टिम्) वर्षा को (आवह) अच्छे प्रकार वर्षाती है उस वर्षा का जल (पृषतीः) नाड़ी और नदियों को प्राप्त होता है । जिस कारण यह अग्नि (चक्षुष्पाः) नेत्रों की रक्षा करने वाला (असि) है इस से (मे) हमारे (चक्षुः) नेत्रों के बाहिरले भीतरले विज्ञान की (पाहि) रक्षा करता है ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते हैं वह वायु के साथ मेघमंडल में जाकर सूर्य्य से खिंचे हुए जल को शुद्ध करता है, फिर वहां से वह जल पृथिवी में आकर ओषधियों को पुष्ट करता है वह उक्त आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये क्योंकि उसके फलको जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे जो यह अग्नि सूर्य्यरूप होकर सब को प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टि व्यवहार की पालना होती है ये जो वायु आदि देव कहाते हैं इनसे विद्या के उपकारपूर्वक दुष्ट गुण और दुष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये यही सब का पूजन अर्थात् सत्कार है जो पूर्व मन्त्र में कहा था उस का इस से विशेषता कर के प्रकाश किया है ॥ १६ ॥

यं परिधिमित्यस्य ऋषिर्देवलः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा है सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ॥

यं प॑रि॒धिं प॒र्यध॑त्था॒ अग्ने॑ देवप॒णिभि॑र्गु॒ह्यमा॑नः । तन्त॑ ए॒तम॒नु॒ जोषं॑ भराम्ये॒ष नेत्त्वद॑पचे॒तया॑ता अ॒ग्नेः प्रि॒यं पाथो॒ऽपी॑तम् ॥१७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सर्वत्र व्यापक ईश्वर आप (देवपणिभिः) दिव्य गुण वाले वि-

द्वानों की स्तुतियों से (गृह्यमानः) अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होते हुए (यम्) उन गुणों के अनुकूल (ओषम्) प्रीति से सेवन के योग्य (परिधिम्) प्रभुता को (पर्य्यधत्थाः) निरन्तर धारण करते हैं (तम्) आप की उसको (इत्) ही (एषः) मैं (अनुभरामि) अपने हृदय में धारण करता हूं। तथा मैं (त्वत्) आप से (मा) (अपचेतयातै) कभी प्रतिकूल न होऊं और (अग्ने) हे जगदीश्वर! आप की सृष्टि में जो मैंने (प्रियम्) प्रीति बढ़ाने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीतम्) पाया है उस से भी कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिकूल न होऊं ॥ १ ॥ हे जगदीश्वर (ते) आपकी सृष्टि में (एषः) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (देवपणिभिः) दिव्य गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के व्यवहारों से (गृह्यमानः) अच्छी प्रकार स्वीकार किया हुआ (यम्) जिस (परिधिम्) शिल्पादि गुणों से धारण (ओषम्) और प्रीति करने योग्य कर्म को (पर्य्यधत्थाः) सब प्रकार से धारण करता है (तमित्) उसी को मैं (अनुभरामि) उसके पीछे स्वीकार करता हूं और उस से कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिकूल नहीं होता हूं तथा मैंने जो (अग्नेः) इस अग्नि के सम्बन्ध से (प्रियम्) प्रीति देने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीतम्) ग्रहण किया है उस को मैं (ओषम्) अत्यंत प्रीति के साथ नित्य (अनुभरामि) क्रम से पाता हूं ॥ २ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें श्लेषालङ्कार है—तथा पहिले अन्वय में अग्निशब्द से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रतिवस्तु में व्यापक होने से सब पदार्थों का धारण करने वाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है उस की सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये जो मनुष्य उस की आज्ञा नित्य पालते हैं वे प्रिय सुख को प्राप्त होते हैं। तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश दाह और वेग आदि गुण वाला मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है उस से भी मनुष्यों को क्रिया की कुशलता के द्वारा उत्तम २ व्यवहार सिद्ध करने चाहियें जिससे कि उत्तम २ सुख सिद्ध होवें। जो पूर्व मन्त्र से वृष्टि आदि पदार्थों का साधक कहा है उस को इस मन्त्र से व्यापकत्व प्रकाश किया है ॥ १७ ॥

संस्रवेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। स्वराड्विराट्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

यह यज्ञ कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

[illegible] से [illegible] (संविदानाः) [illegible] में [illegible] बुद्धियुक्त और (इ-[illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] देने को [illegible] का उपदेश करने वाले (देवाः) [illegible] हुए (इमा) [illegible] ([illegible]) घृतादि पदार्थों के होम में छोड़ने वाले ([illegible]) ही [illegible] (स्वाहा) [illegible] २ कर्मों में (यात्) प्राप्त होने और [illegible] [illegible] किया को प्राप्त हो कर ([illegible]) [illegible] ([illegible]) ज्ञान और कर्मकाण्ड में ([illegible]) [illegible] हो और औरों को भी आनन्दित करो। इस प्रकार [illegible] ज्ञान को कर्मकाण्ड में उन वेदवालों की प्रशंसा करते हुए तुम लोग अपने [illegible] ज्ञान को प्राप्त होने वाली किया को प्राप्त होकर (गृहन्तः) पढ़ने और ([illegible]) उत्तम कामों में स्थित होने वाले (विश्वे) सब देवाः) उत्तम २ पदार्थ ([illegible]) धारण करने या औरों को धारण कराने और उन की सहायता से उस ज्ञान या कर्मकाण्ड में सदा (मादयध्वम्) हर्षित होओ ॥ १८ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि जो धार्मिक पुरुषार्थी वेदविद्या के प्रचार वा उत्तम व्यवहार में वर्त्तमान हैं उन्हीं को पढ़ २ सुख होते हैं जो पूर्व मंत्रमें ईश्वर और लौकिक अर्थ कहे हैं उनसे सबै २ उपकार लिया चाहिये सो इस मंत्र में कहा है ॥१८॥

घृताचीस्थ इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निवायू देवते। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पंचमःस्वरः॥

अब उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मंत्रमें प्रकाशित किया है।

घृताची स्थो धुर्यौ पातं सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्। यज्ञ नमं॒श्च त॒ उप॑ च यज्ञस्य॑ शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व ॥ १८ ॥

पदार्थः—जो अग्नि और वायु (धुर्यौ) यज्ञ के मुख्य अंग को प्राप्त कराने वाले (स्थ) और (सुम्ने) सुखरूप (स्थः) हैं तथा (घृताची) जल को प्राप्त करानेवाली क्रियाओं को करानेहारे (स्थः) और सब जगत् को (पातम्) पालते हैं वे मुझ से अच्छी प्रकार उत्तम २ क्रिया कुशलता में युक्त हुए (मा) मुझे यज्ञ करने वालों को (सुम्ने) सुखमें (धत्तम्) स्थापन करते हैं जैसे यह (यज्ञ) जगदीश्वर (च) और (नमः) नम्र होना (मे) तेरे लिये (शिवे) कल्याणमें (उपसंतिष्ठस्व) समीपस्थित होते हैं वे ऐसेही (मे) मेरे भी लिये स्थित होते हैं इस कारण जैसे मैं यज्ञ का अनु-

ध्यान करके (सुखे) सुखमें स्थित होता हूं वैसे तुम भी उस में (संतिष्ठस्व) स्थित हो ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालंकार है ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो! इस के परमाणु करने जगत् के पालन के निमित्त सुख करने क्रिया कांड के हेतु और अन्न को तथा देढ़े वा सूधे जानेवाले अग्नि वायु के गुणों से कार्य्यों को सिद्ध करो इस से तुमलोग सुखों में अच्छी प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझको ही वारंवार नमस्कार करो ॥ ११ ॥

अग्ने ऽदब्धायो इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निसरस्वत्यौ देवते। भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्या अविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाड्ग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अदब्धायो) निर्विघ्न आयु देने व ले (अग्ने) जगदीश्वर! आप (अशीतमम्) चराचर संसारमें व्यापक यज्ञको (दुरिष्ट्यै) दुष्ट अर्थात् वेद विरुद्ध यज्ञसे (पाहि) रक्षा कीजिये (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःखसे (पाहि) बचाइये तथा (प्रसित्यै) भारी २ बन्धनों से (पाहि) अलग रखिये (दुरद्मन्यै) जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से (पाहि) बचाइये और (नः) हमारे लिये (अविषम्) विष आदि दोष रहित (पितुम्) अन्नादि पदार्थ (कृणु) उत्पन्न कीजिये तथा (नः) हलोगोंको (सुषदा) सुख से स्थिरताको देने वाले घरमें (स्वाहा) (वाट्) वेदोक्त वाक्योंसे सिद्ध होने वाली उत्तम क्रियाओंमें स्थिर (कृणु) कीजिये जिससे हम लोग (यशोभगिन्यै) सत्यवचन आदि उत्तम कर्मों का सेवन करनेवाली (सरस्वत्यै) पदार्थों के प्रकाशित कराने में उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी के लिये (स्वाहा) धन्यवाद वा (संवेशपतये) अच्छी प्रकार जिन पृथिव्यादि लोकोंमें प्रवेश करते हैं उनके पति अर्थात् पालन करने हारे जो (अग्नये) आप हैं उनके लिये धन्यवाद और (नमः) नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् जगदीश्वर! आपने जो यह (अदब्धायो) निर्विघ्न आयुका निमित्त (अग्ने) भौतिक अग्नि बनाया है यह भी (अशीतमम्) सर्वत्र व्यापक यज्ञ को (दुरिष्ट्यै) दुष्ट यज्ञसे (पाहि) रक्षा करता है तथा (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःखोंसे (पाहि) बचाता है

(प्रसित्यै) बड़े २ दारिद्र के बन्धनों से (पाहि) बचाता है तथा (दुरद्मन्यै) दुष्ट भोजन कराने-वाली क्रियाओं से (पाहि) बचाता है और (नः) हमारे (पितुम्) अन्न आदि पदार्थ (अविषम्) विष आदि दोष रहित (कृणु) कर देता है तथा (सुषदा) सुख से स्थिति देने वाले घर अथवा दूसरे उत्तमों में (स्वाहा) (वाट्) वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होनेवाली क्रियाओं का हेतु है हम लोग उस (संवेशपतये) पृथिव्यादि लोकों के पालनेवाले (अग्नये) भौतिक अग्नि को ग्रहण करके (स्वाहा) होम तथा उसके साथ (यशोभगिन्यै) (सरस्वत्यै) उक्त गुणवाली वेदवाणी की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) परमात्मा का धन्यवाद करते हैं ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जो सर्वव्यापक सब प्रकार से रक्षा करने उत्तम जन्म देने उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देने वाला जगदीश्वर है उसी का सेवन सदा करना योग्य है। तथा जो यह अपनी सृष्टि में परमेश्वर ने भौतिक अग्नि प्रत्यक्ष सूर्य्यलोक और बिजुली रूप से प्रकाशित किया है वह भी अच्छी प्रकार विद्या से उपकार लेने में संयुक्त किया हुआ सब प्रकार से रक्षा और उत्तम भोग का हेतु होता है। जिस की कीर्त्ति के निमित्त सत्यलक्षणयुक्त वेदवाणी से उत्तम जन्म अथवा सब पदार्थों से अच्छी २ विद्या प्रकाशित होती है ये सब विद्वानों के स्वीकार करने योग्य तथा औरों को भी स्वीकार कराने योग्य हैं। इस मन्त्र में (नमः) और (यज्ञ) ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लिये हैं ॥ २० ॥

वेदोऽसीत्यस्य वामदेव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

सो जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

वेदो॑ऽसि॒ येन॒ त्वं दे॑व वेद दे॒वेभ्यो॒ वेदो॒ऽभव॒स्तेन॒ मह्यं॒ वेदो॑ भूयाः। देवा॑ गातुविदो गा॒तुं वि॒त्त्वा गा॒तुमि॑त मन॑सस्पत इ॒मं दे॑व य॒ज्ञᳪ स्वाहा॒ वाते॑ धाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (देव) शुभगुणों के देने हारे जगदीश्वर (त्वम्) आप (वेदः) च-राचर जगत् के जानने वाले (असि) हैं सब (वेद) जानते हैं तथा (येन) जिस विज्ञान वा वेद से (वेदः) पदार्थों के जानने वाले (अभव- ...श से आप (मह्यम्) मेरे लिये ...:) विज्ञान देने वाले ...ाः) विद्वानो! जिस वेद ... गातुम्) विशेष ज्ञान ...द को (इत) प्राप्त हो।

है (मनसस्पते) विज्ञान से पालन करने हारे (देव) सर्वजगत् प्रकाशक परमेश्वर आप ! (इमम्) प्रत्यक्ष अनुष्ठान करने योग्य (यज्ञम्) क्रियाकाण्ड से सिद्ध होनेवाले यज्ञरूप संसार को (स्वाहा) क्रिया के अनुकूल (वाते) पवन के बीच (धाः) स्थित कीजिये हे विद्वानो ! उस विज्ञान से विशेष ज्ञान देने वाले परमेश्वर ही की नित्य उपासना करो ॥ २१ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जिस वेद जानने वाले परमेश्वर ने वेद विद्या प्रकाशित की है उस की उपासना करके उसी की वेद विद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करके सब का हित संपादन करना चाहिये क्योंकि वेदों के विज्ञान के विना तथा उस में जो २ कहे हुए काम हैं उन के किये विना मनुष्यों को कभी सुख नहीं हो सकता वेदविद्या से जो सब का साक्षी ईश्वर देव है उसको सब जगह व्यापक मान के नित्यधर्म में रहो ॥ २१ ॥

संबर्हिरित्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः॥

यज्ञ में चढ़ा हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में ठहर कर किस के साथ रहता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

संब॒र्हिर॑ङ्क्ता॒ᳪ ह॒विषा॑ घृ॒तेन॒ समा॑दि॒त्यैर्वसु॑भि॒ः सम्म॒रुद्भिः॑ । समिन्द्रो॑ वि॒श्वदे॑वेभि॒रङ्क्तां दि॒व्यं नभो॑ गच्छतु॒ यत्स्वाहा॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तुम (यत्) जब हवन करने योग्य द्रव्य को (हविषा) होम करने योग्य (घृतेन) घी आदि सुगन्धियुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे तब वह (आदित्यैः) बारहमहीनों (वसुभिः) अग्नि आदि आठों निवास के स्थान और (मरुद्भिः) प्रजा के जनों के साथ मिल के सुख को (समंकाम्) अच्छी प्रकार प्रकाश करेगा (इन्द्रः) सूर्य्यलोक जो यज्ञ में छोड़ा हुआ (स्वाहा) उत्तम क्रिया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हवि (संगच्छतु) पहुंचाता है उस से (सम्) अच्छी प्रकार मिश्रित हुए (विश्वदेवेभिः) अपनी किरणों से (दिव्यम्) जो उस के प्रकाश में इकट्ठा होने वाला (नभः) जल को (समंकाम्) अच्छी प्रकार प्रकट करता है ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो हवि अच्छीप्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में वायु जल और सूर्य की किरणों के साथ मिल कर इधर उधर फैल कर आकाश में ठहरने वाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता है इस से मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तम२ साधनों से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २२ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अग्नि में किस लिये पदार्थ छोड़ा जाता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि॥ २३॥

पदार्थः—(कः) कौन सुख चाहने वाला यज्ञ का अनुष्ठाता पुरुष (त्वा) उस यज्ञ को (विमुञ्चति) छोड़ता है अर्थात् कोई नहीं और जो कोई यज्ञ को छोड़ता है (त्वा) उस को (सः) यज्ञ का पालन करने हारा परमेश्वर भी (विमुञ्चति) छोड़ देता है जो यज्ञ का करने वाला मनुष्य पदार्थ समूह को यज्ञ में छोड़ता है (त्वा) उस को (कस्मै) किस प्रयोजन के लिये अग्नि के बीच में (विमुञ्चति) छोड़ता है (तस्मै) जिस से सब को सुख प्राप्त हो तथा (पोषाय) पुष्टि आदि गुणों के लिये (त्वा) उस पदार्थ समूह को (विमुञ्चति) छोड़ता है। जो पदार्थ सब के उपकार के लिये यज्ञ के बीच में नहीं युक्त किया जाता वह (रक्षसाम्) दुष्ट प्राणियों का (भागः) अंश (असि) होता है॥ २३॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के करने कराने वा आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है वह सब सुखों से हीन हो कर और दुष्ट मनुष्यों से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुःखी रहता है। किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है उस के लिये क्या होता है वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उस को छोड़ देता है। फिर वह पूछता है कि ईश्वर उस को किस लिये छोड़ देता है? यह उत्तर देने वाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये। जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है वह सुखों से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है॥ २३॥

संवर्च्चसेत्यस्य ऋषिः स एव। त्वष्टा देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

उस यज्ञ से हम लोग किस किस पदार्थ को प्राप्त होते हैं सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥ २४॥

पदार्थः—हम लोग पुरुषार्थी हो कर (वर्च्चसा) जिस में सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं उस वेद का पढ़ना वा (पयसा) जिससे पदार्थों को जानते हैं उन ज्ञान (मनसा) जिससे सब व्यवहार विचारे जाते हैं उस अन्तःकरण (शिवेन) सब सुख और (तनूभिः) जिनमें विपुल सुख प्राप्त होते हैं। उन शरीरों के साथ (रायः) श्रेष्ठ

विद्या और चक्रवर्त्तिराज्य आदि धनों को (समगन्महि) अच्छी प्रकार प्राप्त हों। जो (सुदत्रः) अच्छी प्रकार सुख देने और (त्वष्टा) दुःखों तथा प्रलय के समय सब पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला ईश्वर कृपा करके हमारे लिये (रायः) उक्त विद्या आदि पदार्थों को (संविदधातु) अच्छी प्रकार विधान करे और हमारे (तन्वः) शरीर की (यत्) जितनी (विलिष्टम्) व्यवहारों को सिद्ध करने की परिपूर्णता है उसे (अनुमार्ष्टु) अच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करें ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सब कामना परिपूर्ण करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन, शरीर का बल, मन की शुद्धि, कल्याण की सिद्धि तथा उद्यम से उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति सदैव करनी चाहिये इस संपूर्ण यज्ञ की धारणा वा उन्नति से सब सुखों को प्राप्त होके औरों को सुख प्राप्त करना चाहिये । तथा सब व्यवहार और पदार्थों को नित्य शुद्ध करना चाहिये ॥ २४ ॥

दिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्य विष्णुर्देवता । दिवीत्यारभ्य द्विष्म इत्यन्तस्य निचृद् ब्राह्मी तथाऽन्तरिक्षमित्यारभ्य द्विष्मः पर्यन्तस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । पृथिव्यामित्यारभ्यान्तपर्यन्तस्य जगतीछन्दो निषादः स्वरश्च ॥

यह यज्ञ तीनों लोक में विस्तृत हो कर कौन २ सुख का साधन होता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः संज्योतिषाभूम ॥ २५ ॥

पदार्थः—(जागतेन) सब लोकों के लिये सुख देने वाले (छन्दसा) आह्लादकारक जगती छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह (विष्णुः) अन्तरिक्ष में ठहरने वाले पदार्थों में व्यापक यज्ञ (दिवि) सूर्य्य के प्रकाश में (व्यक्रंस्त) जाता है वह फिर (ततः) वहां से (निर्भक्तः) विभाग अर्थात् परमाणुरूप हो के सब जगत् को तृप्त करता है (यः) जो विरोधी शत्रु (अस्मान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) तथा (यम्) दण्ड दे कर शिक्षा करने

योग्य जिस दुष्ट प्राणी से (वयम्) हम लोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (द्विष्मः) अप्रीति करते हैं उस को उसी यज्ञ से दूर करते हैं। हम लोगों ने जो यह (विष्णुः) यज्ञ (त्रैष्टुभेन) तीन प्रकार के सुख करने और (छन्दसा) स्वतंत्रता देने वाले त्रिष्टुप् छन्द से अग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है वह (अन्तरिक्षे) आकाश में (व्यक्रंस्त) पहुंचता है वह फिर (ततः) उस अन्तरिक्ष से (निर्भक्तः) अलग हो के वायु और वर्षा जल को शुद्धि से सब संसार को सुख पहुंचाता है (यः) जो दुःख देनेवाला प्राणी (अस्मान्) सब के उपकार करनेवाले हम लोगों को (द्वेष्टि) दुःख देता है (च) तथा (यम्) सब के अहित करनेवाले दुष्ट को (वयम्) हम लोग सब के हित करनेवाले (द्विष्मः) पीड़ा देते हैं उसे उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं। हम लोगों से जो (विष्णुः) यज्ञ (गायत्रेण) संसार की रक्षा सिद्ध करने और (छन्दसा) अति आनन्द करनेवाले गायत्री छन्द से निरंतर किया जाता है (पृथिव्याम्) विस्तारयुक्त इस पृथिवी में (व्यक्रंस्त) विविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृत होता है (ततः) उस पृथिवी से (निर्भक्तः) अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि करता है (यः) जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी (अस्मान्) हम लोग जो कि न्याय करनेवाले हैं उन से (द्वेष्टि) वैर करता है (च) तथा (यम्) जिस शत्रुजन से (वयम्) हम लोग न्यायाधीश (द्विष्मः) वैर करते हैं उसका इस उक्त यज्ञ से नित्य निषेध करते हैं हम लोग (अस्मात्) यज्ञ से शोधा हुआ प्रत्यक्ष (अन्नात्) जो भोजन करने योग्य अन्न है उस से (स्वः) सुखरूपी स्वर्ग को (अगन्म) प्राप्त हों तथा (अस्यै) इस प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाली (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा अर्थात् जिस में सत्कार को प्राप्त होते हैं उस के लिये (ज्योतिषा) विद्या और धर्म के प्रकाश से संयुक्त (समभूम) अच्छी प्रकार हों ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो २ मनुष्य लोग सुगन्धि आदि पदार्थ अग्नि में छोड़ते हैं वे अलग २ होकर सूर्य के प्रकाश तथा भूमि में फैलकर सब सुखों को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु, अग्नि, जल, और पृथिवी आदि पदार्थ शिल्पविद्या सिद्धकला यंत्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं वे सब सूर्य प्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुखसे विहार करते हैं। जो पदार्थ सूर्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुरूप हो के अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवी पर आते हैं फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा वहां से भूमि को आते जाते हैं वे भी संसार को सुख देते हैं मनुष्यों को उचित है कि इसी प्रकार बार २ पुरुषार्थ से दोष दुःख और शत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना भुगवाना चाहिये तथा यज्ञ से शुद्ध वायु जल ओषधि और अन्न की शुद्धि के द्वारा आरो-

न्य बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि से अत्यन्त सुख को प्राप्त हो के विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिये ॥ २५ ॥

स्वयंभूरसीत्यस्य ऋषिः स एव । ईश्वरो देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में सूर्य्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है ॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप विद्वन्वा (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय और (रश्मिः) प्रकाशमान वा (स्वयंभूः) अपने आप होनेवाले (असि) हैं तथा (वर्चोदाः) विद्या देनेवाले (असि) हैं इसी से आप (मे) मुझे (वर्चः) विज्ञान और प्रकाश (देहि) दीजिये मैं (सूर्यस्य) जो आप चराचर जगत् के आत्मा हैं उन के (आवृतम्) निरंतर सज्जन जन जिस में वर्तमान होते हैं उस उपदेश को (अन्वावर्ते) स्वीकार कर के वर्तता हूं ॥ २६ ॥

भावार्थः—परमेश्वर और जीव का कोई माता वा पिता नहीं है किंतु यही सब का माता पिता है तथा जिस से बढ़ के कोई विज्ञान प्रकाश की विद्या देनेवाला नहीं है। जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही की आज्ञा में वर्त्तमान होना चाहिये वैसे ही जो विद्वान् भी प्रकाश वाले पदार्थों में अवधिरूप और व्यवहार विद्या का हेतु है जिस के उपदेशरूप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वह क्यों न सेवना चाहिये ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपत इत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्याग्निर्देवता । पूर्वार्द्धे निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । उत्तरार्द्धे गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को इस के अनुष्ठान से क्या २ सिद्ध करना चाहिये सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने हारे (अग्ने) परमेश्वर और विद्वान् (त्वम्) आप (सुगृहपतिः) ब्रह्मांड शरीर और निवासार्थ घरों के उत्तमता से पालन करने वाले (असि) हैं उस (गृहपतिना) उक्त गुणवाले (त्वया) आप के साथ मैं (सुगृहपतिः) अपने घर का उत्तमता से पालन करने हारा (भूयासम्) होऊं हे पर-

मेश्वर विद्वान् वा (मया) जो मैं श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करनेवाला (गृहपतिना) धर्मात्मा और पुरुषार्थी मनुष्य हूं उस मुझ से आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करनेहारे (भूयाः) हूजिये इसी प्रकार (नौ) जो हम स्त्री पुरुष घर के पति हैं सो हमारे (गार्हपत्यानि) अर्थात् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं वे (अस्थूरि) जैसे निरालस्यता हो वैसे सिद्ध (सन्तु) हों इस प्रकार अपने वर्त्तमान में वर्त्तते हुए हम स्त्री वा पुरुष (सूर्य्यस्य) आप और विद्वान् के (आवृतम्) वर्त्तमान अर्थात् जिस में अच्छे प्रकार रात्रि वा दिन होते हैं उस में (शतंहिमाः) सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्त्तें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है हम दोनों स्त्रीपुरुष पुरुषार्थी होकर जो इस सब पदार्थों की स्थिति के योग्य संसाररूपी घरका निरंतर रक्षा करने वाला जगदीश्वर और विद्वान् है उसका आश्रय करके भौतिक अग्नि आदि पदार्थों से स्थिर सुख करनेवाले सब काम सिद्ध करते हुए सौ वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियतासे सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

अब जो सत्याचरण से सुख होता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ।

अग्ने॑ व्रतपते व्रतम॑चारिषं तद॑शकं तन्मे॑ऽराधि । इ॒दम॒हं य ए॒वास्मि॒ सो॑ऽस्मि ॥ ८२ ॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे (अग्ने) सत्यस्वरूप परमेश्वर! आपने जो कृपाकरके मेरे लिये (व्रतम्) सत्यलक्षणसे प्रसिद्ध नियमोंसे युक्त सत्याचरण व्रत को (अराधि) अच्छे प्रकार सिद्ध किया है (तत्) उस अपने आचरण करने योग्य सत्य नियम को (अशकम्) जिस प्रकार मैं करने को समर्थ होऊं (अचारिषम्) अर्थात् उसका आचरण अच्छे प्रकार कर सकूं वैसा मुझ को कीजिये जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है उसी को भोगता हूं अब भी जो मैं जैसा कर्म करनेवाला (अस्मि) हूं वैसे कर्म के फल भोगनेवाला (अस्मि) होता हूं ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूं वैसाही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूं और भोगूंगा सब प्राणी अपने कर्मसे विरुद्ध फलको कभी नहीं प्राप्त होते इससे सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख नहीं हो ॥ २८ ॥

अग्नये इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । स्वराडार्षीअनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब संसारी अग्नि और चन्द्रमा कैसे गुणवाले हैं सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः॥ २९॥

पदार्थः—मनुष्यों को उचित है कि (कव्यवाहनाय) विद्वानों को हित देने कर्मों की प्राप्ति कराने तथा (अग्नये) सब पदार्थों को अपने आप एक स्थानसे दूसरे स्थान को पहुंचानेवाले भौतिक अग्निका ग्रहण करके सुखके लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (पितृमते) जिस में वसंत आदि ऋतु पालन के हेतु होने से पितर से संयुक्त होते हैं (सोमाय) जिससे ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं उस सोमलताको लेके (स्वाहा) अपने पदार्थों को धारण करनेवाले धर्म से युक्त विधान करके जो (वेदिषदः) इस पृथिवी में रमण करनेवाले (रक्षांसि) औरों को दुःखदायी स्वार्थीजन तथा (असुराः) दुष्ट स्वभाववाले मर्त्य हैं उनको (अपहताः) विनष्ट करदेना चाहिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—विद्वानों ने युक्ति के साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उनके लिये उत्तम २ कार्यों की प्राप्ति करनेवाला होता है मनुष्यों को यह यत्न नित्य करना चाहिये कि जिससे संसारके उपकार से सब सुख और पृथिवी के दुष्टजन वा दोषों की निवृत्ति होजाय ॥ २१ ॥

येरूपाणीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। भुरिक्पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः।

उक्त असुर कैसे लक्षणोंवाले होते हैं सो अगले मंत्रमें प्रकाश किया है।

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३०॥

पदार्थः—(ये) जो दुष्ट मनुष्य (रूपाणि) ज्ञान के अनुकूल अपने अन्तःकरणों में विचारे हुए भावों को (प्रतिमुंचमानाः) दूसरे के सामने छिपाकर विपरीत भावों के प्रकाश करनेहारे (असुराः) धर्मको ढांपते (सन्तः) हैं (स्वधया) पृथिवी में जहां तहां (चरन्ति) जाते आते हैं तथा जो (परापुरः) संसार से उलटे अपने सुखकारी कामों को नित्य सिद्ध करने के लिये यत्न करने (निपुरः) और दुष्ट स्वभावों को परिपूर्ण करने वाले (सन्तः) हैं अर्थात् जो अन्याय से औरों के पदार्थों को धारण करते हैं (तान्) उन दुष्टों को अग्नि जगदीश्वर (अस्मात्) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से (प्रणुदाति) दूर करें ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो दुष्ट मनुष्य अपने मन वचन और शरीर से झूंठे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं ईश्वर उनको दुःखयुक्त करता और नीच योनियों में जन्म देता है कि वे

जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मै तद्वः पितरो वासः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्या के आनन्द को देने वाले विद्वान् लोगो ! (रसाय) विज्ञान रूपी आनन्द की प्राप्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो हे (पितरः) दुःख का विनाश और रक्षा करने वाले विद्वानो ! (शोषाय) दुःख और शत्रुओं की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो । हे (पितरः) धर्मयुक्त जीविका के विज्ञान कराने वाले विद्वानो ! (जीवाय) जिस से प्राण का स्थिर धारण होता है उस जीविका के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) शील धारण विदित हो । हे (पितरः) विद्या अन्न आदि भोगों की शिक्षा करने हारे विद्वानों ! (स्वधायै) अन्न पृथिवी राज्य और न्याय के प्रकाश के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नम्रीभाव विदित हो । हे (पितरः) पाप और आपत्काल के निवारक विद्वान् लोगो ! (घोराय) दुःख विनाशक दुःख समूह की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) क्रोध का छोड़ना विदित हो । हे (पितरः) श्रेष्ठों के पालन करने हारे विद्वानो ! (मन्यवे) दुष्टाचरण करने वाले दुष्ट जीवों में क्रोध करने के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) सत्कार विदित हो । हे (पितरः) ज्ञानी विद्वानो ! (वः) तुम को विद्या के लिये (नमः) हमारी विज्ञान ग्रहण करने की इच्छा विदित हो । हे (पितरः) प्रीति के साथ रक्षा करने वाले विद्वानो ! (वः) तुम्हारे सत्कार होने के लिये हमारा (नमः) सत्कार करना तुम को विदित हो । आप लोग (नः) हमारे (गृहान्) घरों में नित्य आओ और आके रहो । हे (पितरः) विद्या देने वाले विद्वानो ! (नः) हमारे लिये शिक्षा और विद्या नित्य (दत्त) देते रहो । हे पिता माता आदि विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (वः) तुम्हारे लिये जो २ (सतः) विद्यमान पदार्थ हैं वे नित्य (देष्म) हमें देवें । हे (पितरः) सेवा करने योग्य पितृ लोगो ! हमारे दिये (वासः) इन वस्त्रादिको ग्रहण कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में अनेकवार (नमः) यह पद अनेक शुभगुण और सत्कार प्रकाश करने के लिये धरा है जैसे वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु । रस शोष जीव अन्न कठिनता और क्रोध के उत्पन्न करने वाले होते हैं वैसे ही पितर भी अनेक विद्याओं के उपदेश से मनुष्यों को निरन्तर सुख देते हैं । इस से मनुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उत्तम २ पदार्थों से संतुष्ट करके उन से विद्या के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें ॥ ३२ ॥

आधत्तेत्यस्य ऋषिः स एव । पितरो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त पितरों को क्या २ करना चाहिये सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥३३॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्यादान से रक्षा करने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप (यथा) जैसे यह ब्रह्मचारी (इह) इस संसार वा हमारे कुल में अपने शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य (असत्) हो वैसे (गर्भम्) गर्भ के समान (पुष्करस्रजम्) विद्या ग्रहण के लिये फूलों की माला धारण किये हुए (कुमारम्) ब्रह्मचारी को (आधत्त) अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में लुप्तोपमालङ्कार है—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुरुष और स्त्रियों को चाहिये कि विद्यार्थी कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें । जैसे क्रम २ से गर्भ के बीच देह बढ़ता है वैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी २ शिक्षा से ब्रह्मचारी कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त करें तथा पालन करने योग्य हैं वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुरुषार्थ युक्त होकर सदा सुखी हों यह अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ३३ ॥

ऊर्जमित्यस्यर्षिः स एव । आपो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्त पितर कौन २ पदार्थों से करने योग्य हैं सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे पुत्रादिको ! तुम (मे) मेरे (पितॄन्) पूर्वोक्त गुण वाले पितरों को (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के उत्तम २ रस (वहन्तीः) सुख प्राप्त करने वाले स्वादिष्टजल (अमृतम्) सब रोगों को दूर करने वाले ओषधि मिष्टादि पदार्थ (पयः) दूध (घृतम्) घी (कीलालम्) उत्तम२ रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (परिस्रुतम्) रस से चूते हुए पके फलों को दे के (तर्पयत) तृप्त करो इस प्रकार तुम उन के सेवन से विद्या को प्राप्त होकर (स्वधाः) पर धन का त्याग कर के अपने धन के सेवन करने वाले (स्थ) होओ ॥ ३४ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों के पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं जैसे कि उन्हों ने बाल्यावस्था वा विद्या दान के समय हम और तुम पाले हैं वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार

करने योग्य है जिस से हम लोगों के योग्य में विद्या का नाश और इतघ्नता २ दोष कभी न प्राप्त हों ॥ ३४ ॥

ईश्वर ने इस दूसरे अध्याय में जो २ वेदि आदि यज्ञ के साधनों का बनाना, यज्ञ का फल गमन या साधन, सामग्री का धारण, अग्नि के दूतपन का प्रकाश, आत्मा और इन्द्रियादि पदार्थों की शुद्धि, गुणों का योग, वेद का प्रकाश, पुरुषार्थ का संधान, युद्ध में शत्रुओं का जीतना, शत्रुओं का निवारण, द्वेष का त्याग, अग्नि आदि पदार्थों को सवारियों में युक्त करना, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेना, ईश्वर में प्रीति, अच्छे २ गुणों का विस्तार और सब की उन्नति करना, वेद शब्द के अर्थ का वर्णन, वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पुरुषार्थ का ग्रहण, उत्तम २ पदार्थों का स्वीकार करना, यज्ञ में होम किये हुये पदार्थों का तीनों लोक में जाना आना, स्वयंभू शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि में होम दुष्टों का निवारण, और जिन जिन का सेवन करना कहा है उन २ का सेवन मनुष्य को प्रीति के साथ करना अवश्य है इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

यह दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥



ओ३म्

अथ तृतीयोध्यायः प्रारभ्यते ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

तत्र समिधेत्यस्य प्रथममन्त्रस्याङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अथ तीसरे अध्याय के पहिले मंत्र में भौतिक अग्नि का किस २ काम में उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम (समिधा) जिन इन्धनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उन लकड़ी घी आदियों से (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (बोधयत) उद्दीपन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे (अतिथिम्) अतिथि को अर्थात् जिस के आने जाने वा निवासका कोई दिन नियत नहीं है उस संन्यासी का सेवन करते हैं वैसे अग्नि का (दुवस्यत) सेवन करो और (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सुगंध कस्तूरी केसर आदि, मिष्ट गुड़ शक्कर आदि पुष्ट घी दूध आदि रोग को नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुडूची आदि ओषधी इन चार प्रकार के शाकल्य को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन अन्न जल वस्त्र और प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते हैं वैसे ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कलायंत्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन घी, जलादि से अग्नि को प्रज्वलित करके वायु वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रचना नित्य करनी चाहिये ॥ १ ॥

सुसमिद्धायेत्यस्य सुश्रुत ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है किस प्रकार उपयोग करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतन्तीव्रञ्जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! तुम (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार प्रकाशरूप (शोचिः) शुद्ध किये हुए दोषों को निवारण करने वा (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) रूप, दाह, प्रकाश, छेदन, आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (तीव्रम्) सब दोषों के निवारण करने में तीक्ष्ण स्वभाव वाले (घृतम्) घी मिष्ट आदि पदार्थों को (जुहोतन) अच्छे प्रकार गेरो ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को इस प्रज्वलित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने वा शुद्ध किये हुए पदार्थों को गेर कर इष्ट सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ २ ॥

तं त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त अग्नि की नित्य वृद्धि करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तन्त्वा॑ स॒मिद्भि॑रङ्गिरो घृ॒तेन॑ वर्द्धयामसि । बृ॒हच्छो॑चा यविष्ठ्य ॥३॥

पदार्थः—हम लोग जो (अङ्गिरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (यविष्ठ्य) पदार्थों के भेद करने में अतिबलवान् (बृहत्) बड़े तेज से युक्त अग्नि (शोच) प्रकाश करता है (त्वा) उस को (समिद्भिः) काष्ठादि वा (घृतेन) घी आदि से (वर्द्धयामसि) बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो सब गुणों से बलवान् पूर्व कहा हुआ अग्नि है वह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी घी आदि साधनों से सेवन करके निरन्तर वृद्धि युक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

उप त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में कहा है ॥

उप॑ त्वाग्ने ह॒विष्म॑तीर्घृ॒ताची॑र्यन्तु हर्य्यत । जु॒षस्व॑ स॒मिधो॒ मम॑ ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (मम) यज्ञ कर्म करने हे मनुष्यो जो (हर्य्यत) प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (मम) यज्ञ करने वाले मेरे (समिधः) लकड़ी घी आदि पदार्थों को (जुषस्व) सेवन करता है जिस प्रकार (त्वम्) उस अग्नि को घी आदि पदार्थ (यन्तु) प्राप्त हों वैसे तुम (हविष्मतीः) श्रेष्ठ हवियुक्त (घृताचीः) घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन संचित करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग जब इस अग्नि में काष्ठ घी आदि पदार्थों को आहुति छो-

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ ५ ॥

पदार्थः- मैं (अन्नाद्याय) उत्तम अन्न के लिये (भूम्ना) विभु अर्थात् ऐश्वर्य से (द्यौरिव) आकाश में सूर्य के समान (वरिम्णा) अच्छे २ गुणों से (पृथिवीव) विस्तृत भूमि के तुल्य (ते) उसका वा (तस्याः) उसका अर्थात् आकाश युक्त लोक में करने वाली (देवयजनि) देव अर्थात् विद्वान् लोग जहां यज्ञ करते हैं वा (पृथिवि) भूमि के (पृष्ठे) पृष्ठ के ऊपर (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष (स्वः) दिव अर्थात् प्रकाशस्वरूप सूर्यलोक इन के अन्तर्गत रहने तथा (अन्नादम्) यव आदि सब अन्नों को भक्षण करने वाले (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (आदधे) स्थापन करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः- इस मंत्र में दो उपमालंकार हैं। हे मनुष्य लोगो! तुम ईश्वर ने तीन लोकों के उपकार करने वा अपनी व्याप्ति से सूर्य प्रकाश के समान तथा उत्तम २ गुणों से पृथिवी के समान अपने २ लोकों में निकट रहने वाले रचे हुए अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिये यत्न के साथ उपयोग करो ॥ ५ ॥

आयमित्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है इस विषय को अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरम्पुरः। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः॥६॥

पदार्थः-- (अयम्) यह प्रत्यक्ष (गौः) गोलरूपी पृथिवी (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) सूर्य्यलोक के (पुरः) आगे २ वा (मातरम्) अपनी योनिरूप जलों के साथ वर्त्तमान (प्रयन्) अच्छी प्रकार चलती हुई (पृश्निः) अंतरिक्ष अर्थात् आकाश में (आक्रमीत्) चारों तरफ घूमती है ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिस से यह भूगोल पृथिवी जल और अग्नि के निमित्तसे उत्पन्न हुई अंतरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणोंसे सब की रक्षा करनेवाले सूर्य के चारों तरफ क्षण २ घूमती है इसी से दिनरात्रि शुक्ल वा कृष्ण पक्ष ऋतु और अयन आदि काल विभाग क्रम से संभव होते हैं ॥ ६ ॥

अन्तश्चरतीत्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यह अग्नि कैसा है इस विषयका उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अ॒न्तश्च॑रति रोच॒नास्य प्रा॒णाद॑पान॒ती । व्य॑ख्यन्महि॒षो दिव॑म् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (अस्य) इस अग्नि की (प्राणात्) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच में ऊपर जानेवाले वायु से (अपानती) नीचे को जानेवाले वायु को उत्पन्न करती हुई (रोचना) दीप्ति अर्थात् प्रकाशरूपी बिजुली (अन्तः) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य में (चरति) चलती है वह (महिषः) अपने गुणों से बड़ा अग्नि (दिवम्) सूर्य लोक को (व्यख्यत्) प्रगट करता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जाना चाहिये कि जो विद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यों के अंतःकरण में रहनेवाली जो अग्निकी कांति है वह प्राण और अपान वायु के साथ युक्त होकर प्राण अपान अग्नि और प्रकाश आदि चेष्टाओं के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है ॥ ७ ॥

त्रिꣳशद्धामेत्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः । स्वरः ॥

फिर यह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

त्रि॒ꣳशद्धाम॒ वि रा॑जति॒ वाक्प॑त॒ङ्गाय॑ धीयते । प्रति॒ वस्तो॒रह॒ द्युभिः॑ ॥ ८ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि (द्युभिः) प्रकाश आदि गुणों से (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन (त्रिंशत्) अंतरिक्ष आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि जो तीस (धाम) स्थान हैं उनको (विराजति) प्रकाशित करता है उस (पतंगाय) चलने चलाने आदि गुणों से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिये (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन विद्वानों को (अह) अच्छे प्रकार (वाक्) वाणी (धीयते) अवश्य धारण करनी चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहनेवाले बिजुलीरूप अग्नि से प्रकाशित होती है उसके गुणों के प्रकाश के लिये विद्वानों को उपदेश वा श्रवण नित्य करना चाहिये ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निसूर्यौ देवते। पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
ज्योतिरित्यस्य याजुषी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥
अग्नि और सूर्य्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

अ॒ग्निर्ज्योति॒र्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॒ सूर्यो॒ ज्योति॒र्ज्योतिः॒ सूर्यः॒ स्वाहा॑। अ॒ग्निर्वर्चो॒ ज्योति॒र्वर्चः॒ स्वाहा॒ सूर्यो॒ वर्चो॒ ज्योति॒र्वर्चः॒ स्वाहा॑। ज्योतिः॒ सूर्यः॒ सूर्यो॒ ज्योतिः॒ स्वाहा॑ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अग्निः) परमेश्वर (स्वाहा) सत्य कथन करने वाली वाणी को (ज्योतिः) जो विज्ञान प्रकाश से युक्त करके सब मनुष्यों के लिये विद्या को देता है इसी प्रकार (अग्निः) जो प्रसिद्ध अग्नि (ज्योतिः) शिल्पविद्या साधनों के प्रकाश को देता है (सूर्यः) जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर (ज्योतिः) सब के आत्माओं में प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपदेश करता है कि (स्वाहा) मनुष्य जैसा अपने हृदय से जानता हो वैसा ही बोले। तथा जो (सूर्यः) अपने प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक (ज्योतिः) मूर्त्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है (अग्निः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला परमेश्वर मनुष्यों के लिये (वर्चः) सब विद्याओं के अधिकरण चारों वेदों को प्रकट करता है। तथा जो (ज्योतिः) बिजुलीरूप से शरीर वा ब्रह्माण्ड में रहने वाला अग्नि (वर्चः) विद्या और वृष्टि का हेतु है (सूर्यः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला जगदीश्वर सब मनुष्यों के लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (वर्चः) सकल विद्याओं का प्रकाश और (ज्योतिः) बिजुली, सूर्य, प्रसिद्ध और अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) सूर्यलोक भी (वर्चः) शरीर और आत्माओं के बल का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) प्राणवायु (वर्चः) सकल विद्या के प्रकाश करने वाले ज्ञान को बढ़ाता है और (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हवन किये हुए पदार्थों को अपने रचे हुए पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाता है वही परमात्मा सब मनुष्यों का उपास्य देव और भौतिक अग्नि कार्य्यसिद्धि का साधन है ॥ ९ ॥

भावार्थः— स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मंत्र में ग्रहण किया है अग्नि अर्थात् ईश्वर ने सामर्थ्य कारण से अग्नि आदि सब जगत् को उत्पन्न करके प्रकाशित किया है उन में से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर वेद के द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्यादि का प्रकाश करते हैं ॥ ९ ॥

सजूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्य्यश्च देवते । पूर्वार्द्धस्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्गायत्री च छन्दः । षड्जः । स्वरः ॥

भौतिक अग्नि और सूर्य ये दोनों किस की सत्ता से वर्त्तमान हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा। सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(अग्निः) जो भौतिक अग्नि (देवेन) सब जगत् को ज्ञान देने वा (सवित्रा) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर के उत्पन्न किये हुए जगत् के स(सजूः) तुल्यवर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) बहुत बिजुली युक्त (रात्र्या) अंधकाररूप रात्रि के साथ (स्वाहा) वाणी को सेवन करता हु(वेतु) सब पदार्थों में व्याप्त होता है इसी प्रकार (सूर्यः) जो सूर्यलोक (देवेन सब को प्रकाश करने वाले वा (सवित्रा) सब के अंतर्यामी परमेश्वर के उत्पन्न वा धारण किये हुए जगत् के साथ (सजूः) तुल्य वर्तमान (जुषाणः) सेवन करता (इन्द्रवत्या) सूर्यप्रकाशसे युक्त (उषसा) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के स(स्वाहा) अग्नि में होम की हुई आहुतियों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ व्याप्त होकर हवन किये हुए पदार्थों को (वेतु) देशांतरों में पहुंचाता है वसी से सब व्यवहार सिद्ध करें ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुमलोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है वह इसी की सत्ता से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दीपक आदि रूपसे रात्रि के व्यवहारों को सिद्ध करता है इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान् द्रव्यों के प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्धि करने हारा है इसको जानो ॥ ११ ॥

उपेत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है ॥

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अध्वरम्) क्रियामय यज्ञ को (उपप्रयन्तः) अच्छे प्रकार जानते हुए हम लोग (अस्मे) जो हम लोगों के (आरे) दूर वा (च) निकट में (शृण्वते) यथार्थ सत्यासत्य को सुननेवाले (अग्नये) विज्ञानस्वरूप अंतर्यामी जगदीश्वर है इसी के लिये (मन्त्रम्) ज्ञान को प्राप्त कराने वाले मंत्रों को (वोचेम) नित्य उच्चारण वा विचार करें॥११

भावार्थः- मनुष्यों को वेदमन्त्रों के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्ठान को करके जो ईश्वर भीतर बाहर सब जगह व्याप्त होकर सब जन्तुओं की तुलना वा जानता हुआ वर्त्तमान है इस कारण उससे सब मानकर अधर्म करने की इच्छा भी न करनी चाहिये जब मनुष्य परमात्मा को जानता है तब सुखी और जब नहीं जानता तब दुःखयुक्त है ऐसा निश्चय जानना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि प्रकाश किया है ॥

अ॒ग्निर्मूर्द्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः पृथि॒व्याऽअ॒यम् । अ॒पाᳬ रेताᳬसि जिन्वति ॥ १२ ॥

पदार्थः—(अयम्) जो यह कार्यकारण से प्रत्यक्ष (ककुत्) सब से बड़ा (मूर्द्धा) सब के ऊपर विराजमान (अग्निः) जगदीश्वर (दिवः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक और (पृथिव्याः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों का (पतिः) पालन करता हुआ (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) वीर्यों को (जिन्वति) रचना को जानता है उसी को तुम मानो ॥ १ ॥ (अयम्) यह अग्नि (ककुत्) सब पदार्थों से बड़ा (दिवः) प्रकाशमान पदार्थों के (मूर्द्धा) ऊपर विराजमान (पृथिव्याः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों के (पतिः) पालन का हेतु होकर (अपाम्) जलों के (रेतांसि) वीर्यों को (जिन्वति) प्राप्त करता है ॥ २ ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है—जो जगदीश्वर प्रकाश वा अप्रकाशरूप दो प्रकार का जगत् अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों को रचकर पालन कर के प्राणों में बल को धारण करता है तथा जो भौतिक अग्नि, पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु होकर बिजुली जाठर आदि रूप से प्राण वा जलों के वीर्यों को उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

उभा वामित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अगले मंत्र में भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया है ॥

उ॒भा वा॑मिन्द्राग्नीऽआहु॒वध्या॑ऽउ॒भा राध॑सः स॒ह मा॑द॒यध्यै॑ । उ॒भा दा॒तारा॑वि॒षाᳬ र॑यी॒णामु॒भा वाज॑स्य सा॒तये॑ हुवे वाम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—मैं जो (उभा) दो (दातारौ) सुख देने के हेतु (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं (वाम्) उन को (आहुवध्यै) गुण जानने के लिये (हुवे) ग्रहण करता हूं

सजूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते । पूर्वार्द्ध-
स्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्गायत्री च छन्दः । षड्जः । स्वरः ॥

भौतिक अग्नि और सूर्य ये दोनों किस की सत्ता में वर्त्तमान हैं इस विषय का उपदे
अगले मंत्र में किया है ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वा
हा । सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु
स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(अग्निः) जो भौतिक अग्नि (देवेन) सब जगत् को ज्ञान देने वा (
वित्रा) सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर के उत्पन्न किये हुए जगत् के सा
(सजूः) तुल्यवर्त्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) बहुत बिजुली
युक्त (रात्र्या) अंधकाररूप रात्रि के साथ (स्वाहा) वाणी को सेवन करता हु
(वेतु) सब पदार्थों में व्याप्त होता है इसी प्रकार (सूर्यः) जो सूर्यलोक (देवेन
सब को प्रकाश करने वाले वा (सवित्रा) सब के अंतर्यामी परमेश्वर के उत्पन्न वा ध
रण किये हुए जगत् के साथ (सजूः) तुल्य वर्त्तमान (जुषाणः) सेवन करता
(इन्द्रवत्या) सूर्यप्रकाशसे युक्त (उषसा) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के सा
(स्वाहा) अग्नि में होम की हुई आहुतियों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ व्या
होकर हवन किये हुए पदार्थों को (वेतु) देशान्तरों में पहुंचाता है उसी से सब व्यव
हार सिद्ध करें ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुमलोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है वह इसी की स
त्ता से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दीपक आदि रूपसे रात्रि के व्यवहा
को सिद्ध करता है इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान् द्रव्यों
प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्धि करने द्वारा है इसको जानो ॥ ११ ॥

उपेत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है ॥

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च
शृण्वते ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अध्वरम्) क्रियामय यज्ञ को (उपप्रयन्तः) अच्छे प्रकार ज
... (आरे) दूर वा (च) निकट में (शृण्व
लोग (अस्मे) जो हम लोगों के
स्वातव्य को सुननेवाले (अग्नये) विज्ञानस्वरूप अंतर्यामी
(मन्त्रम्) ज्ञान

(भृगवः) यज्ञविद्या के जानने वाले विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (वनेषु) अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य (अध्वरेषु) उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में (विशेविशे) प्रजा २ के प्रति (विभ्वम्) व्याप्त स्वभाव वा (चित्रम्) आश्चर्यगुणवाले (यम्) जिस ईश्वर और अग्नि को (विरुरुचुः) विशेष कर के प्रकाशित करते हैं (अयम्) वही (धातृभिः) यज्ञक्रिया के धारण करने वाले विद्वान् लोगों को (ईड्यः) खोज करने योग्य (प्रथमः) यज्ञक्रिया का आदि साधन (होता) यज्ञ का ग्रहण करने वाला (यजिष्ठः) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है । उस को (इह) इस संसार में (धायि) धारण करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख्य करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥ १५ ॥

अस्य प्रत्नामित्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर यह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(अह्रयः) सब विद्याओं को व्याप्त कराने वाले विद्वान् लोग (अस्य) इस भौतिक अग्नि की (सहस्रसाम्) असंख्यात कार्यों को देने वा (ऋषिम्) कार्यसिद्धि के प्राप्ति का हेतु (प्रत्नाम्) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्त्तमान (द्युताम्) धारण में रहने वाली दीप्ति को जान कर (शुक्रम्) शुद्ध कार्यों को सिद्ध करने वाले (पयः) जल को (अनु, दुदुह्रे) अच्छे प्रकार पूर्ण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूर्ण करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है वैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तनूनपादित्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

(राधसः) उत्तम सुखयुक्त राज्यादि धनों के भोग के (सह) साथ (मादयध्यै) आन्द के लिये (वाम्) उन (उभा) दोनों को (हुवे) ग्रहण करता हूं, तथा (इयान) सब को इष्ट (रयीणाम्) अत्यन्त उत्तम चक्रवर्त्ति राज्य आदि धन वा (वाजस्य) अत्यन्त उत्तम अन्न के (सातये) अच्छे प्रकार भोग करने के लिये (उभौ) उन दोनों (हुवे) ग्रहण करता हूं ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जान कार्यों में संप्रयुक्त करके अपने २ कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सब भूगोल के राज आदि धनों को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं इन से भिन्न मनुष्य नहीं ॥ १३ ॥

अयन्त इत्यस्य देववातभरतावृषी । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी अगले मंत्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः । तञ्जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (ते) आपकी सृष्टि में जो (ऋत्वियः) ऋतु ऋतु में प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अरोचथाः) सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि रूप से प्रकाशवाले लोकों के (आरोह) उन्नति को सब ओर से बढ़ाता है और जो (नः) हमारे (रयिम्) राज आदि धन को बढ़ाता है (तम्) उस अग्नि को (जानन्) जानते हुए आप उस (नः) हमारे (रयिम्) सब भूगोल के राज्यआदि से सिद्ध हुए धन को (वर्द्धय) वृद्धियुक्त कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो सब काल में यथावत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्यों की सिद्धिरूप कारण से सब को सुख देता है उस अग्नि को यथावत् जानकर उसका उपयोग कर के सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १४ ॥

अयमिहेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः । यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१५॥

पदार्थः—(अप्नवानः) विद्या सन्तान अर्थात् विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देनेवाले

(भृगवः) यज्ञविद्या के जानने वाले विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (वनेषु) अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य (अध्वरेषु) उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में (विशेविशे) प्रजा २ के प्रति (विभ्वम्) व्याप्त स्वभाव वा (चित्रम्) आश्चर्यगुणवाले (यम्) जिस ईश्वर और अग्नि को (विरुरुचुः) विशेष कर के प्रकाशित करते हैं (अयम्) यही (धातृभिः) यज्ञक्रिया के धारण करने वाले विद्वान् लोगों को (ईड्यः) खोज करने योग्य (प्रथमः) यज्ञक्रिया का आदि साधन (होता) यज्ञ का ग्रहण करने वाला (यजिष्ठः) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है। उस को (इह) इस संसार में (धायि) धारण करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है- विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख्य करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥ १५ ॥

अस्य प्रत्नामित्यस्याऽवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(अह्रयः) सब विद्याओं को व्याप्त कराने वाले विद्वान् लोग (अस्य) इस भौतिक अग्नि की (सहस्रसाम्) असंख्यात कार्यों को देने वा (ऋषिम्) कार्यसिद्धि के प्राप्ति का हेतु (प्रत्नाम्) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्त्तमान (द्युतम्) कारण में रहने वाली दीप्ति को जान कर (शुक्रम्) शुद्ध कार्यों को सिद्ध करने वाले (पयः) जल को (अनु, दुदुह्रे) अच्छे प्रकार पूर्ण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूर्ण करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है वैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तनूपा इत्यस्यावत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

तनूपा अग्नेऽसि तन्वम्मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्च्चो
दा अग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनन्तन्म आ-
पृण ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (यत्) जिस कारण आप (तनूपाः) स
र्त्तिमान् पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले (असि) हैं इस से आप (मे)
(तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (अग्ने) परमेश्वर जैसे
(आयुर्दाः) सब को आयु के देने वाले (असि) हैं वैसे (मे) मेरे लिये (आयुः
पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन (देहि) दीजिये । हे (अग्ने) सर्व विद्यामय
श्वर ! जैसे आप (वर्चोदाः) सब मनुष्यों को विज्ञान देने वाले (असि) हैं वैसे (मे)
मेरे लिये भी ठीक २ गुण ज्ञान पूर्वक (वर्चः) पूर्ण विद्या को (देहि) दीजिये । हे (अग्ने)
सब कामों को पूरण करने वाले परमेश्वर ! (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में (यत्) जि
तना (ऊनम्) बुद्धिबल और शौर्य आदि गुण कम है (तत्) उतना अङ्ग (मे) मेरा
(आपृण) अच्छे प्रकार पूरण कीजिये ॥ १ ॥ (अग्ने) यह भौतिक अग्नि (यत्) जैसे
(तनूपाः) पदार्थों की रक्षा का हेतु (असि) है वैसे जाठराग्नि रूप से (मे) मेरे
(तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा करता है (अग्ने) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि
(आयुर्दाः) सब के जीवन का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (आयुः)
जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को (देहि) देता है (अग्ने) यह अग्नि जैसे (वर्चो-
दाः) विज्ञानप्राप्ति का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (वर्चः) विद्याप्रा-
प्ति के निमित्त बुद्धिबलादि को (देहि) देता है तथा (अग्ने) जो कामना के पूरण क-
रने में हेतु भौतिक अग्नि है यह (यत्) जितना (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में
बुद्धि आदि सामर्थ्य (ऊनम्) कम है (तत्) उतना गुण (आपृण) पूरण करता
है ॥ २ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में
सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुनिमित्त विद्या का प्रकाश और सब पदार्थों को पू-
र्णता रची है इसी से सब पदार्थ अपने २ स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार प-
रमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के पा-
लन का मुख्य साधन है ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्वेत्यस्याऽवत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है ॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय॥ १८॥

पदार्थः—हे (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धनवाले (अग्ने) परमेश्वर! (अदब्धासः) दम्भ अहङ्कार और हिंसादि दोषरहित (वयस्वन्तः) प्रशंसनीय पूर्ण अवस्थायुक्त (सहस्वन्तः) अत्यन्त सहन स्वभावसहित (अदाभ्यम्) मानने योग्य (सपत्नदम्भनम्) शत्रुओं के नाश करने (वयस्कृतम्) अवस्था को पूर्ण करने (सहस्कृतम्) सहन कराने तथा (द्युमन्तम्) अनन्त प्रकाशवाले (त्वा) आप का (इन्धानाः) उपदेश और श्रवण करते हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्ष तक वा सौ से अधिक (हिमाः) हेमन्त ऋतुयुक्त (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाश करें वा जीवें इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो (ते) आप की कृपा से सब दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) सुख को (अशीय) प्राप्त होऊं॥ १॥ (अदब्धासः) दम्भ अहङ्कार हिंसादि दोषरहित (वयस्वन्तः) पूर्ण अवस्थायुक्त (सहस्वन्तः) अत्यन्त सहन करने वाले (त्वा) उस (अदाभ्यम्) उपयोग करने योग्य (सपत्नदम्भनम्) आग्नेयादि शस्त्र अस्त्रविद्या में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने (वयस्कृतम्) अवस्था को बढ़ाने (सहस्कृतम्) सहन का हेतु (द्युमन्तम्) अच्छे प्रकार प्रकाश युक्त (अग्ने) कार्य्यों को प्राप्त कराने वाले भौतिक अग्नि को (इन्धानाः) प्रज्वलित करते हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्षपर्य्यन्त (हिमाः) हेमन्तऋतुयुक्त (समिधीमहि) जीवें इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो यह (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धन के प्राप्ति का हेतु अग्नि है (ते) उस के प्रकाश से दारिद्र्य आदि दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) अत्यन्त सुख को (अशीय) प्राप्त होऊं॥ १८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ ईश्वर की उपासना तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेके दुःखों से पृथक् होकर उत्तम २ सुखों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षण भर भी आलस्य में नहीं रहना किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसा अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये॥ १८॥

सं त्वमित्यस्यावत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी परमेश्वर अग्नि कैसे हैं सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणाꣳ स्तुतेन। स-

ग्रियेण धाम्ना समहमायुषा संवर्चसा सम्प्रजया सथं रा
स्पोषेण ग्मिषीय ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर जो आप (सूर्यस्य) सब के अन्तर्गत प्राण वा (
षीणाम्) वेद मन्त्रों के अर्थों को देखने व ले विद्वानों की जिस (संस्तुतेन) स्तु
करने (संप्रियेण) प्रसन्नता से मानने (संवर्चसा) विद्याध्ययन और प्रकाश करने
(धाम्ना) स्थान (समायुषा) उत्तम जीवन (सम्प्रजया) सन्तान वा राज्य और (
यस्पोषेण) उत्तम धनों के भोग पुष्टि के साथ (समगथाः) प्राप्त होते हो। उनां के
साथ (अहम्) मैं भी सब दुःखों को (संग्मिषीय) प्राप्त होऊं ॥ १ ॥ जो (अग्ने)
भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए सबों के (समगथाः) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता
है उन सिद्ध किये हुए अग्नि के साथ (अहम्) मैं व्यवहार के सब सुखों को (संग्मि
षीय) प्राप्त होऊं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन
अपना पुरुषार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त
होते हैं ॥ ११ ॥

अंधस्थेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । आपो देवता । भुरिग्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
अथ आगले मंत्र में यज्ञ से शुद्ध किये ओषधी आदि पदार्थों का उपदेश किया है ॥

अन्धस्थान्धों वो भक्षीय महस्थ महो वो भक्षीयोर्जस्थोर्जं
वो भक्षीय रायस्पोषस्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

पदार्थ—जो (अन्धः) यज्ञवान् पुष्ट वा ओषधी आदि पदार्थ (स्थ) हैं (वः)
उन के प्रकाश से मैं (अन्ध) वीर्य को पुष्ट करने वाले अन्नों को (भक्षीय) भक्षण
करूं। जो (महः) बड़े २ वायु अग्नि आदि वा विद्या आदि पदार्थ (स्थ) हैं (व
उन से मैं (महः) बड़ी २ क्रियाओं की सिद्धि करने वाले कर्मों का (भक्षीय) सेवन
करूं जो (ऊर्जं) अन्न, दूध, घी, मिष्ट वा फल आदि रस वाले पदार्थ (स्थ) हैं (व)
उन से मैं (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त रस का (भक्षीय) भोग करूं और जो (रायस्पोष)
अनेक गुणयुक्त पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उन चक्रवर्त्ति राज्य और श्री आदि पदार्थों
से मैं (रायस्पोषम्) उत्तम २ धनों के भोग का (भक्षीय) सेवन करूं ॥ २० ॥

भावार्थः - मनुष्यों को [illegible] के पदार्थों के गुण ज्ञान पूर्वक क्रिया की कुशलता से
[illegible] को प्राप्त करके सब दुःखों का [illegible] चाहिये ॥ २० ॥
[illegible] ऋषिः । [illegible] देवता । [illegible] छन्दः । [illegible] स्वरः ॥

अब विद्वानों के सत्सङ्ग के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया ॥

रेवंती रमंध्वमुस्मिन्योनांवुस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये ।
इहैव स्त माप॑गात ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (रेवतीः) विद्या धन इन्द्रिय पशु और पृथिवी के राज्य आदि से युक्त श्रेष्ठ नीति (स्त) हैं वे (अस्मिन्) इस (योनौ) जन्मस्थल (अस्मिन्) इन्द्रिय वा पशु आदि के रहने के स्थान (अस्मिँल्लोके) संसार वा (अस्मिन्क्षये) अपने रचे हुए घरों में (रमध्वम्) रमण करें ऐसी इच्छा करते हुए तुम लोग (इहैव) इन्हीं में प्रवृत्त होओ। अर्थात् (मापगात) इन से दूर कभी मत जाओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—जहां विद्वान् लोग निवास करते हैं वहां प्रजा विद्या उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर सुखों से युक्त होती है। इस से मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नित्य समागम बना रहे अर्थात् कभी हम लोग विरोध से पृथक् न होवें ॥ २१ ॥

संहितेत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वार्द्धस्य भुरिगासुरी गायत्री। उपत्वेत्यन्तस्य गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से बिजुली के कर्मों का उपदेश किया है ॥

सुंहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन। उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषांवस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥ २२ ॥

पदार्थः—(नमः) अन्न को (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) अपनी बुद्धि वा कर्म से जो (अग्ने) अग्नि बिजली रूप से सब पदार्थों के (संहिता) साथ (ऊर्जा) वेग वा पराक्रम आदि गुणयुक्त (विश्वरूपी) सब पदार्थों में रूपगुणयुक्त (गौपत्येन) इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करने वाले जीव के साथ वर्त्तमान से (मा) मुझ में (आविश) प्रवेश करता है (त्वा) उस (दोषावस्तः) रात्रि को अपने तेज से दूर करने वाले (अग्ने) विद्युद्रूप अग्नि को (दिवेदिवे) ज्ञान के प्रकाश होने के लिये प्रतिदिन (उपएमसि) समीप प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जिस ईश्वर ने सब जगत् मूर्त्तिमान् द्रव्यों में बिजुलीरूप से परिपूर्ण सब रूपों का प्रकाश करने चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु विचित्र गुण वाला अग्नि रचा है उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये ॥२२॥

राजन्तमित्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः

फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्द्धमानꣳ स्वे दमे ॥२३॥

पदार्थः—(नमः) अन्न से सत्कार पूर्वक (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म से (अध्वराणाम्) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ वा (गोपाम्) इन्द्रिय पृथिव्यादि की रक्षा करने (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य) अनादि सत्य स्वरूप कारण के (दीदिविम्) व्यवहार को करने वा (स्वे) अपने (दमे) मोक्षरूप स्थान में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होने वाले परमात्मा को (उपेमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ जिस परमात्मा ने (अध्वराणाम्) शिल्पविद्या साध्य यज्ञ वा (गोपाम्) पश्वादि की रक्षा करने (ऋतस्य) जल के (दीदिविम्) व्यवहार को प्रकाश करना वा (स्वे) अपने (दमे) शान्तस्वरूप में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अग्नि प्रकाशित किया है उस को (नमः) सत्क्रिया से (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि और कर्म से (उपेमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥२॥२३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, इमसि इन छः पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से जाननी चाहिये । परमेश्वर आदि रहित सत्य कारणरूप से सम्पूर्ण कार्यों को रचता और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सब व्यवहारों को सिद्ध करता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

स न इत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र से ईश्वर ही का उपदेश किया है ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जो आप कृपा करके जैसे (सूनवे) अपने पुत्र के लिये (पितेव) पिता अच्छे २ गुणों को सिखलाता है वैसे (नः) हमारे लिये (सूपायनः) श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले (भव) हैं वैसे (सः) सो आप (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लिये निरन्तर (सचस्व) संयुक्त कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे सब के पालन करने वाले परमेश्वर जैसे कृपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ २ शिक्षा देकर विद्या धर्म अच्छे २ स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है वैसे ही आप हम लोगों को निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ २ व्यवहारों में संयुक्त कीजिये ॥२४॥

अग्ने त्वमित्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्ने त्वन्नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।

वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब की रक्षा करने वाले जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (वसुश्रवः) सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ कानों को देने (वसुः) सब प्राणी जिस में वास करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में बसने हारे और (अग्निः) विज्ञान प्रकाशयुक्त (नक्षि) सब जगह व्याप्त अर्थात् रहने वाले हैं सो आप (नः) हम लोगों के (अन्तमः) अन्तर्यामी वा जीवन के हेतु (त्राता) रक्षा करने वाले (वरूथ्यः) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव में होने (शिवः) तथा मङ्गलमय मङ्गल करने वाले (भव) हूजिये और (उत) भी (नः) हम लोगों के लिये (द्युमत्तमम्) उत्तम प्रकाशों से युक्त (रयिम्) विद्या चक्रवर्ति आदि धनों को (अच्छ दाः) अच्छे प्रकार दीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़ कर और हमारी रक्षा करने वा सब सुखों के साधनों का देने वाला कोई नहीं है क्योंकि वही अपने सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है ॥ २५ ॥

तन्त्वेत्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णोऽअघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्धस्वरूप (दीदिवः) स्वयं प्रकाशमान आनन्द के देने वाले जगदीश्वर ! हम लोग वा (नः) अपने (सखिभ्यः) मित्रों के (सुम्नाय) सुख के लिये (तन्त्वा) आप से (ईमहे) याचना करते हैं तथा जो आप (नः) हम को (बोधि) अच्छे प्रकार विज्ञान को देते हैं (सः) सो आप (नः) हमारे (हवम्) सुनने सुनाने योग्य स्तुतिसमूह यज्ञ को (श्रुधि) कृपा करके श्रवण कीजिये और (नः) हम को (समस्मात्) सब प्रकार (अघायतः) पापाचरणों से अर्थात् दूसरे को पीड़ा करने रूप पापों से (उरुष्य) अलग रखिये ॥ २६ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही आचरण भी करना कि जिस से प्रार्थना किया हुआ परमेश्वर अधर्म से अलग होने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को [illegible] पापों से पृथक् कर देता है वैसे ही उन मनुष्यों को भी पापों से दूर रह कर धर्म के करने में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ २६ ॥

कि जिस से हम लोग विद्या से प्रकाशित सब क्रियाओं में कुशल और प्रीति से विद्या के पढ़ाने वाले पुत्रों से युक्त हों ॥ २८ ॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यो रे॒वान्यो अ॑मीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः । स नः॑ सिषक्तु॒ य-
स्तु॒रः ॥ २९ ॥

पदार्थः– (यः) जो वेदशास्त्र का पालन करने (रेवान्) विद्या आदि अनन्त धनवान् (अमीवहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने (वसुवित्) सब वस्तुओं को यथावत् जानने (पुष्टिवर्द्धनः) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (तुरः) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है (सः) वह (नः) हम लोगों को उत्तम २ कर्म वा गुणों के साथ (सिषक्तु) संयुक्त करे ॥ २१ ॥

भावार्थः—जो इस संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उन को पुरुषार्थ भी करना जैसे विद्या आदि धनवाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुनकर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्या आदि धनवाला नहीं होसकता किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि रोगों को धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें जैसे वह वस्तुओं को यथावत् जानता है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थ विद्याओं को यथावत् जानें जैसे वह सब की पुष्टि को बढ़ाता है वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ावें जैसे वह अच्छे २ कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है वैसे मनुष्य भी उत्तम २ कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम २ गुण वा कर्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २१ ॥

मा न इत्यस्य सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इड एह्यदित इत्यस्य श्रुतबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उस की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इड॒ एह्यदि॑त॒ऽएहि॒ काम्या॒ऽएत॑ । मयि॑ वः काम॒धर॑णम्भूयात् ॥२७

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से (इडे) यह पृथिवी मुझ को राज्य के लिये (एहि) अवश्य प्राप्त हो । तथा अदिते सब सुखों को प्राप्त कराने वाली [illegible] रहित राजनीति (एहि) प्राप्त हो इसी प्रकार हे भगवन् ! अपनी पृथिवी और रा[illegible] नीति के द्वारा (काम्याः) इष्ट २ पदार्थ (एत) प्राप्त हों तथा (मयि) मेरे बीच [illegible] वः) उन पदार्थों को (कामधरणम्) स्थिरता यथावत् हो ॥ २७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उत्तम २ पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उन [illegible] प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थ करना चाहिये कोई मनुष्य [illegible] अच्छी वा बुरी कामना के विना क्षणभर भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता इस[illegible] सब मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना को छोड़ कर धर्मयुक्त व्यवहारों [illegible] जितनी इच्छा बढ़ सके उतनी बढ़ानी चाहिये ॥ २७ ॥

सोमानमित्यस्य प्रबन्धुर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उस जगदीश्वर की किसलिये प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सो॒मान॒ꣳ स्वर॑णङ्कृणु॒हि ब्र॑ह्मणस्पते । क॒क्षीव॑न्त॒ꣳ य औ॑शि॒जः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) सनातन वेदशास्त्र के पालन करने वाले जगदीश्वर आप [illegible] यः) जो मैं (औशिजः) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले विद्वान् के पुत्र के तुल्य [illegible] उस मुझ को (कक्षीवन्तम्) विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त (स्वरणम्) सब [illegible] विद्याओं का कहने और (सोमानम्) ओषधियों के रसों का निकालने तथा विद्या की [illegible] वृद्धि करने वाला (कृणुहि) कीजिये । ऐसा ही व्याख्यान इस मन्त्र का निरुक्तकार [illegible] यास्क मुनि जी ने भी किया है सो पूर्व लिखे हुए संस्कृत में देख लेना ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है—पुत्र दो प्रकार के होते हैं एक तो औ[illegible] र अर्थात् जो अपने वीर्य से उत्पन्न होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये नि[illegible] त् किया जाता है । इन सब मनुष्यों को इसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये

कि जिस से हम लोग विद्या से प्रकाशित सब क्रियाओं में कुशल और प्रीति से विद्या के पढ़ाने वाले पुत्रों से युक्त हों ॥ २८ ॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यो रे॒वान्यो अ॑मीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः । स नः॑ सिषक्तु य॒स्तु॒रः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(यः) जो वेदशास्त्र का पालन करने (रेवान्) विद्या आदि अनन्त धनवान् (अमीवहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने (वसुवित्) सब वस्तुओं को यथावत् जानने (पुष्टिवर्द्धनः) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (तुरः) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है (सः) वह (नः) हम लोगों को उत्तम २ कर्म वा गुणों के साथ (सिषक्तु) संयुक्त करे ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो इस संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उन को पुरुषार्थ भी करना जैसे विद्या आदि धनवाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुनकर कोई मनुष्य एतत्तुल्य अर्थात् विद्या आदि धनवाला नहीं होसकता किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि रोगों को धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें जैसे वह वस्तुओं को यथावत् जानता है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थ विद्याओं को यथावत् जानें जैसे वह सब की पुष्टि को बढ़ाता है वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ावें जैसे वह अच्छे २ कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है वैसे मनुष्य भी उत्तम २ कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कार्यों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम २ गुण वा कार्यों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २९ ॥

मा न इत्यस्य हतपूतिर्वारुणिर्ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मा नः शंस॒ो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर ! आप की कृपा से (नः) हमारा वैरी धा (मा) (प्रणक्) कभी नष्ट मत हो और जो (अररुषः) दान आदि धर्मरहित परधन ग्रहण करने वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा अर्थात् द्रोह है उस से (नः) हम लोगों की निरन्तर (रक्ष) रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा उत्तम २ काम करना और बुरे २ काम छोड़ना तथा किसी के साथ द्रोह वा दुष्टों का संग भी न करना और धर्म की रक्षा वा परमेश्वर की उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये ॥ ३० ॥

महित्रीणामित्यस्य सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उन की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर ! आप की कृपा से (मित्रस्य) बाहिर वा भीतर रहने वाला जो प्राणवायु तथा (अर्यम्णः) जो आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों को धारण करने वाला सूर्यलोक और (वरुणस्य) जल (त्रीणाम्) इन तीनों के प्रकाश से (नः) हम लोगों के (द्युक्षम्) जिस में नीति का प्रकाश निवास करता है वा (दुराधर्षम्) अति कष्ट से ग्रहण करने योग्य उक्त (महि) बड़े वेद विद्या की (अवः) रक्षा (अस्तु) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (ब्रह्मणस्पते) (नः) इन दो पदों की अनुवृत्ति जाननी चाहिये। मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा औरों की न्यायपूर्वक रक्षा कर के यथावत् राज्य का पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

नहि तेषामित्यस्य सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं (तेषाम्) उनके (अमा) घर (अध्वसु) मार्ग और (वारणेषु) चोर, शत्रु, डांकू, व्याघ्र आदिकों के निवारण करने वाले

मार्गों में (चन) भी (अघशंसः) पापरूप कर्मों का कथन करने वाला (रिपुः) शत्रु (नहि) नहीं स्थिर होता और (न) न उन को क्लेश देने को समर्थ हो सकता उस ईश्वर और उन धार्मिक विद्वानों के प्राप्त होने को मैं (ईशे) समर्थ होता हूं ॥३२॥

भावार्थः—जो धर्मात्मा वा सब के उपकार करने वाले मनुष्य हैं उन को भय कहीं नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु भी नहीं होता ॥ ३२ ॥

ते हीत्यस्य वारुणिः सप्तधृतिर्ऋषिः। आदित्यो देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

आदित्यों का क्या २ कर्म है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—जो (अदितेः) नाशरहित कारणरूपी शक्ति के (पुत्रासः) बाहिर भीतर रहने वाले प्राण सूर्यलोक पवन और जल आदि पुत्र हैं (ते) वे (हि) ही (मर्त्याय) मनुष्यों के मरने वा (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्) निरंतर (ज्योतिः) तेज वा प्रकाश को (यच्छन्ति) देते हैं ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो ये कारण रूपी समर्थ पदार्थों से उत्पन्न हुए प्राण सूर्यलोक वायु वा जल आदि पदार्थ हैं ये ज्योति अर्थात् तेज को देते हुए सब प्राणियों के जीवन वा मरने के लिये निमित्त होते हैं ॥ ३३ ॥

कदा चनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। पथ्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख देनेवाले ईश्वर ! जो आप (स्तरीः) सुखों से आच्छादन करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्यके लिये (कदाचन) कभी (इत्) ज्ञान को (नु) शीघ्र (सश्चसि) प्राप्त (न) नहीं करते तो उस कालमें हे (मघवन्) विद्यादि धनवाले जगदीश्वर ! (देवस्य) कर्म फल के देने वाले (ते) आपके (दानम्) दिये हुए (इत्) ही ज्ञान को (दाशुषे) विद्यादि देने वाले के लिये (भूयः) फिर (नु) शीघ्र (उपोपपृच्यते) प्राप्त (कदाचन) कभी (न) नहीं होता ॥ ३४ ॥

भावार्थः—जो जगदीश्वर कर्म के फल को देनेवाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हम लोग (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वा (देवस्य) प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करनेवाला (तेजः) स्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) धारण करें और (यः) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देनेवाला है वह अपनी करुणा करके (नः) हमलोगों की (धियः) बुद्धियों को उत्तम २ गुणकर्मस्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करै ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सबसे उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यंत शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें किस प्रयोजन के लिये जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे २ गुण और कर्मों से अलग करके अच्छे २ गुण कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे इस लिये और प्रार्थना का मुख्य सिद्धांत यही है कि जैसी प्रार्थना करनी वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण भी करना चाहिये ॥ ३५ ॥

परित इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

परि॑ ते दू॒ढभो॒ रथो॒ऽस्माँ२ ॥ अ॑श्नोतु वि॒श्वतः॑ । येन॒ रक्ष॑सि दा॒शुषः॑ ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (येन) जिस ज्ञान से (दाशुषः) विद्यादि दान करनेवाले विद्वानों को (विश्वतः) सब ओर से (रक्षसि) रक्षा करते और जो (ते) आपका (दूडभः) दुःखसे भी नहीं नष्ट होने योग्य (रथः) सब को जानने योग्य विज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिये है वह (अस्मान्) आपकी आज्ञा के सेवन करने वाले हम लोगों को (परि) सब प्रकार (अश्नोतु) प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

अगले मन्त्र में विचार है ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि॥३७॥

पदार्थः—हे (नर्य) नीतियुक्त मनुष्यों पर कृपा करने वाले परमेश्वर आप कृपा करके (मे) मेरी (प्रजाम्) पुत्र आदि प्रजा की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (मे) मेरे (पशून्) गौ घोड़े हाथी आदि पशुओं की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (अथर्य) सन्देह रहित जगदीश्वर! आप (मे) मेरे (पितुम्) अन्न की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (शंस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर! आप की कृपा से मैं (भूर्भुवः स्वः) जो प्रिय स्वरूप प्राण, बल का हेतु उदान तथा सब चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है उन के साथ युक्त हो के (प्रजाभिः) अपने अनुकूल स्त्री, पुत्र, विद्या, धर्म, मित्र, भृत्य, पशु आदि पदार्थों के साथ (सुप्रजाः) उत्तम विद्या धर्म युक्त प्रजा सहित या (वीरैः) शौर्य धैर्य विद्या शत्रुओं के निवारण प्रजा के पालन में कुशलों के साथ (सुवीरः) उत्तम शूर वीर युक्त और (पोषैः) पुष्टिकारक पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ (सुपोषः) उत्तम पुष्टि उपादान करने वाला (स्याम्) नित्य होऊं ॥ ३७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालन का आश्रय लेकर उत्तम २ नियमों से वा उत्तम प्रजा सेना पुष्टि आदि कारणों से प्रजा का पालन करके निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ ३७ ॥

आगन्मेत्यस्याऽऽसुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्। अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आ यच्छस्व ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (सम्राट्) प्रकाशस्वरूप (अग्ने) जगदीश्वर! आप (अस्मभ्यम्) उपासना करने वाले हम लोगों के लिये (द्युम्नम्) प्रकाशस्वरूप उत्तम यश या (सह)

उत्तम बल को (अभ्यायच्छस्व) सब ओर से विस्तारयुक्त करते हो इसलिये हम लोग (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों के जानने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों के जानने वाले आप को (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥ १ ॥ जो यह (सम्राट्) प्रकाश होने वाला (अग्ने) भौतिक अग्नि (अस्मभ्यम्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों के लिये (द्युम्नम्) उत्तम २ यश वा (सहः) उत्तम २ बल को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार विस्तार युक्त करता है उस (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों को सूर्य रूप से प्रकाश कर के प्राप्त कराने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों को जानने वाले अग्नि को हम लोग (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥२॥३८॥

भावार्थ.—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उस के अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति यश और बल का विस्तार करना चाहिये ॥ ३८ ॥

अयमग्निरित्यस्याशुरिऋर्षिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजायां वसुवित्तमः । अग्ने गृहपतेऽभिद्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने वाले (अग्ने) परमेश्वर जो ! (अयम्) यह (गृहपतिः) स्थानविशेषों के पालन हेतु (गार्हपत्यः) घर के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (प्रजायां वसुवित्तमः) प्रजा के लिये सब प्रकार धन प्राप्त कराने वाले हैं सो आप जिस कारण (द्युम्नम्) सुख और प्रकाश से युक्त धन को (अभ्यायच्छस्व) अच्छा प्रकार दीजिये तथा (सहः) उत्तम बल पराक्रम (अभ्यायच्छस्व) अच्छा प्रकार दीजिये ॥ १ ॥ जिस कारण जो (गृहपतिः) उत्तम स्थानों के पालन का हेतु (प्रजायाः) पुत्र मित्र स्त्री और भृत्य आदि प्रजा को (वसुवित्तमः) द्रव्यादि को प्राप्त कराने वा (गार्हपत्य) गृहों के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (अयम्) यह (अग्ने) बिजुली सूर्य वा प्रत्यक्षरूप से अग्नि है इस से यह (गृहपते) घरों का पालन करने वाला (अग्ने) अग्नि हम लोगों के लिये (अभिद्युम्नम्) सब ओर से उत्तम २ धन वा (सहः) उत्तम २ बलों को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त करता है ॥ २१ ॥

[illegible]—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना [illegible] की आज्ञा में प्रवृत्त होके कार्यों की सिद्धि के लिये इस अग्नि को संयुक्त

अ॒यम॒ग्निः पु॑री॒ष्यो र॑यि॒मान् पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः । अग्ने॑ पुरीष्या॒भि द्यु॒म्नम॒भि सह॒ऽआय॑च्छस्व ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (पुरीष्य) कर्मों के पूर्ण करने में अति कुशल (अग्ने) उत्तम से उत्तम पदार्थों के प्राप्त कराने वाले विद्वान् आप जो (अयम्) यह (पुरीष्यः) सब सुखों के पूर्ण करने में अनुकूल (रयिमान्) उत्तम २ धनयुक्त (पुष्टिवर्धनः) पुष्टि को बढ़ाने वाला (अग्निः) भौतिक अग्नि है उससे हम लोगों के लिये (अभिद्युम्नम्) उत्तम २ प्रकाश को सिद्ध करने वाले धन वा (अभिसहः) उत्तम २ शरीर और आत्मा के बलों को (आयच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त कीजिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर की कृपा वा अपने पुरुषार्थ से अग्निविद्या को सम्पादन करके अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करना चाहिये ॥ ४० ॥

गृहा मेत्यस्याशुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । वास्तुरग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अथ आगे मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है ॥

गृहा मा बि॑भीत॒ मा वे॑पध्व॒मूर्जं॒ बिभ्र॑त॒ एम॑सि । ऊर्जं॒ बिभ्र॑द्वः सु॒मनाः॑ सुमे॒धा गृ॒हानैमि॒ मन॑सा॒ मोद॑मानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचर्याश्रम से तप विद्याओं को ग्रहण किये गृहाश्रमी तथा (ऊर्जम्) शरीरादि पराक्रमों को (बिभ्रतः) धारण किये और (गृहाः) ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए मनुष्यो ! तुम गृहस्थाश्रम को यथावत् प्राप्त होओ उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से (मा बिभीत) मत डरो तथा (मा वेपध्वम्) मत कंपो तथा पराक्रमों को धारण किये हुए हम लोग (गृहान्) गृहस्थाश्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को (एमसि) नित्य प्राप्त होते रहें और (वः) तुम लोगों में स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वर्तमान (सुमनाः) उत्तम ज्ञान (सुमेधाः) उत्तम बुद्धियुक्त (मनसा) विज्ञान से (मोदमानः) हर्ष उत्साहयुक्त (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के बलों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ मैं अत्यंत सुखों को (एमि) निरन्तर प्राप्त होऊं ॥ ४१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन कर के युवावस्था में स्वयंवर के विधान की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव विद्यारूप बुद्धि और बल आदि गुणों को देख कर विवाह कर तथा शरीर आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न कर के सब साधनों से अच्छे २ व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये तथा किसी मनुष्य को गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नहीं करना चाहिये क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है इससे इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये और इस गृहस्थाश्रम के बिना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती ॥ ४१ ॥

येषामित्यस्य शंयुर्ऋषिः । वास्तुपतिरग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यह गृहस्थाश्रम कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

येषा॑म॒ध्येति॑ प्र॒वस॒न्येषु॑ सौमन॒सो ब॒हुः । गृ॒हानुप॑ ह्वयामहे॒ ते नो॑ जानन्तु जान॒तः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(प्रवसन्) प्रवास करता हुआ अतिथि (येषाम्) जिन गृहस्थों का (अध्येति) स्मरण करता वा (येषु) जिन गृहस्थों में (बहुः) अधिक (सौमनसः) प्रीतिभाव है उन (गृहान्) गृहस्थों का हम अतिथि लोग (उपह्वयामहे) नित्य प्रति प्रशंसा करते हैं जो प्रीति रखने वाले गृहस्थ लोग हैं (ते) वे (जानतः) जानते हुए धार्मिक (नः) हम अतिथि लोगों को (जानंतु) यथावत् जानें ॥ ४२ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को सब धार्मिक अतिथि लोगों के वा अतिथि लोगों को गृहस्थों के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टों के साथ नहीं तथा उन विद्वानों के सङ्ग से परस्पर वार्त्तालाप कर विद्या की उन्नति करनी चाहिये और जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उन की सेवा गृहस्थों के निरन्तर करनी चाहिये औरों की नहीं ॥ ४२ ॥

उपहूता इत्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । वास्तुपतिर्देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उस गृहस्थाश्रम को कैसे सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उप॑हूता इ॒ह गाव॒ उप॑हूता अजा॒वयः॑ । अथो॒ अन्न॑स्य की॒लाल॒ उप॑हूतो गृ॒हेषु॑ नः । क्षेमा॑य वः॒ शान्त्यै॒ प्रप॑द्ये शि॒वꣳ श॒ग्मꣳ शं॒योः शं॒योः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(इह) इस गृहस्थाश्रम या संसार में (वः) तुम लोगों के (शान्त्यै) सुख (न) हम लोगों की क्षेमार्थ रक्षा के (गृहेषु) निवास करने योग्य स्थानों में जो (गावः) दूध देने वाली गौ आदि पशु (उपहूताः) समीप प्राप्त किये वा (अजावयः) भेड़ बकरी आदि पशु (उपहूताः) समीप प्राप्त हुए (अथो) इस के अनन्तर (अन्नस्य) प्राण धारण करने वाले (कीलालः) अन्न आदि पदार्थों का समूह (उपहूताः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो मैं गृहस्थ हूं सो (शंयोः) सब सुखों के साधनों से (शिवम्) कल्याण या (शग्मम्) उत्तम सुखों को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊं ॥ ४३ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को योग्य है कि ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालने से गौ हाथी घोड़े आदि पशु तथा भोजन पीने योग्य स्वादु पदार्थों का संग्रह कर अपनी वा औरों की रक्षा कर के ज्ञान धर्म विद्या और पुरुष से इस लोक वा परलोक के सुखों को सिद्ध करना चाहिये किन्तु किसी पुरुषार्थी को आलस्य में नहीं रहना चाहिये किन्तु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ति राज्य आदि धनों को संग्रह कर उन को अच्छे प्रकार रक्षा कर के उत्तम २ सुखों को प्राप्त हों इस से अन्यथा मनुष्यों को वर्तना न चाहिये क्योंकि अन्यथा वर्तने वालों को सुख कभी नहीं होता ॥ ४३ ॥

प्रघासिन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

गृहस्थ मनुष्यों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

प्र॒घा॒सिनो॑ हवामहे म॒रुत॑श्च रि॒शाद॑सः । क॒र॒म्भेण॑ स॒जोष॑सः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हम लोग (करम्भेण) अविद्यारूपी दुःख होने से अलग हो के (सजोषसः) बराबर प्रीति के सेवन करने (रिशादसः) दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने और (प्रघासिनः) पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और (मरुतः) यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को (हवामहे) सत्कारपूर्वक नित्य प्रति बुलाते रहैं ॥ ४४ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को उचित है कि वैद्यक शूरवीरता और यज्ञ को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक सेवा कर के उन से उत्तम २ विद्या वा शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें ॥ ४४ ॥

यद्ग्राम इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है ॥

यद्ग्रा॒मे यदर॑ण्ये॒ यत्स॒भायां॒ यदि॑न्द्रि॒ये । यदेन॑श्चकृ॒मा व॒यमि॒दन्तदव॑ यजामहे॒ स्वाहा॑ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(वयम्) कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग (यत्) (ग्रामे) जो गृहस्थों से सेवित ग्राम (यत्) (अरण्ये) वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो (यत्सभायाम्) विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हों और (यत्) (इन्द्रिये) योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों उस में स्थित होके जो (एनः) पाप वा अधर्म (चकृम) करा वा करेंगे सो सब (अवयजामहे) दूर करते रहैं तथा जो २ उन २ उक्त स्थानों में (स्वाहा) सत्य वाणी से पुण्य वा धर्माचरण (चकृम) करना योग्य है (तत्) उस २ को (यजामहे) प्राप्त होते रहैं ॥ ४५ ॥

भावार्थः—चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग कर के विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम २ शिक्षा के प्रचार कर के प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

मो षू ण इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रमरुतौ देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

ईश्वर और शूरवीर के सहाय से युद्ध में विजय होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मो षू णऽइन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः । महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शूरवीर ! आप (अत्र) इस लोक में (पृत्सु) युद्धों में (देवैः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (सु) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये तथा (मो) मत हनन कीजिये । हे (शुष्मिन्) पूर्ण बलयुक्त शूरवीर ! (हि) निश्चय कर के (चित्) जैसे (ते) आप की (महः) बड़ी (गीः) वेद प्रमाणयुक्त वाणी (मीढुषः) विद्या आदि उत्तम गुणों के सींचने वा (हविष्मतः) उत्तम २ हवि अर्थात् पदार्थ युक्त (मरुतः) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानों के (वन्दते) गुणों का प्रकाश करती है जैसे विद्वान् लोग आप के गुणों का हम लोगों के अर्थ निरन्तर प्रकाश कर के आनन्दित होते हैं वैसे जो (अवयाः) यज्ञ करने वाला यजमान है वह आप की आज्ञा से जिन (यव्या) उत्तम २ यव आदि अन्नों को अग्नि में होम करता है वे पदार्थ सब प्राणियों को सुख देने वाले होते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को संग्रह करके युद्ध में शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्ति राज्य को प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बड़े आनन्द को सेवन करते हैं तब उत्तम राज्य होता है ॥ ४६ ॥

अत्रिऋषिपुत्रागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
कौन २ मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने को योग्य होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अक्र॒न् कर्म॑ कर्म॒कृतः॑ स॒ह वा॒चा म॑यो॒भुवा॑ । दे॒वेभ्यः॒ कर्म॑ कृ॒त्वास्तं॒ प्रेत॑ सचाभुवः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य लोग (मयोभुवा) सत्यप्रिय मंगल के कराने वाली (वाचा) वेदवाणी वा अपनी वाणी के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर संगी होकर (कर्मकृतः) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अभीष्ट कर्म को (अक्रन्) करते हैं वे (देवेभ्यः) विद्वान् वा उत्तम २ गुण सुखों के लिये (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा) अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्णसुखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़कर पुरुषार्थ ही में निरंतर रह के मूर्खपन को छोड़कर वेद विद्या से शुद्ध किई हुई वाणी के साथ सदा वर्तें और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करें जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वेही अच्छे २ सुख युक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखों को प्राप्त हो कर आनन्दित होते हैं अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते ॥ ४७ ॥

अथमृथेस्यर्णियाम ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
अब अगले मंत्र में यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले यजमान के कर्मों का उपदेश किया है ॥

अव॑भृथ निचुम्पुण निचे॒रुर॑सि निचुम्पु॒णः । अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मेनो॑ऽयासिष॒मव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतम्पुरु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (अवभृथ) विद्या वा धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध (निचुम्पुण) धैर्य से शब्दविद्या को पढ़ाने वाले विद्वान् मनुष्य जैसे मैं (निचुम्पुणः) ज्ञान को प्राप्त कराने वा (निचेरुः) निरंतर विद्या का संग्रह करने वाला (देवैः) प्रकाश स्वरूप मन आदि इन्द्रियों से (देवकृतम्) किया वा (मर्त्यैः) मरणधर्मवाले (मर्त्यकृतम्) शरीरों से किये हुये (एनः) पापों को (अवायासिषम्) दूर कर शुद्ध होता हूं वैसे तू भी (असि) हो है । (देव) जगदीश्वर! आप हम लोगों को (पुरुराव्णः) बहुत दुःख देने वा (रिषः) मारने योग्य शत्रु वा पाप से (पाहि) रक्षा कीजिये अर्थात् दूर कीजिये ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—मनुष्यों को उचित है कि पापरूपी

निवृत्ति धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना निरन्तर कर के जो मन वाणी वा शरीर से पाप होते हैं उन से दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो उसके दुःख रूप फल को जान कर फिर दूसरी वार उस को कभी न करें किन्तु सब काल में शुद्ध कर्मों के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें ॥ ४८ ॥

पूर्णादर्विरित्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥
यज्ञ में हवन किया हुआ पदार्थ कैसा होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा॑ इषमूर्ज॑ᳬ शतक्रतो ॥ ४९ ॥

पदार्थः—जो (दर्वि) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली (पूर्णा) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुती (परापत) होम हुए पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से (सुपूर्णा) पूर्ण हुई (पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथिवी में उत्तम जल रस को प्राप्त करती है उस से हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर! आपकी कृपा से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों (इषम्) उत्तम २ अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त वस्तुओं को (वस्नेव) वैश्यों के व्यवहारों के समान (विक्रीणावहै) वा ग्रहण करें ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है। जब मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अ में हवन करते हैं तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि जल को शुद्ध करते हुए पृथिवी आते हैं जिस से यव आदि ओषधी शुद्ध हो कर सुख और पराक्रम के देने वाली तां हैं जैसे कोई वैश्यलोग रुपया आदि को दे लेकर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थ खरीदते वा बेचते हैं वैसे सब हम लोग भी अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोड़ कर वर्षा वा सुखों को खरीदते हैं खरीद कर फिर वृष्टि और सुखों के लिये अग्नि में हवन करते हैं

देहि म इत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब अगले मंत्र में सब आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहार का उपदेश किया है ॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे। निहारं च ह मे निहारन्निहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे मित्र ! तुम (स्वाहा) जैसे सत्यवाणी हृदय में कहे वैसे (मे) मुझको यह वस्तु (देहि) दे वा मैं (ते) तुझ को यह वस्तु (ददामि) देऊं वा देऊंगा तथा तू (मे) मेरा यह वस्तु (निधेहि) धारण कर मैं (ते) तुम्हारा यह वस्तु (निदधे) धारण करता हूं और तू (मे) मुझ को (निहारम्) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को (हरासि) ले मैं (ते) तुझ को (निहारम्) पदार्थों का मोल (निहराणि) निश्चय करके देऊं (स्वाहा) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से करें अन्यथा ये व्यवहार सिद्ध नहीं होते हैं ॥ ५० ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को देना लेना पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहियें जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु तुम हम को देना मैं यह नहीं देता तथा देऊंगा ऐसा कहे तो वहां वैसा ही करना तथा किसी ने कहा कि मेरा यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ जब मैं इच्छा करूं तब तुम दे देना इसी प्रकार मैं तुम्हारा यह वस्तु रख लेता हूं जब तुम इच्छा करोगे तब देऊंगा वा उसी समय मैं तुम्हारे पास आऊंगा वा तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहियें और ऐसे व्यवहारों के विना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्यों की सिद्धि नहीं होती और इन दोनों के विना कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५० ॥

अक्षन्नित्यस्य गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञादि व्यवहार से क्या२ होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अक्षन्नमी मदन्त ह्यव प्रिया ऽअंधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविंष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभा के स्वामी जो (ते) आप के सम्बन्धी मनुष्य (स्वभानवः) अपनी ही दीप्ति से प्रकाश होने वा (अवप्रिया) औरों को प्रसन्न कराने वाले (विप्राः) विद्वान् लोग (नविष्ठया) अत्यन्त नवीन (मती) बुद्धि से (हि) निश्चय करके परमात्मा की (अस्तोषत) स्तुति और (अक्षन्) उत्तम २ अन्नादि पदार्थों को भक्षण करते हुए (अमीमदन्त) आनन्द को प्राप्त होते और उन्हीं से वे शत्रु वा दुःखों को (अधूषत) शीघ्र कंपित करते हैं वैसे ही हम यज्ञ में (इन्द्र) हे सभापते ! (ते) आप के सहाय से इस यज्ञ में निपुण हों और तू (हरी) अपने बल और पराक्रम को हम लोगों के साथ (योज) संयुक्त कर ॥ ५१ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है-मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवीन २ ज्ञान वा क्रिया की वृद्धि करते रहें जैसे मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग वा शास्त्रों के प-

कने से नवीन २ बुद्धि नवीन २ क्रिया को उत्पन्न करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को अ-
नुष्ठान करें ॥ ५१ ॥

सुसंदृशमित्यस्य गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो
यासि वशाँ२॥ अनु योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम २ विद्यादि धनयुक्त (इन्द्र) विद्वान् तू (वयम्) हम लोग (सुसंदृशम्) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखने वाले (ते) आप की (नूनम्) निश्चय कर के (वन्दिषीमहि) स्तुति करें तथा हम लोगों से (स्तुतः) स्तुति किये हुए आप (वशान्) इच्छा किये हुए पदार्थों को (यासि) प्राप्त करते हो और (ते) अपने (हरी) बल पराक्रमों को आप (अनुप्रयोज) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त कीजिये ॥ १ ॥ (वयम्) हम लोग (सुसंदृशम्) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने या (मघवन्) धन को प्राप्त कराने तथा (पूर्णबन्धुरः) सब जगत् के बन्धन के हेतु (त्वा) उस सूर्यलोक की (नूनम्) निश्चय करके (वन्दिषीमहि) स्तुति अर्थात् इस के गुण प्रकाश करके (स्तुतः) स्तुति किया हुआ यह हम लोगों को (वशान्) उत्तम २ व्यवहारों की सिद्धि कराने वाली कामनाओं को (यासि) प्राप्त कराता है (उ) जैसे (ते) इस सूर्य के (हरी) धारण आकर्षण गुण जगत् में युक्त होते हैं वैसे आप हम लोगों को विद्या की सिद्धि करने वाले गुणों को (अनुप्रयोज) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थः — इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है—मनुष्यों को सब जगत् के हित करने वाले जगदीश्वर ही की स्तुति करनी और कामी की न करनी चाहिये । क्योंकि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है वैसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्तजनों के आत्माओं में विज्ञान को उत्पन्न करने से सब सत्यव्यवहारों को प्रकाशित करता है इस से ईश्वर को छोड़ कर और किसी की उपासना कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

मनो न्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । [illegible]निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर के [illegible] मन के [illegible] का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन पितॄणां च मन्मभिः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हम लोग (नाराशंसेन) पुरुषों के [illegible] प्रशंसनीय (स्तोमेन) स्तु-

[illegible] और ([illegible]) [illegible] करते [illegible] मनुष्यों के ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] करते हैं ॥ ५३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों [illegible] के लिये विद्या आदि गुणों से [illegible] करते हैं [illegible] विषयों को साक्षात्कार करते हैं [illegible] मनुष्यों को निरन्तर विद्या प्राप्त करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

[illegible] यजुर्वेदः । मनो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह मन कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ न॑ एतु॒ मनः॒ पुनः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे॑ । ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥५४॥

पदार्थः—(मनः) जो स्मरण कराने वाला चित्त (ज्योक्) निरन्तर (सूर्यम्) परमेश्वर सूर्यलोक वा प्राण को (दृशे) देखने वा (क्रत्वे) उत्तम विद्या वा उत्तम कर्मों की स्मृति वा (जीवसे) सौ वर्ष से अधिक जीने (च) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये है वह (नः) हम लोगों को (पुनः) बारम्बार जन्म २ में (आ) सब प्रकार से (एतु) प्राप्त हो ॥ ५४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उत्तम कर्मों के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि वा जन्म२ में उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें जिस से मनुष्यजन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम २ धर्मों का सेवन कर सकें ॥ ५४ ॥

पुनर्नः इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुन॑र्नः पि॒तरो॒ मनो॒ ददा॑तु॒ दैव्यो॒ जनः॑ । जी॒वं व्रातं॑ सचेमहि ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) उत्पादक वा अन्न शिक्षा वा विद्या को देकर रक्षा करने वाले पिता आदि लोग आप की शिक्षा से यह (दैव्यः) विद्वानों के बीच में उत्पन्न हुआ (जनः) विद्या वा धर्म से दूसरे के लिये उपकारों को प्रकट करने वाला विद्वान् पुरुष (नः) हम लोगों के लिये (पुनः) इस जन्म वा दूसरे जन्म में (मनः) धारणा करने वाली बुद्धि को (ददातु) देवे जिससे (जीवम्) ज्ञानसाधन युक्त जीवन वा (व्रातम्) सत्य बोलने आदि गुण समुदाय को (सचेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥ ५५ ॥

भावार्थः—विद्वान् माता पिता आचार्यों की शिक्षा के बिना मनुष्यों का जन्म सफल नहीं होता और मनुष्य भी उन शिक्षा के विना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने को समर्थ नहीं हो सकते इस से सब काल में विद्वान् माता पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा के बलयुक्त करें ॥ ५५ ॥

वयमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सोम शब्द से ईश्वर और ओषधियों के रसों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

व॒यꣳसो॑म व्र॒ते तव॒ मन॑स्त॒नूषु॒ बिभ्र॑तः । प्र॒जाव॑न्तः सचेमहि ॥५६॥

पदार्थः—हे (सोम) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर (तव) आपके (व्रते) सत्यभाषण आदि धर्मों को अनुष्ठान में वर्त्तमान हो के (तनूषु) बड़े२ सुखयुक्त शरीरों में (मनः) अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्ति को (बिभ्रतः) धारण करते हुए और (प्रजावन्तः) बहुत पुत्र आदि राज्य आदि धन वाले हो के हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ १ ॥ (तव) इस (सोम) सोमलता आदि ओषधियों के (व्रते) सत्य २ गुण ज्ञान से सेवन में (तनूषु) सुखयुक्त शरीरों में (मनः) चित्त की वृत्ति को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्रराज्य आदि धन वाले होकर (वयम्) हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥२॥५६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन सुखों को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मनुष्य नहीं ॥ ५६ ॥

एष त इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ए॒ष ते॑ रुद्र भा॒गः स॒ह स्वस्राम्बि॑कया॒ तं जु॑षस्व॒ स्वाहै॒ष ते॑ रुद्र भा॒ग आ॒खुस्ते॑ प॒शुः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलाने वाले विद्वान् जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) सेवन करने योग्य पदार्थ समूह है उसको तू (अम्बिकया) वेदवाणी वा (स्वस्रा) उत्तम विद्या वा क्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन कर तथा हे (रुद्र) विद्वान् ! जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) धर्म से सिद्ध अंश वा (स्वाहा) वेदवाणी है उसका सेवन कर और हे (रुद्र) विद्वान् ! जो (ते) तेरा (एषः)

यह (आतुः) खोदने योग्य शस्त्र वा (पशुः) भोग्यपदार्थ है (तम्) उस को (जु-षस्व) सेवन कर ॥ १ ॥ जो (एषः) यह (रुद्र) प्राण है (ते) जिसका (एषः) यह (भागः) भाग है जिस को (अम्बिकया) वाणी वा (स्वस्रा) विद्या क्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन करता वा जो (ते) जिस का (स्वाहा) सत्य वा-णीरूप (भागः) भाग है और जो इसके (आतुः) खोदने वाले पदार्थ वा (पशुः) दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं । जिसका यह (जुषस्व) सेवन करता है उसका सेवन सब मनुष्य सदा करें ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्द विद्या को पढ़ कर आनन्द को भोगता है वैसे विद्वान् भी विद्या को प्राप्त हो कर सुखी होता है । जैसे यह प्राण श्रेष्ठ शब्द विद्या से प्रिय आनन्द दायक होता है वैसे सुशिक्षित विद्वान् भी सब को सुख करने वाला होता है इन दो-नों के विना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥

अथ रुद्रमित्यस्य वन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराड् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में रुद्रशब्द से ईश्वर का उपदेश किया है ॥

अव॑ रु॒द्रम॑दीम॒ह्यव॑ दे॒वं त्र्य॑म्बकम् । यथा॑ नो॒ वस्य॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नः॒ श्रेय॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नो व्यवसा॒यया॑त् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हम लोग (त्र्यम्बकम्) तीनों काल में एक रस ज्ञानयुक्त (देवम्) देने वा (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले जगदीश्वर की उपासना कर के सब दुःखों को (अवादीमहि) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यथा) जैसे परमेश्वर (नः) हम लोगों को (वस्यसः) उत्तम २ वास करने वाले (अवकरत्) अच्छे प्रकार करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (श्रेयसः) अत्यन्त श्रेष्ठ (करत्) करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (व्यवसाययात्) निश्चय वाले करे वैसे सुखपूर्वक निवास कराने वा उत्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही को प्रार्थना करें ॥५८॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य ईश्वर की उपासना वा प्रार्थना के विना सब दुःखों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता । क्योंकि वही परमेश्वर सब सुख पूर्वक निवास वा उ-त्तम २ सत्य निश्चयों को कराता है इस से जैसी उस की आज्ञा है उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥ ५८ ॥

भेषजमसीत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । स्वराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखम्मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो आप (भेषजम्) शरीर अन्तःकरण इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोग नाश करने वाले (असि) हैं (भेषजम्) अविद्यादि क्लेशों को करने वाले (असि) हैं सो आप (नः) हम लोगों के (गवे) गौ आदि (अश्वाय) घोड़ा आदि (पुरुषाय) सब मनुष्य (मेषाय) मेढ़ा और (मेष्यै) भेड़ आदि की स्त्रियों के लिये (सुखम्) उत्तम २ सुखों को अच्छी प्रकार दीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—किसी मनुष्य का परमेश्वर की उपासना के बिना शरीर आत्मा और प्रजा का दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता इस से उस की स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने और ओषधियों के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु आदि के दुःखों को यत्न से निवृत्त कर के सुखों को सिद्ध करना उचित है ॥ ५१ ॥

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । रुद्रो देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥

पदार्थः—हम लोग जो (सुगन्धिम्) शुद्ध गन्धयुक्त (पुष्टिवर्धनम्) शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला (त्र्यम्बकम्) रुद्ररूप जगदीश्वर है उस की (यजामहे) निरन्तर स्तुति करें इस की कृपा से (उर्वारुकमिव) जैसे खर्बूजा फल पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के तुल्य होता है वैसे हम लोग भी (मृत्योः) प्राण वा शरीर के वियोग से (मुक्षीय) छूट जावें (अमृतात्) और मोक्षरूप सुख से (मा) श्रद्धारहित कभी न होवें तथा हम लोग (सुगन्धिम्) उत्तम गन्धयुक्त (पतिवेदनम्) रक्षा करने हारे स्वामी को देने वाले (त्र्यम्बकम्) सब के अध्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) निरन्तर सत्कार पूर्वक ध्यान करें और इस के अनुग्रह से (उर्वारुकमिव) जैसे खर्बूजा पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूटकर अमृत के समान मिष्ट होता है । वैसे हम लोग भी (इतः) इस शरीर से (मुक्षीय) छूट जावें (अमुतः) मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म फल से (मा) पृथक् न होवें ॥ ६० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़ कर किसी का पूजन न करें क्योंकि वेद से अविहित और दुःखरूप फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी की उपासना न करनी चाहिये जैसे खर्बूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पक कर समय के अनुसार लता से छूट कर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवें कभी मोक्ष की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न होवें और न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें जैसे व्यवहार के सुखों के लिये अन्न जल आदि की इच्छा करते हैं वैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्तधर्म, और मुक्ति होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें ॥ ६० ॥

एतत्त इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भुरिगास्तारपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥
अथ अगले मन्त्र में रुद्रशब्द से शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया है ॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) शत्रुओं को रुलाने वाले युद्ध विद्या में कुशल सेनाध्यक्ष विद्वान्! (अवततधन्वा) युद्ध के लिये विस्तार पूर्वक धनु को धारण करने (पिनाकावसः) पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र से शत्रुओं के बल को पीस के अपनी रक्षा करने (कृत्तिवासाः) चमड़े और कवचों के समान दृढ़ वस्त्रों के धारण करने (शिवः) सब सुखों के देने और (परः) उत्तम सामर्थ्य वाले शूरवीर पुरुष (मूजवतः) मूंज घास आदि युक्त पर्वत से दूसरे देश में शत्रुओं को (अतीहि) प्राप्त कीजिये (एतत्) जो यह (ते) आपका (अवसम्) रक्षण करना है (तेन) उस से (नः) हम लोगों की (अहिंसन्) हिंसा को छोड़ कर रक्षा करते हुए आप (अतीहि) सब प्रकार से हम लोगों का सत्कार कीजिये ॥ ६१ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को शत्रुओं से रहित हो कर राज्य को निष्कंटक करके सब अस्त्र शस्त्रों का संपादन कर के दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिस से दुष्ट शत्रु सुखी और सज्जन लोग दुःखी कदापि न होवें ॥ ६१ ॥

त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्य को कैसा आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर आप (यत्) जो (देवेषु) विद्वानों के वर्त्तमान में (त्र्यायुषम्) ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु वर्त्तता जो (जमदग्नेः) चक्षु आदि इन्द्रियों का (त्र्यायुषम्) शुद्धि बल और पराक्रम युक्त तीन गुण आयु और जो (कश्यपस्य) ईश्वर प्रेरित (त्र्यायुषम्) तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष से अधिक भी आयु विद्यमान है (तत्) उस इस शरीर आत्मा और समाज को आनन्द देने वाले (त्र्यायुषम्) तीनसौ वर्ष से अधिक आयु को (नः) हम लोगों को प्राप्त कीजिये ॥ ६२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में चक्षु सब इन्द्रियों का और परमेश्वर सब रचना करने हारों में उत्तम है ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये और (त्र्यायुषम्) इस पद की वारंवार आवृत्ति होने से तीनसौ वर्ष से अधिक चारसौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का ग्रहण किया है इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना कर के और अपना पुरुषार्थ करना उचित है। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्द पूर्वक तीनसौ वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को रहित सुख करने वाले विद्या विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त हो कर तीनसौ वा चारसौ वर्ष पर्यन्त सुख पूर्वक भोगें ॥ ६२ ॥

शिवोनामासीत्यस्य नारायण ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिग्जगती छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे के गुणों का उपदेश किया है ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः। निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! और उपदेश करने हारे विद्वान् जो आप (स्वधितिः) अविनाशी होने से वज्रमय (असि) हैं जिस (ते) आपका (शिवः) सुख स्वरूप विज्ञान का देने वाला (नाम) नाम (असि) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले (असि) हैं (ते) आप के लिये मेरा (नमः) सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु) वि-

विदित हो तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हिꣳसीः) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आप को (आयुषे) आयु के भोगने (अन्नाद्याय) अन्न आदि के भोगने (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम २ पुत्र आदि वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने (सुवीर्य्याय) उत्तम शरीर आत्मा को बल पराक्रम होने और (रायस्पोषाय) विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिये (वर्त्तयामि) वर्त्ताता और वर्त्तता हूं इस प्रकार वर्त्तने से सब दुःखों को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्यरूप से निश्चय कर के अन्तर्यामिरूप आप का आश्रय कर के सभों में वर्त्तता हूं ॥ ६३ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य मंगलमय सबकी पालना करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन के विना संसार वा परलोक के सुखों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं होता न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करना चाहिये जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है उस का सर्वत्र अनादर होता है इस से सब मनुष्यों को आस्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है ॥ ६३ ॥

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन, अग्नि के स्वभाव वा अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवी के भ्रमण का लक्षण, अग्नि शब्द से ईश्वर वा भौतिक अर्थ का प्रतिपादन, अग्निहोत्र के मंत्रों का प्रकाश, ईश्वर का उपस्थान, अग्नि का स्वरूप कथन, ईश्वर की प्रार्थना, उपासना वा इन दोनों का फल, ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन, सूर्य्य के किरणों के कार्य का वर्णन, निरन्तर उपासना, गायत्री मन्त्र के अर्थ का प्रतिपादन यज्ञ के फल का प्रकाश, भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन, गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण, इन्द्र और पवनों के कार्य का वर्णन, पुरुषार्थ का आवश्यक करना, पापों से निवृत्त होना, यज्ञ की समाप्ति आवश्यक करनी। मूल्य से लेने देने आदि व्यवहार करना, विद्वान् वा ऋतुओं के स्वभाव का वर्णन चार, प्रकार के अन्तःकरण का लक्षण, रुद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन, तीनसौ वर्ष पर्यन्त आयु का संपादन करना और धर्म से आयु आदि पदार्थों का ग्रहण का वर्णन किया है इस से दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इस तीसरे अध्याय के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥

फिर इस जल समूह से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

म॒हीनां॒ पयो॑ऽसि वर्चो॒दा अ॑सि॒ वर्चो॑ मे देहि । वृ॒त्रस्या॑सि क॒नीन॑कश्चक्षु॒र्दा अ॑सि॒ चक्षु॑र्मे देहि ॥ ३ ॥

पदार्थः- जो यह (महीनाम्) पृथिवी आदि के (पयः) जल रस का निमि (असि) है (वर्चोदाः) दीप्ति का देने वाला (असि) है जो (मे) मेरे लिये (वर्चः) प्रकाश को (देहि) देता है जो (वृत्रस्य) मेघ का (कनीनकः) प्रकाश करने वाल (असि) है वा (चक्षुर्दाः) नेत्र के व्यवहार का सिद्ध करने वाला (असि) है व सूर्य (मे) मेरे लिये (चक्षुः) नेत्रों के व्यवहार को (देहि) देता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जानना उचित है जिस सूर्य प्रकाश के विना वर्षा की उ त्पत्ति वा नेत्रों का व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होता । जिसने इस सूर्यलोक को रच है उस परमेश्वर को कोटि असंख्यात धन्यवाद देने रहैं ॥ ३ ॥

चित्पतिर्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

जिस ने सूर्य आदि सब जगत् को बनाया है वह परमात्मा हमारे लिये क्या २ करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

चि॒त्पति॑र्मा पुनातु वा॒क्पति॑र्मा पुनातु दे॒वो मा॑ सवि॒ता पु॑नात्वच्छिद्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । तस्य॑ ते पवित्रपते प॒वित्र॑पूतस्य॒ यत्का॑मः पुने॒ तच्छ॑केयम् ॥ ४ ॥

पदार्थः-हे (पवित्रपते) पवित्रता के पालन करने हारे परमेश्वर ! (चित्पतिः) वि ज्ञान के स्वामी (वाक्पतिः) वाणी को निर्मल के और (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले (देवः) दिव्यस्वरूप आप (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले (अच्छि द्रेण) अविनाशी विज्ञान वा (सूर्यस्य) सूर्य और प्राण के (रश्मिभिः) प्रकाश और गमनागमनों से (मा) मुझ और मेरे चित्त को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझ और मेरी वाणी को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझे तथा मेरी प्रजा को (पु नातु) पवित्र कीजिये जिस (पवित्रपूतस्य) शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान आदि गुणों से पवित्र (ते) आप की कृपा से (यत्कामः) जिस उत्तम कामनायुक्त मैं (पुने) पवित्र होता हूं । जिस (ते) आपकी उपासना से (तत्) उस अत्युत्तम कर्म के करने को (शकेयम्) समर्थ होऊं उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जिस वेद के जानने वा पालन करने वाले परमेश्वर ने वेदविद्या, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य आदि शुद्धि करने वाले पदार्थ प्रकाशित किये हैं उसकी उपासना तथा पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्यों को पूर्ण पावनता और पवित्रता को संपादन अवश्य करना चाहिये ॥ ४ ॥

आ वो देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यों को किस २ प्रकार का पुरुषार्थ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ वो देवास ईमहे वामं प्रयत्यध्वरे। आ वो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (देवासः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगो! जैसे हम लोग (वः) तुम को (प्रयति) उत्तम गुण (अध्वरे) हिंसा करने अयोग्य यज्ञ के अनुष्ठान में (वः) तुम्हारे (वामम्) प्रशंसनीय गुण समूह को (ईमहे) अच्छे प्रकार याचना करते हैं। हे (देवासः) विद्वान् लोगो! जैसे हम लोग इस संसार में आप लोगों से (यज्ञियासः) यज्ञ को सिद्ध करने योग्य (आशिषः) इच्छाओं को (आ हवामहे) अच्छे प्रकार स्वीकार कर सकें वैसे ही हम लोगों के लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के प्रसङ्ग से उत्तम २ विद्याओं का संपादन कर अपनी इच्छाओं को पूर्ण कर के इन विद्वानों का संग और सेवा सदा करना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वाहायज्ञमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किस २ प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳪ स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो! जैसे मैं (स्वाहा) वेदोक्त (स्वाहा) उत्तम शिक्षा सहित (स्वाहा) विद्याओं का प्रकाश (स्वाहा) सत्य और सब जीवों के कल्याण करने हारी वाणी और (स्वाहा) अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई उत्तम क्रिया से (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षात्) आकाश और (वातात्) वायु की शुद्धि कर के (द्यावापृथि-

वीभ्याम्) शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ (मनसः) विज्ञान और ठीक २ क्रि से (यज्ञम्) यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुरुषार्थ का (आरभे) नित्य आरम्भ करत हूं वैसे तुम लोग भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों ने जो वेद की रीति और मन वचन कर्म से अनुष्ठान कि हुआ यज्ञ है यह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर के सब सुखी करता है ॥ ६ ॥

आकूत्यै प्रयुज इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यबृहस्पतयो देवताः । पूर्वार्धस्य पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । आपो देवीरित्युत्तरस्यार्च्चो बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस लिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा । आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशंभुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (आकूत्यै) उत्साह (प्रयुजे) उत्तम २ धर्मयुक्त क्रियाओं (अग्नये) अग्नि के प्रदीपन (स्वाहा) वेदवाणी के प्रचार (सरस्वत्यै) विज्ञानयुक्त वाणी (पूष्णे) पुष्टि करने (बृहस्पतये) बड़े २ अधिपतियों के होने (अग्नये) बिजुली की विद्या के ग्रहण (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने से विद्या (मेधायै) बुद्धि की उन्नति (मनसे) विज्ञान की वृद्धि (दीक्षायै) धर्म नियम और आचरण की रीति (तपसे) प्रताप (अग्नये) जाठराग्नि के शोधन (स्वाहा) उत्तम स्तुतियुक्त वाणी (बृहतीः) महागुण सहित (विश्वशंभुवः) सब के लिये सुख उत्पन्न कराने वाले (देवीः) दिव्यगुण सम्पन्न (आपः) प्राण वा जल से (स्वाहा) सत्य भाषण (द्यावापृथिवी) भूमि और प्रकाश की शुद्धि के अर्थ (उरो) बहुत सुख सम्पादक (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष में रहने वाले पदार्थों को शुद्ध और जिस (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा वाणी से यज्ञ सिद्ध होता है उन सबों को (हविषा) सत्य और प्रेमभाव से (विधेम) सिद्ध करें वैसे तुम भी किया करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—यज्ञ के अनुष्ठान से विना उत्साह बुद्धि सत्यवाणी धर्माचरण की रीति तप धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इन के वि

कोई भी मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर के सब के लिये सब आनन्द करने चहिये ॥७॥

विश्वोदेवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्प्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सुख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—जैसे (विश्वः) सब (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) सब को प्राप्त या (देवस्य) सब का प्रकाश करने वाले परमेश्वर के साथ (सख्यम्) मित्रता और गुण कर्म समूह को (वुरीत) स्वीकार और (राये) धन की प्राप्ति के लिये (इषुध्यति) बाणों को धारण करे यह (द्युम्नम्) धन को (वृणीत) स्वीकार करे वैसे हे मनुष्य! इस सब का अनुष्ठान करके (स्वाहा) सत्क्रिया से तू भी (पुष्यसे) पुष्ट हो॥८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—सब मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना कर के परस्पर मित्रपन को सम्पादन कर युद्ध में दुष्टों को जीत के राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होकर सुखी रहना चाहिये ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोरित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । विद्वान् देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि कैसे करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः । शर्म्मासि शर्म्म मे यच्छ नमस्तेऽअस्तु मा मा हिᳬसीः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप जो मैं (ऋक्सामयोः) ऋग्वेद और सामवेद के पढ़ने के पीछे (उदृचः) जिस में अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है (अस्य) इस (यज्ञस्य) शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के संबन्धी (वाम्) ये (शिल्पे) मत या प्रसिद्ध क्रियासे सिद्ध की हुई कारीगरी विद्याओं को (आरभे) आरम्भ करता हूं तथा जो (मा) मेरी (पातम्) रक्षा करने हैं (ते) वे (स्थः) हैं उनको विद्वानों के सकाश से ग्रहण करता हूं । हे विद्वन्! मनुष्य (ते) उस तेरे लिये (मे) मेरा (नमः) सर्वादि सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो तथा तुम (मा) मुझ को चलायमान मत करो और (यत्) जो (शर्म) सुख (असि) है उस (शर्म) सुख को (मे) मेरे लिये (यच्छ) देओ ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सकाश से वेदों को पढ़कर शिल्प विद्या वा हस्तक्रिया को साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिरूप कार्यों को सिद्ध करके सुखों की उन्नति करें ॥ ९ ॥

ऊर्गसीत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । यज्ञो देवता । कृष्णोत्यन्तस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उच्छ्रयस्वेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वह शिल्पविद्या यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि । उच्छ्रयस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्यंहस आस्य यज्ञस्योदृचः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) प्रकाशनीय विद्याओं का प्रचार करने वाले विद्वान् मनुष्य तू जो (आङ्गिरसि) अग्नि आदि पदार्थों से सिद्ध की हुई (ऊर्णम्रदाः) आच्छादन का प्रकाश वा (ऊर्क्) पराक्रम तथा अन्नादि की करने वाली शिल्पविद्या (असि) है अथवा जो (ऊर्जम्) पराक्रम वा अन्नादि को धारण करती (असि) है जो (सोमस्य) उत्पन्न पदार्थ समूह का (नीविः) संवरण करने वाली (असि) है जो (विष्णोः) शिल्पविद्या में व्यापक बुद्धि (यजमानस्य) शिल्पक्रिया को जानने वाली (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य युक्त मनुष्य का (योनिः) निमित्त (असि) है जो (अस्य) इस (उदृचः) ऋचाओं के प्रत्यक्ष करने वाले (यज्ञस्य) शिल्पक्रिया साध्य यज्ञ का (शर्म) सुख कराने वाली (असि) है उस को (मयि) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मुझ में (आ धेहि) अच्छे प्रकार धारण कर (सुसस्याः) उत्तम २ धान्य उत्पन्न करने वा (कृषीः) खेती वा खींचने वाली क्रियाओं को (कृधि) सिद्ध कर (ऊर्ध्वः) ऊपरस्थित होने वाला (मा) मुझको (उच्छ्रयस्व) उत्तम धान्य वाले खेतों का सेवन कराओ और (अंहसः) पाप वा दुःखों से (पाहि) रक्षा कर जो विमान आदि यानों और यज्ञ में (वनस्पते) वृक्षकी शाखा ऊंची स्थापन की जाती उस को भी (उच्छ्रयस्व) उपयोग में लाओ ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से साक्षात्कार और प्रचार करके सब मनुष्यों को समृद्धि युक्त करना चाहिये ॥ १० ॥

व्रतं कृणुतेत्यस्याङ्गिरस ऋषयः । अग्निर्देवता । पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः गान्धारः स्वरः । ये देवा इत्युत्तरस्याप्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब मनुष्य यज्ञ से अग्नि को जान कर उस से क्या २ उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः। दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे। ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा॥ ११॥

पदार्थः—हम लोग जो (ब्रह्म) ब्रह्मपदवाच्य (अग्निः) अग्नि नाम से प्रसिद्ध (असत्) है जो (यज्ञः) अग्निसंज्ञक और जो (वनस्पतिः) वनों का पालन करनेवाला यज्ञ (अग्निः) अग्निनामक है उस की उपासना कर वा उस से उपकार लेकर (अभिष्टये) इष्ट सिद्धि के लिये जो (सुतीर्था) जिस से अत्युत्तम दुःखों से तारने वाले वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं उस (सुमृडीकाम्) उत्तम सुख युक्त (वर्चोधाम्) विद्या वा दीप्ति को धारण करने तथा (दैवीम्) दिव्यगुणसंपन्न (धियम्) बुद्धि वा क्रिया को (मनामहे) जानें (ये) जो (दक्षक्रतवः) शरीर आत्मा के बल प्रज्ञा वा कर्म से युक्त (मनोजाताः) विज्ञान से उत्पन्न हुए (मनोयुजः) सत् असत् के ज्ञान से युक्त (देवाः) विद्वान् लोग (वशे) प्रकाशयुक्त कर्म में वर्त्तमान हैं वा जिन से (स्वाहा) विद्यायुक्त वाणी प्राप्त होती है (तेभ्यः) उन से पूर्वोक्त प्रज्ञा की (मनामहे) याचना करते हैं (ते) वे (नः) हम लोगों को (अवन्तु) विद्या उत्तम क्रिया तथा शिक्षा आदिकों में प्रवेश और (नः) हम लोगों की निरन्तर (पान्तु) रक्षा करें॥ ११॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस की अग्नि संज्ञा है उस ब्रह्म को जान और उस की उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करना चाहिये। विद्वान् लोग जिस बुद्धि से यज्ञ को सिद्ध करते हैं उस से शिल्प विद्या कारक यज्ञों को सिद्ध करके विद्वानों के सङ्ग से विद्या को प्राप्त हो के स्वतन्त्र व्यवहार में सदा रहना चाहिये। क्योंकि बुद्धि के विना कोई भी मनुष्य सुख को नहीं बढ़ा सकता। इस से विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों के लिये ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या की बुद्धि की शिक्षा करके निरन्तर रक्षा करें। और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर वा विद्वानों के उत्तम २ प्रियकर्मों का आचरण किया करें॥ ११॥

श्वात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवताः। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

इस का अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने त्वमित्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।

फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि। रक्षा णो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि॥ १४॥

पदार्थः—(अग्ने) जो अग्नि (प्रबुधे) जगने के समय (सुजागृहि) अच्छे प्रकार जगाता वा जिस से (वयम्) जग के कर्मानुष्ठान करने वाले हम लोग (सुमन्दिषीमहि) आनन्द पूर्वक सोने हैं जो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित हो के (नः) प्रमादरहित हम लोगों की (रक्ष) रक्षा तथा प्रमाद सहितों को नष्ट करता और जो (नः) हम लोगों के साथ (पुनः) बार २ इसी प्रकार (कृधि) व्यवहार करता है उस को युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये॥ १४॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि सोने, जागने, जीने, तथा मरने का हेतु है उस का युक्ति से सेवन करना चाहिये॥ १४॥

पुनर्मन इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः अग्निर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहतीछन्दः। मध्यमः स्वरः॥

जीव अग्नि वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म में प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्। वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्॥ १५॥

पदार्थः—जिस के सम्बन्ध वा कृपा से (मे) मुझ को जो (मनः) विज्ञानसाधक मन (आयुः) उमर (पुनः) फिर २ (आगन्) प्राप्त होता (मे) मुझ को (प्राणः) शरीर का आधार प्राण (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होना (आत्मा) सब में व्यापक सब के भीतर की सब बातों को जानने वाले परमात्मा विज्ञान (आगन्) प्राप्त होना (मे) मुझ को (चक्षुः) देखने के लिये नेत्र (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होने और (श्रोत्रम्) शब्द को ग्रहण करने वाले कान (आगन्) प्राप्त होते हैं वह (अदब्धः) हिंसा करने अयोग्य (तनूपाः) शरीर वा आत्मा की रक्षा करने और (वैश्वानरः) शरीर को प्राप्त होने वाला (अग्निः) अग्नि वा विश्व को प्राप्त होने वाला परमेश्वर (नः) हम लोगों को (अवद्यात्) निन्दित (दुरितात्) पाप से उत्पन्न हुए दुःख वा दुष्ट कर्मों से (पातु) पालन करता है॥ १५॥

भावार्थः— इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जब जीव सोने या मरण आदि व्य- हारों को प्राप्त होते हैं तब जो २ मन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान हो कर फि जगने या जन्मान्तर में जिन कार्य्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं वे इन्द्रिय जि विद्युत् अग्नि आदि के सम्बन्ध परमेश्वर की सत्ता या व्यवस्था से शरीर वाले हो कर कार्य्य करने को समर्थ होते हैं । मनुष्यों को योग्य है कि जो अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सब की रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पापरूप कर्मों से अलग कर धर्म में प्रवृत्त कर वारंवार मनुष्य जन्म को प्राप्त कराकर दुराचार वा दुःखों से पृथक् कर के इस लोक वा परलोक के सुखों को प्राप्त कराता है वह क्यों न उपयुक्त और उपास्य होना चाहिये ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्वम॑ग्ने व्र॒त॒पा अ॑सि दे॒व आ मर्त्ये॒ष्वा । त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यो॑ रा॒स्वेय॑त्सो॒मा भूयो॑ भर दे॒वो नः॑ सवि॒ता वसो॑र्दा॒ता वस्व॑दात् ॥१६॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य के देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (मर्त्येषु) मनुष्यों में (व्रतपाः) सत्य धर्माचरण की रक्षा (सविता) सब ज- गत् को उत्पन्न करने (यज्ञेषु) सत्कार वा उपासना आदि में (ईड्यः) स्तुति के योग्य (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन के (दाता) दान करने वाले (वसु) धन को (अदात्) देते हैं सो (इयत्) प्राप्त करते हुए आप (भूयः) वारंवार अत्य- न्त धन (आरास्व) दीजिये (आभर) सब सुखों से पोषण कीजिये ॥ १ ॥ (त्वम्) जो (अग्ने) अग्नि (मर्त्येषु) मरण धर्म वाले मनुष्यों के कार्यों में (व्रतपाः) नियमाचरण का पालन (देवः) प्रकाश करने (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (ईड्यः) खोजने योग्य (सोम) ऐश्वर्य्य को देने (सविता) जगत् को प्रेरणा करने (देवः) प्रकाशमान अग्नि है वह (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन को (दाता) प्राप्त (इयत्) कराता हुआ (भूयः) अत्यन्त (वसु) धन को (अदात्) देता और (आ- रास्व) धन को देने का निमित्त हो के (आभर) सब प्रकार के सुखों को धारण क- रता है ॥ २ ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यों को उचित है कि जैसे स- सब जगत् को उत्पन्न करने और सकल सुखों के देने वाले जगदीश्वर ही

की उपासना को कर के सुखी रहें इसी प्रकार कार्य्य सिद्धि के लिये अग्नि को संप्रयुक्त कर के सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १६ ॥

एषा त इत्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
इन को सेवन कर के मनुष्यों को कर्म करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ। जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (शुक्र) वीर्य्य पराक्रम वाले विद्वान् मनुष्य ! (ते) तेरा जो (विष्णवे) परमेश्वर वा यज्ञ के लिये तैंने जिस को (धृता) धारण किया है (तया) उस से तू (जूः) ज्ञानी वा वेग वाला होके (एतत्) इस (वर्चः) विज्ञान और तेजयुक्त (सम्भव) संयम हो अच्छे प्रकार विज्ञान करने के लिये (तनूः) शरीर (असि) है उस से तू (भ्राजम्) प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त और (धृता) धारण किये (मनसा) विज्ञान से पुरुषार्थ को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन कर के विज्ञान युक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्य बल को बढ़ाकर यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें ॥ १७ ॥

तस्यास्त इत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युद्देवते । स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।
यह वाणी और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा । शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसवसः) सत्यैश्वर्य्य युक्त वा जगत् के निमित्त कारण रूप (ते) आपके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में आपकी कृपा से जो (स्वाहा) वाणी वा बिजुली है (तस्याः) उन दोनों के सकाश से विचार कर के युक्त मैं जो (शुक्रम्) शुद्ध (असि) है (चन्द्रम्) आल्हाद कारक (असि) है (अमृतम्) अमृतात्मा के व्यवहार वा परमार्थ से सुख को सिद्ध करने वाला (असि) है और (वैश्वदेवम्) सब देव अर्थात् विद्वानों को सुख देने वाला (असि) है (तत्) उस (यंत्रम्) संकोचन विकाशन चालन भ्रमण करने वाले यंत्र को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस सृष्टि में विद्या से कला यंत्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का ग्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १८ ॥

चिदसीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली किस प्रकार की हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

चिद॑सि म॒नासि॒ धीर॑सि॒ दक्षि॑णासि क्ष॒त्रिया॑सि य॒ज्ञिया॒स्यदि॑तिरस्युभय॒तःशी॒र्ष्णी। सा नः॒ सुप्रा॑ची सुप्र॑तीच्येधि मि॒त्रस्त्वा॑ प॒दि ब॑ध्नीतां पू॒षाऽध्व॑नस्पा॒त्विन्द्रा॒याध्य॑क्षाय ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसवसः) सत्य ऐश्वर्य्य युक्त (ते) आप के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में जो (चित्) विद्या व्यवहार को चिताने वाली (असि) है जो (मनाः) ज्ञान साधन कराने हारी (असि) है जो (धीः) प्रज्ञा और कर्म को प्राप्त करने वाली (असि) है (दक्षिणा) विज्ञान विजय को प्राप्त करने (क्षत्रिया) राज्य के पुत्र के समान वर्त्ताने हारी (असि) है जो (यज्ञिया) यज्ञ को कराने योग्य (असि) है जो (उभयतःशीर्ष्णी) दोनों प्रकार से शिर के समान उत्तम गुण युक्त और (अदितिः) नाश रहित वाणी वा बिजुली (असि) है वह (नः) हम लोगों के लिये (सुप्राची) पूर्व काल और (सुप्रतीची) पश्चिम काल में सुख देने हारी (एधि) हो जो (पूषा) पुष्टि करने हारा (मित्रः) सब का मित्र हो कर मनुष्यपन के लिये उस वाणी और बिजुली को (पदि) प्राप्ति योग्य उत्तम व्यवहार में (अध्यक्षाय) अच्छे प्रकार व्यवहार को देखने (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य वाले परमात्मा अध्यक्ष और श्रेष्ठ व्यवहार के लिये (बध्नीताम्) बन्धन युक्त करे सो आप (अध्वनः) व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करने वाले मार्ग के मध्य में (नः) हम लोगों की निरन्तर (पातु) रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है। और पूर्व मन्त्र से (ते) (सत्यसवसः) (प्रसवे) इन तीन पदों की अनुवृत्ति भी आती है मनुष्यों को जो यथावत् अच्छे प्रकार की रक्षा करके सब से उत्तम वाणी वा बिजुली बनाती है वही भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल में सुखों को कराने वाली है ऐसा जानना चाहिये जो कोई मनुष्य प्रीति से परोपकार सत्यभाषण और उत्तम कार्यों में आज्ञा के पालन के लिये सब कर्मों और उत्तम विद्या को ग्रहण करता है वही सब की रक्षा कर सकता है ॥ १९ ॥

अनु त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। पूर्वार्द्धस्य आर्षी जगती छन्दः।
निषादः स्वरः। उत्तरार्द्धस्य भुरिगानुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले
मन्त्र में किया है॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा
सयूथ्यः। सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमं रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु
स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य! जैसे (रुद्रः) परमेश्वर वा ४४ चवालीस वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य्याश्रम सेवन से पूर्ण विद्या युक्त विद्वान् (त्वा) तुझ को जिस वाणी वा बिजुली तथा (सोमम्) उत्तम पदार्थ समूह और (स्वस्ति) सुख को (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (आवर्त्तयतु) प्रवृत्त करे और जो (देवि) विद्या प्रकाश युक्त वाणी और दिव्यगुणयुक्त बिजुली (देवम्) उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होती है वैसे उस को तू (पुनः) बार २ (अच्छ) अच्छे प्रकार (इहि) प्राप्त हो और इस को ग्रहण करने के लिये (त्वा) तुझ को (माता) उत्पन्न करने वाली जननी (अनुमन्यताम्) अनुमति अर्थात् आज्ञा देवें इसी प्रकार (पिता) उत्पन्न करने वाला जनक (सगर्भ्यः) तुल्य गर्भ में होने वाला (भ्राता) भाई और (सयूथ्यः) समूह में रहने वाला (सखा) मित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवें उसको तू (पुनरेहि) अत्यन्त पुरुषार्थ कर के बारंबार प्राप्त हो॥ २०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-प्रश्न-मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये? (उत्तर) जैसे धर्मात्मा विद्वान् माता पिता भाई मित्र आदि सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हों। वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तें वैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिये॥ २०॥

वस्व्यसीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। विराडार्षी बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः॥

फिर वह वाणी या बिजुली किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले
मन्त्र में किया है॥

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि। बृहस्पतिष्ट्वा
सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके॥ २१॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे जो (वस्वी) अग्नि आदि पिता सम्बन्धी जिस की सेवा २४ चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करने वालों ने की हुई (असि) है जो (अदितिः) प्रकाश कारक (असि) है जो (रुद्रा) प्राण वायु सम्बन्धवाली और जिस को ४४ चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे प्राप्त हुए हों वैसी (असि) है जो (आदित्या) सूर्यवत् सब विद्याओं की प्रकाश करने वाली जिस का ग्रहण ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी (असि) है जो (चन्द्रा) आह्लाद करने वाली (असि) है जिसको (बृहस्पतिः) सर्वोत्तम (रुद्रैः) दुष्टों को रुलाने वाला परमेश्वर वा विद्वान् (सुम्ने) सुख में (रण्वातु) रमण युक्त करता और जिस (वसुभिः) पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा बिजुली की (आचके) निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिस की मैं इच्छा करता हूं वैसे तू भी (त्वा) उस को (रण्वातु) रमणयुक्त वा इस को सिद्ध करने की इच्छा कर॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे वाणी बिजुली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्त्तमान हुए अनेक व्यवहार की सिद्धि के हेतु है और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्म सेवन पूर्वक होके विद्वानों ने की हो वैसी वाणी और बिजुली मनुष्यों को विज्ञान पूर्वक क्रियाओं से संप्रयोग की हुई बहुत सुखों के करने वाली होती है ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अदि॑त्यास्त्वा मू॒र्द्धन्ना जि॑घर्मि देव॒यज॑ने पृथि॒व्या इडा॑यास्प॒दम॑सि घृ॒तव॒त् स्वाहा॑ । अ॒स्मे र॑मस्वा॒स्मे ते॒ बन्धु॒स्त्वे रायो॒ मे रायो॒ मा व॒यꣳ रा॑यस्पो॒षेण॒ वि यौ॑ष्म॒ तोतो॒ रायः॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जैसे (देवयजने) विद्वानों के यजन वा दान में हम (अदित्याः) अन्तरिक्ष (पृथिव्याः) भूमि और (इडायाः) वाणी को (स्वाहा) अच्छे प्रकार यज्ञ करने वाली क्रिया के मध्य जो (मूर्द्धन्) सब के ऊपर वर्त्तमान (घृतवत्) पुष्टि करने वाले घृत के तुल्य (पदम्) जानने वा प्राप्त होने योग्य पदार्थ (असि) है वा जिस को मैं (जिघर्मि) प्रदीप्त करता हूं वैसे (त्वा) उस को प्रदीप्त कर और जो (अस्मे) हम लोगों में विभूति रमण करती है वह तुम लोगों में भी (रमस्व) रमण करे जिसको मैं रमण करता हूं उस को तू भी (रमस्व) रमण करा जो (अस्मे) हम लोगों का (बन्धुः) भाई है वह (ते) तेरा भी हो जो (रायः) विद्यादि धन

समूह (त्वे) तुझ में है वह (मे) मुझ में भी हो, जो (तोतः) जानने प्राप्त करने योग्य (रायः) विद्या धन मुझ में है सो तुझ में भी हो (रायः) तुम्हारी और हमारी समृद्धि हैं वे सब के सुख के लिये हों इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम हम और सब लोग (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि से कभी (मा वियौष्म) अलग न होवें ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को सत्य विद्या धर्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिल्पविद्या से संप्रयोग की हुई बिजुली आदि विद्या को सब मनुष्यों के लिये उपदेश वा ग्रहण और सुख दुःख की व्यवस्था को भी तुल्य ही जान के सब ऐश्वर्य को परोपकार में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कभी न करना चाहिये कि जिस से किसी की विद्या धन आदि ऐश्वर्य की हानि होवे ॥ २२ ॥

समख्ये इत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । आस्तारपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समख्ये देव्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा मा म आयुः प्र-
मोषीर्मो अहन्तवं वीरं विदेय तवं देवि संदृशि ॥ २३ ॥

पदार्थः–हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (दक्षिणया) ज्ञान साधक अज्ञान नाशक (उरुचक्षसा) बहुत प्रकट वचन वा दर्शन युक्त (देव्या) देदीप्यमान (धिया) प्रज्ञा वा कर्म से (तव) उस (देवि) सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त, वाणी वा बिजुली के (संदृशि) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार में जीवन को (समख्ये) कथन से प्रकट करता हूं वह (मे) मेरे (आयुः) जीवन को (मा प्रमोषीः) नाश न करे उस को मैं अविद्या से (मो) नष्ट न करूं (तव) हे सब के मित्र ! अन्याय से आप के (वीरम्) शूरवीर को (मा विदेय) प्राप्त न होऊं वैसे ही तू भी पूर्वोक्त सब कार के अन्याय से मेरे शूरवीरों को प्राप्त मत हो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को योग्य है कि शुद्ध कर्म वा प्रज्ञा से वाणी वा बिजुली की विद्या को ग्रहण, उमर को बढ़ा और विद्यादि उत्तम २ गुणों में अपने सन्तान और वीरों को सम्पादन करके सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

एतन्त इत्यस्य वत्स ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
अन्त्यस्य दशाक्षरस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किस के प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करने हारा विद्वानों को पूछे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाᳬ साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतात् । आस्माकोऽसि शुक्रस्ते गृह्यो विचितस्त्वा वि चिन्वन्तु ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू कौन इस यज्ञ का (गायत्रः) वेदस्थ गायत्री छ युक्त मन्त्रों के समूहों से प्रतिपादन (भागः) सेवने योग्य भाग है (इति) इस प्रक विद्वान् से पूछ जैसे यह विद्वान् (ते) तुझ को उस यज्ञ का यह प्रत्यक्ष भा है (इति) इसी प्रकार से (सोमाय) पदार्थ विद्या सम्पादन करने वाले (मे) मे लिये (ब्रूतात्) कहे तू कौन इस यज्ञ का (त्रैष्टुभः) त्रिष्टुप्छन्द से प्रतिपादि (भागः) भाग है (इति) इसी प्रकार विद्वान् से पूछ जैसे यह (ते) तुझ को उ यज्ञ का (एषः) यह भाग है (इति) इसी प्रकार प्रत्यक्षता से समाधान (सोमाय उत्तम रस के सम्पादन करने वाले (मे) मेरे लिये (ब्रूतात्) कहे । तू कौन इस यज्ञ क (जागतः) जगती छन्द से कथित (भागः) अंश है (इति) इस प्रकार आप्त पूछ जैसे यह (ते) तुझ को उस यज्ञ का (एषः) यह प्रसिद्ध भाग है (इति) इस प्रकार (सोमाय) पदार्थ विद्या को सम्पादन करने वाले (मे) मेरे लिये उत्तर (ब्रू तात्) कहे जैसे आप (छन्दोनामानाम्) उष्णिक् आदि छन्दों के मध्य में कहे हु यज्ञ के उपदेश में (साम्राज्यम्) भले प्रकार राज्य को (गच्छ) प्राप्त हों (इति) इस प्रकार (सोमाय) ऐश्वर्य युक्त (मे) मेरे लिये सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने क उपाय (ब्रूतात्) कहिये और जिस कारण आप (आस्माकः) हम लोगों को (शुक्र पवित्र करने वाले उपदेशक (असि) हैं वैसे मैं (ते) आप के (गृह्यः) ग्रहण कर योग्य (विचितः) उत्तम २ धनादि द्रव्य और गुणों से संयुक्त शिष्य हूं । आप मु को सब गुणों से बढ़ाइये इस कारण मैं (त्वा) आप को वृद्धि युक्त करता हूं । औ सब मनुष्य (त्वा) आप वा इस यज्ञ तथा मुझ को (विचिन्वन्तु) वृद्धियुक्त करें ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-मनुष्य लोग विद्वानों से पूछ क सब विद्याओं का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओं का यथावत् ग्रहण करा दें । परस्पर अनुग्रह करने वा कराने से सब वृद्धियों को प्राप्त होकर विद्या और च क्रवर्त्ति आदि राज्य का सेवन करें ॥ २४ ॥

भि त्यमित्यस्य वत्स ऋषिः। सविता देवता। पूर्वस्य निचृद् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। प्रजाभ्य इत्यस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी मंत्र में ईश्वर सभापति और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है।

अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः। प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥ २५॥

पदार्थः—मैं (यस्य) जिस सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर धार्मिक सभापति और प्रजाजन के (सवीमनि) उत्पन्न हुए संसार में (ऊर्ध्वा) उत्तम (अमतिः) रूप (भाः) प्रकाशमान (अदिद्युतत्) प्रकाशित हुआ है जिस की (कृपा) करुणा (स्वः) सुख को करती है (हिरण्यपाणिः) जिस ने सूर्य्यादि ज्योति व्यवहार में उत्तम गुण कर्मों को युक्त किया हो (सुक्रतुः) जिस उत्तम प्रज्ञा वा कर्म युक्त ईश्वर सभा स्वामी और प्रजाजन ने (स्वः) सूर्य और सुख को (अमिमीत) स्थापित किया हो (त्यम्) उस (ओण्योः) द्यावापृथिवी वा (सवितारम्) अग्नि आदि को उत्पन्न और सम्प्रयोग करने तथा (कविक्रतुम्) सर्वज्ञ वा क्रांत दर्शन (रत्नधाम्) रमणीय रत्नों को धारण करने (सत्यसवम्) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (प्रियम्) प्रीतिकारक (मतिम्) वेदादि शास्त्र वा विद्वानों के मानने योग्य (कविम्) वेदविद्या का उपदेश करने तथा (देवम्) सुख देने वाले परमेश्वर सभाध्यक्ष और प्रजा जन का (अर्चामि) पूजन करता हूं वा जिस (त्वा) आप को (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई सृष्टि से पूजित करता हूं उस आप की सृष्टि में (प्रजाः) मनुष्य आदि (अनुप्राणन्तु) आयु का भोग करें (त्वम्) और आप कृपा करके (प्रजाः) प्रजा के ऊपर जीवों के अनुकूल (अनुप्राणिहि) अनुग्रह कीजिये॥ २५॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करने वाले निराकार सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन समूह ही का सत्कार करना चाहिये उन से भिन्न और किसी का नहीं। विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा पुरुषों के सुख के लिये इस परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन के सत्कार का उपदेश नित्य करें जिससे सब मनुष्य उनकी आज्ञा के अनुकूल सदा वर्त्तें

रहें और जैसे प्राण में सब जीवों की प्रीति होती है वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर आदि में
भी अत्यन्त प्रेम कर ॥ २५ ॥

शुक्रं त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

मनुष्यों को क्या २ साधनों करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रञ्चन्द्रेणामृतममृतेन । सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—जैसे (सग्मे) पृथिवी के साथ वर्त्तमान यज्ञ में (तपसः) प्रताप यु
अग्नि वा तपस्वी अर्थात् धर्मात्मा विद्वान् का (तनूः) शरीर (असि) है उस को वि
रूपविद्या वा सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ (पशुना) विक्रय किये हुए गौ आदि प
ओं करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके (प्रजापतेः) प्रजा के पालन हेतु सू
का (वर्णः) स्वीकार करने योग्य तेज (क्रीयसे) क्रय होता है उस (सहस्रपोषम्)
संख्यात पुष्टि को प्राप्त होके मैं (पुषेयम्) पुष्ट होऊं हे विद्वान् मनुष्य ! जो (ते) आ
पको (गोः) पृथिवी के राज्य के सकाश से (चन्द्राणि) सुवर्ण आदि धातु प्राप्त
वे (अस्मे) हम लोगों के लिये भी हों जैसे मैं (परमेण) उत्तम (शुक्रेण) शुद्ध भा
से (शुक्रम्) शुद्धि कारक यज्ञ (चन्द्रेण) सुवर्ण से (चन्द्रम्) सुवर्ण और (अमृ
तेन) नाश रहित विज्ञान से (अमृतम्) मोक्ष सुख को (क्रीणामि) ग्रहण करता
वैसे तू भी (त्वा) उसका ग्रहण कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि शरीर मन वाणी और धन से परमेश्वर
उपासना आदि लक्षण युक्त यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करके असंख्यात अतुल पुष्टि
प्राप्त करें ॥ २६ ॥

मित्रो न इत्यस्य वत्स ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के संग कैसे वर्त्त
चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मित्रो न एहि सुमित्रध इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तं स्योनः स्योनम् । स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशा-
सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वम्मा वो दभन् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (स्वान) उपदेश करने (भ्राज) प्रकाश को प्राप्त होने (अंघारे) पाप के शत्रु (बम्भारे) विचार विरोधियों के शत्रु (हस्त) प्रशस्त (सुहस्त) अच्छे प्रकार हस्त क्रिया को जानने और (कृशानो) दुष्टों को कृश करने (सुमित्रधः) उत्तम मित्रों को धारण करने (मित्रः) सब के मित्र (स्योनः) सुख की (उशन्) कामना करते हुए सभाध्यक्ष आप (नः) हम लोगों को (एहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (दक्षिणम्) उत्तम अंगयुक्त (उरुम्) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा स्वीकार करने योग्य (उशन्तम्) कामना करने योग्य (स्योनम्) सुख को (आविश) प्रवेश कीजिये। हे सभासदो! जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य युक्त प्रजा और भृत्य आदि मनुष्य (वः) तुम लोगों की रक्षा करें और आप लोग भी उनकी (रक्षध्वम्) रक्षा सदा किया करो जैसे ये शत्रु लोग (तान्) उन (वः) तुम लोगों की हिंसा करने में समर्थ (मा दभन्) न हों वैसे ही सम्यक् प्रीति से परस्पर मिलके वर्त्तो ॥ २७ ॥

भावार्थः—राज्य और प्रजा पुरुषों को उचित है कि परस्पर प्रीति उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् वर्त्त शत्रुओं का निवारण अविद्या वा अन्याय रूप अंधकार का नाश और चक्रवर्त्ति राज्य आदि का पालन करके सदा आनंद में रहें ॥२७॥

परिमाग्न इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वार्द्धस्य साम्नीबृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः। उत्तरार्द्धस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ मध्य
और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें इस
विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

परि॑माग्ने दु॒श्चरि॑ताद्बाधस्वा॒ मा सुच॑रिते भज। उदायु॑षा स्वा॒यु॒षोद॑स्थाम॒मृताँ॒२॥ अनु॑ ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर। आप कृपाकर के जिस कर्म से मैं (स्वायुषा) उत्तमता पूर्वक प्राण धारण करने वाले (आयुषा) जीवन से (अमृतान्) जीवन मुक्त और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपी आनन्दों को (उदस्थाम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं उससे (मा) मुझ को संयुक्त करके (दुश्चरितात्) दुराचरण से (उद्बाधस्व) पृथक् करके (मा) मुझ को (सुचरिते) उत्तम २ धर्माचरण युक्त व्यवहार में (अनुभज) अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि अधर्म के छोड़ने और धर्म के ग्रहण करने के लिये सत्य प्रेम से प्रार्थना करें कि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्मों से

छुड़ा कर धर्म ही में प्रवृत्त कर देता है परन्तु सब मनुष्यों को यह करना अवश्य जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही में रह कर संसार वा मोक्ष रूपी सुखों को सब प्रकार से सयन करें ॥ २८ ॥

प्रतिपन्थामित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उस परमेश्वर की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

प्रति॒पन्था॑मपद्महि स्वस्ति॒गाम॑ने॒हस॑म् । येन॒ विश्वा॒: परि॒द्विषो॑ वृ॒णक्ति॑ वि॒न्दते॑ वसु॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रह से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग (येन) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रु सेना वा दुःख देनेवाली भोग क्रियाओं को (परिवृणक्ति) सब प्रकार से दूर करता और (वसु) सुख करने वाले धन को (विन्दते) प्राप्त होता है उस (अनेहसम्) हिंसा रहित (स्वस्तिगाम्) सुख पूर्वक जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्रत्यपद्महि) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादित्याग विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्ममार्ग के प्रकाश लिये ईश्वर की प्रार्थना धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वगसीत्यस्य वत्स ऋषिः । वरुणो देवता । पूर्वस्याऽऽसुरी त्रिष्टुप् छन्दः । अस्तभ्नादित्यन्तस्य विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अगले मंत्र में ईश्वर सूर्य्य और वायु के गुणों का उपदेश किया है ॥

अदि॑त्या॒स्त्वग॒स्यदि॑त्यै॒ सद॒ आसी॑द । अस्त॑भ्ना॒द् द्यां वृ॑ष॒भो अ॒न्तरि॑क्षममिमीत वरि॒माण॑म्पृथि॒व्याः । आसी॑द॒द्विश्वा॒ भुव॑नानि स॒म्राड्विश्वेत्तानि॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस से आप (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं (वृषभः) अत्युत्तम सुख आप (अदित्यै) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) स्थापन करने योग्य (आसीद) अवस्था को स्थापन करते वा (द्याम्) सूर्य्य आदि को (अस्तभ्नात्) धारण करते (वरिमाणम्) उत्तम उत्तम (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (अमिमीत) रचते और (सम्राट्) अच्छे प्रकार से प्रकाश हुए आप के अधिकार में (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के बीच में

(विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (आसीदत्) स्थापन करते हो इस से (तानि) ये (विश्वा) सब (वरुणस्य) श्रेष्ठरूप (ते) आपके (इत) ही (व्रतानि) सत्य स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपश्यहि) जानते हैं ॥१॥ जो (वृषभः) अत्युत्तम (सम्राट्) अपने आप प्रकाशमान सूर्य और वायु (अदित्याः) पृथिवी आदि के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं वा (अदित्यै) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) लोकों को (आसीद) स्थापन (धाम्) प्रकाश को (अस्तभ्नात्) धारण (वरिमाणम्) श्रेष्ठ (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अमिमीत) रचना और (पृथिव्याः) आकाश के मध्य में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (आसीदत्) स्थापन करते हैं (तानि) ये (विश्वा) सब (ते) उस (वरुणस्य) सूर्य और वायु के (इत्) ही (व्रतानि) स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपश्यमहि) जानते हैं ॥ २ ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार और पूर्व मंत्र से (अपश्यमहि) इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये। जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य और वायु आदि को सब प्रकार व्याप्त होकर रच कर धारण करता है इसी प्रकार सूर्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है ॥ ३० ॥

वनेष्वित्यस्य वत्स ऋषिः। वरुणो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

वनेषु व्यन्तरिक्षन्ततान् वाजमर्वत्सु पय॑ उस्रियासु। हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निन्दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ३१ ॥

पदार्थः—जो (वरुणः) अत्युत्तम परमेश्वर सूर्य वा प्राण वायु हैं वे (वनेषु) किरण वा वनों में (अन्तरिक्षम्) आकाश को (विततान) विस्तार युक्त किया वा करता (अर्वत्सु) अत्युत्तम वेगादि गुण युक्त विद्युत् आदि पदार्थ और घोड़े आदि पशुओं में (वाजम्) वेग (उस्रियासु) गौओं में (पयः) दूध (हृत्सु) हृदयों में (क्रतुम्) प्रज्ञा वा कर्म (विक्षु) प्रजा में (अग्निम्) अग्नि (दिवि) प्रकाश में (सूर्यं) आदित्य (अद्रौ) पर्वत वा मेघ में (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधी और श्रेष्ठ रस को। (अदधात्) धारण किया करते हैं उसी ईश्वर की उपासना और उन्हीं दोनों का उपयोग करें ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है-जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश

और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभाव युक्त गुणों को स्थापन और ज्ञान आदि गुणों को नियत करके पवन सूर्य आदि को विस्तार युक्त करता है वैसे सूर्य और वायु भी सब के लिये सुखों का विस्तार करते हैं ॥ ३२ ॥

सूर्यस्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥ ३२ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! (यत्र) जहां आप (एतशेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (भ्राजमानः) प्रकाशमान (विपश्चिता) मेधावी विद्वान् से (ईयसे) विज्ञात होते हो वा जहां प्राण वायु वा बिजुली (एतशेभिः) वेगादि गुण वा (विपश्चिता) विद्वान् से (भ्राजमानः) प्रकाशित होकर (ईयसे) विज्ञात होते हैं और जहां आप प्राण तथा बिजुली (सूर्यस्य) सूर्य वा बिजुली और (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (अक्ष्णः) देखने के साधन (कनीनकम्) प्रकाश करने वाले (चक्षुः) नेत्रों को (आरोह) देखने के लिये कराते वा कराती है वहां हम लोग आप की उपासना और उन दोनों का उपयोग करें ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालंकार है—मनुष्यों को उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर प्राण और बिजुली के गुणों को जान उपासना वा कार्य्य सिद्धि करते हैं वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा सिद्ध करते हैं ॥३२॥

उस्रावेतमित्यस्य यतम ऋषिः । सूर्य्यविद्वांसौ देवते । पूर्वस्य भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । स्वस्तीत्यन्तस्य याजुषी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सूर्य्य और विद्वान् कैसे हैं और उन को शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें सो अगले मंत्र में कहा है ।

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ । स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे विद्या और शिल्प क्रिया को प्राप्त होने की इच्छा करने वाले (ब्रह्मचोदनौ) अन्न और विज्ञान प्राप्ति के हेतु (अनश्रू) अश्रुपात

(सदोहविर्धाने) दोनों का ग्रहण करके (ऊर्जी) ज्योति युक्त और निवास के हेतु (धु-र्यौ) पृथिवी और सूर्य से जल को धारण करने वाले विद्वान (यताम्) सूर्य और वायु को प्राप्त होते या (सुमेनसम्) युक्त करने और (यजमानस्य) धार्मिक यज-मान के (गृहान) घरों को (स्वाभि) मुख से (गच्छतम्) गमन करते हैं वैसे तुम भी उन को युक्ति से संयुक्त करके कार्यों को सिद्ध किया करो ॥ ३३ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-जैसे सूर्य और विद्वान सब पदार्थों को धारण करने हारे सदन युक्त और प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे ही शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् से यानों में युक्ति से सेवन किये हुए अग्नि और जल सवारियों को चला के सर्वत्र सुख पूर्वक गमन कराते हैं ॥ ३३ ॥

भद्रो मेऽसीत्यस्य वत्स ऋषिः । यजमानो देवता । पूर्वस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः । मात्वेत्यस्य भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । श्येनो-
भूत्वेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उस यान से विद्वान् को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ।

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभिधामानि । मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृका अघायवो विदन् । श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ संस्कृतम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (भुवस्पते) पृथिवी के पालन करने वाले विद्वान् मनुष्य ! तू (मे) मेरे (भद्रः) कल्याण करने वाला बन्धु (असि) है सो तू (नौ) मेरा और तेरा (संस्कृतम्) संस्कार किया हुआ यान है (तत्) उस से (विश्वानि) सब (धामानि) स्थानों को (अभिप्रच्यवस्व) अच्छे प्रकार जा जिस से सब जगह जाते हुए (त्वा) तुझ को जैसे (परिपरिणः) छल से रात्रि में दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले (वृकाः) चोर (मा विदन्) प्राप्त न और परदेश को जानने वाले (त्वा) तुझ को जैसे (परिपन्थिनः) मार्ग में लूटने वाले डाकू (मा विदन्) प्राप्त न होवें जैसे पर-मैश्वर्य्य युक्त (त्वा) तुझ को (अघायवः) पाप की इच्छा करने वाले दुष्ट मनुष्य (मा विदन्) प्राप्त न हों वैसा कर्म सदा किया कर (श्येनः) श्येन पक्षी के समान वेग बल युक्त (भूत्वा) होकर उन दुष्टों से (परापत) दूर रह और इन दुष्टों को भी दूर कर ऐसी क्रिया कर के (यजमानस्य) धार्मिक यजमान के (गृहान्) घर वा देश देशान्तरों को (गच्छ) जा कि जिस से मार्ग में कुछ भी दुःख न हो ॥ ३४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विमान आदि यानों को रच उन में बैठ उन को यथायोग्य चला श्येन पक्षी के समान द्वीप वा देश देशान्तर को जा धनों को प्राप्त करके वहां से आ और दुष्ट प्राणियों से अलग रह कर सब काल में स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें ॥३४॥

नमो मित्रस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर ईश्वर और सूर्य्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नमो॑ मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ चक्ष॑से म॒हो दे॒वाय॒ तदृ॒तꣳ स॑पर्यत।
दू॒रे॒दृशे॑ दे॒वजा॑ताय के॒तवे॑ दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्या॑य शꣳसत ॥३५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (यत्) जो (मित्रस्य) सब के सुहृत् (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर का (ऋतम्) सत्यस्वरूप है (तत्) उस चेतन की सेवा करते हैं। वैसे तुम भी उस का सेवन सदा (सपर्य्यत) किया करो और जैसे उस (महः) बड़े (दूरेदृशे) दूर स्थित पदार्थों को दिखाने (चक्षसे) सब को देखने (देवजाताय) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (केतवे) विज्ञानस्वरूप (देवाय) दिव्यगुण युक्त (पुत्राय) पवित्र करने वाले (सूर्य्याय) चराचरात्मा परमेश्वर को (नमः) नमस्कार करते हैं वैसे तुम भी (शंसत) उस की स्तुति किया करो ॥ १ ॥ हे मनुष्यो! जो (मित्रस्य) प्रकाश (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश स्वरूप सूर्य्यलोक का (ऋतम्) यथार्थ स्वरूप है (तत्) उस प्रकाश स्वरूप को तुम भी विद्या से (सपर्य्यत) सेवन किया करो। जैसे हम लोग जिस (चक्षसे) सब के दिखाने (देवजाताय) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध (केतवे) ज्ञान कराने अग्नि के (पुत्राय) पुत्र (दूरेदृशे) दूर स्थिर हुए पदार्थों को दिखाने (महः) बड़े (देवाय) दिव्यगुण वाले (सूर्य्याय) सूर्य्य के लिये प्रवृत्त हों वैसे तुम भी प्रवृत्त होओ ॥३५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सब मनुष्यों को जिस की कृपा वा प्रकाश से चोर डांकू आदि अपने कार्य्यों से निवृत्त हो जाते हैं उसी की प्रशंसा और गुणों की प्रसिद्धि करनी और परमेश्वर के समान समर्थ वा सूर्य्य के समान कोई लोक नहीं है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

वरुणस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वरु॑णस्यो॒त्तम्भ॑नमसि॒ वरु॑णस्य स्कम्भ॒सर्ज॑नी॒स्थो॒ वरु॑णस्य ऋ॒त॒सद॑न्यसि॒ वरु॑णस्य ऋ॒त॒सद॑नमसि॒ वरु॑णस्य ऋ॒त॒सद॑न॒मा-सी॑द ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस से आप (वरुणस्य) उत्तम जगत् के (उत्तम्भनम्) अच्छे प्रकार प्रतिबन्ध करने वाले (असि) हैं जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्जनी) धारणरूपी पदार्थों के उत्पन्न करने (वरुणस्य) सूर्य्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन कराने वाली क्रिया (स्थः) हैं उन को धारण किये हुए हैं (वरुणस्य) सब (ऋतसदनम्) पदार्थों का स्थान (असि) है (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) जलरूपी मोक्षों के स्थान को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं इस से आप का आश्रय हम लोग करते हैं ॥ १ ॥ जो (वरुणस्य) जगत् का (उत्तम्भनम्) धारण करने वाला (असि) है जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्जनी) आधारों को उत्पन्न करने वा जो (वरुणस्य) सूर्य्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन कराने वाली क्रिया (स्थः) हैं उनका धारण करने तथा जो (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) अन्य पदार्थों का स्थान रूप (असि) है वह (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थों के स्थान को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है उस का उपयोग क्यों न करना चाहिये ॥ २ ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—कोई परमेश्वर के विना सब जगत् के रचने वा धारण पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई सूर्य्य के विना भूमि आदि जगत् के प्रकाश और धारण करने को भी समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

या ते धामानीत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या ते॒ धामा॑नि ह॒विषा॒ यज॑न्ति॒ ता ते॒ विश्वा॑ परि॒भूर॑स्तु य॒ज्ञम् । ग॒य॒स्फानः॑ प्र॒तर॑णः सु॒वीरोऽवी॑र॒हा प्रच॑रा सोम॒ दुर्या॑न् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर जैसे विद्वान् लोग (या) जिन (ते) आप के (धामानि) स्थानों को (हविषा) देने लेने योग्य द्रव्यों से (यजन्ति) सत्कार पूर्वक ग्रहण करते हैं वैसे हमलोग भी (ता) उन (विश्वा) सभों को ग्रहण करें जैसे वह यज्ञ विद्वानों

को (ते) आप का (गयस्फानः) अपत्य धन और घरों के बढ़ाने (प्रतरणः) दुःखों
पार करने (सुवीरः) उत्तम वीरों का योग कराने (अवीरहा) कायर दरिद्रता दु
अवीर अर्थात् पुरुषार्थ रहित मनुष्य और शत्रुओं को मारने तथा (परिभूः) सत्
कार से सुख कराने वाला है वैसे यह आपकी कृपा से हम लोगों के लिये (अनु
हो या जिसको विद्वान् लोग (यजन्ति) यजन करते हैं उस (यज्ञम्) यज्ञ को ह
लोग भी करें। हे (सोम) सोमविद्या को संपादन करने वाले विद्वान् ! जैसे हम लो
इस यज्ञ को करके घरों में आनन्द करें जानें इस में कर्म करें वैसे तू भी इस को
के (दुर्य्यान्) घरों में (प्रचर) सुख का प्रचार कर जान और अनुष्ठान कर ॥३७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—जैसे विद्वान् लोग ईश्वर में प्रीति संसार में यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं वैसा ही सब मनुष्यों को करना उचित है ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में शिल्पविद्या, वृष्टि की पवित्रता का संपादन, विद्वानों का संग यज्ञ का अनुष्ठान, उत्साह आदि की प्राप्ति, शिल्पविद्या की स्तुति, यज्ञ के गुणों का वर्णन सत्यव्रत का धारण, अग्नि जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना, यज्ञानुष्ठान, माता पिता और पुत्रादिकों का आपस में अनुकरण, यज्ञ की व्याख्या, दिव्य बुद्धि की प्राप्ति, परमेश्वर का अर्चन, सूर्य्यगुण वर्णन, पदार्थों के क्रय विक्रय का उप-देश, मित्रता करना धर्म मार्ग में प्रचार करना, परमेश्वर वा सूर्य्य के गुणों का प्र-काश चोर आदि का निवारण ईश्वर सूर्य्यादि गुण वर्णन और यज्ञ का फल कहा है इस से इस अध्यायार्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये। उवट और महीधर आदि ने इस अध्याय का भी शब्दार्थ विरुद्ध ही वर्णन किया है ॥

यह चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥



ओ३म्

अथ पञ्चमाध्यायारम्भः ॥



अब चौथे अध्याय की पूर्त्ति के पश्चात् पांचवें अध्याय के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस २ प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अ॒ग्नेस्त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा॒ सोम॑स्य त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे॒ त्वाऽति॑थेराति॒थ्यम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा श्ये॒नाय॑ त्वा सोम॒भृते॒ विष्ण॑वे त्वा॒ऽग्नये॑ त्वा रायस्पोष॒दे विष्ण॑वे त्वा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैं जो हवि (अग्नेः) बिजुली प्रसिद्ध रूप अग्नि के (तनूः) शरीर के समान (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) यज्ञ की सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूं जो (सोमस्य) जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थ समूह की (तनूः) विस्तार पूर्वक सामग्री (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) वायु की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूं जो (अतिथेः) सन्यासी आदि का (आतिथ्यम्) अतिथिपन वा उन की सेवा रूप कर्म (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) विज्ञान यज्ञ की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूं जो (श्येनाय) श्येन पक्षी के समान शीघ्र जाने के लिये (असि) है (त्वा) उस द्रव्य को अग्नि आदि में छोड़ता हूं जो (विष्णवे) सब विद्या कर्म युक्त (सोमभृते) सोमों को धारण करने वाले यजमान के लिये सुख (असि) है (त्वा) उस को ग्रहण करता हूं जो (अग्नये) अग्नि बढ़ाने के लिये काष्ठ आदि है (त्वा) उस को स्वीकार करता हूं जो (रायस्पोषदे) धन की पुष्टि देने वा (विष्णवे) उत्तम गुण कर्म विद्या की व्याप्ति के लिये समर्थ पदार्थ है (त्वा) उस को ग्रहण करता हूं वैसे इस सब का सेवन तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें ॥ १ ॥

अग्नेर्जनित्रमित्यस्य गोतमऋषिः । विष्णुर्यज्ञो देवता । पूर्वस्यार्षी गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । गायत्र्युत्तरस्यार्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! लोगो जैसे मैं जो (अग्नेः) आग्नेय अस्त्रादि की सिद्धि करने हारे अग्नि के (जनित्रम्) उत्पन्न करने वाला हवि (असि) है (वृषणौ) जो वर्षा कराने वाले सूर्य्य और वायु (स्थः) हैं जो (उर्वशी) बहुत सुखों के प्राप्त कराने वाली क्रिया (असि) है जो (आयुः) जीवन (असि) है जो (पुरूरवाः) बहुत शास्त्रों के उपदेश करने का निमित्त (असि) है (त्वा) उस अग्नि (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) आनन्द कारक स्वच्छन्द क्रिया से (मन्थामि) विलोडन करता हूं (त्वा) उस सोम आदि ओषधी समूह (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) विलोडन करता हूं (त्वा) और उस शत्रु दुःख समूह को (जागतेन) जगती (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) ताड़न कर के निवारण करता हूं वैसे ही तुम भी किया करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा सेवन किये हुए यज्ञ से दूसरे मनुष्यों के लिये परोपकार करें ॥ २ ॥

भवतमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यजमान और यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् कैसे होवें यह विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ३ ॥

[illegible]) प्राप्त मनुष्यों के साथ करी वचन से रहित ([illegible]) [illegible] (जातवेदसौ) [illegible] ज्ञान युक्त (सचेतसौ) तुल्य ज्ञान [illegible] (नः) हम लोगों के लिये [illegible] सिद्ध किये हुए पदार्थ [illegible]

उपदेश करने वाले (भवतम्) होवें तो (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ वा (यज्ञपतिम्) विद्या रूप यज्ञ के पालन करने वाले यजमान को (मा हिंसिष्टम्) न पीड़ित करें वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों के लिये (शिवौ) मङ्गल करने वाले (भवतम्) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि विद्या प्रचार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा सत्याचरण को न छोड़ें क्योंकि यही सर्वोत्तम कर्म है ॥ ३ ॥

अग्नावग्निरित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अत्र मन्त्रांशेन विराडिद्युद्गुणं व्याख्यातम् ॥

विद्युत् और विद्वान् अग्नि कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणाम्पुत्रो अभिशस्तिपावा ।
स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (अभिशस्तिपावा) सब प्रकार हिंसा करने वालों से रहित (अग्नौ) विद्युत् अग्नि की विद्या में (प्रविष्टः) प्रवेश करने कराने (ऋषीणाम्) वेदादि शास्त्रों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानने वालों का (पुत्रः) पढ़ा हुआ (स्योनः) सर्वथा सुखकारी (सुयजा) विद्याओं को अच्छी प्रकार प्रत्यक्ष संग कराने हारा (अग्निः) प्रकाशात्मा (अप्रयुच्छन्) प्रमाद रहित अध्यापक विद्वान् (चरति) जो (नः) हम लोगों के लिये (इह) इस संसार में (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य गुणों से (हव्यम्) लेने देने योग्य पदार्थ वा (सदम्) ज्ञान और (स्वाहा) हवन करने योग्य उत्तम अन्नादि को प्राप्त करता है (सः) सो आप (यज) सब विद्याओं को प्राप्त कराइये ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि कार्य्य कारण के भेद से दो प्रकार का निश्चत अर्थात् जो कार्य्यरूप से सूर्यादि और कारण रूप से विद्युत् अग्नि सब मूर्तिमान् द्रव्यों में प्रवेश कर रहा है उसका इस संसार में विद्या से संप्रयोग कर कार्य्यों में उपयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

आपतयेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्युद्देवता । पूर्वस्यार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अनाधृष्टमित्यग्रस्य भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस २ प्रयोजन के लिये परमात्मा की प्रार्थना बिजुली का स्वीकार करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्कराय शक्वनऽओजिष्ठाय । अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपाऽअनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—मैं हे परमात्मन् ! जिस से आप हिंसा रूप कर्मों से अलग रहने और र खने वाले हैं इस से (त्वा) आपको (आपतये) सब प्रकार से स्वामी होने (परि पतये) सब ओर से रक्षा (शाक्कराय) सब सामर्थ्य की प्राप्ति (शक्वने) शूरवीर यु सेना (ओजिष्ठाय) जिस में सर्वोत्कृष्ट पराक्रम होता है उस विद्या के होने और (त नूनप्त्रे) जिस से उत्तम शरीर होता है उस के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं आ अपनी कृपा से उस (देवानाम्) विद्वानों का (अनाधृष्टम्) जिसका अपमान कोई नहीं कर सकता (अनाधृष्यम्) किसी के अपमान करने योग्य नहीं है (अनभिशस्ति) किसी के हिंसा करने योग्य नहीं है । (अभिशस्तेन्यम्) अहिंसारूप धर्म की प्राप्ति कराने हार (सत्यम्) अविनाशी (ओजः) तेज है उसका ग्रहण कराके (स्विते) अच्छे प्रकार जिस व्यवहार में सब सुख प्राप्त होते हैं उस में (मा) मुझ को (धाः) धारण करें कि जिस से (सत्यम्) सत्य व्यवहार को (उपगेषम्) जान कर करूं ॥ १ ॥

मैं जो (अनाधृष्टम्) न हटाने (अनाधृष्यम्) न किसी से नष्ट करने (अनभिशस्ति) न हिंसा करने (अनभिशस्तेन्यम्) और हिंसारहित धर्म प्राप्त कराने योग्य (देवानाम्) विद्वान् वा पृथिवी आदिकों के मध्य में (सत्यम्) कारणरूप नित्य (ओजः) पराक्रम स्वरूप वाली (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा का निमित्त रूप बिजुली (असि) है, जो (मा) मुझे (स्विते) उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (धाः) धारण करती है (अञ्जसा) सहजता से (ओजिष्ठाय) अत्यन्त तेजस्वी (आपतये) अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार (परिपतये) जिस में सब प्रकार पालन करने वाले होते हैं (तनूनप्त्रे) जिस से उत्तम शरीरों को प्राप्त होते हैं (शाक्कराय) शक्ति के उत्पन्न करने और (शक्वने) शक्ति वाली वीरसेना की प्राप्ति के लिये है (त्वा) उसको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं कि जिस से उन सब कारण रूप पदार्थों को (उपगेषम्) जान सकूं ॥ २ ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान के बिना सत्य सुख और बिजुली आदि विद्या और क्रियाकुशलता के बिना संसार के सब सुख नहीं हो सकते, इस लिये कार्य्य पुरुषार्थ से नित्य करना चाहिये ॥ ५ ॥

... अग्ने व्रतपा इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह परमात्मा और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि। सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

पदार्थः—जिस लिये हे (अग्ने) (व्रतपते) जगदीश्वर ! आप वा बिजुली सत्यधर्मादि नियमों के (व्रतपाः) पालन करने वाले हैं इसलिये (त्वे) उस आप वा बिजुली में मैं (व्रतपाः) पूर्वोक्त व्रतों के पालन करने वाली क्रिया वाला होता हूं (या) जो (इयम्) यह (तव) आप और उस की (तनूः) विस्तृत व्याप्ति है (सा) वह (मयि) मुझ में (यो) जो (एषा) यह (मम) मेरा (तनूः) शरीर है (सा) सो (त्वयि) आप वा उस में है (व्रतानि) जो ब्रह्मचर्य्यादि व्रत हैं वे मुझ में हों और जो (मे) मुझ में हैं वे (त्वयि) तुम्हारे में हैं जो आप वा वह (तपस्पतिः) जितेन्द्रियत्वादिपूर्वक धर्मानुष्ठान के पालक निमित्त हैं सो (मे) मेरे लिये (तपः) पूर्वोक्त तप को (अनुमन्यताम्) विज्ञापित कीजिये वा करती है और जो आप वा वह (दीक्षापतिः) व्रतोपदेशों के रक्षा करने वाले हैं सो (मे) मेरे लिये (दीक्षाम्) व्रतोपदेश को (अनुमन्यताम्) आज्ञा कीजिये वा करती है इसलिये भी (नौ) मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हों कि जिस से दोनों की विद्यावृद्धि सदा होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को परस्पर प्रेम वा उपकार बुद्धि से परमात्मा वा बिजुली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्ठान में पुरुषार्थ में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

अꣳशुरित्यस्य गोतमऋषिः। सोमो देवता। आद्यस्यार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। आप्याययेत्यन्तस्यार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर बिजुली और विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे। आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व। आप्याययास्मान्त्सखीन्त्-

न्त्सुन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय। एष्टा रायः प्रेषे भगायऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (सोम) पदार्थ विद्या को जानने वा (देव) दिव्य गुणसंपन्न जगदीश्वर ! विद्वन्! विद्युत् जिस से (ते) आप वा इस विद्युत् का सामर्थ्य (अंशुरंशुः) अवयव २ अङ्ग २ को (आप्यायताम्) रक्षा से बढ़ा अथवा बढ़ाती है (इन्द्रः) जो आप वा बिजुली (एकधनविदे) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त मेरे लिये (आप्यायताम्) बढ़ावें वा बढ़ाती हैं (आप्यायस्व) वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है। यह आप बिजुली आदि पदार्थ के ठीक २ अर्थों की प्राप्ति को (सन्न्या) प्राप्ति कराने वाली (मेधया) प्रज्ञा से (अस्मान्) हम (सखीन्) सब के मित्रों को (आप्यायस्व) बढ़ाइये वा बढ़ावे जिस से (स्वस्ति) सुख सदा बढ़ता रहे (सोम) हे पदार्थ विद्या को जानने वाले ईश्वर वा विद्वन्! आप की शिक्षा वा बिजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्याम्) उत्तम २ उत्पन्न करने वाली क्रिया में कुशल होके (इषे) सिद्धि की इच्छा वा अन्नादि (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिये (एष्टाः) अभीष्ट सुखों को प्राप्त कराने वाले (रायः) धनसमूहों को (अशीय) प्राप्त होऊं। और (ऋतवादिभ्यः) सत्यवादी विद्वानों को यह धन देके सत्य विद्या और (द्यावापृथिवीभ्याम्) प्रकाश वा भूमि से (ऋतम्) अन्न को प्राप्त होऊं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली ओषधियों और अनेक प्रकार के धनों का ग्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब आनन्दों को भोगें ॥ ७ ॥

यात इत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वस्य विराडार्षी बृहती छन्दः।
यात इति द्वितीयस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या तेऽअग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत्स्वाहा। या तेऽअग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा।

या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! तुम को (या) जो (ते) इस (अग्ने) बिजुली रूप अग्नि का (अयः शया) सुवर्णादि में सोने (वर्षिष्ठा) अत्यन्त बड़ा (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में रहने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर भयङ्कर (वचः) वचन को (अपावधीत्) नष्ट करता और (त्वेषम्) प्रदीप्त (वचः) शब्द वा (स्वाहा) उत्तमता से हवन किये हुए अन्न को (अपावधीत्) दूर करता और जो (ते) इस (अग्ने) बिजुलीरूप अग्नि का (वर्षिष्ठा) अत्यन्त विस्तीर्ण (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में स्थित होने (रजः शया) लोकों में सोने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर (वचः) कथन को (अपावधीत्) नष्ट करता है (त्वेषम्) प्रदीप्त (वचः) कथन वा (स्वाहा) उत्तम वाणी को (अपावधीत्) नष्ट करता है उसको जानके उस से कार्य्य लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहने वाली जो बिजुली की व्याप्ति है उसको अच्छे प्रकार जान कर उपयुक्त कर के सब दुःखों का नाश करें ॥ ८ ॥

तप्तायनीत्यस्य गोतमऋषिः । अग्निर्देवता । प्रथमस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्दः षड्जः स्वरः । विदेदित्यस्य भुरिग् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । नाकेयीत्यस्य निचृद्ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । अनुब्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तुप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवंतान्मा नाथितादवंतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे । अनु त्वा देववीतये ॥ ९ ॥

न्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय । एष्टा रायः प्रेषे भगायऽऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (सोम) पदार्थ विद्या को जानने वा (देव) दिव्य गुणसंपन्न जगदीश्वर ! विद्वन् ! वा विद्युत् जिस से (ते) आप वा इस विद्युत् का सामर्थ्य (अंशुरंशुः) अवयव २ अङ्ग २ को (आप्यायताम्) रक्षा से बढ़ा अथवा बढ़ाती है (इन्द्रः) जो आप वा बिजुली (एकधनविदे) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त मेरे लिये (आप्यायताम्) बढ़ावें वा बढ़ाती है (आप्यायस्व) वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है। वह आप बिजुली आदि पदार्थ के ठीक २ अर्थों की प्राप्ति को (सन्न्या) प्राप्ति कराने वाली (मेधया) प्रज्ञा से (अस्मान्) हम (सखीन्) सब के मित्रों को (आप्यायस्व) बढ़ाइये वा बढ़ावे जिस से (स्वस्ति) सुख सदा बढ़ता रहे (सोम) हे पदार्थ विद्या को जानने वाले ईश्वर वा विद्वन् ! आप की शिक्षा वा बिजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्याम्) उत्तम २ उत्पन्न करने वाली क्रिया में कुशल होके (इषे) सिद्धि की इच्छा वा अन्नादि (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिये (एष्टाः) अभीष्ट सुखों को प्राप्त कराने वाले (रायः) धनसमूहों को (अशीय) प्राप्त होऊं । और (ऋतवादिभ्यः) सत्यवादी विद्वानों को यह धन देके सत्य विद्या और (द्यावापृथिवीभ्याम्) प्रकाश वा भूमि से (ऋतम्) अन्न को प्राप्त होऊं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली ओषधियों और अनेक प्रकार के धनों का ग्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब आनन्दों को भोगें ॥ ७ ॥

यात इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । पूर्वस्य विराडार्षी बृहती छन्दः ।
यात इति द्वितीयस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या तेऽअग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत्स्वाहा । या तेऽअग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा ।

या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो अपावधीं-त्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम को (या) जो (ते) इस (अग्ने) बिजुली रूप अग्नि का (अयः शया) सुवर्णादि में सोने (वर्षिष्ठा) अत्यन्त बड़ा (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में रहने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर भयङ्कर (वचः) वचन को (अपावधीत्) नष्ट करता और (त्वेषम्) प्रदीप्त (वचः) शब्द वा (स्वाहा) उत्तमता से हवन किये हुए अन्न को (अपावधीत्) दूर करता और जो (ते) इस (अग्ने) बिजुलीरूप अग्नि का (वर्षिष्ठा) अत्यन्त विस्तीर्ण (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में स्थित होने (रजः शया) लोकों में सोने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर (वचः) कथन को (अपावधीत्) नष्ट करता है (त्वेषम्) प्रदीप (वचः) कथन वा (स्वाहा) उत्तम वाणी को (अपावधीत्) नष्ट करता है उसको जानके उस से कार्य्य लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहने वाली जो बिजुली की व्याप्ति है उसको अच्छे प्रकार जान कर उपयुक्त कर के सब दुःखों का नाश करें ॥ ८ ॥

तप्तायनीत्यस्य गोतमऋषिः । अग्निर्देवता । प्रथमस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्दः षड्जः स्वरः । विदेदग्निरित्यस्य भुरिग् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । नाम्नेहीत्यस्य निचृद्ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वर ॥
और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियन्तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियन्तेन त्वा दधे । अनु त्वा देववीतये ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे विद्या के ग्रहण करने वाले विद्वान् ! जैसे मैं (यत्) जो (तप्तायनी) स्थापनीय वस्तुओं के स्थान वाली विद्युत् ज्वाला (असि) है या जो (वित्तायनी) भोग्य वा प्रतीत पदार्थों को प्राप्त कराने वाली बिजुली (असि) है (त्वा) उसकी विद्या को जानता हूं वैसे तू भी इस को (मे) मुझ से (एहि) प्राप्त हो । जैसे यह (यत्) जो (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (नभः) जल वा प्रकाश को प्राप्त कराता हुआ (मा) मुझ को (व्यथितात्) भय से (अवतात्) रक्षा करता वा (नाथितात्) ऐश्वर्य्य से (अवतात्) रक्षा करता है वैसे तुझ से सेवन किया हुआ यह तेरी भी रक्षा करेगा । जैसे मैं (तेन) उस साधन से जो (अग्ने) जाठर रूप (अङ्गिरः) अङ्गों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नाम्ना) प्रसिद्धि से (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (नाम) प्रसिद्ध है (त्वा) उसको जानता हूं वैसे तू भी इसको (मे) मुझ से (एहि) अच्छे प्रकार जान जैसे मैं (तेन) उस ज्ञान से (यत्) जो (अनाधृष्टम्) नहीं नष्ट होने योग्य (यज्ञियम्) यज्ञाङ्ग समूह (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसको (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (आदधे) धारण करता हूं वैसे तू उससे इसको उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये धारण कर और वैसे सब मनुष्य भी उससे इसको (विदेत्) प्राप्त होवें जैसे मैं (तेन) जो (द्वितीयस्याम्) दूसरी (पृथिव्याम्) भूमि में (अग्ने) (अङ्गिरः) अङ्गारों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नाम्ना) प्रसिद्धि से (नाम) प्रसिद्ध है वा (यः) जो (नभः) सुख को देता है (तेन) (त्वा) उस से उस को प्राप्त हुआ हूं वैसे तू उस से इस को (एहि) जान और सब मनुष्य भी उससे इस को (विदेत्) प्राप्त हों जैसे मैं (तेन) पुरुषार्थ से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भगुण सहित (यज्ञियम्) यज्ञ सम्बन्धि (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसे भोगों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूं तथा तू उस के लिये धारण कर और सब मनुष्य भी (विदेत्) धारण करें जैसे मैं (तेन) उस क्रियाकौशल से जो (अग्निः) अग्नि (आयुना) जीवन वा प्रसिद्धि से (अङ्गिरः) अङ्गों का सूर्य्यरूप से पोषण करता हुआ (नाम) प्रसिद्ध है वा जो (नभः) आकाश को प्रकाशित करता है (त्वा) उस को धारण करता हूं वैसे तू उस को धारण कर वा सब लोग भी (अनुविदेत्) उस को ठीक २ जान के कार्य्य सिद्ध करें । जैसे मैं (तेन) इन्धनादि सामग्री से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भ सहित (यज्ञियम्) शिल्पविद्यासम्बन्धी (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उस को विद्वानों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूं वैसे तू उस से उस की प्राप्ति के लिये (अन्विह) खोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से संप्रयोग करें ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो प्रसिद्ध सूर्य बिजुली रूप से तीन प्रकार का अग्नि सब लोकों में व्याप्ति भीतर रहने वाला है उस को जान और उपकार लेकर सब मनुष्यों को कार्यसिद्धि का संपादन करना कराना चाहिये ॥ ९ ॥

सिंह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः । वाग्देवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सब विद्याओं की मुख्य सिद्धि करने वाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है ॥

सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः । शुन्धस्व सिंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जो (सपत्नसाही) जिस से शत्रुओं को सहन करते हैं वह (देवेभ्यः) उत्तम गुण शूरवीरों के लिये (कल्पस्व) पढ़ा और उपदेश कर के प्राप्त कर (सिंही) जो दोषों को नष्ट करने वा शब्दों का उच्चारण करने वाली वाणी (असि) है उस को (देवेभ्यः) विद्वान् दिव्यगुण वा विद्या की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये (शुन्धस्व) शुद्धता से प्रकाशित कर जो (सपत्नसाही) दोषों को हनन वा (सिंही) अविद्या के नाश करने वाली वाणी (असि) है उस को (देवेभ्यः) धार्मिकों के लिये (शुन्धस्व) शुद्ध कर और जो (सपत्नसाही) दुष्ट स्वभाव और (सिंही) दुष्ट दोषों को नाश करने वाली वाणी (असि) है उस को (देवेभ्यः) सुशील विद्वानों के लिये (शुम्भस्व) शोभा युक्त कर ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई, दूसरी सत्यभाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुण सहित उन का स्वीकार करें ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतमऋषिः । वाग्देवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा और कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहन्तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान युक्त (इन्द्रघोषः) परमात्मा वेद विद्या और बिजुली का घोष अर्थात् शब्द अर्थ और सम्बन्धों के बोधवाला

(विश्वकर्मा) सब कर्म वाला मैं (यज्ञात्) पढ़ना पढ़ाना या होम रूप यज्ञ से (इदम्) आभ्यन्तर में रहने वाले (तप्तम्) तप्त जल (बहिर्धा) बाहर धारण होनेवाले शीतल (वाः) जल को (निःसृजामि) संपादन करता या निःक्षेप करता हूं वैसे आप भी कीजिये । जो (वसुभिः) अग्नि आदि पदार्थ या चौबीश वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए मनुष्यों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रघोषः) परमेश्वर और बिजुली के अनेक शब्द सम्बन्धी वाणी है उस को (पुरस्तात्) पूर्वदेश से जैसे मैं रक्षा करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करो जो (रुद्रैः) प्राण या चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान कराने वाली वाणी है उस की (पश्चात्) पश्चिम देश से रक्षा करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (पितृभिः) ज्ञानी या ऋतुओं के साथ वर्त्तमान (मनोजवाः) मन के समान वेग वाली वाणी है उसका (दक्षिणतः) दक्षिणदेश से पालन करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (आदित्यैः) बारह महीनों या अड़तालीश वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (विश्वकर्मा) सब कर्मयुक्त वाणी है उस की (उत्तरतः) उत्तर देश से पालन करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाच० हैं—मनुष्यों को योग्य है कि जो वसु रुद्र आदित्य और पितरों से सेवन किई हुई वा यज्ञ को सिद्ध करने वाली वाणी या जल को सेवन विद्या वा उत्तम क्रिया के साथ बिजुली है उस के सेवन में निरन्तर वर्त्तें ॥ ११ ॥

सिᳪहासीत्यस्य गोतमऋषिः । वाग्देवता । भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सिᳪह्यसि स्वाहा॑ सिᳪह्यस्यादित्यवनि॒ः स्वाहा॑ सिᳪह्यसि ब्रह्मवनि॑ः क्षत्रवनि॒ः स्वाहा॑ सिᳪह्यसि सुप्रजावनी॑रायस्पोषवनि॒ः स्वाहा॑ सिᳪह्यस्याव॑ह दे॒वान्यज॑मानाय॒ स्वाहा॑ भू॒तेभ्य॑स्त्वा ॥१२॥

पदार्थः—मैं जो (आदित्यवनिः) मासों का सेवन और (सिंही) क्रूरत्व आदि दोषों को नाश करने वाली (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र से संस्कार युक्त वाणी (असि) है, जो (ब्रह्मवनिः) परमात्मा वेद और वेद के जानने वाले मनुष्यों के सेवन और (सिंही) बल से जाड्यपन को दूर करने वाली (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने व्यवहार युक्त वाणी (असि) है, जो (क्षत्रवनिः) राज्य धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और (सिंही) चोर डांकू अन्याय को नाश करने वाली (स्वाहा) राज्य व्यवहार में कुशल वाणी (असि) है, जो (रायस्पोषवनिः) विद्या धन की पुष्टि का सेवन और

(सिंही) अविद्या को दूर करने वाली (स्वाहा) वाणी (असि) है, जो (सुप्रजावनिः) उत्तम प्रजा का सेवन और (सिंही) सब दुष्टों का नाश और (स्वाहा) व्यवहार से धन को प्राप्त कराने वाली वाणी (असि) है और जो (यजमानाय) विद्वानों के पूजन करने वाले यजमान के लिये (स्वाहा) दिव्य विद्या सम्पन्न वाणी (देवान्) विद्वान् दिव्यगुण वा भोगों को (आवह) प्राप्त करती है (त्वा) उसको (भूतेभ्यः) सब प्राणियों के लिये (यज्ञात्) यज्ञ से (निःसृजामि) संपादन करता हूं ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (यज्ञात्) (निः) (सृजामि) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है मनुष्यों को उचित है कि पढ़ना पढ़ाना आदि से इस प्रकार लक्षण युक्त वाणी प्राप्त कर इसे सब मनुष्यों को पढ़ाकर सदा आनन्द में रहें ॥ १२ ॥

ध्रुवोऽसीत्यस्य गोतमऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगार्च्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया ॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीन्दृंह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षन्दृंहाच्युतक्षिदसि दिवन्दृंहाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो यज्ञ (ध्रुवः) निश्चल (पृथिवीम्) भूमि को बढ़ाता (असि) है उस को तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (ध्रुवक्षित्) निश्चल सुख और शास्त्रों का निवास कराने वाला (असि) है वा (अन्तरिक्षम्) आकाश में रहने वाले पदार्थों को पुष्ट करता है उसको तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (अच्युतक्षित्) नाश रहित पदार्थों को निवास कराने वाला (असि) है वा (दिवम्) विद्यादि प्रकाश को प्रकाशित करता है उसको तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि वा (पुरीषम्) पशुओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ (असि) है उसका अनुष्ठान तुम किया करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्या क्रिया से सिद्ध वा त्रिलोकी के पदार्थों को पुष्ट करने वाले विद्या क्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को रक्खें ॥ १३ ॥

युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषिः। सविता देवता। स्वराड्ार्षी जगतीछन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में योगी और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थः—जैसे जो (विहोत्राः) देने लेने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे जिस (बृहतः) सब से बड़े (विप्रस्य) अनन्त ज्ञान कर्म युक्त (विपश्चितः) सब विद्या सहित (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक (देवस्य) सब के प्रकाश करने वाले महेश्वर की (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुति रूप (स्वाहा) सत्य वाणी को जान उस में (मनः) मन को (युञ्जते) युक्त करते हैं (उत) और (धियः) बुद्धियों को भी (युञ्जते) स्थिर करते हैं वैसे (वयुनवित्) उत्तम कर्मों को जानने वाला (एकः) सहाय रहित मैं उसको जान उस में अपना मन और बुद्धि को (विदधे) सदा निश्चल विधान कर रखता हूं ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है— मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर में ही मन बुद्धि को युक्त कर विद्वानों के संग से विद्या को पा सुखी हो अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें ॥ १४ ॥

इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—(विष्णुः) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है उस को (विचक्रमे) रचता हुआ (इदम्) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (त्रेधा) तीन प्रकार का धारण करता है (अस्य) इस प्रकाशवान् प्रकाश रहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (स्वाहा) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ (इदम्) इस (समूढम्) अच्छे प्रकार विचार कर ने कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को (पांसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है वही सब मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवने योग्य है ॥ १५ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाश वाले सूर्यादि दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है उस सब को कारण से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है उन में से ओषधि आदि पृथिवी में प्रकाश आदि सूर्य लोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है इस लिये हुए शतपथ के प्रमाण से पद शब्द से प्राणों का ग्रहण किया है इस में महीधर जो कहता है त्रिविक्रम अर्थात् वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है यह उसका कहना सर्वथा मिथ्या है ॥ १५ ॥

इरावतीत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः। विष्णुर्देवता स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है ॥

इरावती धेनुमती हि भूतᳬ सूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥ १६ ॥

पदार्थः-हे (विष्णो) सर्वव्यापी जगदीश्वर जो आप जिस (इरावती) उत्तम अन्न युक्त (धेनुमती) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा वा पशु युक्त (सूयवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि वा वाणी (पृथिवीम्) भूमि (हि) निश्चय करके (स्वाहा) वेद वाणी वा (भूतम्) उत्पन्न हुए सब जगत् को (मयूखैः) ज्ञानप्रकाशकादि गुणों से (अभितः) सब ओर से (दाधर्थ) धारण और (रोदसी) प्रकाश वा पृथिवी लोक का (व्यस्कभ्नाः) सम्यक् स्तम्भन करते हो उन (मनवे) विज्ञान युक्त (दशस्या) दंशन अर्थात् दांतों के बीच में स्थित जिह्वा के समान आचरण करने वाले आप के लिये (एते) ये हम लोग सब जगत् को निवेदन करते हैं ॥१॥ जो (विष्णो) व्यापनशील प्राण जो (इरावती) उत्तम अन्नयुक्त (धेनुमती) पशु सहित (सूयवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित पदार्थ वाली भूमि वा वाणी है उस (पृथिवीम्) भूमि (स्वाहा) वा इन्द्रिय को (मयूखैः) किरणों अपने बल आदि (अभितः) सब प्रकार (दाधर्थ) धारण करता वा (रोदसी) प्रकाश भूमि को (व्यस्कभ्नाः) स्तंभन करता है उस (दशस्या) दशन और दान्त के समान आचरण करने वा (मनवे) विज्ञापन युक्त सूर्य के लिये (भूतं हि) निश्चय करके सब जगत् को करने के लिये ईश्वर ने दिया है ऐसा (एते) ये सब हम लोग जानते हैं ॥ २ ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाच०—जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत् को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है वैसेही परमेश्वर और प्राण ने अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत् को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है ॥ १६ ॥

देवश्रुतावित्यस्य वशिष्ठऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वे प्राण और अपान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतम्प्राची प्रेतमध्वरङ्कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं

ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्। स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन्पृथिव्याः ॥ १७ ॥

पदार्थः- हे मनुष्यो ! तुम जैसे जो (देवश्रुतौ) विद्वान् वा विद्वानों में (देवेषु) [illegible] ॥ १७ ॥

भावार्थः- मनुष्यों को [illegible] ॥ १७ ॥

[illegible]

भेद से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है उसी की उपासना क
चाहिये ॥ १८ ॥

दिवोवेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी जगतीछन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्त
रिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत
सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) सर्वव्यापी परमेश्वर ! आप कृपा कर के हम लोगों
(दिवः) प्रसिद्ध वा बिजुली रूप अग्नि से (वसुना) द्रव्य के साथ (आपृणस्व)
थों से पूर्ण कीजिये और (पृथिव्याः) भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ (उत) भी (व
अथवा (महः) महत्तत्त्व अव्यक्त और (उत) भी (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षा
अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुखों को (हि) निश्चय कर के पूर्ण कीजिये (विष्णो
सब में प्रविष्ट ईश्वर आप (दक्षिणात्) दक्षिण (उत) और (सव्यात्) वामभा
से सुखों को दीजिये (त्वा) उस आप को (विष्णवे) योग विज्ञान यज्ञ के लिये
जन करते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस व्यापक परमेश्वर ने महत्तत्त्व र
भूमि अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा उन में रहने वाले ओषधी आदि
मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये सुखों को धारण करता है उ
की उपासना करें ॥ १९ ॥

प्रतद्विष्णुरित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । य-
स्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २० ॥

पदार्थः—(यस्य) जिस के (उरुषु) अनन्त (त्रिषु) (विक्रमणेषु) त्रिवि
प्रकार के कर्मों में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (अधिक्षियन्ति) निवास क
हैं और (वीर्येण) अपने पराक्रम से (भीमः) भय करने वाले (कुचरः) निन्द
प्राणिवध को करने और (गिरिष्ठाः) पर्वत में रहने वाले (मृगः) सिंह के (न

समान पापियों को खोज दुःख देता हुआ (प्रस्तवते) उपदेश करता है (तत्) इस से उस को कभी न भूलना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इ-च्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोकों का नियम करता है ॥ २० ॥

विष्णोरराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विष्णो॑र॒राट॑मसि॒ विष्णोः॒ श्नप्त्रे॑ स्थो॒ विष्णोः॒ स्यूर॑सि॒ वि-ष्णो॑र्ध्रु॒वो॒ऽसि । वै॒ष्ण॒वम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थः—जो यह अनेक प्रकार का जगत् है वह (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से. (रराटम्) उत्पन्न होकर प्रकाशित है (विष्णोः) सर्व सुख प्राप्त करने वाले ईश्वर से (स्यूः) विस्तृत (असि) है । सब जगत् (वैष्णवम्) यज्ञ का साधन (असि) है और (विष्णोः) सब में प्रवेश करने वाले जिस ईश्वर के (श्नप्त्रे) जड़ चेतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है उस सब जगत् के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर ! हम लोग (त्वा) आप को (विष्णवे) यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये आश्रय करते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर ही रचने और धारण करने वाला व्यापक इष्ट देव है ऐसा जान कर सब कामनाओं की सिद्धि करें २१

देवस्यत्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमाऋषिः । यज्ञोदेवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी पंक्ति-श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । आदद इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्या-म् । आद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वा अपि॑ कृन्तामि । बृह॑न्न-सि बृ॒हद्र॑वा बृह॒तीमिन्द्रा॑य॒ वाचं॑ वद ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (देवस्य) सब को प्रकाश करने आनन्द देने वा (सवितुः) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न

किये हुए संसार में जिस यज्ञ को (आददे) ग्रहण करता हूं वैसे तू भी (त्वा) उसको ग्रहण कर जैसे मैं (नारि) यज्ञ क्रिया वा (इदम्) यज्ञ के अनुष्ठान का ग्रहण करता हूं वैसे तू भी ग्रहण कर जैसे (अहम्) मैं (रक्षसाम्) दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों के (ग्रीवाः) शिरों को भी (अपिकृन्तामि) छेदन करता हूं वैसे तुम भी छेदन करो । जैसे मैं इस अनुष्ठान से (बृहद्रवाः) बड़ाई वाला बड़ा होता हूं वैसे तू भी हो और जैसे मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (बृहतीम्) बड़ी (वाचम्) वाणी का उपदेश करता हूं वैसे तू भी (वद) कर ॥ २२ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्य्यों में उपयोग कर सुखों में प्राप्त करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर सब सुखों को पहुंचना चाहिये ॥ २२ ॥

रक्षोहणमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्यासुरी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः । मध्यमस्य स्वराड्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
यम्मे सबन्धुरित्युत्तरस्य स्वराड् ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

इष्टि से मनुष्यों को किस प्रकार का उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे
निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे स-
मानो यमसमानो निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सब-
न्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहन्तं वलगमुत्किरामि यम्मे सजातो य-
मसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (वलगहनम्) बलों को बिडोलने और (रक्षोहणम्) राक्षसों के हनन करने वाले कर्म और (वैष्णवीम्) व्यापक ईश्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान करके (यम्) जिस (वलगम्) बल प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (उत्किरामि) उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हूं (तम्) उस यज्ञ को वैसे ही तू भी (इदम्) इस को प्रकाशित कर और जैसे (मे) मेरा (निष्ट्यः) यज्ञ में कुशल (अमात्यः) मेधावी विद्वान् मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (इदम्) भूगर्भ विद्या की परीक्षा के लिये स्थान को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे (तम्) उसको मेरा भी भृत्य खोदे जैसे (अहम्) भूगर्भ विद्या को जानने

वाला मैं (यम्) जिस (वलगम्) वल प्राप्त कराने वाले खेती आदि यज्ञ वा (इदम्) खननरूपी कर्म को (उत्किरामि) अच्छे प्रकार संपादन करता हूं वैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (समानः) सदृश वा असदृश मनुष्य (यम्) जिस कर्म को (निचखान) खनन करता है वैसे तेरा भी खोदे, जैसे (अहम्) पढ़ने पढ़ाने वाला मैं (यम्) जिस (वलगम्) आत्मवल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस पढ़ने पढ़ाने रूपी कर्म को (उत्किरामि) सम्पन्न करता हूं वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसा (मे) मेरा (सबन्धुः) तुल्य बन्धु मित्र वा (असबन्धुः) तुल्य बन्धु रहित अमित्र (यम्) जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे उसको तेरा भी करे, जैसे (अहम्) सब का मित्र मैं (यम्) जिस (वलगम्) राज्य वल प्राप्त कराने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस कर्म को (उत्किरामि) संपादन करता हूं वैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (सजातः) साथ उत्पन्न हुआ (असजातः) साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (कृत्याम्) उत्तम क्रिया को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस क्रिया को निःसन्देह करे। जैसे मैं इस सब कर्म को (उत्किरामि) संपादन करता हूं वैसे तुम भी करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनुकरण कभी न करना चाहिये ॥ २३ ॥

स्वराडसीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। सूर्यविद्वांसौ देवते। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है ॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जिस कारण आप (स्वराट्) अपने आप प्रकाशमान (असि) हैं इस से (सपत्नहा) शत्रुओं के मारने वाले होते हो, जिस कारण तुम (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशमान हो इस से (अभिमातिहा) अभिमान युक्त मनुष्यों को मारने वाले होते हो, जिस से (जनराट्) धार्मिक विद्वानों में प्रकाशित हैं इस से (रक्षोहा) राक्षस दुष्टों को मारने वाले होते हैं जिस से आप (सर्वराट्) सब में प्रकाशित हैं इस से (अमित्रहा) अमित्र अर्थात् शत्रुओं के मारने वाले

होते हैं ॥ १ ॥ जिस कारण यह सूर्य लोक (स्वराट्) अपने आप (असि) प्रकाशित है इस से (सपत्नहा) मेघ के अवयवों को काटने वाला होता है जिस कारण यह (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशित (असि) है इस से (अभिमातिहा) अभिमानकारक चोर आदि का हनन करने वाला होता है जिस कारण यह (जनराट्) धार्मिक विद्वानों के मन में प्रकाशित (असि) है इस से (रक्षोहा) राक्षस वा दुष्टों का हनन करने वाला होता है जिस से यह (सर्वराट्) सब में प्रकाशमान (असि) है इस से (अमित्रहा) दुष्टों को दण्ड देने का निमित्त होता है ॥ २४ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही तू भी सब शत्रुओं को निवारण कर प्रजा को सुखी कर ॥ २४ ॥

रक्षोहण इत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः । वलगहनावुपेत्युत्तरस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यजमान सभा आदि के अध्यक्ष यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री का ग्रहण करावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां वलगहना उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥२५॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! जैसे तुम (रक्षोहणः) दुष्टों का नाश करने वाले हो वैसे शत्रुओं के बल को अस्तव्यस्त करने हारा मैं (वैष्णवान्) यज्ञ देवता वाले (वः) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से (प्रोक्षामि) इन घमंडी मनुष्यों को शुद्ध करूं जैसे आप (रक्षोहणः) अधर्मात्मा दुष्ट दस्युओं को मारने वाले हैं वैसे (वलगहनः) शत्रुसेना की थाह लेने वाला मैं (वैष्णवान्) यज्ञ सम्बन्धी (वः) तुम को सुखों से मान्य कर दुष्टों को (अवनयामि) दूर करता हूं, जैसे (वलगहनः) अपनी सेना को व्यूहों की शिक्षा से विलोडन करने वाला मैं (रक्षोहणः) शत्रुओं को मारने वा (वैष्णवान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (वः) तुम को (अवस्तृणामि) सुख से आच्छादित करता हूं वैसे तुम भी किया करो, जैसे (रक्षोहणौ) राक्षसों के मारने वा (वलगहनौ) बलों को विलोडन करने वाले (वाम्) यज्ञपति वा यज्ञ कराने वाले विद्वान् का धारण करते हो वैसे मैं भी (उपदधामि)

धारण करता हूं जैसे (रक्षोहणौ) राक्षसों के मारने (वलगहनौ) वलों को विलोडने वाले (याम्) प्रजा सभाध्यक्ष आप (वैष्णवी) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानों की क्रिया वा (वैष्णवम्) जो विष्णुसम्बन्धी ज्ञान है इन सब को तर्क से जानते हैं वैसे मैं भी (पर्यूहामि) तर्क से अच्छे प्रकार जानूं और जैसे आप सब लोग (वैष्णवाः) व्यापक परमेश्वर की उपासना करने वाले (स्थ) हैं वैसा मैं भी होऊं ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं—मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना युक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा के बल को पूर्ण करके यज्ञ से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जीतकर सब भूमि के राज्य की पलना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

देवस्यत्वेतस्यौतथ्यो दीर्घतमाऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । यवोऽसीत्युत्तरस्य निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस लिये इस यज्ञ को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आदंदे नार्य॑सीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि॑ कृन्तामि यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारा॑तीर्दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदंनाः पितृषदंनमसि ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने और (देवस्य) सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य्य तथा (पूष्णः) अति पुष्ट वीर के (हस्ताभ्याम्) प्रबल प्रतापयुक्त भुज और दण्ड से अनेक उपकारों को (आददे) लेता वा (इदम्) इस जगत् की रक्षा कर (रक्षसाम्) दुष्टकर्म करने वाले प्राणियों के (ग्रीवाः) शिरों का (अपि) (कृन्तामि) छेदन ही करता हूं तथा जैसे पदार्थों का उत्तम गुणों से मेल करता हूं वैसे तू भी उपकार ले और (यवय) उत्तम गुणों से पदार्थों का मेल कर जैसे मैं (द्वेषः) ईर्षा आदि दोष वा (अरातीः) शत्रुओं को (अस्मत्) अपने से दूर कराता हूं वैसे तू भी (यवय) दूर करा । हे विद्वन् ! जैसे हम लोग (दिवे) ऐश्वर्य्यादि गुण के प्रकाश होने के लिये (त्वा) तुझ को (अन्तरिक्षाय) आकाश में रहने वाले पदार्थं को शोधने के लिये (त्वा) तुझ को (पृथिव्यै)

पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि होने के लिये (त्वा) तुझ को सेवन करते हैं वैसे तु
लोग भी करो । जैसे (विभूवदनम्) विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान (अ
सि) है और जिस मे (विभूवदना.) जैसे ज्ञानियों में ठहर पवित्र होते हैं वैसे मैं शु
होऊं तथा सब मनुष्य (शुन्धन्ताम्) अपनी शुद्धि करें और हे स्त्री ! तू भी यह स
इसी प्रकार कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-मनुष्यों को योग्य है कि ठीक
क्रियाक्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान कर के सब प्रकार से अ
पनी शुद्धि करें ॥ २६ ॥

उदिवमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सभापति और अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या
करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदिवꣳस्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मा-
रुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि
रायस्पोषवनि पर्यूहामि । ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां
दृꣳह ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे परमविद्वन् ! जैसे (त्वा) आप को (मारुतः) वायु (ध्रुवेण) नि
श्चल (धर्मणा) धर्म से (मिनोतु) प्रयुक्त करे (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान भी
धर्म से प्रयुक्त करते हैं वैसे आप कृपा करके हम लोगों के लिये (दिवम्) विद्या गु
णों के प्रकाश को (उत्तभान) अज्ञान से उघाड़ देओ तथा (अन्तरिक्षम्) सब पदा
र्थों के अवकाश को (पृण) परिपूर्ण कीजिये (पृथिव्याम्) भूमि पर (द्युतानः) स
द्विद्या के गुणों का विस्तार करते हुए आप सुखों को (दृंहस्व) बढ़ाइये (ब्रह्म) वेद
विद्या को (दृंह) बढ़ाइये (क्षत्रम्) राज्य को बढ़ाइये (आयुः) अवस्था को (दृंह)
बढ़ाइये और (प्रजाम्) उत्पन्न हुई प्रजा को (दृंह) वृद्धियुक्त कीजिये इसी लिये
मैं (ब्रह्मवनि) ब्रह्मविद्या को सेवन करने वा कराने (क्षत्रवनि) राज्य को सेवन
करने कराने (रायस्पोषवनि) और धनसमूह की पुष्टि को सेवने वा सेवन कराने
वाले आप को (पर्यूहामि) सब प्रकार के तर्कों से निश्चय करता हूं वैसे आप मुझ
को सर्वथा सुखदायक हूजिये और आप को सब मनुष्य तर्कों से जानें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—हे मनुष्यो ! आप

लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान् सब को सुख देता है वैसे यह यज्ञ भी विद्या गुण को बढ़ा कर सब जीवों को सुख देता है, यह जानो ॥ २७ ॥

ध्रुवासीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥२८॥

पदार्थः—हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री ! जैसे तू (प्रजया) राज्य वा अपने सन्तानों और (पशुभिः) हाथी घोड़े गाय आदि पशुओं के सहित (अस्मिन्) इस (आयतने) जगत् वा अपने स्थान वा सबके सत्कार कराने के योग्य यज्ञमें (ध्रुवा) दृढ़ सङ्कल्प (असि) है वैसे (अयम्) यह (यजमानः) यज्ञ करने वाला तेरा पति यजमान भी (ध्रुवः) दृढ़ सङ्कल्प है । तुम दोनों (घृतेन) घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (पूर्येथाम्) परिपूर्ण करो । हे यज्ञ करने वाली स्त्री ! तू (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को भी अपने यज्ञ से (छदिः) (असि) है अब तू और तेरा पति यह यजमान (विश्वजनस्य) संसार का (छाया) सुख छाया करने वाला (भूयात्) हो ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से दृढ़ विद्या और सुखों को पाकर दुःखों को छोड़ें उन का सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्ठान सदा ही करते रहें ॥ २८ ॥

परित्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः ॥
गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर और सभाध्यक्ष से क्या २ होने को योग्य है इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

परि त्वा गिर्वणो गिरऽइमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर वा सभाध्यक्ष (इमाः) ये मेरी किई हुई (विश्वतः) समस्त (गिरः) स्तुतियें (परि) सब प्रकार से (भवन्तु) हों और उसी समय की ही न हों किन्तु (वृद्धायुं) वृद्धों के समान आचरण

करने वाले आप के (अनु) पश्चात् (वृद्धयः) अत्यन्त बढ़ती हुई और (जुष्टयः) प्रीति करने योग्य (जुष्टाः) प्यारी हों ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे संपूर्ण उत्तम गुण कर्मों के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और सभापति स्तुति करने योग्य हैं वैसे ही तुम लोगों को भी होना चाहिये ॥ २९ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते । आर्च्युष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥३०॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष ! जैसे (वैश्वदेवम्) समस्त पदार्थों का निवासस्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप (ऐन्द्रम्) सब का आधार हैं इसी से हम लोगों को (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य का (स्यूः) संयोग करने वाले (असि) हैं और (इन्द्रस्य) सूर्य आदि लोक वा राज्य को (ध्रुवः) निश्चल करने वाले (असि) हैं ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है—जैसे सकल ऐश्वर्य का देने वाला जगदीश्वर है वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यों को भी होना चाहिये ॥ ३० ॥

विभूरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः । श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस से आप जैसे व्यापक आकाश और ऐश्वर्ययुक्त राजा होता है वैसे (विभूः) व्यापक और ऐश्वर्ययुक्त (असि) हैं (वह्निः) जैसे होम किये पदार्थों को योग्यस्थान में पहुंचाने वाला अग्नि है वैसे (हव्यवाहनः) हवन करने के योग्य पदार्थों को सम्पादन करने वाले (असि) हैं जैसे जीवों में प्राण है वैसे (प्रचेताः) चेतन करने वाले (श्वात्रः) विज्ञान (असि) हैं जैसे सूत्रात्मा पवन सब में व्याप्त है वैसे (विश्ववेदाः) विश्व को जानने (तुथः) ज्ञान को बढ़ाने वाले (असि) हैं इस से आप सत्कार करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है-सब मनुष्यों को उचित है कि

ईश्वर और विद्वान् का सत्कार करना कभी न छोड़ें क्योंकि अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है इसलिये इन को जानें ॥ ३१ ॥

उशिगसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः । सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदन ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उशिक्) कान्तिमान् (असि) हैं (अंघारिः) खोटे चलन वाले जीवों के शत्रु वा (कविः) क्रान्तप्रज्ञ (असि) हैं (बम्भारिः) बन्धन के शत्रु वा तारादि तन्तुओं के विस्तार करने वाले (असि) हैं (दुवस्वान्) प्रशंसनीय सेवा युक्त स्वयम् (शुन्ध्यूः) शुद्ध (असि) हैं (मार्जालीयः) सब को शोधने वाले (सम्राट्) और अच्छे प्रकार प्रकाशमान (असि) हैं (कृशानुः) पदार्थों को अतिसूक्ष्म (पवमानः) पवित्र और (परिषद्यः) सभा में कल्याण करने वाले (असि) हैं जैसे (प्रतक्वा) हर्षित और (नभः) दूसरे के पदार्थ हरलेने वालों को मारने वाले (असि) हैं (हव्यसूदनः) जैसे होम के द्रव्य को यथायोग्य व्यवहार में लाने वाले और (मृष्टः) सुख दुःख को सहने करने और कराने वाले (असि) हैं जैसे (स्वर्ज्योतिः) अन्तरिक्ष को प्रकाश करने वाले और (ऋतधामा) सत्यधाम युक्त (असि) हैं वैसे ही उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है-जिस परमेश्वर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥३२॥

समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

पदार्थ-जैसे परमेश्वर ! (समुद्रः) सब प्राणियों का गमनागमन कराने हारे (विश्वव्यचाः) जगत् में व्यापक और (अजः) अजन्मा (असि) है (एकपात्) जिस के एकपाद विश्व है (अहिः) वा व्यापनशील (बुध्न्यः) तथा अन्तरिक्ष में होने वाला (असि) है और (वाक्) वाणीरूप (असि) है (ऐन्द्रम्) परमैश्वर्य का (सदः) स्थानरूप है और (ऋतस्य) सत्य के (द्वारौ) द्वारों का (मासंताप्तम्) संताप कराने वाला नहीं है (अध्वपते) हे धर्म व्यवहार के मार्गों की पालन करने हारे विद्वानो ! वैसे तुम भी संताप न करो। हे ईश्वर ! (मा) मुझ को (अध्वनम्) धर्मशील के मार्ग से (प्रतिर) पार कीजिये और (मे) मेरे (अस्मिन्) इस (देवयाने) विद्वानों के जाने आने योग्य (पथि) मार्ग में जैसे (स्वस्ति) सुख (भूयात्) हो वैसा अनुग्रह कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर वा जगत् के कारण रूप जीव को अनादित्व होने वा जन्म न होने से अविनाशीपन है। परमेश्वर की कृपा उपासना सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ के साथ वर्त्तमान हुए मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उस में सुख होता है और आलसी मनुष्यों को नहीं होता ॥ ३३ ॥

मित्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मित्रस्य॑ मा॒ चक्षु॑षेक्षध्व॒मग्न॑यः सगराः॒ सग॑रास्थ॒ सग॑रेण॒ नाम्ना॒ रौद्रे॒णानी॑केन पा॒तमा॑ग्नयः पिपृ॒तमा॑ग्नयो॒ गोपा॒यत॑ मा॒ नमो॑ वोऽस्तु॒ मा मा॑ हिꣳसिष्ट ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (सगराः) अन्तरिक्ष अवकाश युक्त (अग्नयः) अच्छे २ पदार्थों को प्राप्त करने वाले विद्वान् लोगो तुम (मा) मुझ को (मित्रस्य) मित्र की दृष्टि से (ईक्षध्वम्) देखिये आप (सगराः) विद्योपदेश अवकाशयुक्त (स्थ) हूजिये और जैसे आप (अग्नयः) संसाधित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं वैसे (सगरेण) अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (रौद्रेण) शत्रुओं को रोदन करने वाली (नाम्ना) प्रसिद्ध (अनीकेन) सेना से (मा) मुझे (पात) पालिये (अग्नयः) जैसे ज्ञानी लोग सब प्रकार सब को सुख देते हैं वैसे (पिपृत) सुखों से पूरण कीजिये (गोपायत) और सब ओर से पालन कीजिये और कभी (मा) मुझ को (माहिंसिष्ट) नष्ट मत कीजिये (वः) इस से आप के लिये (मे) मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुखी करते हैं वैसे इन विद्वानों को कार्यों के करने में चतुर और विद्या युक्त होकर विद्यार्थी लोग सेवा से सुखी करें ॥ ३४ ॥

ज्योतिरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां समित् । त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्यो ऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा । जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य देने वाले जगदीश्वर ! आप (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (विश्वरूपम्) सब रूपयुक्त (ज्योतिः) सब के प्रकाश करने वाले (समित्) अच्छे प्रकाशित (असि) हैं (तनूकृद्भ्यः) शरीरों को सम्पादन करने (द्वेषोभ्यः) और द्वेष करने वाले जीवों तथा (अन्यकृतेभ्यः) अन्य मनुष्यों के किये हुए दुष्ट कर्म्मों से (यन्ता) नियम करने वाले (असि) हैं उन से (उरु) बहुत (वरूथम्) उत्तम गृह (स्वाहा) वाणी (अप्तुः) व्यापक (आज्यस्य) विज्ञान को (जुषाणः) सेवन करता हुआ मनुष्य (स्वाहा) वेदवाणी को (वेतु) जाने ॥३५॥

भावार्थः—जिस से परमेश्वर सब लोकों का नियम करने वाला है इससे ये नियम में चलते हैं ॥ ३५ ॥

अग्नेनयेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब को अच्छे मार्ग में पहुंचाने (देव) और सब आनन्दों को देने वाले (विद्वान्) समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर ! आप कृपा से (राये) मोक्ष रूप उत्तम धन के लिये (सुपथा) जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम कर्म विज्ञान वा प्रजा को प्राप्त होते हैं वैसे (अस्मान्) हम लोगों को (नय) प्राप्त कीजिये और (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) दुःख फलरूपी पाप को (अस्मत्) हम लोगों से (युयोधि) दूर कीजिये हम लोग (ते) आप

की (भूरिष्ठा) अत्यन्त (नम उक्तिम्) नमस्काररूप वाणी को (विधेम) कहते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमा०—जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन कर के इस लोक के सुखों को उन के कर्मानुसार देता है वैसे ही न्याय करने हारे भी किया करें ॥ ३६ ॥

अयमग्निरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर की उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है ॥

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसाताऽवयथं शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥३७॥

पदार्थः—यह (अग्निः) परमेश्वर का उपासक जन (नः) हम प्रजास्थ जीवों की (वरिवः) निरन्तर रक्षा (कृणोतु) करे जैसे कोई वीर पुरुष अपनी सेनाको लेकर संग्राम में निश्चित दुष्ट वैरियों को पहिले ही जा घेरता है वैसे (अयं) यह युद्ध करने में कुशल सेनापति (वाजसातौ) संग्राम में दुष्ट शत्रुओं को (पुरः) पहिले ही (एतु) जा घेरे और जैसे (अयं) यह वीरों को हर्ष देने वाला सेनापति दुष्ट शत्रुओं को (प्रभिन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (वाजान्) संग्रामों को (जयतु) जीते (अयं) यह विजय कराने वाला सेनापति (जर्हृषाणः) निरन्तर प्रसन्न हो कर (स्वाहा) युद्ध के प्रबंध की श्रेष्ठ बोलियों को बोलता हुआ (जयतु) अच्छी तरह जीते ॥ ३७ ॥

भावार्थः—जो लोग परमेश्वर की उपासना नहीं करते हैं उनका विजय सर्वत्र न ही होता जो अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुषों का सत्कार करके सेना नहीं रखते हैं उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है इस से मनुष्यों को चाहिये कि दो प्रबंध अर्थात् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा वीरों की रक्षा सदा करते रहें ॥ ३७ ॥

उरुविष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर वे कैसे हैं यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

पदार्थः—जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है वैसे हे विद्यादि गुणों में व्याप्त होने वाले वीर पुरुष ! अपने विद्या के फल को (उरु) बहुत (वि) अच्छी तरह (क्रमस्व) पहुंच

भावार्थः-इस मन्त्र में [illegible] मनुष्यों को योग्य है कि जिस [illegible] उत्तम धार्मिक मनुष्यों [illegible] विज्ञान को [illegible] ॥ ३९ ॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः॥

फिर वे कैसे वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियं सा मयि। यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमंस्तानु तपस्तपस्पतिः॥ ४० ॥

पदार्थः—(व्रतपाः) जैसे सत्य का पालने हारा विद्वान् हो वैसे (अग्ने) हे विशेष ज्ञानवान् पुरुष! जो मेरा (व्रतपाः) सत्य विद्या गुणों का पालने हारा आचार्य्य (अभूत्) हुआ था वैसे मैं (ते) तेरा होऊं (या) जो (तव) तेरी (तनूः) विद्या आदि गुणों में व्याप्त होने वाला देह है (सा) वह (मयि) मेरे मित्र सुत में भी हो (एषा) यह (त्वयि) मेरे मित्र सुत में वृद्धि हो (यो) जो (मम) मेरी (तनूः) विद्या की फैलावट है (सा) वह (त्वयि) मेरे पढ़ाने वाले तुझ में हो (इयम्) यह (मयि) मेरे शिष्य सुत में वृद्धि हो (व्रतपते) हे सत्य आचरणों के पालने हारे जैसे सत्यगुण सत्य उपदेश रक्षक विद्वान् होता है वैसे मैं और तू (यथायथम्) यथायुक्त मित्र होकर (व्रतानि) सत्य आचरणों का वर्त्ताव करें। हे मित्र! जैसे (तव) तेरा (दीक्षापतिः) यथोक्त उपदेश का पालने हारा मेरे लिये (दीक्षाम्) सत्य का उपदेश (अमंस्त) करना जान रहा है वैसे मेरा मेरे लिये (अनु) जाने। जैसे तेरा (तपस्पतिः) अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा आचार्य मेरे लिये (तपः) पहिले क्लेश और पीछे सुख देने हारे ब्रह्मचर्य्य को करना जान रहा है वैसे मेरा अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा मेरे लिये जाने॥ ४० ॥

भावार्थः—जैसे पहिले विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये। जब तक मनुष्य सुख दुःख हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानें तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होता इस से मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें॥ ४० ॥

उरु विष्णो इत्यस्यागस्त्य ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धार स्वरः॥

(क्षयाय) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य (नः) हम लोगों को (कृधि) कीजिये हे ! (घृतयोने) विद्यादि सुशिक्षा युक्त पुरुष ! जैसे अग्नि घृत पी के प्रदीप्त होता है वैसे तू भी अपने गुणों में (घृतम्) घृत को (प्रप्र पिब) वारंवार पीके शरीर बलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज् आदि विद्वान् लोग (यज्ञपतिम्) यजमान की रक्षा करते हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं वैसे तू भी (स्वाहा) यज्ञ की क्रिया से (यज्ञम्) यज्ञ के (तिर) पार हो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालने से सब जीवों को सुख देता है वैसे आनन्द में हम सभों को रहना उचित है जैसे अग्नि काष्ठ आदि इन्धन वा घृत आदि पदार्थों को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है वैसे हम लोगों को भी शत्रुओं को जीत प्रकाशित होना चाहिये और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करने वाले यजमान को पाकर अपने कामों को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा सभापति को पाकर अपने २ सुखों को सिद्ध किया करें ॥ ३८ ॥

देवसवितरित्यस्यागस्त्यऋषिः । सोमसवितारौ देवते । आद्यस्य साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । एतत्त्वमित्युत्तरस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देव॑सवितरे॒ष ते॒ सोम॒स्तꣳ र॑क्षस्व॒ मा त्वा॑ दभन् । ए॒तत्त्वं दे॑व सोम दे॒वो दे॒वाँ२॥ उपा॑गा इ॒दम॒हम्म॑नु॒ष्या᳕न्त्स॒ह रा॒यस्पोषे॑ण॒ स्वाहा॒ निर्वरु॑णस्य॒ पाशा॑न्मुच्ये ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (देव) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले ऐश्वर्य्यवान् विद्वान् सभाध्यक्ष ! जैसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्य्य को रखता हूं वैसे तू जो (एषः) यह (ते) तेरा (सोमः) ऐश्वर्य्य समूह है (तम्) उस को (रक्षस्व) रख जैसे मुझ को शत्रुजन दुःख नहीं दे सकते हैं वैसे (त्वाम्) तुझे भी (मा दभन्) न दे सकें हे (देव) सुख के देने और (सोम) सज्जनों के मार्ग में चलाने हारे राजा ! (त्वम्) तू (एतत्) इस कारण सभाध्यक्ष और (देवः) परिपूर्ण विद्या प्रकाश में स्थित हुआ (देवान्) श्रेष्ठ विद्वानों के (उप) समीप (अगाः) जा और मैं भी जाऊं जैसे(इदं) इस आवरण को कर के (रायः) अत्यन्त धन की (पुष्या) पुष्टाई के साथ (मनुष्यान्) विचारवान् पुरुष और (देवान्) विद्वानों को प्राप्त होकर (वरुणस्य) दुःख से तिरस्कार करने वाले दुष्ट जन को (पाशात्) बन्धन से (मुच्ये) छूटूं वैसे तू भी (निः) निरंतर छूट ॥ ३९ ॥

विद्वान् जन ! हम लोग (त्वा) तुझे यज्ञ के लिये चाहते हैं। श्रेष्ठ विद्वान् जन जैसे मैं इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता वैसे तू भी (एनम्) इस यज्ञ को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़ ॥ ४२ ॥

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि नीच व्यवहार और नीच पुरुषों को छोड़ के अच्छे २ व्यवहार तथा उत्तम विद्वानों को नित्य चाहें और उत्तमों से उत्तम तथा न्यूनों से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें। यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक दूसरे के मेल से सुखी हों ॥ ४२ ॥

द्यामालेखीरित्यस्यागस्त्य ऋषिः। यज्ञो देवता। ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध कराने वाली जो विद्या है उस का नित्य सेवन करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

द्याम्मा लेखीर्न्तरिक्षम्मा हिंसीः पृथिव्या सम्भव। अयꣳ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्वन्देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे मैं सूर्य्य के सामने होकर (द्याम्) उस के प्रकाश को दृष्टिगोचर नहीं करता हूं वैसे तू भी उसको (मा) (लेखीः) दृष्टिगोचर मत कर जैसे मैं (अन्तरिक्षम्) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहीं बिगाड़ता हूं वैसे तू उस को (मा) (हिंसीः) मत बिगाड़। जैसे मैं (पृथिव्या) पृथिवी के साथ होता हूं वैसे तू भी उस के साथ (सम्) (भव) हो (हि) जिस कारण जैसे (तेतिजानः) अत्यन्त पैना (स्वधितिः) वज्र शत्रुओं का विनाश कर के ऐश्वर्य्य को देता है (अतः) इस कारण (अयम्) यह (त्वा) तुझे (महते) अत्यन्त श्रेष्ठ (सौभगाय) सौभाग्यपन के लिये सम्पन्न करें। और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य्य को (प्रणिनाय) प्राप्त करते हैं वैसे तुझे ऐश्वर्य्य पहुंचावे। हे (देव) आनन्दयुक्त (वनस्पते) वनों की रक्षा करने वाले विद्वान् ! जैसे (शतवल्शः) सैकड़ों अंकुरों वाला पेड़ फलता है वैसे तू भी इस उक्त प्रशंसनीय सौभाग्यपन से (वि) (रोह) अच्छी तरह फल और जैसे (सहस्रवल्शाः) हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले वैसे हम लोग भी उक्त सौभाग्यपन से फलें फूलें ॥४३॥

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—इस संसार में किसी मनुष्य को विद्या के प्रकाश का अभ्यास अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को न छोड़ना चाहिये ॥ ४३ ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरुक्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र युज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—जैसे सब पदार्थों में व्याप्त होने वाला पवन चलता है वैसे हे विद्या गुणों में व्याप्त होने वाले विद्वान् ! (उरु) अत्यन्त विस्तार युक्त (क्षयाय) विद्योन्नति के लिये (विक्रमस्व) अपनी विद्या के अङ्गों से परिपूर्ण हो और (नः) हम लोगों को सुखी (कृधि) कर जैसे जल का निमित्त बिजुली है वैसे हे पदार्थ ग्रहण करने वाले विद्वान् ! बिजुली के समान (घृतम्) जल (पिब) पी और जैसे मैं यज्ञपति को दुःख से पार करता हूं वैसे तू भी (स्वाहा) अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्मों को सेवन करके (प्रप्रतिर) दुःखों से अच्छे प्रकार पार हो ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान होरहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये ॥ ४१ ॥

अत्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध मनुष्य न सेवने चाहियें यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अत्यन्याँ २॥ अगान्नान्याँ २॥ उपांगामर्वाक्त्वा परेभ्योऽविदम्परोऽवरेभ्यः । तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयुज्यायै देवास्त्वा देवयुज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनंᳬ हिᳬसीः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) सब वृक्षियों के रखने वाले (देव) विद्वान् जन ! जैसे तू (अन्यान्) विद्वानों के विरोधी मूर्ख जनों को छोड़ के (अन्यान्) मूर्खों के विरोधी विद्वानों के समीप जाता है वैसे मैं भी विद्वानों के विरोधियों को छोड़ (उप) समीप (अगाम्) जाऊं । जो तू (परेभ्यः) उत्तमों से (परः) उत्तम और (अवरेभ्यः) छोटों से (अर्वाक्) छोटे हो (तम्) (त्वाम्) उन्हें मैं (अविदम्) पाऊं जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (देवयज्यायै) उत्तम गुण देने के लिये (त्वा) तुझ को चाहते हैं वैसे हम लोग भी (त्वा) तुझे (जुषामहे) चाहें और जैसे हम लोग (देवयज्यायै) अच्छे २ गुणों का सङ्ग होने के लिये (त्वा) तुझे चाहते हैं वैसे और भी ये लोग चाहें । जैसे ओषधियों का समूह (विष्णवे) यज्ञ के लिये सिद्ध होकर सब की रक्षा करता है वैसे हे रोगों को दूर करने और (स्वधिते) दुःखों का विनाश करने वाले

अथ षष्ठाध्यायस्यारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

अस्य देवस्य त्वेत्यस्य अगस्त्य ऋषिः । सविता देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः । यवोऽसीत्यस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप् शुन्धन्तामित्यस्य च भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दसी । ऋषभः स्वरः ॥

अब पांचवें अध्याय के पश्चात् ६ छठे अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मंत्र में राज्याभिषेक के लिये अच्छी शिक्षायुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आज्ञा-द्यादि विद्वान् लोग क्या २ उपदेश करें यह उपदेश किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपि कृन्तामि । यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ १ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (पितृषदनाः) पितरों में रहने वाले विद्वान् लोग (देवस्य) प्रकाशमय और (सवितुः) सब विश्व के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और उत्तम वीर्य्य से तथा (पूष्णः) पुष्टि का निमित्त जो प्राण है उस के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण से (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं वैसे ही मैं (आददे) ग्रहण करता हूं जैसे मैं (रक्षसाम्) दुष्ट काम करने वाले जीवों के (ग्रीवाः) गले (कृन्तामि) काटता हूं वैसे (त्वम्) तू (अपि) भी काट । हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण तू (यवः) संयोग विभाग करने वाला (असि) है इस कारण (अस्मत्) मुझ से (द्वेषः) द्वेष अर्थात् अप्रीति करने वाले वैरियों को (यवय) अलग कर और (अरातीः) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं उन को (यवय) पृथक् कर । जैसे मैं न्याय व्यवहार से रक्षा करने योग्य जन (दिवे) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिये (त्वाम्) न्याय प्रकाश करने वाले तुझ को (अन्तरिक्षाय) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने के लिये (त्वाम्) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देने वाले को तथा (पृथिव्यै)

इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन, विद्वान् और परमात्मा की प्रार्थना, विद्या और विद्वान् की व्याप्ति का निरूपण, अग्नि आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ का विस्तरण, योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और सूर्य्य के कर्म का कहना, प्राण और अपान की क्रिया का निरूपण, सब के नियम करने वाले परमेश्वर की व्याप्ति का कहना, यज्ञ का अनुष्ठान, सृष्टि से उपकार लेना, सूर्य्य और सभाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना, सविता और सभाध्यक्ष के कर्म का उपदेश यज्ञ से सिद्धि, ईश्वर और सभाध्यक्ष से कार्य्यों की सिद्धि तथा उन के स्वरूप और कर्मों का वर्णन, ईश्वर और विद्वानों का वर्त्ताव और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन, ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार इन अर्थों के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अर्थों की संगति चतुर्थाध्याय के अर्थों से जाननी चाहिये ॥

यह पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



भावार्थः—प्रजा पुरुषों के स्वीकार किये बिना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता तथा राजा आदि सभा जिस को आदर से न चाहे वह मन्त्री होने को वा कोई पुरुष अपनी कीर्त्ति की उत्तरोत्तर दृढ़ता के बिना सेना का ईश्वर यथायोग्य न्याय से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मण्डल की ईश्वरता के योग्य नहीं हो सकता ॥ २ ॥

या ते धामानीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । आर्च्युष्णिक् छन्दः । अत्राहेति साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ब्रह्मवनित्वेत्यस्य निचृत्प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वाणिज्य कर्म करने वाले मनुष्य उस को कैसा जानकर आश्रय करते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः । अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमम्पदमव भारि भूरि । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म दृᳪह क्षत्रन्दृᳪहायुर्दृᳪह प्रजान्दृᳪह ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! (या) जिन में (ते) तेरे (धामानि) धाम अर्थात् जिन में प्राणी सुख पाते हों उन स्थानों को हम (गमध्यै) (उश्मसि) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य का प्रकाश है वैसे (यत्र) जिन में (उरुगायस्य) स्तुति करने के योग्य (विष्णोः) सर्व व्यापक परमेश्वर की (भूरिशृङ्गाः) अत्यन्त प्रकाशित (गावः) किरणें चैतन्यकला (अयासः) फैली हैं (अत्र) (अह) इन्हीं में (तत्) उस परमेश्वर का (परमम्) सब प्रकार उत्तम (पदम्) और प्राप्त होने योग्य परमपद विद्वानों ने (भूरि) (अव) (भारि) बहुधा अवधारण किया है इस कारण (त्वा) तुझे (ब्रह्मवनि) परमेश्वर वा वेद का विज्ञान (क्षत्रवनि) राज्य और वीरों को चाहना (रायस्पोषवनि) धन की पुष्टि के विभाग करने वाले आप को मैं (पर्यूहामि) विविध तर्कों से समझाता हूं कि तू (ब्रह्म) परमात्मा और वेद को (दृंह) दृढ़ कर अर्थात् अपने चित्त में स्थिर कर वढ़ (क्षत्रम्) राज्य और धनुर्वेदवेत्ता क्षत्रियों को (दृंह) उन्नति दे (आयुः) अपनी अवस्था को (दृंह) बढ़ा अर्थात् ब्रह्मचर्य और राज्यधर्म से दृढ़ कर तथा (प्रजाम्) अपने सन्तान वा रक्षा करने योग्य प्रजाजनों को (दृंह) उन्नति दे ॥ ३ ॥

भूमि के राज्य के लिये (त्वा) तुझ राज्य विस्तार करने वाले को पवित्र करता हूं वैसे ये लोग भी (त्वा) आप को (शुन्धन्ताम्) पवित्र करें जैसे तू (पितृषदनम्) विद्वानों के घर के समान (असि) है पिता के सदृश सब प्रजा को पाला कर। हे सभापति की नारि स्त्री ! तू भी ऐसा ही किया कर ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो विद्या में अति विचक्षण पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते हैं वे सुख संयुक्त होते हैं ॥ १ ॥

अग्रेणीरित्यस्य शाकल्य ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । देवस्त्वेत्यस्य स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह तिलक किया हुआ सभाध्यक्ष कैसे वर्त्ते इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्रेणीरसि स्वावेशऽउन्नेतॄणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षम्मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳहीः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (अग्रेणीः) पढ़ाने वाला अपने शिष्यों को या पिता अपने पुत्रों को उन के पठनारम्भ से पहिले ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय धार्मिकता युक्त करता है वैसे हम सभों के लिये तू (असि) है (उन्नेतॄणाम्) जैसे उत्कर्षता पहुंचाने वालों का राज्य हो वैसे (स्वावेशः) अच्छे गुणों में प्रवेश करने वाले के समान होकर तू (एतस्य) इस राज्य के पालने को (वित्तात्) जान। हे राजन् ! जैसे (त्वा) तुझे सभासद् जन (सुपिप्पलाभ्यः) अच्छे २ फलों वाली (ओषधीभ्यः) ओषधियों से (मध्वा) निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से (अनक्तु) सींचे वैसे प्रजाजन भी तुझे सींचें तू इस राज्य में अपने (अग्रेण) प्रथम यश से (द्याम्) विद्या और राजनीति के प्रकाश को (अस्पृक्षः) स्पर्श कर (मध्येन) मध्य अर्थात् तदन्तर बढ़ाए हुए यश से (अन्तरिक्षम्) धर्म के विचार करने के मार्ग को (आप्राः) पूरा कर और (उपरेण) अपने राज्य के नियम से (पृथिवीम्) इस भूमि के राज्य को प्राप्त होकर (अदृꣳहीः) दृढ़ कर बढ़ता जा और (देवः) समस्त राजाओं का राजा (सविता) सब जगत् को अन्तर्यामी पन से प्रेरणा देने वाला जगदीश्वर (त्वा) तुझ को राजा कर के तेरे पर (स्थास्यति) अधिष्ठाता होकर रहेगा ॥ २ ॥

के प्रकाश में (आततम्) व्याप्त (चक्षुः) नेत्र के (इव) समान (सदा) सब समय में (पश्यन्ति) देखते हैं (तत्) उस को तुम लोग भी निरन्तर देखो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (पश्यत) इस पद का अनुवर्त्तन किया जाता है और पूर्णोपमालंकार है। निर्धूत अर्थात् छूट गये हैं पाप जिन के वे विद्वान् लोग अपनी विद्या के प्रकाश से जैसे ईश्वर के गुणों को देख के सत्य धर्माचार युक्त होते हैं वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये ॥ ५ ॥

परिधिरसीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। विद्वांसो देवताः। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। दिवः सूनुरसीत्यस्य भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर इस उपासना करने वाला सभाध्यक्ष किस प्रकार का होता है यह अगले मंत्र में उपदेश किया है॥

परिधिरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम्। दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक आरण्यस्ते पशुः॥ ६ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष राजन् ! तू (परिधिः) सब विद्याओं में अच्छे व्याप्त होने वाले के समान (असि) है (त्वाम्) तुझे (दैवीः) विद्वानों के (विशः) सन्तान के समान प्रजा (परि) (व्ययन्ताम्) सब व्याप्त अर्थात् सब ठिकाने व्याप्त हुए तेरे कार्यकारी हों (दिवः) प्रकाश के पुंज सूर्य से (सूनुः) उत्पन्न हुए किरण समुदाय के तुल्य तू (असि) है (ते) तेरा (पृथिव्याम्) पृथिवी में (लोक) राजधानी का देश हो और (आरण्य.) बनैले सिंहादि दुष्ट पशु तेरे वश्य भी हों ॥ ६ ॥

भावार्थः—राज्य का आचरण करते हुए राजा को प्रजा लोग प्राप्त होकर अपने पदार्थों का कर चुकावें और वह राजा उन प्रजाओं की रक्षा करने के लिये सिंह और शूकर वा अन्य और दुष्ट जीव तथा डाकू चोर उठाईगीरे और गांठ कटे आदि दुष्ट जनों को दण्ड से वश में कर अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म में प्रवृत्त करें ॥६॥

उपावीरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। त्वष्टा देवता। आर्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वह प्रजा जनों के प्रति क्या करे और वे प्रजा जन उस राजा के प्रति क्या करें यह उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्। देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम्॥ ७ ॥

पदार्थः—हे देव ! दिव्यगुण संपन्न (त्वष्टः) सब दुःख के छेदन करने वाले सभा-

भावार्थः—सभाध्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानों की कामना के बिना कोई भी पुरुष सुख नहीं पासकता न कोई जन परमेश्वर का अनादर करके चक्रवर्ती राज्यभोगने के योग्य होता है नहीं कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था संतान और प्रजा की रक्षा के बिना अच्छी उन्नति कर सकता है ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्म्माणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री-छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभापति अपने सभासद् आदि को क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे सभासदो ! जैसे (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (युज्यः) सदाचार युक्त (सखा) मित्र (विष्णोः) उस व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जो संसार का बनाना पालन और संहार करना सत्यगुण है उन को देखता हुआ मैं (यतः) जिस ज्ञान से (व्रतानि) अपने मन में सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) बांध रहा अर्थात् नियम कररहा हूं वैसे ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणों को (पश्यत) दृढ़ता से देखो कि जिस से राज्यादि कार्मों में सत्य व्यवहार के करने वाले होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर से प्रीति और सत्याचरण के बिना कोई भी मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव को देखने के योग्य नहीं हो सकता वैसे हुए बिना राज्यकर्मों को यथार्थ न्याय से सेवन कर सकता है न सत्य धर्माचार से रहित जन राज्य बढ़ाने को कभी समर्थ हो सकता है ॥ ४ ॥

तद्विष्णोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

उक्त मन्त्र के विषय में जो अनुष्ठान कहा है उस से क्या सिद्ध होता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे सज्जनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से (सूरयः) स्तुति करने वाले वेदवेत्ता जन (विष्णोः) संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाले परमेश्वर के जिस (परमम्) अत्यन्त उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद को (दिवि) सूर्य

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्याञ्जुष्टन्नियुनज्मि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्यान्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥ ९ ॥

पदार्थः-हे शिष्य। मैं (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य युक्त (देवस्य) वेद विद्या प्रकाश करने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) गुणों से वा (पूष्णः) पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से (त्वाम्) तुझे (आददे) स्वीकार करता हूं तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को जो ब्रह्मचर्य्य धर्म के अनुकूल जल और औषधि हैं उन (अद्भ्यः) जल और (ओषधीभ्यः) गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से (नियुनज्मि) नियुक्त करता हूं तुझे मेरे समीप रहने के लिये तेरी (माता) जननी (अनु) (मन्यताम्) अनुमोदित करे (पिता) पिता अनुमोदित करे (सगर्भ्यः) सहोदर (भ्राता) भाई (अनु) अनुमोदित करे (सखा) मित्र (अनु) अनुमोदित करे और (सयूथ्यः) तेरे सहवासी (अनु) अनुमोदित करे (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को (प्र) (उक्षामि) उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य्य के नियम पालने के लिये अभिषिक्त करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस संसार में माता पिता बन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को चाहिये कि अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा दे कर ब्रह्मचर्य्य करावें जिस से वे गुणवान् हों ॥ ९ ॥

अपांपेरुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। आपो देवता। प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। सन्त इत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य को अवश्यक है कि विद्या उत्तम शिक्षा ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुरु किया करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपाम्पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तञ्चित्सद्देवहविः। सन्ते प्राणो वातेन गच्छताᳫं समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥१०॥

पदार्थः—हे शिष्य। तू (अपाम्) जल आदि पदार्थों का (पेरुः) रक्षा करने वाला

ध्यक्ष जिस से तू (उपायाः) शरणागत पालक सदृश (असि) है इसी से (वैयोः) विद्वानों से सम्बन्ध रखने वाली दिव्यगुण सम्पन्न (विशः) प्रजा जैसे (उशिजः) श्रेष्ठ गुण शोभित कामना के योग्य (वक्षितमान्) अतिशय धर्म मार्ग में चलने और चलाने वाले (देवान्) विद्वानों को (उपप्रागुः) प्राप्त हुए वैसे तुझे भी प्राप्त होते हैं जैसे तेरे आश्रय से प्रजा धनाढ्य हो के सुखी हो वैसे तू भी प्राप्त हुए प्रजाजनों से सत्कृत होकर (रमस्व) हर्षित हो जैसे तू प्रजा के पदार्थों को भोगता है वैसे प्रजा भी तेरे (हव्या) भोगने योग्य अमूल्य (वसु) धनादि पदार्थों को (स्वदन्ताम्) भोगें ॥७॥

भावार्थः—जैसे गुण के ग्रहण करने वाले उत्तम गुणवान् विद्वान् का सेवन करते हैं वैसे न्याय करने में चतुर राजा का सेवन प्रजाजन करते हैं इसी से परस्पर की प्रीति से सब की उन्नति होती है ॥ ७ ॥

रेवती रमध्वमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। प्राजापत्यनुष्टुप् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ऋतस्य त्वेत्यस्य निचृत् प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब पिता आदि रक्षकजन अपने सन्तानों को कैसे पढ़ाने वालों को देवें? और वह उन को कैसे स्वीकार करें? यह अगले मंत्र में उपदेश किया है॥

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि। ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (रेवतीः) अच्छे धन वाले सन्तानो! प्रजा जनो! तुम विद्या और अच्छी शिक्षा में (रमध्वम्) रमो। हे (बृहस्पते) वेदवाणी पालने वाले विद्वन्! आप (ऋतस्य) सत्य न्याय व्यवहार से प्राप्त (वसूनि) धन अर्थात् हम लोगों के दिये द्रव्य आदि पदार्थों को (धारय) स्वीकार कीजिये (अब अध्यापक का उपदेश शिष्य के लिये है) हे राजन्! प्रजापुरुष! वा (मानुषः) सर्व शास्त्र का विचार करने वाला मैं (पाशेन) अविद्या बन्धन से तुझे (प्रति मुञ्चामि) छुड़ाता हूं तू विद्या और अच्छी शिक्षाओं में धृष्ट हो ॥ ८ ॥

भावार्थ.—विद्वानों को अपनी शिक्षा से कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणीओं को परमेश्वर से लेके पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का बोध कराना चाहिये कि जिस से वे मूर्खपनरूपी बंधन को छोड़ के सदा सुखी हों ॥ ८ ॥

देवस्यत्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। सविता-आश्विनौ-पूषा च देवताः। प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। अग्नीषोमाभ्यामित्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ ९ ॥

पदार्थः-हे शिष्य ! मैं (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य युक्त (देवस्य) वेद विद्या प्रकाश करने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) गुणों से वा (पूष्णः) पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से (त्वाम्) तुझे (आददे) स्वीकार करता हूं तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को जो ब्रह्मचर्य्य धर्म के अनुकूल जल और औषधि हैं उन (अद्भ्यः) जल और (औषधीभ्यः) गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से (नियुनज्मि) नियुक्त करता हूं तुझे मेरे समीप रहने के लिये तेरी (माता) जननी (अनु) (मन्यताम्) अनुमोदित करे (पिता) पिता अनुमोदित करे (सगर्भ्यः) सहोदर (भ्राता) भाई (अनु) अनुमोदित करे (सखा) मित्र (अनु) अनुमोदित करे और (सयूथ्यः) तेरे सहवासी (अनु) अनुमोदित करे (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को (प्र) (उक्षामि) उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य्य के नियम पालने के लिये अभिषिक्त करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस संसार में माता पिता बन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को चाहिये कि अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा दे कर ब्रह्मचर्य्य करावें जिस से वे गुणवान् हों ॥ ९ ॥

अपांपेरुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। आपो देवता। प्रजापत्याबृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। सन्तइत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अथ यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या उत्तम शिक्षा ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुरु किया करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपाम्पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तञ्चित्सद्देवहविः। सन्ते प्राणो वातेन गच्छतार्ँसमङ्गानि यजत्रैः संयज्ञपतिराशिषा ॥ १० ॥

पदार्थः—हे शिष्य ! तू (अपाम्) जल आदि पदार्थों का (पेरुः) रक्षा करने वाला

(असि) है संसारस्थ जीव तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए (देवीः) दिव्य सुख देने वाले (आपः) जलों को (चित्) और (स्वात्तम्) धर्म युक्त व्यवहार से प्राप्त हुए पदार्थों को (देवहविः) विद्वानों के भोगने के समान (संस्वदन्तु) अच्छी तरह से भोगें (आशिषा) मेरे आशीर्वाद से (ते) तेरे (अङ्गानि) शिर आदि अवयव (यजत्रैः) यज्ञ कराने वालों के साथ (सम्) सम्यक् नियुक्त हों और (प्राणः) प्राण (वातेन) पवित्र वायु के सङ्ग (सङ्गच्छताम्) उत्तमता से रमण करे और तू (यज्ञपतिः) विद्या प्रचाररूपी यज्ञ का पालन करने हारा हो ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—जो यज्ञ में दी हुई आहुती हैं वे सूर्य के उपस्थित रहती हैं अर्थात् सूर्य की आकर्षणशक्ति से परमाणुरूप होकर सब पदार्थ पृथिवी के ऊपर आकाश में हैं उसी पृथिवी का जल ऊपर खिंचकर वर्षा होती है उस वर्षा से अन्न और अन्न से सब जीवों को सुख होता है इस परम्परा सम्बन्ध से यज्ञ शोधित जल और होम किये द्रव्य को सब जीव भोगते हैं ॥ १० ॥

घृतेनाक्तावित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । वातो देवता । भुरिगात्र्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब यज्ञ करने और कराने वालों को कर्त्तव्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाᳬरेवति यजमाने प्रियन्धा आविश । उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव । वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (घृतेन, अक्तौ) घृतप्रसक्त अर्थात् घृत चाहने और यज्ञ के कराने हारे । तुम (पशून्) गो आदि पशुओं को (त्रायेथाम्) पालो, तुम एक २ जन (देवेन) सर्वगत (वातेन) पवन से (सजूः) समान प्रीति करते हुए समान (उरोः) विस्तृत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुए (प्रियम्) प्रिय सुख को (रेवति) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त (यजमाने) यज्ञ करने वाले धनी पुरुष में (धाः) स्थापन करो तथा (आविश) उस के अभिप्राय को प्राप्त होओ और (अस्य) इस के (हविषः) होम के योग्य पदार्थ को (त्मना) आप ही निष्पादन किये हुए के समान (यज) अग्नि में होमो अर्थात् यज्ञ की किसी क्रिया का विपरीत भाव न करो और (अस्य) इस के (तन्वा) शरीर के साथ (सम्) (भव) एकीभाव रक्खो किन्तु विरोध से द्विधा

आचरण मत करो। हे (यवाँ) यज्ञ कर्म में सब सुख के पहुंचाने वालो ! (देवेभ्यः) (स्वाहा) (देवेभ्यः) (स्वाहा) सत्कर्म के अनुष्ठान से प्रकाशित धर्मिष्ठ ज्ञानी पुरुष जो कि यज्ञ देखने की इच्छा करते हुए वार २ यज्ञ में आते हैं उन विद्वानों के लिये अच्छे सत्कार कराने वाली वाणियों को उच्चारण करते हुए यज्ञ पति को (य-पांचनि) सब सुख वर्धने वाले यज्ञ में (धाः) अभियुक्त करो ॥ ११ ॥

भावार्थः—यज्ञ के लिये घृत आदि पदार्थ चाहने वाले मनुष्यों को गाय आदि पशु रखने चाहियें और घृतादि अच्छे २ पदार्थों से अग्निहोत्र से लेकर उत्तम २ यज्ञों से जल और पवन की शुद्धि कर सब प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिये ॥ ११ ॥

माहिर्भूरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

यह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्त आतानानुर्वा प्रेहि। घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (आतान) अच्छे प्रकार सुख के विस्तार करने वाले विद्वान् ! तू (मा) मत (अहिः) सर्प के समान कुटिल मार्गगामी और (मा) मत (पृदाकुः) मूर्षजन के समान अभिमानी वा व्याघ्र के समान हिंसा करने वाला (भूः) हो (ते) (नमः) सब जगह तेरे सुख के लिये अन्न आदि पदार्थ पहिले ही प्रवृत्त होरहे हैं और (अनर्वा) अश्व आदि सवारी के विना निराश्रय पुरुष जैसे (घृतस्य) जल की (कुल्याः) बड़ी धाराओं को प्राप्त हो वैसे (ऋतस्य) सत्य के (पथ्याः) मार्गों को प्राप्त हो ॥ १२ ॥

भावार्थः—किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि दुष्ट जीवों के समान धर्म मार्ग में कुटिल न होना चाहिये किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिये ॥१२॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। आपो देवताः। निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब ब्रह्मचारी बालक और ब्रह्मचारिणी कन्याओं को गुरुपत्नियों का कैसे मान करना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा व्वयम्परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे कुमारियो ! तुम जैसे (आपः) श्रेष्ठगुणों में रमण करने वाली (शु-

ता:) सत्कर्मानुष्ठान से पवित्र (देवी:) विद्याप्रकाशवती विदुषी स्त्रीजन (देवेषु) श्रेष्ठ विद्वान् पतियों के निमित्त (सुपरिविष्टा:) और उन की सेवा करने को सन्मुख प्रवृत्त होकर अपने समान पतियों को (मोदयम्) प्राप्त होती हैं और वे विद्वान् पतिजन उन स्त्रियों को प्राप्त होते हैं वैसे तुम हो और हम भी (परिविष्टा) उस कर्म की योग्यता को (भूयास्म) पहुंचें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विदुषी अर्थात् विद्वानों की स्त्री पातिव्रतधर्म में तत्पर रहती हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्या भी उन के गुण और स्वभाव वाली हों और ब्रह्मचारी भी गुरुजनों की शिक्षा से स्त्री और पुरुष आदि की रक्षा करने में तत्पर हों ॥ १३ ॥

वाचन्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने २ विद्यार्थियों को अच्छे २ गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं से (ते) तेरी (वाचम्) जिस से बोलता है उस वाणी को (शुन्धामि) शुद्ध अर्थात् सत्कर्मानुकूल करता हूं (ते) तेरे (चक्षुः) जिस से देखता है उस नेत्र को (शुन्धामि) शुद्ध करता हूं (ते) तेरे (नाभिम्) जिस से नाड़ी आदि बांधे जाते हैं उस नाभि को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (ते) तेरे (मेढ्रम्) जिस से मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (ते) तेरे (पायुम्) जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (चरित्रान्) समस्त व्यवहारों को (शुन्धामि) पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूं । तथा गुरुपत्नी पक्ष में सर्वत्र "करती हूं" यह योजना करनी चाहिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिये कि वेद और उपवेद तथा वेद के अङ्ग और उपाङ्गों की शिक्षा से देह इन्द्रिय अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे २ गुणों में प्रवृत्त करावें ॥ १४ ॥

मनस्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में उक्त अर्थ का प्रकाश किया है ॥

मनस्त आप्यायतां वाक्तऽआप्यायताम्प्राणस्तऽआप्यायतां चक्षुस्तऽआप्यायताᳬश्रोत्रन्तऽआप्यायताम्। यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्तऽआप्यायतान्निष्ट्यायतान्तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे शिष्य! मेरी शिक्षा से (ते) तेरा) (मनः) मन (आप्यायताम्) पर्याप्त गुण युक्त हो (ते) तेरा (प्राणः) प्राण (आप्यायताम्) बलादिगुण युक्त हो (ते) तेरी (चक्षुः) (आप्यायताम्) निर्मल दृष्टि वाली हो (ते) तेरे (श्रोत्रम्) (आप्यायताम्) कर्ण सद्गुण व्याप्त हों (ते) तेरा (यत्) जो (क्रूरम्) दुष्ट व्यवहार है वह (निः) (स्त्यायताम्) दूर हो और (यत्) जो (ते) तेरा (आस्थितम्) निश्चय है वह (आप्यायताम्) पूरा हो इस प्रकार से (ते) तेरा समस्त व्यवहार (शुध्यतु) शुद्ध हो और (अहोभ्यः) प्रतिदिन तेरे लिये (शम्) सुख हो। हे (ओषधे) प्रवर अध्यापक! आप (एनम्) इस शिष्य की (त्रायस्व) रक्षा कीजिये और (माहिंसीः) व्यर्थ ताड़ना मत कीजिये। हे (स्वधिते) प्रशस्ताध्यापिके! तू इस कुमारिका शिष्या की (त्रायस्व) रक्षा कर और इस को अयोग्य ताड़ना मत दे ॥ १५ ॥

भावार्थः—सत्कर्म करने से सब की उन्नति होती है इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि सुशिक्षा पाकर समस्त सत्कर्मों का अनुष्ठान करें इसी से अध्यापक जन गुण ग्रहण कराने ही के लिये शिष्यों को ताड़ना देते हैं वह उन की ताड़ना अत्यन्त सुख की करने वाली होती है स्त्री और पुरुष इस प्रकार उपदेश करें कि हे सर्वोत्तम अध्यापक! यह आप का विद्यार्थी जैसे शीघ्र विद्वान् होजाय वैसा प्रयत्न कीजिये। हे प्रिये! यह कन्या जिस प्रकार अतिशीघ्र विद्यायुक्त हो वैसा काम कर ॥ १५ ॥

रक्षसां भाग इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब शिष्यजनों में से प्रति शिष्य को यथायोग्य उपदेश करना अगले मंत्र में कहा है ॥

रक्षसाम्भागोऽसि निरस्तꣳरक्षऽइदमहꣳरक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳरक्षोऽवबाधऽइदमहꣳरक्षोऽधमन्तमो नयामि। घृतेनं द्यावा-

पृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वेस्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऽऊर्ध्वनभसम्मारुतङ्गच्छतम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे दुष्टकर्म करने वाले जन! तू (रक्षसाम्) दुष्टों अर्थात् परार्थ नाश कर अपना अभीष्ट करने वालों का (भागः) भाग (असि) है इस कारण (रक्षः) राक्षस स्वभावी तू (निरस्तम्) निकल जा (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) स्वार्थसाधक को (अभितिष्ठामि) तिरस्कार करने के लिये सन्मुख होताहूं और केवल सन्मुख ही नहीं किन्तु (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) दुष्ट जन को (अवबाधे) अत्यन्त तिरस्कार के साथ पीड़ता हूं जिस से वह फिर सामने न हो और (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) दुष्ट जन को (अधमम्) दुःसह दुःख को (नयामि) पहुंचाता हूं अब श्रेष्ठ गुणग्राही शिष्य के लिये उपदेश है। हे वायो! गुण ग्राहक सत् असत् व्यवहार को विवेचना करने वाला तू (स्तोकानाम्) सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारों को (वेः) जान और तेरे यज्ञ शोधित जल से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (प्रोर्णुवाथाम्) अच्छे आच्छादित हों (अग्निः) समस्त विद्यायुक्त विद्वान् तेरे घृत आदि पदार्थ के (स्वाहा) अच्छे होम किये हुए को (वेतु) जाने तथा (स्वाहाकृते) हवन किये हुए स्नेहद्रव्य को प्राप्त पूर्वोक्त जो सूर्य और भूमि हैं ये (ऊर्ध्वनभसम्) तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए जल को ऊपर पहुंचाने वाले (मारुतम्) पवन को (गच्छतम्) प्राप्त हों ॥ १६ ॥

भावार्थः—बुद्धिमान् श्रेष्ठ और अनिष्ट के विवेक करने वाले विद्वान् लोग अपने शिष्यों में यथायोग्य शिक्षा विधान करते हैं यज्ञ कर्म से जल और पवन की शुद्धि उस की शुद्धि से वर्षा और उस से सब प्राणियों को सुख उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

इदमाप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। आपो देवताः। निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब निर्दोष जल से क्या संभावना करनी चाहिये यह अगले मंत्र में उपदेश किया है॥

इदमापः प्रवहतावद्यञ्च मलञ्च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

पदार्थः—भो (आपः) सर्व विद्याव्यापक विद्वान् लोगो! आप जैसे (आपः) जल शुद्धि करते हैं वैसे मेरा (यत्) जो (अवद्यम्) अकथनीय निंद्यकर्म (च) और विकार तथा (यत्) जो (मलम्) अविद्यारूपी मल है (इदम्) इस को (प्रवहत) बहाइये अर्थात् दूर कीजिये (च) और (यत्) जो मैं (अनृतम्) झूंठ मूंठ किसी से (दुद्रोह) द्रोह करता होऊं (च) और (यत्) जो (अभीरुणम्) निर्भय निरपराधी

दोषी पुरुष को (शपे) उलाहना देता हूं (तस्मात्) उस उक्त (एनसः) पाप से (मा) मुझे अलग रक्खो (च) और इसमें (पवमान) पवित्र व्यवहार (मा) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखना है वैसे (च) अन्य मनुष्यों को भी रक्खो ॥ १७ ॥

भावार्थः—जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि निदान है वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कामों को करें मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥ १७ ॥

सन्तइत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः अग्निर्देवता । प्राजापत्यानुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । रेडसीत्यस्य दैवीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैसा हो यह अगले मंत्र में कहा है ॥

सन्ते मनो मनसा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रंह्याऽऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतन्द्वेषः ॥ १८ ॥

पदार्थः-हे युद्धशील शूरवीर ! संग्राम में (ते) तेरा (मनः) मन (मनसा) विद्याबल और (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राण के साथ (सम्) (गच्छताम्) संगत हो । हे वीर ! तू (रेट्) शत्रुओं का मारने वाला (असि) (त्वा) तुझे (अग्निः) युद्ध से उत्पन्न हुए क्रोध का अग्नि (श्रीणातु) अच्छे पचावे तू (प्रयुतम्) करोड़ों प्रकार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है तुझ को तज्जन्य (ऊष्मणः) गरमी का (द्वेषः) द्वेष मत (व्यथिषत्) अत्यन्त पीड़ायुक्त करे जिस से (वातस्य) (ध्राज्यै) पवन की गति के तुल्य गति के लिये वा (पूष्णः) पुष्टिकारक सूर्य के (रंह्यै) वेग के तुल्य वेग के लिये अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्ति होने के लिये (आपः) अच्छे २ जल (सम्) (अरिणन्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ १८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने बल के बढ़ाने वाले अन्न जल और शस्त्र अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मारकर संग्राम जीतें ॥ १८ ॥

घृतं घृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विश्वेदेवादेवताः । ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतङ्घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (घृतपावानः) जल के पीने वाले वीर पुरुषो ! तुम (घृतम्) अमृतात्मक जल को (पिवत) पिओ हे (वसापावानः) नीति के पालने वाले वीरो! तुम (वसाम्) जो वीररस की वाणी अर्थात् शत्रुओं को स्तंभन करने वाली है उस को (पिवत) पिओ, हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूहादि सेना रचक प्रत्येक वीर को तू ! जिस से (अन्तरिक्षस्य) आकाश को (हविः) रुकावट अर्थात् युद्ध में वहुतों के वीच शत्रुओं को घेरना (असि) है उस (स्वाहा) शोभन वाणी से जो (दिशः) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण (प्रदिशः) आग्नेयी नैर्ऋति वायवी और ऐशानी उपदिशा (आदिशः) आमने सामने मुहाने की दिशा (विदिशः) पीछे की दिशा और (उद्दिशः) जिस ओर शत्रु लक्षित हो वे दिशा हैं उन सव (दिग्भ्यः) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को वांट के शत्रुओं को जीत ॥ ११ ॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी २ सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्टकर युद्ध के समय चक्रव्यूह श्येनव्यूह तथा शकटव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मों से सव दिशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर सव प्रकार से शत्रुओं को घेर घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ ११ ॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । त्वष्टा देवता । ब्राह्मयनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे वर्तें यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यदैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः । देवत्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपम्भवाति । देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

पदार्थः-हे (त्वष्टः) शत्रुवलविदारक (देव) दिव्यविद्यासंपन्न सेनापति ! आप (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग अङ्ग में (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात् जीव जिस का देवता है वह सव शरीर में ठहरने वाला प्राणवायु सव वायुओं को तिरस्कार कर्त्ता हुआ आपही प्रकाशित होता है वैसे आप संग्राम में सव शत्रुओं का तिरस्कार करते हुए (निदीध्यत्) प्रकाशित हूजिये अथवा (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग अङ्ग में (उदानः) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुंचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है वैसे अपने विभव से सव वीरों को उन्नति देते हुए संग्राम में (निधीतः) निरंतर स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हूजिये (यत्) जो (ते) आप का (विषुरूपम्)

विविध रूप (सलक्ष्म) परस्पर युद्ध का लक्षण (भवति) हो वह (संग्रामे) संग्राम में (भूरि) विस्तार से (संसम्) (एतु) प्रवृत्त हो। हे सेनाध्यक्ष ! तेरी रक्षा के लिये सब शूरवीर पुरुष (सखायः) मित्र होके वर्त्तें (माता) माता (पितरः) पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभचिन्तक (देवत्रा) देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (यन्तम्) प्राप्त होने हुए (त्वा) तेरा (अनुमदन्तु) अनुमोदन करें ॥ २० ॥

भावार्थः—सेनापति सब प्राणियों का मित्र भाव वर्त्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान प्रवर्त्तमान हैं वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजा पुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं को जीते ॥ २० ॥

समुद्रं गच्छेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। सेनापतिर्देवता। याजुष्य उष्णिक्छन्दांसि। ऋषभः स्वरः ॥

अब राज्य कर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

समुद्रङ्गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षङ्गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारङ्गच्छ स्वाहा। मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दांꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यन्नभो गच्छ स्वाहाऽग्निं वैश्वानरङ्गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीम्भस्मना पृण स्वाहा ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू (स्वाहा) पढ़े २ सामुद्री नाव अर्थात् धुआंकश आदि चलाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ (समुद्रम्) समुद्र को (गच्छ) जा (स्वाहा) खगोलप्रकाश करने वाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (गच्छ) जा (स्वाहा) वेद वाणी से (देवम्) प्रकाशमान (सवितारम्) सब को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेद और सज्जनों के सङ्ग से शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान को (गच्छ) जान (स्वाहा) ज्योतिर्विद्या से (अहोरात्रे) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेदाङ्ग विज्ञान सहित वाणी से (छन्दांसि) ऋग्यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों को (गच्छ) अच्छे प्रकार से जान (स्वाहा) भूमिगत आकाश ज्ञान विज्ञान और भू-

गोल वा भूगर्भ आदि यान बनाने की विद्या से (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्यप्रकाशस्थ अर्थात् देश देशान्तरों को (गच्छ) जान और प्राप्त हो (स्वाहा) संस्कृत वाणी से (यज्ञम्) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को गच्छ प्राप्त हो (स्वाहा) वैद्यक विद्या से (सोमम्) ओषधिसमूह अर्थात् सोमलतादि को (गच्छ) जान (स्वाहा) जल के गुण और अवगुणों को बोध कराने वाली विद्या से (दिव्यम्) व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (नभः) जल को (गच्छ) जान और स्वाहा बिजुली आग्नेयास्त्रादि तारवरकी तथा प्रसिद्ध सब कलायन्त्रों को प्रकाशित करने वाली विद्या से (अग्निम्) विद्युत् रूप अग्नि को (गच्छ) अच्छी प्रकार जान और (मे) मेरे (मनः) मन को (हार्दि) प्रीतियुक्त (गच्छ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्त और (ते) तेरे (धूमः) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का धूंआं (दिवम्) सूर्य्य प्रकाश को तथा (ज्योतिः) उसकी लपट (स्वः) अन्तरिक्ष को (गच्छतु) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में (स्वाहा) काष्ठ आदि पदार्थों को भस्म कर उस (भस्मना) भस्म से (पृथिवीम्) पृथिवी को (आपृण) ढांप दे॥२१॥

भावार्थः—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राज्य, और वनिज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायन्त्रों को बनाकर तथा सब सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपार्जन करें ॥ २१ ॥

माप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वरुणो देवता । ब्राह्मी स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । सुमित्रियान इत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ वनिज व्यापार करने के लिये राज्य प्रबन्ध अगले मन्त्र में कहा है ॥

माऽपो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥

पदार्थः-हे (राजन्) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (आपः) जल और (ओषधीः) अन्न पान पदार्थ तथा किराने आदि वनज के पदार्थों को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चाहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (ततः) उस (धाम्नः) (धाम्नः) स्थान २ से (नः) हम लोगों को (मा) मत मुञ्च त्यागो हे (वरुणः) न्याय करने वाले सभापति ! किये हुए

न्याय में (सञ्ज्याः) न मारने योग्य गौ आदि पशुओं की शपथ है (इति) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी (शपामहे) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे। हे वरुण ! आप के राज्य में (नः) हम लोगों को (आपः) जल और ओषधियां (सुमित्रियाः) श्रेष्ठ मित्र के तुल्य (सन्तु) हों तथा (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों से (द्वेष्टि) वैर रखता है (च) और (वयम्) हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) वैर करते हैं (तस्मै) उस के लिये ये ओषधियां (दुर्मित्रियाः) दुःख देने वाले शत्रु के तुल्य (सन्तु) हों ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेवें किन्तु राज्य पालन के लिये राज पुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डांकू चोर लम्पट लबाड़ कपटी कुमार्गी अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देवेंगे ॥ २२ ॥

हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अप्, यज्ञ, सूर्या, देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किस से क्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ२॥ आविवासति। हविष्मान्देवो अध्वरो हविष्माँ२॥ अस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम उन कामों को किया करो कि जिन से (इमाः) ये (आपः) जल (हविष्मतीः) अच्छे २ दान और आदान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (हविष्मान्) पवन उपकार अनुपकार को (आ) अच्छे प्रकार (विवासति) प्राप्त होता है (देवः) सुख का देने वाला (अध्वरः) यज्ञ भी (हविष्मान्) परमानन्दप्रद (सूर्य्यः) तथा सूर्यलोक भी (हविष्मान्) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (अस्तु) हो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुंचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम २ सुख का करने वाला होता है ॥ २३ ॥

अग्नेर्वइत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अमू-र्यंत्यस्य त्रिपाद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! (अमूः) वे (याः) जो स्वयंवर विवाह से पतियों को स्वीकार किये हुए हैं उन के समान जो (इन्द्राग्न्योः) सूर्य और बिजुली के गुणों को (भागधेयीः) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (मित्रावरुणयोः) प्राण और उदान के गुणों को (भागधेयीः) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (विश्वेषाम्) विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के सेवने वाली (स्थ) हैं उन (वः) तुम सभों को (अपन्नगृहस्य) जिस को गृहकृत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानुष्ठान करने वाले और (अग्नेः) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की (सदसि) सभा में मैं (सादयामि) स्थापित करती हूं और जो (या) (उप) (सूर्ये) सूर्यलोक गुणों में उपस्थित होती हैं (वा) अथवा (याभिः) जिन के (सह) साथ (सूर्यः) सूर्यलोक वर्त्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर है (ताः) वे सब (नः) हमारे (अध्वरम्) घर के काम काज को विवाह कर के (हिन्वन्तु) बढ़ावें ॥ २४ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचारी और अपने तुल्य गुण कर्म स्वभाव युक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह कर के सदा सुखी रहें और जिस का पति वा जिस की स्त्री मरजाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

हृदेत्वेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमोदेवता । आर्षीविराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्या ! तू जैसे हम सब (देवेषु) अपने सुख देने वाले पतियों के निकट रहने और अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली हैं वैसी हो और जैसे हम (दक्षे) सौहार्द सुख के लिये (त्वा) तुझे वा (मनसे) भला बुरा विचारने के लिये (त्वा) तुझे वा (दिवे) सब सुखों के प्रकाश करने के लिये (त्वा) तुझे वा (सूर्याय) सूर्य के सदृश गुणों के लिये (त्वा) तुझे शिक्षा करती हैं वैसे तू भी (दिवि) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त (इमम्) इस (अध्वरम्) निरन्तर सुख देने वाले गृहाश्रम रूपी यज्ञ को (ऊर्ध्वम्) उन्नति (यच्छ) दिया कर ॥ २५ ॥

भावार्थः—जैसे अपने पतियों की सेवा करती हुई उन के समीप रहने वाली पतिव्रता गुणवती अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिये ॥ २५ ॥

सोमराजन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । शृणोत्वित्यस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोम॑ राजन्विश्वा॒स्त्वम् प्र॒जा उ॒पाव॑रोह॒ विश्वा॒स्त्वाम्प्र॒जा उ॒पाव॑रोहन्तु । शृ॒णोत्व॒ग्निः स॒मिधा॒ हवं॑ मे शृ॒ण्वन्त्वापो॑ धि॒षणा॑श्च दे॒वीः । श्रोता॑ ग्रावाणो वि॒दुषो॒ न य॒ज्ञꣳ शृ॒णोतु॑ दे॒वः स॑वि॒ता हवं॑ मे॒ स्वाहा॑ ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त (राजन्) समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष ! तू पिता के तुल्य (विश्वाः) समस्त (प्रजाः) प्रजा जनों का (उपावरोह) समीप वर्त्ती होकर रक्षा कर और (त्वा) तुझे (प्रजा) प्रजा जन के पुत्र समान (उपावरोहन्तु) आश्रित हों हे सभाध्यक्ष ! आप जैसे (समिधा) प्रदीप्त करने वाले पदार्थ से (अग्निः) सर्वगुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (मे) मेरी (हवम्) प्रगल्भवाणी को (शृणोतु) सुन के न्याय से प्रकाशित हूजिये (च) और (आपः) सब गुणों में व्याप्त (धिषणाः) विद्या बुद्धि युक्त (देवीः) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्री जनों के न्याय को (शृण्वन्तु) सुनें । हे (ग्रावाणः) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो ! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से (श्रोत) सुनो । तथा (देवः) विद्या से प्रकाशित (स-

विता) ऐश्वर्य्यवान् सभापति (विदुषः) विद्वानों के (यज्ञम्) यज्ञ के (न) समान (मे) हमारे प्रजा लोगों के (हवम्) निवेदन को (स्वाहा) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो वैसे (शृणोतु) सुन ॥ २६ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्य व्यवहारों की पालना करें ॥ २६ ॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपोदेवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव को वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवीरापो अपान्नपाद्यो वऽऊर्म्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषाम्भागस्थ स्वाहा ॥२७॥

पदार्थः—हे (आपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (देवीः) शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो ! तुम राज सेवी (स्थ) हो (शुक्रपेभ्यः) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक (देवेभ्यः) दिव्यगुण युक्त विद्वानों के लिये (येषाम्) जिन (वः) तुह्मारा बलीरूप विद्वानों का (यः) जो (अपां नपात्) जलों के नाशरहित स्वाभाविक (ऊर्मिः) जल तरंग के सदृश प्रजा रक्षक (इन्द्रियावान्) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होतीं हैं और (मदिन्तमः) आनन्द देने वाला (हविष्यः) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न (भागः) भाग है वे तुम सब (तम्) उस को (स्वाहा) आदर के साथ ग्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (देवत्रा) दिव्य भोग देते हैं वैसे तुम भी इन को आनन्द (दत्त) देओ ॥ २७ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में सम्मति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त युक्त सभापति को राजा मान कर राज्य पालन के लिये कर देकर न्याय को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

कार्षिरसीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽ उन्नयामि । समापोऽ अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे वैदयजन ! तू (कार्षिः) हल जोतने योग्य (असि) है (त्वा) तुझे (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (क्षित्यै) परिपूर्ण होने के लिये (उत्, यामि) अच्छे

प्रकार उपदेश देता हूं तुम सब लोग (अद्भिः) यज्ञ शोधित जलों से (आपः) जल और (ओषधीभिः) ओषधियों से ओषधियों को (मम) (अमृत) प्राप्त होओ ॥ २८ ॥

भावार्थः—खेत आदि स्थानों में अनेक ओषधी उत्पन्न होती हैं ओषधियों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ यज्ञों से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु ऊंचे होते हैं उन से आकाश भरा रहता है इस कारण विद्वान् लोग निर्बुद्धि जनों को होतों यागों ही के कामों में रखते हैं क्योंकि वे विद्या का अभ्यास करने को समर्थ ही नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

यमग्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्रीछन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब यह अध्यापक को क्या कहता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

यम॑ग्ने पृ॒त्सु मर्त्य॒मवा॒ वाजे॑षु॒ यञ्जु॒नाः । स यन्ता॒ शश्व॑ती॒रिषः॒ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जय करी विवेक के करने वाले आप ! (पृत्सु) संग्रामों में (यम्) जिस मनुष्य को (अवाः) रक्षा करते और (वाजेषु) अन्न आदि पदार्थों की सिद्धि करने के निमित्त (यम्) जिस को (जुनाः) नियुक्त करते हो (सः) वह (शश्वतीः) निरंतर अनादिरूप (इषः) अपनी प्रजाओं का (यन्ता) निर्वाह करने हारा होता है अर्थात् उन के नियमों को पहुंचता है ॥ २९ ॥

भावार्थ.-गुरु जनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है ॥ २९ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सविता देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब सभापति कर धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार कर यह गुरुजन का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे᳕ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आद॑दे॒ रावा॑सि गभी॒रमि॒मम॑ध्व॒रं कृ॒धीन्द्रा॑य सु॒षूत॑मम् । उ॒त्त॒मेन॑ प॒विनोर्ज॑स्वन्तं॒ मधु॑मन्तं॒ पय॑स्वन्तं निग्रा॒भ्या᳕ स्थ दे॒व॒श्रुत॑स्त॒र्पय॑त मा ॥ ३० ॥

पदार्थः—सब सुख देने (सवितुः) और समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम गुणों से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले सोम आदि ओ-

पधिगण के (हस्ताभ्याम्) रोग नाश करने और धातुओं की समता रखने वाले गुणों से (त्वा) तुझ कर धन देने वाले को (आददे) स्वीकार करता हूं तू (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य वाले मेरे लिये (उत्तमेन) उत्तम अर्थात् सभ्यता की (पविना) वाणी से (इमम्) इस (गभीरम्) अत्यन्त समझने योग्य (सुषुतमम्) सब पदार्थों से उत्पन्न हुए (ऊर्जस्वन्तम्) राज्य को बलिष्ठ करने वाले (मधुमन्तम्) समस्त मधु आदि श्रेष्ठ पदार्थ युक्त (पयस्वन्तम्) दुग्ध आदि सहित कर धन को (अध्वरम्) निष्कपट (कृधि) कर दे (देवश्रुतः) श्रेष्ठ राज्य गुणों को सुन ने वाले तुम मेरे (निग्राभ्याः) निरंतर स्वीकार करने के योग्य (स्थ) हो (मा) मुझे इस करके देने से (तर्प्पयत) तृप्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—प्रजा जनों की योग्यता है कि सभाध्यक्ष को प्राप्त हो कर उसके लिये अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दें जिस कारण राजा, प्रजा पालन के लिये संसार में उत्पन्न हुआ है इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है ॥ ३० ॥

मनोम इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । प्रजासभ्यराजानो देवता. । उष्णिक्छन्दांसि । ऋषभः स्वरः ॥

अब राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

मनों मे तर्प्पयत् वाचम्मे तर्प्पयत प्राणम्मे तर्प्पयत चक्षुर्मे तर्प्पयत श्रोत्रम्मे तर्प्पयतात्मानम्मे तर्प्पयत प्रजाम्मे तर्प्पयत पशून्मे तर्प्पयत गणान् मे तर्प्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे सभ्यजनो ! और प्रजाजनो ! तुम अपने गुणों से (मे) मेरे (मनः) मन को (तर्प्पयत) तृप्त करो मेरी (वाचम्) वाणी को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (आत्मानम्) आत्मा को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरी (प्रजाम्) संतानादि प्रजा को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (पशून्) गौ, हाथी, घोड़े आदि पशुओं को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (गणान्) सेवकों को (तर्प्पयत) तृप्त करो जिस से (मे) मेरे (गणाः) राज्य वा प्रजा कर्माधिकारी वा सेवक जन कामों में (मा) मत (वितृषन्) उदास हों ॥ ३१ ॥

भावार्थः—राज्य का प्रबन्ध सभाधीन ही होने के योग्य है जिस से प्रजाजन राजसेवक और राज पुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने २ कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे को आनन्दित करते रहैं ॥ ३१ ॥

इन्द्रायेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सभापती राजा देवता। पञ्चपाज्ज्योतिष्मती जगतीछन्दः। निषादः स्वरः ॥

जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किस लिये प्रजाजनों को सभापति का स्वीकार करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतऽइन्द्राय त्वादित्यवतऽइन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने। श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे सभापते! (वसुमते) जिस कर्म में चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य से वस कर अच्छे २ विद्वान् होते हैं (रुद्रवते) जिस में चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन करते हैं उस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष के लिये (त्वा) आप को ग्रहण करते हैं (आदित्यवते) जिस में अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य वस कर सूर्य्य सदृश परम विद्वान् होते हैं उस (इन्द्राय) उत्तम गुण पाने के लिये (त्वा) आप के (अभिमातिघ्ने) जिस कर्म में बड़े २ अभिमानी शत्रुजन मारे जांय उस (इन्द्राय) परमोत्कृष्ट शत्रु विदारक काम के लिये (त्वा) आप (सोमभृते) उत्तम ऐश्वर्य धारण करने हारे (श्येनाय) युद्धादि कामों में श्येनपक्षी के तुल्य झपट झपट मारने वाले (त्वा) (आप) (रायस्पोषदे) धन की दृढ़ता देने के लिये और (अग्नये) विद्युत् आदि पदार्थों के गुण प्रकाश कराने के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य्य वरुण और पवमान के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार करने वाला सब को सुख देवे उसी को राजा मानना चाहिये ॥ ३२ ॥

यत्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सोमो देवता। भुरिगार्षी बृहतीछन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुंचा सकता है यह अगले मंत्र में कहा है ॥

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे। तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्य के निमित्त प्रेरणा करने हारे सभापते! (ते) तेरा (यत्) जो दिवि सूर्यलोक में (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यत्) जो

(उरौ) विस्तृत (अन्तरिक्षे) आकाश में (ज्योतिः) जैसे ज्योति हो वैसा राजकर्म है (तेन) उस से तू (अस्मै) इस परोपकार के अर्थ (यजमानाय) यज्ञ करते हुए यजमान के लिये (उरु) (कृधि) अत्यन्त उपकार कर तथा (राये) धन बढ़ने के लिये (अधि, वोचः) अधिक २ राज्य प्रबन्ध कर ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को निरालस्य करता रहे जिस से वे पुरुषार्थी हो कर धनादि पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ३३ ॥

श्वात्रास्थ इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी पथ्याबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब उक्त सभाध्यक्षादिकों की स्त्री कैसे कर्म करने वाली हों यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्वात्राः स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ताऽअमृतस्य पत्नीः । ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (देवीः) विद्या युक्त स्त्रियो ! तुम (वृत्रतुरः) बिजुली के सदृश मेघ की वर्षा के तुल्य सुखदायक की गति के तुल्य चलने (राधोगूर्त्ताः) धन का उद्योग करने (पत्न्यः) और यज्ञ में सहाय देने वाली (स्थ) हो (देवत्रा) तथा अच्छे २ गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियों में प्रीति से स्थित हों (इमम्) इस यज्ञ को (नयत) सिद्धि को प्राप्त किया कीजिये और (उपहूताः) बुलाई हुई अपने पतियों के साथ (अमृतस्य) अति स्वादु युक्त सोम आदि ओषधियों के रस को (पिबत) पीओ ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विद्वानों की पत्नी स्त्रीजन स्वधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार पुरुष उन अपनी स्त्रियों को निरन्तर प्रसन्न करें ऐसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें ॥३४॥

माभेर्मेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । द्यावापृथिवी देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष परस्पर कैसा वर्त्ताव करें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मा भेर्मा संविक्थाऽऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् । पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री ! तू (वीड्वी) शरीरात्मबल युक्त होती हुई पति से (मा, भेः)

मन हर (मा संविक्थाः) मत कंप और (ऊर्जम्) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को (धत्स्व) धारण कर। हे पुरुष! तू भी वैसे ही अपनी स्त्री से वर्त। तुम दोनों स्त्री पुरुष (धिषणे) सूर्य्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो जिस से (वीड्वेयाम्) दृढ़ बल वाले हों ऐसा वर्त्ताव वर्तते हुए तुम दोनों का (पाप्मा) अपराध (हतः) नष्ट हो और (सोमः) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण सदा कर एक दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो॥ ३५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्त्तें कि जिस से उन का परस्पर भय और उद्वेग नष्ट हो कर आत्मा की दृढ़ता, उत्साहता और गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़े और वे दोष तथा दुःख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आल्हादित हों॥ ३५॥

अब उन के पुत्र क्या २ करें और वे पुत्रों को कैसे पालें यह अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽआधावन्तु। अम्ब निष्पर समरीर्विदाम्॥ ३६॥

पदार्थः—हे (अम्ब) प्रेम से प्राप्त होने वाली माता! जो तेरी (अरीः) सन्तानादि प्रजा (प्राक्) पूर्व (अपाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (अधराक्) दक्षिण और भी (सर्वतः) सब (दिशः) दिशाओं से (त्वा) तुझे (आ) (धावन्तु) धाय धाय प्राप्त हों उन्हें (निः) (पर) निरन्तर प्यार कर और वे भी तुझे (सम्) अच्छे भाव से जानें॥ ३६॥

भावार्थः—माता और पिता को योग्य है कि अपने सन्तानों को विद्यादि अच्छे २ गुणों में प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उन के शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिस से वे नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता पिता की सब प्रकार से सेवा करें॥ ३६॥

त्वमङ्ग इत्यस्य गौतमऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब प्रजाजन किये हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

त्वमङ्ग प्रशंꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥ ३७॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) (शविष्ठ) अत्यन्त बल युक्त (मघवन्) महाराज के समान

(इन्द्र) ऋद्धि सिद्धि देने हारे सभापते ! (त्वम्) आप (मर्त्यम्) प्रजास्थ मनुष्य को (प्रशंसिषः) प्रशंसायुक्त कीजिये आप (देवः) देव अर्थात् शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतने वाले हैं (न) नहीं (त्वदन्यः) तुम से अन्य (मर्डिता) सुख देने वाला है ऐसा मैं (ते) आप को (वचः) पूर्वोक्त राज्यप्रबन्ध के अनुकूल वचन (ब्रवीमि) कहता हूं ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे ईश्वर सर्व सुहृत् पक्षपात रहित है वैसे सभापति राज्य धर्म्मानुवर्त्ती राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा निन्दनीय की निन्दा दुष्ट को दण्ड श्रेष्ठ की रक्षा कर के सब का अभीष्ट सिद्ध करे ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में राज्य के अभिषेक पूर्वक शिक्षा, राज्य का कृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, सभाध्यक्षादिकों का काम, विष्णु का परम पद वर्णन, सभाध्यक्ष को ईश्वरोपासना करनी, राजा प्रजा का आपस में कृत्य, गुरु को शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना, यज्ञ का अनुष्ठान, होम किये द्रव्य के फल का वर्णन, विद्वानों के लक्षण, मनुष्यकृत्य, मनुष्यों का परस्पर वर्त्तमान, दुष्ट दोष निवृत्ति फल, ईश्वर से क्या क्या प्रार्थना करनी चाहिये, रण में योद्धा का वर्णन, युद्धकृत्य निरूपण, युद्ध में परस्पर वर्त्ताव का प्रकार, वीरों को उत्साह देना, राज्यप्रबन्ध का कारण और साध्य साधन, राजा के प्रति ईश्वरोपदेश, राज्यकर्म का अनुष्ठान, राजा और प्रजा का कृत्य, राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्त्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्ष करना, प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा, प्रजा को स्वीकार करने के योग्य, सभापति की लक्षण, प्रजा और राज सभा की परस्पर प्रतिज्ञा करनी, सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन, प्रजा सुख के लिये सभापति के कर्त्तव्य कामों का अनुष्ठान, सभापत्यादिकों की पत्नियों को क्या करना चाहिये, स्त्री पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव, माता पिता के प्रति सन्तानों का काम और सभापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है, इस से पंचम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की सङ्गति है, ऐसा जानना चाहिये ।

यह छठा अध्याय समाप्त हुआ ।

ओ३म्

अथ सप्तमाध्यायस्यारम्भः ॥

अब सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

वाचस्पतय इत्यस्य गोतम ऋषिः । प्राणो देवता । भुरिगार्च्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में तुष्टि के निमित्त बाहर और भीतर
के व्यवहार का उपदेश है ॥

वा॒चस्पत॑ये पवस्व॒ वृष्णो॑ऽअ॒ꣳशुभ्या॒ङ्गभ॑स्तिपूतः । दे॒वो दे॒वेभ्यः॑ पवस्व॒ येषां॑म्भा॒गोऽसि॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (वाचः) वाणी के (पतये) पालने हारे ईश्वर के लिये (पवस्व) पवित्र हो (वृष्णः) बलवान् पुरुष के (अंशुभ्याम्) भुजाओं के समान बाहर भीतर का व्यवहार होने के लिये जैसे (गभस्तिपूतः) सूर्य्य की किरणों से पदार्थ पवित्र होते हैं वैसे शास्त्रों से (देवः) दिव्य गुण युक्त विद्वान् होकर (येषाम्) जिन विद्वानों को (भागः) सेवन करने के योग्य है उन (देवेभ्यः) देवों के लिये (पवस्व) पवित्र हो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—सब जीवों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करने वाले नित्य पवित्र परमात्मा को जान और विद्वानों के संग से विद्यादि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी के बोलने वाले हों ॥ १ ॥

मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वर्त्तें यह अगले मंत्र में कहा है ॥

मधु॑मतीर्न॒ इष॑स्कृधि॒ यत्ते॑ सो॒मादा॑भ्यं॒ नाम॒ जागृ॑वि॒ तस्मै॑ ते सोम॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒ स्वाहो॒र्वन्तरि॑क्ष॒मन्वे॑मि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य युक्त विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों के लिये (मधुमतीः) मधुरादिगुणसहित (इषः) अन्न आदि पदार्थों को (कृधि) कीजिये तथा

हे (सोम) शुभकर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वन्! मैं (यत्) जिस का (अदाभ्यम्) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (जागृवि) नाम है (तस्मै) उस (सोमाय) ऐश्वर्य की प्राप्ति और (ते) तेरे आप की आज्ञा वर्तने के लिये (स्वाहा) सत्यधर्म युक्त क्रिया (स्वाहा) और (उरु) (अन्तरिक्षम्) अवकाश का (यमि) प्राप्त होता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों को वैसे ही औरों के लिये भी दिया करें और जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा औरों को आप भी किया करें जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुण वाले होते हैं हों ॥ २ ॥

स्वांकृत इत्यस्य गोतमऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराड्ब्राह्मी छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर अगले मंत्र में आत्मक्रिया का निरूपण किया है ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यस्त्वा मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांऽशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः-हे (अंशो) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो तू (दिव्येभ्यः) दिव्य (विश्वेभ्यः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियों और (मरीचिपेभ्यः) किरणों के समान पवित्र करने वाले (देवेभ्यः) विद्वानों और दिव्य पदार्थों के लिये (स्वाङ्कृतः) स्वयं सिद्ध (असि) है उस (त्वा) तुझ को विज्ञान और (स्वाहा) वेद वाणी (अष्टु) प्राप्त हों । हे (सुभव) श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाले मैं (सूर्य्याय) सर्व प्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये (त्वा) तेरी प्रशंसा करता हूं तू भी (तत्) उस प्रशंसा के योग्य (सत्यम्) सत्य परमात्मा से ग्रहण कर (उपरिप्रुता) सब से उत्तम उत्कर्ष पाने हारे तूने (भङ्गेन) (असौ) यह अज्ञान रूप शत्रु (फट्) झट (हतः) मारा उस (त्वाम्) तुझे (प्राणाय) जीवन के लिये प्रशंसित करता और (व्यानाय) विविध प्रकार के (कर्म) करने के लिये (त्वा) तुझे प्रशंसा देता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जीव आप ही स्वयं सिद्ध अनादिरूप है इस से इन को चाहिये कि प्राण इन्द्रियों और अंतःकरण को निर्मल धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त होकर

की उपासना में स्थिर हो तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को झट पट मार और भलों की रक्षा करके आनन्दित रहें ॥ ३ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य गोतमऋषिः । मघवा देवता । आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोमम् । उरुष्य राय एषो यजस्व ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे योग चाहने वाले ! जिस से तू (उपयामगृहीतः) योग में प्रवेश करने वाले नियमों से ग्रहण किये हुए के समान (असि) है इस कारण (अंतः) भीतरले जो प्राणादि पवन मन और इन्द्रियां हैं इन को (यच्छ) नियम में रख । हे (मघवन्) परम पूजित धनी के समान ! तू (सोमम्) योगविद्या सिद्ध ऐश्वर्य्य को (पाहि) रक्षा कर (उरुष्य) और जो अविद्या आदि क्लेश हैं उन को अत्यन्त योग विद्या के बल से नष्ट कर जिस से (रायः) ऋद्धि और (इषः) इच्छासिद्धियों को (आयजस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—योग जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि यम नियम आदि योग के अङ्गों से चित्त आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ऋद्धि सिद्धियों को सिद्ध करें ॥४॥

अन्तस्त इत्यस्य गोतमऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ।

अब ईश्वर जो योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है उस के लिये विज्ञान का उपदेश अगले मंत्र से करता है ॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् । सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) योगी ! मैं परमेश्वर (ते) तेरे (अंतः) हृदयाकाश में (द्यावापृथिवी) सूर्य्य भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थों को (दधामि) स्थापित करता हूं तथा (उरु) विस्तृत (अंतरिक्षम्) अवकाश को (अंतः) शरीर के भीतर (दधामि) धरता हूं (सजूः) मित्र के समान तू (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या को प्राप्त हो के (अवरैः) (परैः) (च) थोड़े वा बहुत योग व्यवहारों से (अंतर्यामे) भीतरले नियमों में वर्त्तमान होकर अन्य सब को (मादयस्व) प्रसन्न किया कर ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—ईश्वर का यह उपदेश है कि

ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उतने ही मेरे ज्ञान में वर्त्तमान हैं। योग विद्या को नहीं जानने वाला उन को नहीं देख सकता और मेरी उपासना के बिना कोई योगी नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

स्वाङ्कृतोऽसीत्यस्य गोतम ऋषिः। योगी देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर योग विद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (सुभव) शोभन ऐश्वर्य युक्त योगी ! तू (स्वाङ्कृतः) अनादि काल से स्वयं सिद्ध (असि) है मैं (दिव्येभ्यः) शुद्ध (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और (मरीचिपेभ्यः) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूं (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिये भी (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूं (सूर्याय) सूर्य के समान योग प्रकाश करने के लिये वा (उदानाय) उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थ (त्वाम्) तुझे ग्रहण करता हूं जिस से (त्वा) तुझे योग चाहने वाले को (मनः) योग समाधि युक्त मन और (स्वाहा) सत्यानुष्ठान करने की क्रिया (अष्टु) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उस को स्वीकार नहीं करता जब तक जिस को ईश्वर स्वीकार नहीं करता है तब तक उसका पूरा २ आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता तब तक उस को अत्यंत सुख भी नहीं होता ॥ ६ ॥

आ वायो भूषेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर योगी का कृत्य अगले मंत्र में कहा है ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे

(शुचिपा) अत्यन्त शुद्धता को पालने और (वायो) पवन के तुल्य होने वाले योगी ! तू (सहस्रम्) हजारों (नियुत)

निश्चित शमादिक गुणों को (आभूष) सब प्रकार सुभूषित कर। हे (विश्ववार) समस्त गुणों के स्वीकार करने वाले ! जो (ते) तेरा (मद्यम्) अच्छी तृप्ति देने वाला (अन्धः) अन्न है उस को (उपो) तेरे समीप (अयामि) पहुंचाता हूं। हे (देव) योग बल से आत्मा को प्रकाश करने वाले ! (यस्य) जिस तेरा (पूर्वपेयम्) श्रेष्ठ योगियों को रक्षा करने के योग्य योग बल है जिस को तू (दधिषे) धारण कर रहा है (वायवे) उस योग के जानने के लिये (त्वा) तुझे स्वीकार करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता ईश्वर के तुल्य अच्छे २ गुणों में व्याप्त होता है और अन्न वा जल के सदृश सुख देता है वही योग के बोध में समर्थ होता है ॥ ७ ॥

इन्द्रवायूइत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रा वायू देवते। इन्द्रवायू इत्यस्यार्षीगायत्री छन्दः। उपयामगृहीत इत्यस्यार्षी स्वराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह योगी कैसा होता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र॑वायू इ॒मे सु॒ता उप॒ प्रयो॑भि॒राग॑तम्। इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि वा॒यव॑ इन्द्रवा॒युभ्यां॑ त्वै॒ष ते॒ योनिः॑ स॒जोषो॑भ्यां त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) प्राण और सूर्य्य के समान योगशास्त्र के पढ़ने पढ़ाने वाले (हि) जिस से (इमे) (सुताः) ये उत्पन्न हुए (इन्दवः) सुखकारक जलादि पदार्थ (वाम्) तुम दोनों को (उशन्ति) प्राप्त होते हैं इस से तुम (प्रयोभिः) इन मनोहर पदार्थों के साथ ही (आगतम्) अपना आगमन जानो। जो योग चाहते हैं उन से तू इस योग पढ़ाने वाले अध्यापक ने (वायवे) पवन के तुल्य योगसिद्ध को पाने के लिये अथवा योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिये (उपयामगृहीतः) योग के यम नियमों के साथ स्वीकार किया गया (असि) है हे भगवन् ! योगाभ्यासक (एषः) यह योग (ते) तुम्हारा (योनिः) सब दुःखों के निवारण करने वाले घर के समान है और (इन्द्रवायुभ्याम्) बिजुली और प्राणवायु के समान योगबुद्धि और [illegible] बढ़ाने और उ- दारने की शक्तियों से (जुष्टम्) प्रसन्न हुए (त्वा) आपको और हे योग चाहने वाले (सजोषोभ्याम्) सेवन किये हुए उक्त गुणों से प्रसन्न हुए (त्वा) तुझ में सब से सुख के लिये चाहता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थः—वे दो योगपूर्ण योगी और शिष्य हो सकते हैं जो कि योगविद्या प्रकाश करके ईश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का यत्न किया करते

और यम नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिद्धों का सेवन करते हैं वे भी इस योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं ॥ ८ ॥

अयंवामित्यस्य गृत्समदऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीतोसीत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒यं वां॑ मित्रावरुणा सु॒तः सोम॑ ऋतावृधा । ममेदि॒ह श्रु॑त॒ꣳ हव॑म् । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि मि॒त्राव॑रु॑णाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान (ऋतावृधा) सत्य विज्ञान वर्द्धक योग विद्या के पढ़ने पढ़ाने वालो (वाम्) तुम्हारा (अयम्) यह (सोमः) योग का ऐश्वर्य्य (सुतः) सिद्ध किया हुआ है उस से तुम (इह) यहां (मम) योगविद्या से प्रसन्न होने वाले मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुतम्) सुनो, हे यजमान ! जिस में तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ (इत्) ही (असि) है इस से मैं (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि इस योग विद्या का ग्रहण श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश सुन और यमनियमों को धारण कर के योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ९ ॥

रायावयमित्यस्य त्रिसदस्युर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रा॒या व॒यꣳ स॑स॒वाꣳसो॑ मदेम ह॒व्येन॑ दे॒वा यव॑सेन॒ गावः॑ । तां धे॒नुं मि॑त्रावरुणा यु॒वं नो॑ वि॒श्वाहा॑ धत्त॒मन॑पस्फुरन्ती॒मे॒ष ते॒ योनि॑र्ऋ॒तायु॒भ्यां त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (ससवांसः) भले बुरे के अलग २ करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आप और (वयम्) हम लोग (यवसेन) तृण घास भूसा से (गावः) गौ आदि पशुओं के समान (हव्येन) ग्रहण करने के योग्य (राया) धन से (मदेम) हर्षित हों । और हे (मित्रावरुणा) प्राण के समान उत्तम जनो ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हमारे लिये (विश्वाहा) सब दिनों में (अनपस्फुरन्तीम्) ठीक २ ज्ञान देने वाली (धेनुम्) वाणी को (धत्तम्) धारण कीजिये । हे यजमान ! जिस से (ते) तेरा (एषः) यह विद्याबोध (योनिः) घर है इस से (ऋतायुभ्याम्) सत्य व्यवहार चाहने वालों सहित (त्वा) तुझ को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ और विद्वानों के सङ्ग से परोपकार की सिद्धि और कामना को पूर्ण करने वाली वेद वाणी को प्राप्त हो कर आनन्द में रहें ॥ १० ॥

यावाङ्कशेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

या वाङ्कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञम्मिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यान्त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यान्त्वा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अश्विनौ) सूर्य्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने पढ़ाने वाले (या) जो (वाम्) तुम्हारी (मधुमती) प्रशंसनीय मधुरगुण युक्त (सूनृतावती) प्रभात समय में क्रम २ से प्रदीप्त होने वाली उषा के समान (कशा) वाणी है (तया) उस से (यज्ञम्) ईश्वर से सङ्ग कराने हारे योगरूपी यज्ञ को (मिमिक्षतम्) सिद्ध करना चाहो हे योग पढ़ने वाले तू (उपयामगृहीतः) यमनियमादिकों से स्वीकार किया गया (असि) है (ते) तेरा (एषः) यह योग (योनिः) घर के समान सुखदायक है इस से (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ और हे योगाध्यापक ! (माध्वीभ्याम्) माधुर्य्य लिए जो श्रेष्ठ नीति और योग रीति हैं उन के साथ वर्त्तमान (त्वा) आप का हम लोग आश्रय करते हैं अर्थात् समीपस्थ होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—योगी लोग मधुर प्यारी वाणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य वैसे योगी का सदा आश्रय किया करें ॥ ११ ॥

तं प्रत्नथेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में योगी के गुणों का उपदेश किया है ॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम् । प्रतीचीनम्वृजनन्दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे । उप-

उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे योगिन्! आप (उपयामगृहीतः) योग के अंगों अर्थात् शौच आदि नियमों के ग्रहण करने वाले (असि) हैं (ते) आप का (एषः) यह योगयुक्त स्वभाव (योनिः) सुख का हेतु है। योग से आप (अपमृष्टः) अविद्यादि दोषों से अलग हुए (शण्डः) शमादि गुण युक्त (असि) हैं (यासु) जिन योगक्रियाओं में आप (वर्द्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (विश्वया) समस्त (प्रत्नथा) प्राचीन महर्षि (पूर्वथा) पूर्व काल के योगी और (इमथा) वर्त्तमान योगियों के समान (ज्येष्ठतातिम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (बर्हिषदम्) हृदयाकाश में स्थिर (स्वर्विदम्) सुख लाभ करने (प्रतीचीनम्) अविद्यादि दोषों से प्रतिकूल होने (आशुम्) शीघ्र सिद्धि देने (उदयन्तम्) उत्कर्ष पहुंचाने और (धुनिम्) इन्द्रियों को कंपाने वाले (वृजनम्) योगबल को (दोहसे) परिपूर्ण करते हैं उस योगबल को (शुक्रपाः) जो कि योगबल की रक्षा करने हारे (देवाः) योगबल के प्रकाश से प्रकाशित योगी लोग हैं वे (त्वा) आप को (प्रणयन्तु) अच्छे प्रकार पहुंचावें। उस योगबल को प्राप्त हुए (शण्डाय) शमदमादिगुणयुक्त आप के लिये उसी योग की (अनाधृष्टा) दृढ़वीरता (असि) है आप उस (वीरताम्) वीरता की (पाहि) रक्षा कीजिये (अनु) यह रक्षा को प्राप्त हुई वीरता (त्वा) आप को पाले ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—हे योगविद्या की इच्छा करने वाले जैसे शमदमादिगुणयुक्त पुरुष योगबल से विद्याबल की उन्नति कर सकता है वही अविद्यारूपी अंधकार का विध्वंस करने वाली योगविद्या सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे यथोचित सुख देती है वैसे आप को दे ॥ १२ ॥

सुवीर इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षीत्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्। संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे योगिन्! (सुवीरः) श्रेष्ठ वीर के समान योगबल को प्राप्त हुए आप (वीरान्) अच्छे २ गुणयुक्त पुरुषों को (प्रजनयन्) प्रसिद्ध करते हुए (परीहि) सब जगह भ्रमण कीजिये इसी प्रकार (यजमानम्) धन आदि पदार्थों को देने वाले उत्तम पुरुषों के (अभि) सन्मुख (रायः) धन को (पोषेण) पुष्टि से (संजग्मानः) सङ्गत हूजिये। और आप (दिवा) सूर्य्य और (पृथिव्या) पृथिवी के गुणों के साथ (शुक्रः) अति बलवान् (शुक्रशोचिषा) सब को शोधने वाले सूर्य्य की दीप्ति से (निरस्तः) अन्धकार के समान पृथक् हुए हो योगबल के प्रकाश से विषय वासना से छूटे हुए (शण्डः) शमदमादि गुणयुक्त (शुक्रस्य) अत्यंत योगबल के (अधिष्ठानम्) आधार (असि) हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—शमदमादि गुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर योगीजन अपनी योगविद्या के प्रचार से योगविद्या चाहने वालों का आत्मबल बढ़ाता हुआ सब जगह सूर्य्य के समान प्रकाशित होता है ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्य त इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवता।
स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥
अथ शिष्य के पढ़ाने की युक्ति अगले मंत्र में कही है ॥

अच्छिन्नस्यते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (देव) योगविद्या चाहने वाले (सोम) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य! हम अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये (सुवीर्यस्य) जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े उस के समान (अच्छिन्नस्य) अखण्ड (रायः) योगविद्या से उत्पन्न हुए धन की (पोषस्य) दृढ़ पुष्टि के (ददितारः) देने वाले (स्याम) हों जो यह (प्रथमा) पहिली (विश्ववारा) सब ही सुखों के स्वीकार कराने योग्य (संस्कृति) विद्यासुशिक्षाजनित नीति है (सा) वह तेरे लिये इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो (वरुणः) श्रेष्ठ (अग्निः) अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है (सः) वह (प्रथम) सब से प्रथम तेरा (मित्रः) मित्र हो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है। योगविद्या में संपन्न शुद्धचित्तयुक्त योगियों को योग्य है कि जिज्ञासुओं के लिये नित्य योग और विद्यादान देकर उन्हें शारीरिक और आत्मबल से युक्त किया करें ॥ १४ ॥

स प्रथम इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ स्वामी और सेवक के कर्म को अगले मंत्र में कहा है ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वांस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा । तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहा याडग्नीत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे शिष्यो ! तुम लोग जैसे वह पूर्व मंत्र से प्रतिपादित (प्रथमः) आदि मित्र (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (बृहस्पतिः) सब विद्या युक्त वाणी का पालने वाला जिस ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करता है वैसे (तस्मै) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और (सुतम्) निष्पादित श्रेष्ठव्यवहार का (आजुहोत) अच्छे प्रकार ग्रहण करो और जैसे (यत्) जो (होत्राः) योग स्वीकार करने के योग्य वा (याः) जो (मध्वः) माधुर्य्यादिगुणयुक्त (स्विष्टाः) जिन से कि अच्छे २ इष्ट काम बनते हैं (याः) वा जो ऐसी हैं कि (सुहुताः) जिनसे अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म सिद्ध होते हैं (सुप्रीताः) और अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं वे विद्वान् स्त्रीजन (अग्नीत्) वा कोई अच्छी प्रेरणा को प्राप्त हुआ विद्वान् योगी (स्वाहा) सत्यवाणी से (अयाट्) सभों को संस्कृत करता और तृप्त रहता है आप लोग उन स्त्रियों और उस योगी के समान (तृम्पन्तु) तृप्त हूजिये ॥१५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे योगी विद्वान् और योगिनी विदुषी स्त्रीजन परमैश्वर्य्य के लिये यत्न करें और जैसे सेवक अपने स्वामी का सेवन करता है वैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन २ कामों में प्रवृत्त होकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुंचे ॥ १५ ॥

अयं वेन इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्च्यनिचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ सभाध्यक्ष राजा को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपाᳪ संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे शिल्पविधि के जानने वाले सभाध्यक्ष विद्वन् ! आप (उपयामगृहीत) सेना आदि राज्य के अंगों से युक्त (असि) हैं हम लोग (रजसः) लोकों के मध्य

(पृश्निगर्भाः) जिन में अवकाश अधिक है उन लोकों के (ज्योतिर्जरायुः) तारागणों को ढांपने वाले के समान (अयम्) यह (वेनः) अति मनोहर चंद्रमा (चोदयत्) यथायोग्य अपने २ मार्ग में अभियुक्त करता है (इमम्) इस चंद्रमा को (अपाम्) जलों और (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (संगमे) संबन्धी आकर्षणादि विषयों में (शिशुम्) शिक्षा के योग्य बालक को (मतिभिः) विद्वान् लोग अपनी बुद्धियों से (रिहंति) सत्कार करके (न) समान आदर के साथ ग्रहण कर रहे हैं और मैं (मर्कीय) दुष्टों को शांत करने और श्रेष्ठ व्यवहारों के स्थापन करने के लिये (विमाने) अनन्त अन्तरिक्ष में (त्वा) तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिये स्वीकार करता हूं ॥ १६ ॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष को चाहिये कि सूर्य्य और चंद्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शांत करके श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आह्लाद देवे ॥ १६ ॥

मनो न येष्वित्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विद्वांसो देवा देवताः ।
स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर भी उसी विषय को अगले मंत्र कहा है ॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिग्रहाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १७ ॥

पदार्थः-हे शिल्पविद्या में चतुर सभापते ! (एषः) यह राजधर्म (ते) तेरा (योनिः) सुख पूर्वक स्थिरता का स्थान है जैसे तू (यः) जो (तुविनृम्णः) अत्यन्त धनयुक्त प्रजा का पालने वाला वा (विपः) बुद्धिमान् सभाजन वे तुम दोनों (येषु) जिन हवनादि कर्मों में (शर्य्याभिः) वेगों से (तिग्मम्) वज्र के तुल्य अतितीव्र (मनः) मन के (न) समान वेग से (द्रवन्ता) चलते हुए (शच्या) बुद्धि के साथ (वनुथः) परस्पर कामना करते हो ऐसे प्रत्येक प्रजा पुरुष (अस्य) इस प्रजापति का (गभस्तौ) अंगुली निर्देश से (आदिशम्) सब दिशाओं में तेज जैसे हो वैसे शत्रुओं को (आ, अश्रीणीत) अच्छे प्रकार दुःख दिया करें (मर्कः) मरण के तुल्य दुःख देने और दुष्ट चालचलन रखने वाला शत्रु (अपमृष्टः) दूर हो और तू (प्रजाः) प्रजा का (पाहि) पालन कर (मन्थिग्रहाः) शत्रुओं को मथने वाले वीरों के ग्राहक (देवाः) विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (प्र, णयन्तु) प्रसन्न करें। हे प्रजा जनो ! तुम जिस ने

(अनाधृष्टा) (असि) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन (असि) हो उस राजा को रक्षा किय करो ॥ १७ ॥

भावार्थः-प्रजा पुरुष राज्य कर्म्म में जिस राजा का आश्रय करें वह उन की रक्षा करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय की शङ्का समाधान के साथ कहैं राजा के नोकर चाकर भी न्यायकर्म्म हों से प्रजाजनों की रक्षा करें ॥१७॥

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ।

सुप्रजाः प्रजाः प्रंजनयन् परींह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—भो न्यायाधीश (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त आप ! (प्रजाः) प्रजाजनों को (प्रजनयन्) प्रकट करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) दृढ़ता के साथ (यजमानम्) यज्ञादि अच्छे कामों के करने वाले पुरुष को (अभि) (परि) (इहि) सर्वथा धन की वृद्धि से युक्त कीजिये (मन्थी) वादविवाद के मंथन करने और (दिवा) सूर्य्य वा (पृथिव्या) पृथिवी के (संजग्मानः) तुल्य धीरतादि गुणों में वर्त्तने वाले आप (मन्थिनः) सदसद्विवेचन करने योग्य गुणों के (अधिष्ठानम्) आधार के समान (असि) हो इस कारण तुम्हारी (मन्थिशोचिषा) सूर्य्य की दीप्ति के समान न्यायदीप्ति से (मर्कः) मृत्यु देने वाला अन्यायी (निरस्तः) निवृत्त होवे ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—न्यायधीश राजा को चाहिये कि धर्म्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरंतर पालन करे ॥१८॥

ये देवास इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । धैवत. स्वरः ॥

अब राजा और सभासदों के काम अगले मंत्र में कहे हैं ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(ये) जो (महिना) अपनी महिमा से (दिवि) विद्युत् के स्वरूप में (एकादश) ग्यारह अर्थात् प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा (देवासः) दिव्यगुणयुक्त देव (स्थ) हैं

(दिवि) सूर्य के (अधि) ऊपर (एकादश) ग्यारह अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति (स्थ) हैं तथा (अप्सुक्षितः) प्राणों में ठहरने वाले (एकादश) ग्यारह श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव, गुदा, लिंग और मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे अपने २ कामों में वर्त्तमान हैं वैसे हे (देवासः) राजसभा के सभासदो ! आप लोग यथायोग्य अपने २ कामों में वर्त्तमान हो कर (इमम्) इस (यज्ञम्) राज और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का (जुषध्वम्) सेवन किया करें ॥ १९ ॥

भावार्थ --इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे अपने २ कामों में प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिकों में सब पदार्थ हैं वैसे राजसभासदों को चाहिये कि अपने २ न्यायमार्ग में प्रवृत्त रहें ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र में कही है ॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले ! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्र बोध से युक्त (असि) हैं इस से (यज्ञम्) राजा और प्रजा की पालना कराने हारे यज्ञ को (पाहि) पालो और (स्वाग्रयणः) जैसे उत्तम विज्ञान युक्त कर्मों को पहुंचाने वाले होते हैं वैसे (आग्रयणः) उत्तम विचार युक्त कर्म्मों को प्राप्त होने वाले हूजिये इस से (यज्ञपतिम्) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को (पाहि) पालो यह (विष्णु) जो सपस्त अच्छे गुण और कर्म्मों को ठीक २ जानने वाला विद्वान् है वह (इन्द्रियेण) मन और धन से (त्वां) तुझे (पातु) पाले और तुम उस (विष्णुम्) विद्वान् की (पाहि) रक्षा करो (सवनानि) ऐश्वर्य्य देने वाले कामों की (अभि) सब प्रकार से (पाहि) रक्षा करो॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के विना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के सङ्ग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है

(अनाधृष्टा) (असि) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन (असि) हो, उस राज्य क्रिय करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—प्रजा पुरुष राज्य कर्म्म में जिस राजा का आश्रय करें वह ... करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शङ्का ... साथ कहें राजा के नोकर चाकर भी न्यायकर्म्म ही से प्रजाजनों की रक्षा करें।

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—भो न्यायाधीश (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त आप ! (प्रजाः) प्रजाओं को (प्रजनयन्) प्रकट करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टता के साथ (यजमानम्) यज्ञादि अच्छे कामों के करने वाले पुरुष को (अभि) (परि) (इहि) सर्वथा धन की वृद्धि से युक्त कीजिये (मन्थी) वादविवाद के मंथन करने हारे (दिवा) सूर्य्य वा (पृथिव्या) पृथिवी के (संजग्मानः) तुल्य धीरतादि गुणों से संग वाले आप (मन्थिनः) सत्यासत्यविवेचन करने योग्य गुणों के (अधिष्ठानम्) आधार के समान (असि) हो इस कारण तुम्हारी (मन्थिशोचिषा) सूर्य्य की दीप्ति के समान न्यायदीप्ति से (मर्कः) मृत्यु देने वाला अन्यायी (निरस्तः) निवृत्त होवे ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—न्यायधीश राजा को चाहिये कि जैसे यज्ञ करने वाले सत्पुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरंतर पालन करें ॥ १८ ॥

ये देवास इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजा और सभासदों के काम अगले मंत्र में कहे हैं ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(ये) जो (महिना) अपनी महिमा से (दिवि) विद्युत् के ... में (एकादश) ग्यारह अर्थात् प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा (देवासः) दिव्यगुणयुक्त देव (स्थ)

मानम्) मूर्त हैं (महि) उस (एकादश) ग्यारह अर्थात् पृथिवी, जल, अ-
ग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति (स्थ)
हैं (अप्सुक्षितः) प्राणों में ठहरने वाले (एकादश) ग्यारह श्रोत्र, त्वक्, चक्षु,
जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव, गुदा, लिङ्ग और मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे
अपने २ कामों में वर्त्तमान हैं वैसे हे (देवासः) राजसभा के सभासदो ! आप लोग
अपने अपने २ कामों में वर्त्तमान हो कर (इमम्) इस (यज्ञम्) राज और प्रजा
रूपी व्यवहार का (जुषध्वम्) सेवन किया करें ॥ १९ ॥

भावार्थ —इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे अपने २ कामों में प्रवृत्त
पृथिव्यादिकों में सब पदार्थ हैं वैसे राजसभासदों को चाहिये कि अपने २ व्यव-
हारों में प्रवृत्त रहें ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्षी
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र में कही है ॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्याग्रय॒णोऽसि॒ स्वा॑ग्रयणः । पा॒हि य॒ज्ञं पा॒हि य॒ज्ञप॑तिं॒ विष्णु॒स्त्वामि॑न्द्रि॒येण॑ पातु॒ विष्णुं॒ त्वं पा॑ह्य॒भि सव॑नानि पाहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले ! जिस कारण आप (उपया-मगृहीतः) विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्र बोध से युक्त (असि) हैं इस से (यज्ञम्) राजा और प्रजा की पालना कराने हारे यज्ञ को (पाहि) पालो और (स्वाग्रयणः) जैसे उत्तम विज्ञान युक्त कर्मों को पहुंचाने वाले होते हैं वैसे (आग्रयणः) उत्तम विचार युक्त कर्मों को प्राप्त होने वाले हूजिये इस से (यज्ञपतिम्) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को (पाहि) पालो यह (विष्णु) जो समस्त अच्छे गुण और कर्म्मों को ठीक २ जानने वाला विद्वान् है वह (इन्द्रियेण) मन और धन से (त्वा) तुझे (पातु) पाले और तुम उस (विष्णुम्) विद्वान् की (पाहि) रक्षा करो (सव-नानि) ऐश्वर्य्य देने वाले कामों की (अभि) सब प्रकार से (पाहि) रक्षा करो ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के विना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के सङ्ग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है

तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के विना ऐश्वर्य्य की उन्नति और ऐश्वर्य्य की उन्नति के विना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता ॥ २० ॥

सोमः पवत इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । सोमो देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । पवत इत्यस्य याजुषी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवत इष ऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्य ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे यह (सोमः) सोम्यगुण सम्पन्न राजा (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) परमेश्वर वा वेद को जानने के लिये (पवते) पवित्र होता है (अस्मै) इस (क्षत्राय) क्षत्रियधर्म्म के लिये (पवते) ज्ञानवान् होता है (अस्मै) इस (सुन्वते) समस्तविद्या के सिद्धान्त को निष्पादन (यजमानाय) और उत्तम सङ्ग करने हारे विद्वान् के लिये (पवते) निर्मल होता है (इषे) अन्न के गुण और (ऊर्ज्जे) पराक्रम के लिये (पवते) शुद्ध होता है (अद्भ्यः) जल और प्राण वा (ओषधीभ्यः) सोम आदि ओषधियों को (पवते) जानता है (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य्य और पृथिवी के लिये (पवते) शुद्ध होता है (सुभूताय) अच्छे व्यवहार के लिये (पवते) बुरे कामों से बचता है । वैसे (सोमः) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथोक्त जाने माने और आप भी वैसा पवित्र रहे । हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन जिस (ते) आप का (एषः) यह राजधर्म्म (योनिः) घर है उस (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये तथा (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) सम्पूर्ण दिव्यगुणों के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिये हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उन के उपकार के लिये धर्म्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वैसे ही सभ्यपुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्त्तें जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म्म का अनुष्ठान करने वाला होता है वही राजा और सभापुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्म्मात्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है । इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यं गृह्णामि। यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापति तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से नियम को पकड़ने वाला (असि) है इस हेतु से (बृहद्वते) जिस के अच्छे बड़े २ कर्म हैं (वयस्वते) और जिस की दीर्घ आयु है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य वाले सभापति के लिये (उक्थाव्यम्) प्रशंसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्र विद्याओं से (त्वा) तेरा (गृह्णामि) ग्रहण जैसे मैं करता हूं वैसे (यत्) जो (ते) तेरा (बृहत्) अत्यन्त (वयः) जीवन है (तस्मै) उस के पालन करने के अर्थ और (विष्णवे) ईश्वर ज्ञान वा वेदज्ञान के लिये (त्वा) तुझे (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं और (एषः) यह सेना का अधिकार (ते) तेरा (योनिः) स्थिर होने के लिये स्थान है। हे सेनापते! (उक्थेभ्यः) प्रशंसा योग्य वेदोक्त कर्मों के लिये (त्वा) तुझे (देवेभ्यः) और विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिये (देवाव्यम्) उन के पालन करने वाले (त्वा) तुझ को (यज्ञस्य) राज्यपालनादि व्यवहार के (आयुषे) बढ़ाने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ २२ ॥

भावार्थः—सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान् को योग्य है कि राज्य व्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा करने के लिये अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र विद्या में परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले वीर पुरुष को सेनापति के काम में युक्त करे और सभापति तथा सेनापति को चाहिये कि परस्पर सम्मति कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्यामित्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् छन्दांसि। गान्धारः स्वरः। इन्द्राबृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरश्च ॥

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करने वाला मैं (यज्ञस्य) अग्निहोत्र से लेकर राज्यपालन पर्यन्त यज्ञ की (आयुषे) उन्नति होने के लिये (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं । हे सेनापते विद्वन् ! (यज्ञस्य) सत्सङ्गति करने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् पुरुष के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं । हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण ! (यज्ञस्य) शिल्पविद्या के कामों की सिद्धि की (आयुषे) प्राप्ति के लिये (इन्द्राग्निभ्याम्) बिजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) दिव्यविद्या बोध की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं । हे शिल्पिन् ! (यज्ञस्य) क्रिया चतुराई का (आयुषे) ज्ञान होने के लिये (इन्द्रावरुणाभ्याम्) बिजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) उन की विद्या जानने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं । हे अध्यापक ! (यज्ञस्य) पढ़ने पढ़ाने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्) राजा और आप्तजनों के अर्थ (देवाव्यम्) प्रशंसित योगविद्या के जानने और प्राप्त कराने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं । हे विद्वन् ! (यज्ञस्य) विज्ञान की (आयुषे) बढ़ती के लिये (इन्द्राविष्णुभ्याम्) ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ (देवाव्यम्) ब्रह्मज्ञानों को तृप्त करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ २३ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिये सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता कराता रहे ॥ २३ ॥

मूर्द्धानमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

इस के अनन्तर विद्वानों का कर्म अगले मंत्र में कहा है॥

मूर्द्धानं॑ दि॒वो अ॑र॒तिं पृ॑थि॒व्या वै॑श्वान॒रमृ॒त आ जा॒तम॒ग्निम्।
क॒विꣳ स॒म्राज॒मति॑थिं॒ जना॑नामा॒सन्ना पात्रं॑ जनयन्त दे॒वाः॥२४॥

पदार्थः—जैसे (देवाः) धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेद की शिक्षा से (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (मूर्द्धानम्) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के गुणों को (अरतिम्) प्राप्त होने वाले (ऋते) सत्यमार्ग में (आजातम्) सत्यव्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुंचाने और (जनानाम्) सत्पुरुषों के (अतिथिम्) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और (आसन्) अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख में (पात्रम्) समस्त शिल्प व्यवहार की रक्षा करने (कविम्) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त होने वाले (अग्निम्) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को (सम्राजम्) एकचक्रराज्य करने वाले के समान (आ) अच्छे प्रकार से (जनयंत) प्रकाशित करते हैं वैसे सब मनुष्यों को करना योग्य है॥२४॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—जैसे सत्पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओं से यानों और शस्त्रास्त्रविद्या में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जीता करते हैं वैसे ही अन्य सब मनुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है॥२४॥

उपयामगृहीत इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। वैश्वानरो देवता। याजुष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ध्रुवोसीत्यस्य ध्रुवमित्यस्य च विराडार्षी बृहतीछन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि ध्रु॒वोऽसि ध्रु॒वक्षि॑तिर्ध्रु॒वाणां॑ ध्रु॒वत॒मोऽच्यु॑तानामच्युत॒क्षित्त॑म ए॒ष ते॒ योनि॑र्वैश्वान॒राय॑ त्वा। ध्रु॒वं ध्रु॒वेण॒ मन॑सा वा॒चा सोम॒मव॑नयामि। अथा॑ न॒ इन्द्र॒ इद्विशो॑ऽसप॒त्नाः सम॑नस॒स्कर॑त्॥२५॥

पदार्थः—हे परमेश्वर! आप (उपयामगृहीतः) शास्त्रप्राप्त नियमों से स्वीकार किये जाते (असि) हैं ऐसे हो (ध्रुवः) स्थिर (असि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन आप में भूमि स्थिर हो रही हैं और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रु-

यतमाः) अत्यन्त स्थिर (असि) हैं तथा (अच्युतानाम्) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशिपन बसाने वाले हैं (एषः) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश (ते) आप के (योनिः) निवास स्थापन के समान है (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों को सत्यमार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये (ध्रुवेण) दृढ़ (मनसा) मन और (वाचा) वाणी से (सोमम्) समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले (त्वा) आप को (ध्रुवम्) निश्चय पूर्वक जैसे हो वैसे (अपनयामि) स्वीकार करता हूं (अथ) इस के अनन्तर (इन्द्रः) सब दुःख के विनाश करने वाले आप (नः) हमारे (विशः) प्रजा जनों को (असपत्नाः) शत्रुओं से रहित और (समनसः) एक मन अर्थात् एक दूसरे के सुख चाहने वाले (इत्) ही (करत्) कीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो नित्य पदार्थों में नित्य और स्थिरों में भी स्थिर परमेश्वर है उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही होकर ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ २५ ॥

यत्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है ॥

यत्ते द्रप्सस्कन्दति यस्ते अꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् । अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तन्ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे यज्ञपते ! (यः) जो (ते) तेरा (द्रप्सः) यज्ञ के पदार्थों का समूह (स्कन्दति) पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेरे यज्ञ से युक्त (ग्रावच्युतः) मेघ मण्डल से छूटा हुआ (अंशुः) यज्ञ के पदार्थों का विभाग (धिषणयोः) प्रकाश भूमि के (पवित्रात्) पवित्र (उपस्थात्) गोद के समान स्थान से (वा) अथवा (यः) जो (अध्वर्योः) यज्ञ करने वालों से (वा) अथवा (परि) सब से प्रकाशित होता है इस से (तम्) उस यज्ञ को मैं (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी और (मनसा) मन से (वषट्कृतम्) किये हुए सङ्कल्प के समान (जुहोमि) देता हूं अर्थात् उस के फलदायक होने से तेरे लिये उस पदार्थ को पहुंचाता हूं जिस लिये यज्ञ का अनुष्ठान करने हारा तू (देवानाम्) विद्वानों के लिये (उत्क्रमणम्) ऊंची श्रेणी को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य्य के समान (असि) है इस से तुझ को सुख प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—होता आदि विद्वान् लोग अत्यंत दृढ़ सामग्री से यज्ञ करते हुए जिन सुगंधि आदि पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं वे पवन और जलादि पदार्थों को पवित्र कर उस के साथ पृथिवी पर आ और सब प्रकार के रोगों को निवृत्त करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। यज्ञपतिर्देवता। प्राणायेत्यस्य चासुर्य्यनुष्टुप्, उदानायेत्यस्यासुर्य्युष्णिक्, व्यानायेत्यवाचेम इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामित्यासुरी गायत्री, श्रोत्रायमेत्यस्यासुर्य्यनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि। अनुष्टुभो गान्धारो गायत्र्याः षड्जः उष्णिज ऋषभश्च स्वराः॥

फिर पठनपाठन यज्ञ के करने वाले का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (वर्चोदाः) यथायोग्य विद्या पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ कर्म, करने वाले! आप (मे) मेरे (प्राणाय) हृदयस्थजीवन के हेतु प्राणवायु और (वर्चसे) वेद विद्या के प्रकाश के लिये (पवस्व) पवित्रता से वर्त्त, हे (वर्चोदाः) ज्ञान दीप्ति के देने वाले जाठराग्नि के समान आप (मे) मेरे (व्यानाय) सब शरीर में रहने वाले पवन और (वर्चसे) अन्न आदि पदार्थों के लिये (पवस्व) पवित्रता से प्राप्त होवें हे (वर्चोदाः) विद्या बल देने वाले। आप (मे) (उदानाय) श्वास से ऊपर को आने वाले उदान संज्ञक पवन और (वर्चसे) पराक्रम के लिये (पवस्व) ज्ञान दीजिये। हे (वर्चोदाः) सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप (मे) मेरी (वाचे) वाणी और (वर्चसे) प्रगल्भता के लिये (पवस्व) प्रवृत्त हूजिये (वर्चोदाः) विज्ञान देने वाले आप (मे) मेरे (क्रतूदक्षाभ्याम्) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और (वर्चसे) अच्छे बोध के लिये (पवस्व) शिक्षा कीजिये। हे (वर्चोदाः) शब्द ज्ञान के देने वाले यज्ञपति आप (मे) मेरे (श्रोत्राय) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये (वर्चसे) शब्दों के अर्थ और सम्बन्ध का (पवस्व) उपदेश करें। हे (वर्चोदसौ) सूर्य

और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों (मे) मेरे (चक्षुर्भ्याम्) नेत्रों के लिये (वर्चसे) शुद्ध सिद्धान्त के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त हूजिये ॥२७॥

भावार्थः—जो विद्या की वृद्धि के लिये पठन पाठन रूप यज्ञ कर्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है ॥ २७ ॥

आत्मन इत्यस्य देवश्रवाऋषिः । यज्ञपतिर्देवता । ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ॒त्मने॑ मे वर्चो॒दा वर्च॑से पवस्वौज॑से मे वर्चो॒दा वर्च॑से पवस्वायु॑षे मे वर्चो॒दा वर्च॑से पवस्व॒ विश्वा॑भ्यो मे प्र॒जाभ्यो॑ वर्चो॒दसौ॒ वर्च॑से पवेथाम् ॥ २८ ॥

पदार्थ—हे (वर्चोदाः) योग और ब्रह्म विद्या देने वाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (आत्मने) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये (वर्चसे) अपने आत्मा के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदाः) उक्त विद्या देने वाले विद्वान् ! आप (मे) मेरे (ओजसे) आत्मबल होने के लिये (वर्चसे) योग बल को (पवस्व) जनाइये । हे (वर्चोदाः) बल देने वाले ! (मे) मेरे (आयुषे) जीवन के लिये (वर्चसे) रोग छुड़ाने वाले औषध को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदसौ) योगविद्या के पढ़ने पढ़ाने वालो ! तुम दोनों (मे) मेरी (विश्वाभ्यः) समस्त (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वर्चसे) सद्गुण प्रकाश करने को (पवेथाम्) प्राप्त कराया करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—योग विद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्णविद्या के विना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इस के विना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सका है इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ २८ ॥

कोऽसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । भूर्भुवःस्वरित्यस्य भुरिक् साम्नी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

सभापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनों को क्या २ करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

कोऽसि कत॒मोऽसि॒ कस्या॑सि॒ को नामा॑सि । यस्य॑ ते॒ नामाम॑न्महि॒ यं त्वा॒ सोमे॒नाती॑तृपाम । भूर्भुवः॒ स्वः॒ सुप्र॒जाः प्र॒जाभिः॑ स्या॒ꣳ सु॒वीरो॑ वी॒रैः सु॒पोषः॒ पोषैः॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—सभा सेना और प्रजा में रहने वाले हम लोग पूछते हैं कि तू (कः) कौन (असि) है।(कतमः) बहुतों के बीच कौनसा (असि) है (कस्य) किसका (असि) है (कः) क्या (नाम) तेरा नाम (असि) है (यस्य) जिस (ते) तेरी (नाम) संज्ञा को (अमन्महि) जानें और (यम्) जिस (त्वा) तुझ को (सोमेन) धन आदि पदार्थों से (अतीतृपाम) तृप्त करें यह कह उन से सभापति कहता है कि (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्म सुख की कामना करने वाला मैं तुम (प्रजाभिः) प्रजालोगों के साथ (सुप्रजाः) श्रेष्ठ प्रजा वाला (वीरैः) तुम वीरों से (सुवीरः) श्रेष्ठ वीर युक्त (पोषैः) पुष्टिकारक पदार्थों से (सुपोषः) अच्छा पुष्ट (स्याम्) होऊं। अर्थात् तुम सब लोगों से पृथक् न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है ॥ २१ ॥

भावार्थः—सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा कर के उन सभों को उन्नति देवे और अतिप्रबल वीरों को सेना में रक्खे जिस से कि बहुत सुख बढ़ाने वाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होवे ॥ २१ ॥

उपयाम गृहीतोसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आद्यस्य साम्नी गायत्री द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप् तृतीयचतुर्थपञ्चमानां साम्नी गायत्री षष्ठस्यासुर्य्यनुष्टुप् सप्तमाष्टमयोर्याजुषी पंक्तिर्नवमस्य साम्नी गायत्री दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप् एकादशस्य साम्नी गायत्री द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप् त्रयोदश्यासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि, अत्र गायत्र्याः षड्जः, अनुष्टुभो गान्धारः, पङ्क्तेः पञ्चमः, उष्णिजऋषभश्च स्वराः ॥

फिर भी विषयान्तर से यही उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यंहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस से आप (उपयामगृहीतः) अच्छे २ राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को (मधवे) चैत्रमास की सभा के लिये अर्थात् चैत्रमास प्रसिद्ध सुख कराने वाले व्यवहार की रक्षा के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा वा सेना जनो ! तुम में से एक २ (उपयामगृहीतः) अच्छे २ नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इसलिये तुम को चैत्रमास के सुख के लिये स्वीकार करता हूं इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिये राजा, राजसभासद्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३० ॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त हो कर श्रेष्ठ राज्य व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अब राज्य के व्यवहार से नियत राज कर्म्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले मन्त्र में कहा है ।

इन्द्राग्नी आग॑तꣳ सु॒तं गी॒र्भिर्नभो॒ वरे॑ण्यम् । अ॒स्य पा॑तं धि॒येषि॒ता । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसीन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑रिन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे इन्द्राग्नी सूर्य्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद ! तुम दोनों (आगतम्) आओ मिलकर (गीर्भिः) अच्छी शिक्षा युक्त वाणियों से हमारे लिये (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (नभः) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो तथा (इषिता) पढ़ाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से (अस्य) इस सुख को (पातम्) रक्षा करो । ये राजा और सभासद कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तू (उपयामगृहीतः) प्रजा के धर्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझ को (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये हम लोग वैसा ही मानते हैं (एषः) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) घर है (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये (त्वा) तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थः—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के राज कार्य्यों में युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें ॥ ३१ ॥

आघाये अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपेत्यस्याच्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहा है॥

आघाये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा। उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा॥ ३२॥

पदार्थः—(ये) जो वेदविद्या सम्पन्न विद्वान् सभासद (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि (घ) ही को (इन्धते) प्रकाशित करते और (आनुषक्) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ के यथोक्त क्रम से (बर्हिः) अन्तरिक्ष का (आ) (स्तृणन्ति) आच्छादन करते हैं तथा (येषाम्) जिनका (युवा) सर्वाङ्ग पुष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर सर्व विद्या विचक्षण तरुण अवस्था और (इन्द्रः) सकलैश्वर्य्य युक्त सभापति (सखा) मित्र है (अग्नीन्द्राभ्याम्) उन अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान सभासदों से (उपयामगृहीतः) प्रजाधर्म्म से युक्त तू ग्रहण किया गया (असि) है जिस (ते) तेरा (एषः) न्याययुक्त सिद्धान्त (योनिः) घर के सदृश है। उस (त्वा) तुझ को प्राप्त हुए हम लोग (अग्नीन्द्राभ्याम्) उक्त महा पदार्थों के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करते हैं॥ ३२॥

भावार्थः—राजधर्म्म में सब काम सभा के आधीन होने से विचारसभाओं में प्रवृत्त राजमार्गी जनों में से दो तीन वा बहुत सभासद मिल कर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्त्ताव रक्खें॥३२॥

ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयामेत्यस्यार्ची बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मंत्र में कहा है॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥ ३३॥

पदार्थः—(चर्षणीधृतः) मनुष्यों की पुष्टि संतुष्टि करने और (ओमासः) उत्तम २ गुणों से रक्षा करने हारे, हे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वानो! तुम (दाश्वांसः) उत्कृष्ट ज्ञान को देते हुए (दाशुषः) दान करने वाले उत्तम जन का (सुतम्) जो अच्छे कामों के करने से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला है उस के (आ, गत) सन्मुख आओ। हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले बालक तू (उपयामगृहीतः) पढ़ाने के

पदार्थः—हे राजन् ! जिस से आप (उपयामगृहीतः) अच्छे २ राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को (मधवे) चैत्रमास की सभा के लिये अर्थात् चैत्रमास प्रसिद्ध सुख कराने वाले व्यवहार की एक के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा या सेना जनो ! तुम में से एक २ (उपयामगृहीतः) अच्छे २ नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इसलिये तुम को चैत्रमास के सुख के लिये स्वीकार करता हूं इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिये राजा, राजसभासद्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहैं ॥ ३० ॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त हो कर श्रेष्ठ राज्य व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राज्य के व्यवहार से नियत राज कर्म्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले मन्त्र में कहा है ।

इन्द्राग्नी आगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यान्त्वा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे इन्द्राग्नी सूर्य्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद ! तुम दोनों (आगतम्) आओ मिलकर (गीर्भिः) अच्छी शिक्षा युक्त वाणियों से हमारे लिये (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (नभः) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो तथा (इषिता) पढ़ाये हुए या हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से (अस्य) इस सुख को (पातम्) रक्षा करो । ये राजा और सभासद कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तू (उपयामगृहीतः) प्रजा के धर्म्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझ को (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये हम लोग वैसा ही मानते हैं (एषः) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) घर है (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये (त्वा) तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थः—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के राज कार्य्यों में युक्त करे ये भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें ॥ ३१ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पंडित लोग उनकी परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तीव्रबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । उपयाम इत्यन्तस्यार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
अब राजा पढ़ाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह
अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्य्याते अपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब विघ्नों के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी (मरुत्वः) प्रशंसनीय धर्मयुक्त प्रजा वाले हमारे सभापति राजन् ! आप (इह) इस संसार में (यथा) जैसे (शार्य्याते) [illegible] (सुतस्य) [illegible] (अपिबः) [illegible] (सोमम्) [illegible] (पाहि) पालो । हे (शूर) [illegible] (तव) [illegible] (शर्म्मन्) [illegible] (सुयज्ञाः) [illegible] (कवयः) [illegible] (तव) [illegible] (प्रणीती) [illegible] (आविवासन्ति) [illegible] सेवन करते हैं । [illegible] (असि) [illegible] (मरुत्वते) [illegible] (योनिः) [illegible] (मरुत्वते) [illegible] ॥ ३५ ॥

भावार्थः—सब विद्वानों को उचित है कि [illegible]

नियमों से ग्रहण किया हुआ (असि) है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये अर्थात् उन की सेवा करने को आज्ञा देता हूं, जिसलिये (ते) तेरा (एषः) यह विद्या और अच्छी २ शिक्षा का संग्रह होना (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूं ॥ ३३ ॥

भावार्थः—सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और कन्याओं के लिये निरन्तर विद्यादान करें राजा और धनी आदि लोगों के धन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान् वा विदुषी स्त्रियों को धन आदि अच्छे २ पदार्थों को देकर उन की सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र वा आठ २ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य सेवन और अच्छी शिक्षा किये जाने के लिये विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें ये भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें ॥३३॥

विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः।
आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयाम इत्यस्य
निचृदार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रति दिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

विश्वे॑ देवास॒ आग॑त शृणु॒ता म॑ इ॒मꣳ हव॑म्। एदं ब॒र्हिर्नि षी॑दत। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॑ ए॒ष ते॒ योनि॒र्विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यः॑ ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादितगुणकर्मस्वभाववाले (विश्वेदेवासः) समस्त विद्वान् लोगो ! आप हमारे समीप (आगत) आइये और हम लोगों के दिये हुए (इदम्) इस (बर्हिः) आसन पर (आ निषीदत) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिये (मे) मेरी (हवम्) इस स्तुतियुक्तवाणी को (शृणुत) सुनिये। गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति कहे कि हे पुत्र ! जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) विद्वानों का ग्रहण किया हुआ (असि) है इस से हम (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सौंपें जिस लिये (एषः) यह समस्त विद्या का संग्रह (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) (देवेभ्यः) समस्त उक्त महाशयों से विद्या दिलाना चाहते हैं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पंडित लोग उनकी परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तीक्ष्णबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयाम इत्यस्याप्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ राजा पढ़ाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्य्याते अपिबः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब विघ्नों के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी (मरुत्वः) प्रशंसनीय धर्मयुक्त प्रजा पालने हारे सभापति राजन् ! आप (इह) इस संसार में (यथा) जैसे (शार्य्याते) अपने हाथ पैरों के परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार में (सुतस्य) अभ्यास किये हुए विद्या रस को (अपिबः) पी चुके हो वैसे (सोमम्) समस्त अच्छे गुण ऐश्वर्य्य और सुख करने वाले पठनपाठन रूपी यज्ञ का (पाहि) पालो । हे (शूर) धर्म विरोधियों को दण्ड देने वाले (तव) तुम्हारे (शर्म्मन्) राज्य घर में (सुयज्ञाः) अच्छे पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वानों के समान (कवयः) बुद्धिमान् लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीती) उत्तमनीति का (आविवासन्ति) सेवन करते हैं । हे शूर ! जिस कारण तुम (उपयामगृहीतः) प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो इस से (त्वा) इन्द्राय परमैश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा सम्बन्ध के लिये हम लोग चाहते हैं कि जो (ते) तेरा (एषः) यह विद्या का प्रचार (योनिः) घर के समान है इस से (त्वा) तुम को (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा पालन सम्बन्ध के लिये मानते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थः—सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायाधीशों की न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो उस को कभी उल्लंघन न करें वैसे ये राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा को उल्लंघन न करें जो सब गुणों से उत्तम हो उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तमनीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे ॥ ३५ ॥

मरुत्वन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराडार्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य द्वितीय भागस्यार्षी तृतीयस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यᳬ शासमिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रᳬ सहोदामिह तᳬ हुवेम । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते । उपयामगृहीतोऽसि मरुतान्त्वौजसे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(कवयः) पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग (नूतनाय) नवीन २ (अवसे) रक्षा आदि गुणों के लिये (मरुत्वन्तम्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (वृषभम्) सब से उत्तम (वावृधानम्) अत्यन्त शुभगुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त (अकवारिम्) समस्त धर्म विरोधी दुष्टों का निवारण करने वाले (दिव्यम्) शुद्ध (विश्वासाहम्) सर्व सहनशील (उग्रम्) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त (सहोदाम्) सहायता (शासम्) और सब को शिक्षा देने वाले (तम्) उस पूर्वोक्त (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य युक्त सभापति को निम्नलिखित प्रकार से (हुवेम) स्वीकार करें । हे मुख्य सभासद् राजन् ! तू जिस कारण (उपयामगृहीतः) समस्त बड़े २ और छोटे २ नियमों की सामग्री से सहित (असि) है इस से (त्वा) तुझ को (मरुत्वते) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् सभापति होने के लिये स्वीकार करते हैं (एषः) यह सभा में न्याय करने का काम (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इस से (त्वा) तुझे (मरुत्वते) उत्तम प्रजा से युक्त (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के पालन और वृद्धि होने के लिये स्वीकार करते हैं और जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त (असि) है इस से (मरुताम्) प्रजाजनों का (ओजसे) बल बढ़ने के लिये (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (कवयः) इस पद की अनुवृत्ति आती है प्रजा जनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् शूरवीर हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्यन्याययुक्त धर्म कार्य्य से प्रजा के उत्साह की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

सजोषेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य निचृदार्षीत्रिष्टुप् । उपयामेत्यस्य प्राजापत्यात्रिष्टुप् छन्दसी । धैवतः स्वरः ॥

अथ सेनापति का काम अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्। जहि शत्रूँ २॥ रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३७ ॥

पदार्थ.—ईश्वर कहता है कि हे (इन्द्र) सब सुखों के धारण करने हारे (शूर) शत्रुओं के नाश करने में निर्भय ! जिस से तू (उपयामगृहीतः) सेना के अच्छे २ नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इस से (मरुत्वते) जिस में प्रशंसनीय वायु की अस्त्र विद्या है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य पहुंचाने वाले युद्ध के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं कि (ते) तेरा (एषः) यह सेनाधिकार (योनिः) हुए सुख दायक है इस से (मरुत्वते) (इन्द्राय) उक्त युद्ध के लिये यत्न करते हुए तुझ को मैं अङ्गीकार करता हूं और (सजोषाः) सब से समान प्रीति करने वाला (सगणः) अपने मित्र जनों के सहित तू (मरुद्भिः) जैसे पवन के साथ (वृत्रहा) मेघ के जल को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य्य (सोमम्) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है ऐसे सब पदार्थों के रस को (पिब) सेवन कर और इस से (विद्वान्) ज्ञानयुक्त हुआ तू (शत्रून्) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्टजनों का (जहि) विनाश कर (अथ) इस के अनन्तर (मृधः) जहां दुष्टजन दूसरे के सुख से अपने मन को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को (अपनुदस्व) दूर कर और (नः) हम लोगों को (विश्वतः) सब जगह से (अभयम्) भय रहित (कृणुहि) कर ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य्य वायु और बिजुली के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है वैसे राजा को चाहिये कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मार कर प्रजा को सुख धर्म्मात्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥ ३७ ॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अथ सभाध्यक्ष के लिये अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

मरुत्वाँ २॥ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय। आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्म्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम्।

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के जीतने वाले सभापते ! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) राजनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो इसलिये हम लोग तुम को (मरुत्वते) जिस में अच्छे २ अस्त्रों और शस्त्रों का काम है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले युद्ध के लिये युक्त करते हैं जिससे (ते) आप का (एषः) यह युद्ध परमैश्वर्य्य का (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुम को (मरुत्वते) (इन्द्राय) उस युद्ध के लिये कहते हैं कि आप (प्रतिपत्) प्रत्येक बड़े २ विचार के कामों में (राजा) प्रकाशमान (मरुत्वान्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और (वृषभः) अत्यन्त श्रेष्ठ हो इस से (रणाय) युद्ध और (मदाय) आनन्द के लिये (अनुष्वधम्) प्रत्येक भोजन में (सोमम्) सोमलतादि पुष्ट करने वाली ओषधियों के रस को (पिब) पीओ (सुतानाम्) उत्तम संस्कारों से बनाये हुए अन्नों के (मध्वः) मधुर रस की (ऊर्म्मिम्) लहरी को अपने (जठरे) उदर में (आसिञ्चस्व) अच्छे प्रकार स्थापन करो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥ ३८ ॥

महानित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । प्रजा सेनापतिर्देवता । आद्यस्य भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । उपयामेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ ईश्वर अपने गुणों का उपदेश अगले मंत्र में करता है ॥

महाँ२॥ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः । अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्य्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे भगवन् जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) योगाभ्यास से ग्रहण करने के योग्य (असि) हैं इस से (महेन्द्राय) अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये हम लोग (त्वा) आप की उपासना हमारे लिये (योनिः) कल्याण का कारण है इस से (त्वा) तुम को (महेन्द्राय) परमैश्वर्य्य पाने के लिये हम सेवन करते हैं जो (महान्) सर्वोत्तम अत्यन्तपूज्य (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य (आ) अच्छे प्रकार (चर्षणिप्राः) सब मनुष्यों को गुणों से परिपूर्ण करने (द्विबर्हाः) व्यवहार और प-

रमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त (असायक्) हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जानने वाले (अमिनः) अतुल पराक्रम युक्त (कर्तृभिः) अच्छे कर्म करने वाले जीवों ने (सुकृतः) अच्छे कर्म करने वाले के समान ग्रहण किए हुए और (इन्द्रः) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य वाले आप हैं उन्हीं का आश्रय किये हुए समस्त हम लोग (सहोभिः) अच्छे २ बलों के साथ (वीर्याय) परम उत्तम बल की प्राप्ति के लिये (वावृधे) दृढ़ उत्साह युक्त होते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥ ३९ ॥

महानिन्द्र इत्यस्य वत्स ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

म॒हाँ२ऽइन्द्रो॒ य ओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृष्टि॒माँ२ऽइ॑व। स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि महे॒न्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्महे॒न्द्राय॑ त्वा॥ ४० ॥

पदार्थः—हे अनादिसिद्ध योगिन् सर्वव्यापी ईश्वर! जो आप योगियों के (उपयामगृहीतः) यमनियमादि योग के अङ्गों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस कारण हम लोग (त्वा) आप को (महेन्द्राय) योग से प्रकट होने वाले अच्छे ऐश्वर्य के लिये आश्रय करते हैं (ते) आपका (एषः) यह योग हमारे कल्याण का (योनिः) निमित्त है इसलिये (त्वा) आपका (महेन्द्राय) मोक्ष कराने वाले ऐश्वर्य के लिये ध्यान करते हैं (यः) जो (महान्) बड़े २ गुण कर्म और स्वभाव वाला (वृष्टिमान्) वर्षने वाले (पर्जन्य इव) मेघ के तुल्य (वत्सस्य) स्तुति करने वाले की (स्तोमैः) स्तुतियों से (ओजसा) अनन्तबल के साथ प्रकाशित होता है उस ईश्वर को जान कर योगी (वावृधे) अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

भावार्थः—जैसे मेघ वर्षा समय में अपने जल के समूह से सब पदार्थों को पुष्ट करता हुआ उन्नति देता है वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करने के समय में योगाभ्यास करने वाले योगी पुरुष के योग को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ४० ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इस के पीछे सूरज की उपमा से ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यं स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—जैसे किरण (विश्वाय) समस्त जगत् के प्रयोजन के (दृशे) देखने जानने के लिये (जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुये सब पदार्थों को जानता वा मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है (त्यम्) उस (सूर्यम्) (देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य को (उ) तर्क के साथ (उत्) (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं वैसे विद्वान् के (केतवः) प्रकृष्ट ज्ञान और (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ॥ ४१ ॥

भावार्थः—जैसे प्राणियों के लिये सूर्य्य के किरण उसको प्रकाशित करते हैं वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियां ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं ॥ ४१ ॥

चित्रन्देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

चित्रन्देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को अति उचित है कि जो (सूर्य्यः) सविता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (देवानाम्) मेघ आदि के समान विद्वानों (मित्रस्य) मित्र वा प्राण (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान और (अग्नेः) अग्नि के (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) बलयुक्त सेना के तुल्य प्रसिद्ध (चक्षुः) प्रकाश के दिखलाने वाले गुणों को (उत्) (अगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (जगतः) जङ्गम प्राणी और (तस्थुषः) स्थावर संसारी पदार्थों का (आत्मा) आत्मा के तुल्य हो कर (द्यावापृथिवी) प्रकाश तथा भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अप्राः) व्याप्त होके चराचर के समान परमात्मा है उसी की उपासना निरन्तर किया करो ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जिस कारण परमेश्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त सूर्य्य के तुल्य स्वयम् प्रकाशमान और सूत्रात्मा वायु के सदृश सब का अन्तर्यामी है इस से

सब जीवों के लिये सत्य और असत्य को बोध कराने वाला है जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र नहीं ॥ ४२ ॥

अग्ने नयेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना अगले मन्त्र में कही है ॥

अग्ने नय॑ सुपथा॑ राये अ॒स्मान्विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान् । यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठान्ते नम॑ उक्तिं विधेम स्वाहा॑ ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करने वाले परमेश्वर आप (सुपथा) सत्यविद्या धर्मयोगयुक्त मार्ग से (राये) योग की सिद्धि के लिये (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) योग के विज्ञानों को (नय) पहुंचाइये जिस से हम लोग (स्वाहा) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत (नमउक्तिम्) नमस्कार पूर्वक स्तुति को (विधेम) करें । हे (देव) योगविद्या को देने वाले ईश्वर (विद्वान्) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जानने वाले आप कृपा कर के (जुहुराणम्) हम लोगों के अन्तःकरण के कुटिलता रूप (एनः) दुष्ट कर्मों को (अस्मत्) योगानुष्ठान करने वाले हम लोगों से (युयोधि) दूर कर कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के बिना योग सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम भक्ति युक्त होकर योग बल से परमेश्वर का स्मरण करता है उस को वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है ॥ ४३ ॥

अयमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब संग्राम में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अ॒यम॒ग्निर्व॑रिवस्कृणोत्व॒यम्मृध॑: पु॒र ए॑तु प्रभि॒न्दन् । अ॒यं वाजा॑ञ्जयतु॒ वाज॑साताव॒यꣳ शत्रू॑ञ्जयतु॒ जर्हृ॑षाण॒: स्वाहा॑ ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(अयम्) यह प्रथम (अग्निः) सेनाविद्या का प्रकाश करने वाला सेनापति (स्वाहा) सेना और युद्ध की शिक्षायुक्त वाणी से (वाजसातौ) युद्ध में (नः) हम लोगों को (वरिवः) सुखकारक सेवन (कृणोतु) करे (अयम्) यह दूसरा युद्ध

करने वाला मुख्य वीर (प्रमिन्दन्) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ (मृधः) संग्राम के (पुरः) आगे (एतु) चले (अयम्) यह तीसरा वीर रसकारक उपदेश करने वाला योद्धा (वाजान्) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त वीरों को (जयतु) उत्साह युक्त करता रहे (अयम्) यह चौथा वीर (जर्हृषाणः) निरन्तर आनन्द युक्त होकर (शत्रून्) धर्म्म विरोधी शत्रुजनों को (जयतु) जीते ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जब युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों उन में से एक तो वैद्यकशास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करने हारा वैद्य, दूसरा सब वीरों को हर्ष देने वाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करने वाला हो, तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥ ४४ ॥

रूपेणेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृज्जगतिच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥४५॥

पदार्थः—हे सेना और प्रजाजनो ! जैसे मैं (रूपेण) अपने दृष्टिगोचर आकार से (वः) तुम्हारे (रूपम्) स्वरूप को (अभि) (आ) (अगाम्) प्राप्त होता हूं वैसे (विश्ववेदाः) सब को जानने वाले परमात्मा के समान सभापति (वः) तुम लोगों को (वि) (भजतु) पृथक् २ अपने २ अधिकार में नियत करे। हे सभापते ! (तुथः) अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप (स्वः) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य के (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (अन्तरिक्षम्) अविनाशी राजनीति का (वि) अनेक प्रकार से (पश्य) देखो और सभा के बीच में (सदस्यैः) सभासदों के साथ सत्य मार्ग से (प्र) (यतस्व) विशेष २ यत्न करो तथा हे (चन्द्रदक्षिणाः) सुवर्ण के दान करने वाले राज पुरुषो ! तुम लोग धर्म्म को (प्रेत) प्राप्त होओ ॥ ४५ ॥

भावार्थः—सभापति राजा को चाहिये कि अपने पुत्रों के तुल्य प्रजा सेना के पुरुषों को रक्खे और परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे। धार्मिक सज्जनों की तीन सभा होनी चाहियें उन में से एक राजसभा जिस के आधीन राज्य के सब कार्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहैं, दूसरी विद्यासभा जिस से विद्या का प्रचार और अविद्या का नाश होता रहे और तीसरी धर्म-

ा जिस से धर्म की उन्नति और अधर्म की हानि निरन्तर की जाय। सब लोगों उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय मार्ग से अलग हो, र्म का सेवन और सभासदों के साथ सत्यानुकूल अनेक प्रकार से विचार कर के य और असत्य के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुद- क्षिणम्। अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे प्रजा सभा और सेना के मनुष्यो! जैसे मैं (अद्य) आज (ब्राह्मणम्) द और ईश्वर को जानने वाला (पितृमन्तम्) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के वेक से जिस के सर्वथा रक्षक हैं (पैतृमत्यम्) पितृभाव को प्राप्त (ऋषिम्) वेदार्थ ज्ञान कराने वाला ऋषि (आर्षेयम्) जो ऋषिजनों के इस याग से उत्पन्न हुए वि- न को प्राप्त (सुधातुदक्षिणम्) जिस के अच्छी अच्छी पुष्टिकारक दक्षिणा रूप धातु उस (प्रदातारम्) अच्छे दान शील पुरुष को (विदेयम्) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग अस्मद्राताः) हमारे लिये अच्छे गुणों के देने वाले होकर (देवत्रा) शुद्ध गुण कर्म भाव युक्त विद्वानों के (आगच्छत) समीप आओ और शुभ गुणों में (आविशत) वेश करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उत्साही पुरुष को क्या नहीं त हो सकता कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋ- लोगों के प्रकाशित किये हुए याग विज्ञान को न सिद्ध करसके कोई भी विद्वान च्छे गुण कर्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाता जनों को कृप- ता कभी नहीं आती है इस से जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र र्मिक सर्वोपकारक विद्वानों को देते हैं उनकी अचल कीर्त्ति क्यों कर न हो ॥ ४६ ॥

अग्नयेत्वेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। वरुणोदेवता। आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय- त्वेत्यस्य स्वराट्प्राजापत्या, बृहस्पतयेत्वेत्यस्य निचृदार्ची। यमायत्वेत्यस्य विराडार्चीजगत्यश्छन्दांसि। निषादः स्वरः ॥

अब किस प्रयोजन के लिये दान निमद्‌ सेवन करना चाहिये इस विषय ा है ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्र एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्र एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे वसु संज्ञक पढ़ाने वाले ! जिस (अग्नये) चौबीस वर्षतक ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर के अग्नि के समान तेजस्वि होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) तुझ अध्यापक को (वरुणः) सर्वोत्तम विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) अपने शुद्ध कर्मों से सिद्ध किये सत्य आनन्द को (अशीय) प्राप्त होऊं उस (दात्रे) दानशील विद्वान् का (आयुः) बहुत कालपर्य्यन्त जीवन (एधि) बढ़ाइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ विद्यार्थी के लिये (मयः) सुख बढ़ाइये । हे दुष्टों को रुलाने वाले अध्यापक जिस (रुद्राय) चवालीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) रुद्र नामक पढ़ाने वाले आपको (वरुणः) अत्युत्तमगुणयुक्त (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के साधनों को (अशीय) प्राप्त होऊं उस (दात्रे) विद्या देने वाले विद्वान् के लिये (प्राणः) योग विद्या का बल (एधि) प्राप्त कराइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था का सुख प्राप्त कीजिये । हे सूर्य्य के समान तेजस्वि अध्यापक जिस (बृहस्पतये) अड़तालीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन की इच्छा करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) पूर्णविद्या पढ़ाने वाले आप को (वरुणः) पूर्णविद्या से शरीर और आत्मा के बलयुक्त विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) विद्या के आनन्द का (अशीय) भोग करूं उस (दात्रे) पूर्ण विद्या देने वाले महा विद्वान् के अर्थ (त्वक्) सर्दी गर्मी के स्पर्श का सुख (एधि) बढ़ाइये और प्रतिग्रहीत्रे पूर्ण विद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ शिष्य के लिये (मयः) पूर्णविद्या का सुख उत्पन्न कीजिये । हे ब्रह्माश्रम से होने वाले विषय सुखसे विमुख विरक्त सत्योपदेश करने हारे आप्त विद्वन् ! जिस (यमाय) ब्रह्माश्रम के सुख के अनुराग से होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) सर्व दोषरहित उपदेश करने वाले आप को (वरुणः) सकलशुभगुणयुक्त विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के सुख को (अशीय) प्राप्त होऊं उस

(दात्रे) मुझ विद्या देने वाले महा विद्वान् के लिये (वयः) मुझ ज्ञान की वृद्धि (दधि) कीजिये और (प्रतिग्रहीत्रे) मोक्ष विद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (मयः) तीनों अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिये ॥ ४७ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तमगुण वाला सब विद्याओं में सब से बढ़कर विद्वान् हो उस के आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानों की परीक्षा करके अपनी २ कन्या और पुत्रों को उन २ के पढ़ाने योग्य विद्वानों से पढ़वावें और पढ़ने वालों को भी चाहिये कि अपनी २ अधिक न्यून बुद्धि को जान के अपने २ अनुकूल अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए उन से निरन्तर विद्या का ग्रहण करें ॥ ४७ ॥

कोऽदादित्यस्याङ्गिरस ऋषिः। आत्मा देवता। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है ॥

कोऽदात्कस्मा॑ अदात्कामोऽदात्कामा॑यादात्। कामो॑ दा॒ता काम॑: प्रतिग्रही॒ता कामै॒तत्ते॑ ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(कः) कौन कर्म फल को (अदात्) देता और (कस्मै) किस के लिये (अदात्) देता है। इन दो प्रश्नों के उत्तर (कामः) जिस की कामना सब करते हैं वह परमेश्वर (अदात्) देता और (कामाय) कामना करने वाले जीव को (अदात्) देता है। अब विवेक करते हैं कि (कामः) जिस की योगी जन कामना करते हैं वह परमेश्वर (दाता) देने वाला है (कामः) कामना करने वाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है। हे (काम) कामना करने वाले जीव! (ते) तेरे लिये मैंने वेदों के द्वारा (एतत्) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस संसार में कर्म करने वाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है यहां यह जानना चाहिये कि कामना के विना कोई आंख का पलक भी नहीं हिला सकता इस कारण जीव कामना करे परन्तु धर्म सम्बन्धी कामना करे अधर्म की नहीं यह निश्चय कर जानना चाहिये कि जो इस विषय में मनुजी ने कहा है वह वेदानुकूल है। जैसे इस संसार में अति कामना करना प्रशंसनीय नहीं और कामना के विना कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये धर्म की कामना करनी और अधर्म की नहीं क्योंकि वेदों का पढ़ना पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का आचरण करना आदि कामना इच्छा के विना कभी सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥ इस संसार में तीनों काल में इच्छा के विना कोई क्रिया नहीं दीख पड़ती जो २ कुछ किया जाता है सो २ सब इ-

च्छा ही का व्यापार है । इसलिये श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करनी इतर दुष्टकामों की नहीं ॥ ४८ ॥

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव, आत्मा का कर्म्म, आत्मा में मन की प्रवृत्ति, प्रथम सिद्ध योगी के लिये ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना, योग का लक्षण, पढ़ने पढ़ाने वालों की रीति, योग विद्या के अभ्यास करने वालों का वर्त्ताव, योगविद्या से अन्तःकरण की शुद्धि, योगाभ्यासी का लक्षण, गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार, स्वामि सेवक का वर्त्ताव, न्यायाधीश को प्रजा के रक्षा करने की रीति, राजपुरुष और सभासदों का कर्म्म, राजा का उपदेश, राजाओं को कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापति का करना, पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना, विद्वानों का कर्त्तव्य कर्म्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय, प्रजाजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव राजा और प्रजा के जनों का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ने का विषय, विद्या की वृद्धि करना, राजा को कर्त्तव्य, सेनापति का कर्म्म, सभाध्यक्ष की क्रिया, ईश्वर के गुणों का वर्णन, उसकी प्रार्थना, शूरवीरों को युद्ध का अनुष्ठान, सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य्य सेवन की रीति और ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश, इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की षष्ठाध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सातवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



ओ३म्

अथाष्टमाध्यायस्यारम्भः ॥

अब आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

उपयाम इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । बृहस्पतिस्सोमो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

इस के प्रथम मन्त्र से गृहस्थों धर्म के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं (आदित्येभ्यः) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनों की सभा में (त्वा) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूँ आप (उपयामगृहीतः) शास्त्र के नियम और उपनियमों को ग्रहण करने वाले (असि) हो । हे (विष्णो) समस्त श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठजन ! (ते) आप का (एषः) यह गृहस्थाश्रम (सोमः) सोमलता आदि के तुल्य ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला है (तम्) उस की (रक्षस्व) रक्षा करें । हे (उरुगाय) बहुत शास्त्रों को पढ़ने वाले ! (त्वा) आप को काम के बाण जैसे (मा दभन्) दुःख देने वाले न होवें वैसा साधन कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—जब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुईं युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि अपने सदृश रूप गुण कर्म स्वभाव और विद्या वाला अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के योग्य अन्तःकरण से जिस पर विशेष प्रीति हो ऐसे पति को स्वयंवर विधि से स्वीकार कर के उस की सेवा किया करें । ऐसे ही कुमार ब्रह्मचारी लोगों को चाहिये कि अपने अपने समान युवति स्त्रियों का पाणिग्रहण करें इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिये । और परस्पर अत्यन्त विषय की लोलुपता तथा वीर्य का विनाश कभी न करें किन्तु सदा ऋतुगामी हों । दश सन्तानों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्छी शिक्षा देकर

अपने ऐश्वर्य की वृद्धि कर प्रीति पूर्वक रमण करें जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग अप्रीति और व्यभिचार आदि दोष न हों वैसा वर्त्ताव कर के आपस में एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल में किया करें ॥ १ ॥

कदाचन प्रस्तस्याङ्गिरस ऋषिः । गृहपतिर्मघवा देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

क॒दा॒च॒न स्त॒रीर॑सि॒ नेन्द्र॑ सश्चसि दा॒शुषे॑ । उपो॒पेन्नु म॑घव॒न्भूय॒ इन्नु ते॒ दानं॑ दे॒वस्य॑ पृच्यत आदि॒त्येभ्य॑स्त्वा ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य से युक्त पति ! जिस कारण आप (कदा) कभी (चन) भी (स्तरीः) अपने स्वभाव को छिपाने वाले (न) नहीं (असि) हैं इस कारण (दाशुषे) दान देने वाले पुरुष के लिये (उपोप) समीप (सश्चसि) प्राप्त होते हैं । हे (मघवन्) प्रशंसित धन युक्त भर्त्ता ! (देवस्य) विद्वान् (ते) आपका जो (दानम्) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन आदि पदार्थों का देना है (इत्) वही (नु) शीघ्र (भूयः) अधिक कर के मुझ को (पृच्यते) प्राप्त होवे इसी से मैं स्त्री भाव से (आदित्येभ्यः) प्रति महीने सुख देने वाले आप का आश्रय करती हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—विवाह की कामना करने वाली युवति स्त्री को चाहिये कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक ही स्त्री को चाहने वाला जितेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उस के साथ विवाह करके आनन्द में रहै ॥ २ ॥

कदाचन प्रयुच्छसीत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

क॒दा॒च॒न प्र यु॑च्छस्यु॒भे नि पा॑सि॒ जन्म॑नी । तुरी॑यादित्य॒ सव॑नन्त इन्द्रि॒यमा त॑स्थाव॒मृतं॑ दि॒व्या॒दि॒त्येभ्य॑स्त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—इस मन्त्र में नकार का अध्याहार आकांक्षा के होने से होता है । हे पते ! आप को (कदा) कभी (चन) भी (प्र) (युच्छसि) प्रमाद नहीं करते हो तो अपने (उभे) दोनों (जन्मनी) वर्त्तमान और परजन्म को (पासि) निरन्तर पालते हो । हे (आदित्य) विद्या गुणों में सूर्य के तुल्य प्रकाशमान जो (ते) आप के (सवनम्) उत्पत्ति धर्म युक्त कार्य्य सिद्ध करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय के

दम में रहूँ जो आप (मा) (तर्पय) (दिवि) प्रकाशित व्यवहारों में (अमृतम्) अविनाशी सुख का भान हो जावें। हे (तुरीय) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करने वाले (आदित्येभ्यः) प्रतिमास के सुख के लिये (त्वा) इन्द्रिय आप को मैं स्त्री स्वीकार करती हूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़कर पर स्त्री का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो संयमी अपनी ही स्त्री का चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता वह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगे। इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें अन्य का नहीं ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः। आदित्यो गृहपतिर्देवता। निचृज्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः। आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्याद्ꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (आदित्यासः) सूर्य्य लोकों के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान। आप जो (देवानाम्) विद्वान् (वः) आप लोगों का यह (यज्ञः) स्त्री पुरुषों के वर्त्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार (सुम्नम्) सुख को (प्रति) (एति) निश्चय करके प्राप्त कराता है और (या) जो (अंहोः) गृहाश्रम में सुख को सिद्ध करने वाली (अर्वाची) अच्छी शिक्षा और विद्याभ्यास के पीछे विज्ञान प्राप्ति का हेतु (वरिवो वित्तरा) सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली आप लोगों की (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग में निरन्तर (आ) (ववृत्यात्) प्रवृत्त होवे जो (आदित्येभ्यः) आप्तविद्वानों से उत्तम विद्या और शिक्षा जो (त्वा) तुझ को (असत्) प्राप्त हो (चित्) उस बुद्धि से ही युक्त हम दो स्त्री पुरुष को (मृडयन्तः) सदा सुख देते रहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—विवाह करके स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जिस २ काम से विद्या अच्छी शिक्षा बुद्धि धन सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें ॥ ४ ॥

विवस्वन्नित्यस्य कुत्स ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य प्राजापत्याऽनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । अदित्युत्तरस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (विवस्वन्) विविध प्रकार के स्थानों में वसने वाले (आदित्य) अविनाशी स्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! (एषः) यह जो (ते) आपका (सोमपीथः) जिस में सोमलता आदि ओषधियों के रस पीने में आवे ऐसा गृहाश्रम है (तस्मिन्) उस में आप (विश्वाहा) सब दिन (मत्स्व) आनन्दित रहो । हे (नरः) गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो ! आप लोग (अस्मै) इस (वचसे) गृहाश्रम के वाग् व्यवहार के लिये (श्रत्) सत्य ही का (दधातन) धारण करो (यत्) जिस (गृहे) गृहाश्रम में (दम्पती) स्त्रीपुरुष (वामम्) प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को (अश्नुतः) प्राप्त होते हैं उस में (आशीर्दा) कामना देने वाला (अरपः) निष्पाप धर्मात्मा (पुमान्) पुरुषार्थी (पुत्रः) वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है और वह उत्तम (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है (अध) इस के अनन्तर वह (एधते) विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से बढ़ता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षा पूर्वक स्वयंवर विवाह और सत्य आचरणों से संतानों को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके नित्य उन्नति पावें ॥ ५ ॥

वाममद्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः ।
...हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥

...:—हे (देव) सुख देने (सवितः) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने ...! आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (अद्य) आज (वामम्) अति

फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधा असि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥

पदार्थः— हे पुरुष ! तुम जैसे मैं नियम और उपनियमों से ग्रहण करी गयी हूं वैसे आप भी (उपयामगृहीतः) विवाह नियम से ग्रहण किये (असि) हैं जैसे आप (चनोधाः) (चनोधा) अन्न ० के धारण करने वाले (असि) हैं और (सावित्रः) सविता समान संतानादि शुभ उत्पन्न करने वाले आप को अपना इष्टदेव मानी वाले (असि) हैं ऐसे मैं भी आप के निमित्त धारण करूं जैसे आप (यज्ञम्) गृहस्थ पुरुषों के सेवन योग्य धर्म्म व्यवहार को (जिन्व) प्राप्त हों वैसे मैं भी प्राप्त होऊं और जैसे (सवित्रे) सन्तानों की उत्पत्ति के हेतु (भगाय) धनादि सेवनीय (देवाय) दिव्य ऐश्वर्य के लिये (यज्ञपतिम्) गृहाश्रम को पालने हारे आप को मैं प्रसन्न रक्खूं वैसे आप भी (जिन्व) तृप्त कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में वाचकलु०- विवाहित स्त्री पुरुषों को योग्य है कि न्याय के अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ संतानोत्पत्ति का आचरण करें ॥ ७ ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । विश्वे देवा गृहपतयो देवताः । आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । सुशर्मेत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ को सेवने योग्य धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः ।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे पते ! जैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) नियम उपनियमों से ग्रहण किया है (असि) हैं और (सुप्रतिष्ठानः) अच्छी प्रतिष्ठा और (सुशर्मा) अच्छे घर वाले (असि) हो उन (बृहदुक्षाय) अत्यन्त वीर्य देने वाले आप को (नमः) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ अन्न चित्त का प्रसन्न करने वाला उचित समय पर देती हूं जिस आप का (एषः) यह (योनिः) सुखदायक महल है (त्वा) उस आप को (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य सुखों के लिये सेवन करती हूं और (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये नियुक्त करती हूं वैसे आप मुझको कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखने वाले पुरुष का सब ऋतुओं में सुख देने वाला घर हो और आप वीर्यवान् हो उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करें और उस के लिये यथोचित समय पर सुख देवें तथा आप उस पति से उचित समय में दिव्य सुख भोगें और वे स्त्री पुरुष दोनों विद्वानों का सत्संग किया करें ॥ ८ ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः ।
आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री, बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्यार्च्युष्णिक्,
अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षी पंक्तिश्छन्दांसि । क्रमेणषड्जर्षभपञ्चमाः स्वराः ॥

फिर गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ२॥ ऋध्यासम् । अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत् । अहꣳसूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य सम्पन्न (देव) अति मनोहर पते ! जिस आप को मैं कुमारी ने (उपयामगृहीतः) विवाह नियमों से स्वीकार किया (असि) है उन (इन्दोः) सोम गुण सम्पन्न (इन्द्रियावतः) बहुत धन वाले और (पत्नीवतः) यज्ञ सम्बन्ध में प्रशंसनीय स्त्री ग्रहण करने वाले (बृहस्पतिसुतस्य) और बड़ी वेद वाणी के पालने वाले के पुत्र (ते) आप के गृह और सम्बन्धियों को प्राप्त होके मैं (परस्तात्) और (अवस्तात्) पीछे के समय में (ऋध्यासम्) सुखों से बढ़ती जाऊं

(यत्) जिस (देवानाम्) विद्वानों की (गुहा) बुद्धि में स्थित (अन्तरिक्षम्) सत्य विज्ञान को मैं (पति) प्राप्त होता हूं उसी को तू भी प्राप्त हो और जो (मे) मेरा (पिता) पालन करने हारा (अमृत) हो (अहम्) मैं (उभयतः) उसके अगले पिछले उन शिक्षा विद्यों से जिस (सूर्य्यम्) चर अचर के आत्मरूप परमेश्वर को (ददर्श) देखूं उसी को तूभी देख ॥ १ ॥

भावार्थः—स्त्री और पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे की परीक्षा करके अपने समान गुण कर्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुरुषार्थ और विद्या युक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों जिस के माता और पिता विद्वान् न हों उनके संतान भी उत्तम नहीं हो सकते इस से अच्छी शिक्षा और पूर्ण विद्या को ग्रहण करके ही गृहाश्रम के आचरण करें इस के पूर्व नहीं ॥ १ ॥

अग्ना ३॥ इ पत्नीवन्नित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराड् ब्राह्मी बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्ना३ इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं॑ पिब॒ स्वाहा॑ । प्रजाप॑तिर्वृषासि रेतोधा रेतो॒ मयि॑ धेहि प्रजाप॑तेस्ते॒ वृष्णो॑ रेतो॒धसो॑ रेतो॒धाम॑शीय ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) समस्त सुख पहुंचाने वाले स्वामिन् ! (सजूः) समान प्रीति करने वाले आप मेरे (देवेन) दिव्य सुख देने वाले (त्वष्ट्रा) समस्त दुःख विनाश करने वाले गुण के साथ (स्वाहा) सत्यवाणी युक्त क्रिया से (सोमम्) सोम वल्ली आदि ओषधियों के विशेष आसव को (पिब) पीओ। हे (पत्नीवन्) प्रशंसनीय यज्ञ सम्बन्धिनी स्त्री को ग्रहण करने (वृषा) वीर्य्य सींचने (रेतोधाः) वीर्य्य धारण करने (प्रजापतिः) और सन्तानादि के पालने वाले ! जो आप (असि) हैं वह (मयि) मुझ विवाहित स्त्री में (रेतः) वीर्य्य को (धेहि) धारण कीजिये हे स्वामिन् ! मैं (वृष्णः) वीर्य्य सींचने (रेतोधसः) पराक्रम धारण करने (प्रजापतेः) सन्तान आदि की रक्षा करने वाले (ते) आप के संग से (रेतोधाम्) वीर्य्यवान् अति पराक्रम युक्त पुत्र को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ १० ॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य जन्म को उत्तम

विद्या अच्छे गुण और पराक्रम युक्त होकर विवाह करें विवाह की मर्यादा ही से स-न्तानों की उत्पत्ति और रतिक्रीड़ा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहें बिना विवाह के स्त्री पुरुष व पुरुष स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें जिससे मनुष्य व्यक्ति को पड़ता होवे इससे गृहाश्रम का आरम्भ स्त्री पुरुष करें ॥१०॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदा-र्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यान्त्वा । ह-र्य्योर्धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे पते ! आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम के लिये ग्रहण किये हुए (अ-सि) हैं (हारियोजनः) घोड़ों को जोड़ने वाले सारथि के समान (हरिः) यथायो-ग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलाने वाले (असि) हैं इस कारण (हरिभ्याम्) अ-च्छी शिक्षा को प्राप्त हुए घोड़ों से युक्त रथ में विराजमान (त्वा) आप की मैं सेवा करूं तुम लोग गृहाश्रम करने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (सहसो-माः) उत्तम गुण युक्त होकर (हर्य्योः) वेगादि गुण वाले घोड़ों को (धानाः) स्था-नादिकों में स्थापन करने वाले (स्थ) होओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सगुण सद्विद्यायुक्त होकर विवाह की इच्छा करने वाले कन्या और पुरुष युवावस्था को पहुंच और परस्पर एक दूसरे के धन की उन्नति को अच्छे प्रकार देखकर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दुःख की उ-न्नति होती है, इसलिये उक्त गुणों से विवाह कर आनन्दित हुए प्रति दिन ऐश्वर्य्य की उन्नति करें ॥ ११ ॥

यस्त इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब गृहस्थों की मित्रता अगले मंत्र में कही है ॥

यस्ते॑ अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य॑ त इष्टयजुष स्तुतस्तोम॑-स्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे प्रियवीर पुरुष मित्र ! जो आप (उपहूतः) मुझ से सत्कार प्राप्त हो-कर (अश्वसनिः) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों और (गोसनिः) संस्कृत वाणी भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देने वाले (असि) हैं उन

(शस्तोक्थस्य) प्रशंसित ऋग्वेद के सूक्त युक्त (इष्टयजुषः) इष्ट सुख कारक यजुर्वेद के भागयुक्त वा (स्तुतस्तोमस्य) सामवेद के गान के प्रशंसा करने हारे (ते) आप का (यः) जो (भक्षः) चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को आप से सत्कृत हुई मैं (भक्षयामि) भोजन करूं । तथा हे प्रिये सखि ! जो तू अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों के देने और संस्कृत वाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे २ पदार्थ देने वाली है उस प्रशंसनीय ऋक् सूक्त भाग से स्तुति किये हुए सामगान करने वाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को अच्छे मान से बुलाया हुआ मैं भोजन करता हूं ॥ १२ ॥

भावार्थः—अच्छे उत्साह बढ़ाने वाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करने वाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्रऔर बन्धु जन आदि को बुलाकर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर भी सदा प्रसन्न रहें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्विलास को करें ॥ १२ ॥

देवकृतस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः । मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्नुष्णिक्, पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत् साम्न्युष्णिक्, एनस इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदार्च्युष्णिक् च छन्दांसि ऋषभः स्वरः ॥

अगले मंत्र में पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है ॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनस एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे सब के उपकार करने वाले मित्र ' आप (देवकृतस्य) दान देने वाले के (एनसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (मनुष्यकृतस्य) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (पितृकृतस्य) पिता के किये हुए (एनसः) विरोध आचरण के (अवयजनम्) अच्छे प्रकार हरने वाले (असि) हो (आत्मकृतस्य) अपने कर्तव्य (एनसः) पाप के (अवयजनम्) दूर करने वाले (असि) हो (एनसः) (एनसः) अधर्म अधर्म के (अवयजनम्) नाश करने हारे (असि) हो (विद्वान्) जानता हुआ मैं (यत्) जो (च) कुछ भी (एनः) अधर्माचरण (चकार) किया,

करता हूं वा करूं (अविद्वान्) अनजान मैं (यत्) जो (च) कुछ भी किया, करता हूं वा करूं (तस्य) उस (सर्वस्य) सब (एनसः) दुष्ट आचरण के (अवयजनम्) दूर करने वाले आप (असि) हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करने वाले जनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें। जाने वा बिना जाने अपने कर्त्तव्य अर्थात् जिस को किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरों के किये हुए अपराध को औरों से छुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों ॥ १३ ॥

संवर्चसेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर भी मित्रकृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

संवर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे सब विद्याओं के पढ़ने (त्वष्टा) सब व्यवहारों के विस्तार कारक (सुदत्रः) अत्युत्तम दान के देने वाले विद्वन् ! आप (संशिवेन) ठीक २ कल्याणकारक (मनसा) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण (संवर्चसा) अच्छे अध्ययन अध्यापन के प्रकाश (पयसा) जल और अन्न से (यत्) जिस (तन्वः) शरीर की (विलिष्टम्) विशेष न्यूनता को (अनुमार्ष्टु) अनुकूल शुद्धि से पूर्ण और (रायः) उत्तम धनों को (विदधातु) विधान करो उस देह और शरीरों को हम लोग (तनूभिः) ब्रह्मचर्य्य व्रतादि सुनियमों से बलयुक्त शरीरों से (समगन्महि) सम्यक् प्राप्त हों ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को निरोग और मन को धर्म में निवेश कर के सदा सुख की उन्नति करें और जो कुछ न्यूनता हो उस को परिपूर्ण करें, तथा जैसे कोई मित्र तुम्हारे सुख के लिये वर्त्ताव वर्त्ते वैसे उस सुख के लिये आप भी वर्त्तो ॥ १४ ॥

समिन्द्रमित्यस्यात्रऋषिः। गृहपतिर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मित्र का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) पूज्य धनयुक्त (इन्द्र) सत्यविद्यादि ऐश्वर्य्य सहित (सम्) सम्यक् पढ़ाने और उपदेश करने हारे ! आप जिस से (सम्) (मनसा) उत्तम अन्तःकरण से (सम्) अच्छे मार्ग (गोभिः) गौओं वा (सम्) (स्वस्त्या) अच्छे २ वचन युक्त सुख रूप व्यवहारों से (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान वा धन से विद्या और (यत्) जो (यज्ञियानाम्) यज्ञ के पालन करने वाले को करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों की (स्वाहा) सत्य वाणी युक्त (सुमतौ) श्रेष्ठ बुद्धि में (देवहतम्) विद्वानों के किये कर्म्म हैं उन को (स्वाहा) सत्य वाणी से (नः) हम लोगों को (सृजसि) सम्यक् प्रकार से प्राप्त करते हो, इसी से आप हमारे पूज्य हो ॥ १५ ॥

भावार्थः—गृहस्थ जनों को विद्वान् लोग इस लिये सत्कार करने योग्य हैं कि वे बालकों को अपनी शिक्षा से गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनों को ऐश्वर्य्य युक्त करते हैं ॥ १५ ॥

संवर्चसेत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सं वर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे आप्त अत्युत्तम विद्वानो ! आप लोगों की सुमति में प्रवृत्त हुए हम लोग जो आप लोगों के मध्य (सुदत्रः) विद्या के दान से विज्ञान को देने और (त्वष्टा) अविद्यादि दोषों का नष्ट करने वाला विद्वान् हम को (संवर्चसा) उत्तम दिन और (पयसा) रात्रि से (संशिवेन) अति कल्याणकारक (मनसा) विज्ञान से (यत्) जिस (तन्वः) शरीर के हानिकारक कर्म्म को (अनुमार्ष्टु) दूर करे और (रायः) पुष्टिकारक द्रव्यों को (विदधातु) प्राप्त करावें उस और उन पदार्थों को (समगन्महि) प्राप्त हों ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के सङ्ग से धर्म्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करते रहें ॥ १६ ॥

धाता रातिरित्यस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्ताम्प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया सᳩं रराणा यजमानाय द्रविणन्दधात स्वाहा ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम (धाता) गृहाश्रम धर्म्म धारण करने (रातिः) सब के लिये सुख देने (सविता) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने (प्रजापतिः) सन्तानादि के पालने (निधिपाः) विद्या आदि ऋद्धिः अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने (देवः) दोषों के जीतने (अग्निः) अविद्या रूप अन्धकार के दाह करने (त्वष्टा) सुख के बढ़ाने और (विष्णुः) समस्त उत्तम २ शुभ गुण कर्म्मों में व्याप्त होने वालों के सदृश हो के (प्रजया) अपने सन्तानादि के साथ (संरराणाः) उत्तम दानशील होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इदम्) इस गृहकार्य्य को (जुषन्ताम्) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर (यजमानाय) यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के लिये जिस बल से उत्तम २ बली पुरुष बढ़ते जायं उस (द्रविणम्) धन को (दधात) धारण करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण कर्म्मों का धारण ऐश्वर्य्य की उन्नति तथा रक्षा प्रजा पालन योग्य पुरुषों को दान दुःखियों का दुःख छुड़ाना शत्रुओं को जीतने और शरीरात्म बल में प्रवृत्ति आदि गुण धारण करें ॥ १७ ॥

सुगाव इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृह कर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुगा वो देवाः सदना अकर्म्म य आजग्मेदᳩं सवनं जुषाणाः । भरमाणा वहमाना हवीᳩंष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (वसवः) श्रेष्ठ गुणों में रमण करने वाले (देवाः) व्यवहारी जनो ! (ये) जो (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (इदम्) इस (सवनम्) ऐश्वर्य्य का (जुषाणाः) सेवन (भरमाणाः) धारण करने (वहमानाः) औरों से प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिये (सुगा) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य (सदना) जिन के निमित्त पुरुषार्थ किया जाता है उन (हवींषि) देने लेने योग्य (वसूनि) धनों को (अकर्म्म) प्रकट कर रहे और (आजग्म) प्राप्त हुये हैं (अस्मे) हमारे लिये उन (वसूनि) धनों को आप (धत्त) धरो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जैसे पिता पति श्वशुर सासू मित्र और स्वामी पुत्र कन्या स्त्री स्नुषा

माता और भृत्यों का पालन करते हुए सुख देते हैं वैसे पुत्रादि भी इन की सेवा करना उचित समझें ॥ १८ ॥

आ वहेत्यस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः ।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी घर का काम अगले मंत्र में कहा है ॥

आ वह उशतो देव देवाँस्तान्प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे । जक्षिवांसः पपिवांसश्च विश्वेऽसुं घर्मं स्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य स्वभाव वाले अध्यापक ! तू (स्वे) अपने (सधस्थे) साथ बैठने के स्थान में (यान्) जिन (उशतः) विद्या आदि अच्छे २ गुणों को कामना करते हुए (देवान्) विद्वानों को (आ) (वह) प्राप्त हो (तान्) उन को धर्म में (प्र) (ईरय) नियुक्त कर । हे गृहस्थ (जक्षिवांसः) अन्न खाते और (पपिवांसः) पानी पीते हुए (विश्वे) सब तुम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी में (घर्मम्) यज्ञ और यज्ञ तथा (असुम्) श्रेष्ठ बुद्धि वा (स्वः) अत्यंत सुख को (अनु) (आ) (तिष्ठत) प्राप्त होकर सुखी रहो ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक से विद्या और श्रेष्ठगुण को प्राप्त जो बालक सत्य धर्म कर्म वर्त्तने वाले हों वे सुख भागी हों और नहीं ॥ ११ ॥

वयमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब व्यवहार करने वाले गृहस्थ के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

व॒यꣳ हि त्वा॑ प्रय॒ति य॒ज्ञे अ॒स्मिन्नग्ने॒ होता॑रमवृणीमही॒ह । ऋध॑गया॒ ऋध॑गु॒ताश॑मिष्ठाः प्रजा॒नन्य॒ज्ञमुप॑याहि वि॒द्वान्त्स्वाहा॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) ज्ञान देने वाले ! (वयम्) हमलोग (इह) (प्रयति) इस प्रयत्न साध्य (यज्ञे) गृहाश्रम रूप यज्ञ में (त्वा) तुझ को (होतारम्) सिद्ध करने वाला (अवृणीमहि) ग्रहण करें (विद्वान्) सब विद्या युक्त (प्रजानन्) क्रियाओं के जानने वाले आप (ऋधक्) समृद्धि कारक (यज्ञम्) गृहाश्रम रूप यज्ञ को (स्वाहा) शास्त्रोक्त क्रिया से (उप) (याहि) समीप प्राप्त हो (उत) और केवल प्राप्त ही नहीं किन्तु (अयाः) उस से दान सत्संग श्रेष्ठ गुण वालों का सेवन कर (हि) निश्चय करके (अस्मिन्) इस (ऋधक्) अच्छी ऋद्धिसिद्धि के बढ़ाने वाले गृहाश्रम के निमित्त में (अशमिष्ठाः) शान्त्यादि गुणों को ग्रहण करके सुखी हो ॥ २० ॥

भावार्थः—सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उस को उसी काम में प्रवृत्त करें ॥ २० ॥

देवा गातुविदइत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवा॑ गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मन॑सस्पत इ॒मन्दे॑व यज्ञꣳ स्वाहा॒ वाते॑ धाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (गातुविदः) अपने गुण कर्म और स्वभाव से पृथिवी के जाने आने को जानने (देवाः) तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशंसा के साथ प्रचार करने वाले विद्वान् लोगो ! तुम (गातुम्) भूगर्भ विद्या युक्त भूगोल को (वित्त्वा) जान कर (गातुम्) पृथिवी राज्य आदि उत्तम कामों के उपकार को (इत) प्राप्त हूजिये। हे (मनसस्पते) इन्द्रियों के रोकने हारे (देव) श्रेष्ठ विद्याबोध सम्पन्न विद्वानो ! तुम में से प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ (स्वाहा) धर्म बढ़ाने वाली क्रिया से (इमम्) इस गृहाश्रम रूप (यज्ञम्) सब सुख पहुंचाने वाले यज्ञ को (वाते) विशेष जानने योग्य व्यवहारों में (धाः) धारण करो ॥ २१ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भ विद्याओं को जान इन्द्रियों को जीत परोपकारी हो कर और उत्तम धर्म से गृहाश्रम के व्यवहारों की उन्नति देकर सब प्राणी मात्र को सुखी करें ॥ २१ ॥

यज्ञयज्ञमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । भुरिक् साम्न्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । एष इत्यस्य विराडार्च्यो बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यज्ञ॑ य॒ज्ञङ्गच्छ य॒ज्ञप॑तिङ्गच्छ॒ स्वां योनि॑ङ्गच्छ॒ स्वाहा॑ । ए॒ष ते॑ य॒ज्ञो य॑ज्ञपते स॒हसू॑क्तवाकः॒ सर्व॑वीर॒स्तञ्जु॑षस्व॒ स्वाहा॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञ) सत् कर्मों से संगत होने वाले गृहाश्रमी ! तू (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार पूर्वक गृहाश्रम को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपतिम्) संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वाम्) अपने (योनिम्) घर और स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपते) गृहाश्रम धर्म पालक तू (ते) तेरा जो (एष) यह (सहसूक्तवाकः) ऋग् यजुः साम और अथर्व वेद के सूक्त और अनुवाकों से कथित (सर्ववीरः) जिस से आत्मा और शरीर के पूर्ण बल युक्त समस्त

योग प्राप्त होते हैं (यज्ञः) प्रशंसनीय प्रजा की रक्षा के निमित्त विद्या प्रचार रूप यज्ञ है (तम्) उसको तू (स्वाहा) सत्य विद्या न्याय प्रकाश करने वाली वेद वाणी क्रिया से (जुषस्व) प्रीति से सेवन कर ॥ २२ ॥

भावार्थः—प्रजा जन गृहस्थ पुरुष बड़े २ यत्नों से घर के कार्यों को उत्तम रीति से करें राजभक्ति राजसहायता और उत्तम धर्म से गृहाश्रम को सब प्रकार से पालें और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को संतुष्ट करे ॥ २२ ॥

माहिर्भूरित्यस्यार्षिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य याजुषुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । उरुमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । नम इत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में राजा के लिये उपदेश किया है ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुः उरुꣳ हि राजा वर्रुणश्चकार सूर्याय प॒न्थामन्वेत॒वा उ॑ । अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुताप॑वक्ता हृदयावि॒धश्चित् । नमो॒ वरु॑णाया॒भिष्ठि॑तो॒ वरु॑णस्य॒ पाशः॑ ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे राजन् सभापते ! तू (वरुणाय) उत्तम ऐश्वर्य के वास्ते (उरुम्) बहुत गुणों से युक्त न्याय को (अकः) कर (सूर्याय) चराचर के आत्मा जगदीश्वर के विज्ञान होने (सूर्याय) और प्रजागणों को यथायोग्य धर्म प्रकाश में चलने के लिये (पन्थाम्) न्याय मार्ग को (चकार) प्रकाशित कर (उत और कभी (अपवक्ता) झूंठ बोलने वाला (हृदयाविध) धर्मात्माओं के मन को संताप देने वाले के (चित्) सदृश (पृदाकुः) खोटे वचन कहने वाला (मा) मत हो और (अहिः) सर्प के समान क्रोधरूपी विष का धारण करने वाला (मा) मत (भूः) हो और जैसे (वरुणस्य) श्रेष्ठ गुण वाले तेरा (अभिष्ठित) अति प्रकाशित (नम) वज्ररूप दण्ड और (पाशः) बंधन करने की सामग्री प्रकाशमान रहे वैसे प्रयत्न को सदा किया कर ॥२३॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतने वाला धर्मात्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चित्त लगावे और सब के लिये सुख करने वाला सत्पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा वा प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को न करें जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दण्ड देवे किन्तु कभी अपराधी को दण्ड दिये विना न छोड़े और निरपराधी को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे इस प्रकार सब कोई न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने २ प्रत्येक कामों के चिंतवन में रहें जिस से

अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखने वाले, और शत्रु नहीं और विद्या तथा धर्म के मार्गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी रहैं ॥ २३ ॥

अग्नेरनीकमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अ॒ग्नेरनी॑कम॒प आ वि॑वेशा॒पां नपा॑त् प्र॒ति॒ रक्ष॑न्नसु॒र्य॒म् । दमे॑ दमे स॒मिधं॑ यक्ष्यग्ने॒ प्रति॑ ते जि॒ह्वा घृ॒तमुच्च॑रण्य॒त् स्वाहा॑ ॥२४॥

पदार्थः—हे गृहस्थ ! तू (अग्नेः) अग्नि को (अनीकम्) लपट रूपी सेना के प्रभाव और (अपः) जलों को (आ) (विवेश) अच्छी प्रकार समझ (अपाम्) उत्तम व्यवहार सिद्धि कराने वाले गुणों को जान कर (नपात्) अविनाशिस्वरूप (असुर्यम्) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन की (प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमे दमे) घर घर में (समिधम्) जिस क्रिया से ठीक २ प्रयोजन निकले उसको (यक्षि) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्वा) जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा) सत्य व्यवहार से (उत) (चरण्यत्) देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥ २४ ॥

भावार्थ.—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं इस से गृहस्थजन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्यव्यवहार से करें ॥ २४ ॥

समुद्रे त इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

स॒मु॒द्रे ते॒ हृद॑यम॒प्स्व॒न्तः सं त्वा॑ विश॒न्त्वोष॑धीरु॒तापः॑ । य॒ज्ञस्य॑ त्वा यज्ञपते सू॒क्तोक्तौ॒ नमो॑वा॒के वि॑धेम॒ यत्स्वाहा॑ ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञपते) उत्तम गृहाश्रम धर्म के पालने हारे ! हम लोग (स्वाहा) प्रेमास्पद वाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (सूक्तोक्तौ) उस प्रबन्ध में वेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी २ बातें हैं और (नमोवाके) वेद प्रमाण और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप (समुद्रे) आर्द्र व्यवहार और) सब के प्राणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृदयम्) हृदय को संतुष्टि में) विधान करें वैसे उस मे जाती हुई (ओषधीः) यव गेहूं चना सोमलतादि

सुख देने वाले पदार्थ (आ) (विशन्तु) प्राप्त हों (उत) और न केवल ये ही किन्तु (आपः) अच्छे जल भी तुम को सुख करने वाले हों ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुरुष गृहस्थों को सत्य विद्या को ग्रहण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के कामों में सब को युक्त करें जिस से गृहाश्रम चाहने और करने वाले पुरुष शरीर और अपने आत्मा का बल बढ़ावें ॥ २५ ॥

देवीराप इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवता । स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मंत्र में किया जाता है ॥

देवीराप एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतम्बिभृत । देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (आपः) समस्त शुभ गुण कर्म और विद्याओं में व्याप्त होने वाली (देवीः) अति शोभा युक्त स्त्री जनो । तुम सब (वः) जो (एषः) यह (वः) तुम्हारा (गर्भः) गर्भ (लोकः) पुत्र पति आदि के साथ सुखदायक है (तम्) उस को (सुप्रीतम्) श्रेष्ठ प्रीति के साथ (सुभृतम्) जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय वैसे (बिभृत) धारण और उस की रक्षा करो । हे (देव) दिव्य गुणों से मनोहर (सोम) ऐश्वर्ययुक्त ! तू जो यह (ते) तुम्हारा (लोकः) देखने योग्य पुत्र स्त्री भृत्यादि सुखकारक गृहाश्रम है (तस्मिन्) इस के निमित्त (शम्) सुख (च) और शिक्षा (वक्ष्व) पहुंचा (च) तथा इसकी रक्षा (परिवक्ष्व) सब प्रकार कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—पढ़ी हुई स्त्रियां यथोक्त विवाह की विधि से विद्वान् पति को प्राप्त हो कर उस को आनन्दित कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूल गर्भ को धारण करें वह पति भी स्त्री की रक्षा और उस की प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो ॥ २६ ॥

अवभृथेत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः । अवदेवैरित्यस्य स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

फिर गृहस्थ धर्म में स्त्री का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि देवानांꣳ समिदसि ॥ २७ ॥

अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखने वाले, और शत्रु नहीं और विद्या तथा धर्म के मार्गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

अग्नेरनीकमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्नेरनीकमप आ विवेशापां नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम् । दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥२४॥

पदार्थः—हे गृहस्थ ! तू (अग्नेः) अग्नि की (अनीकम्) लपट रूपी सेना के प्रभाव और (अपः) जलों को (आ) (विवेश) अच्छी प्रकार समझ (अपाम्) उत्तम व्यवहार सिद्धि कराने वाले गुणों को जान कर (नपात्) अविनाशिस्वरूप द्व (असुर्यम्) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन को (प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमे दमे) घर घर में (समिधम्) जिस क्रिया से ठीक २ प्रयोजन निकले उसको (यक्षि) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्वा) जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा) सत्य व्यवहार से (उत) (चरण्यत्) देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥ २४ ॥

भावार्थः—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं इस से गृहस्थजन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्यव्यवहार से करें ॥ २४ ॥

समुद्रेत इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । भुरिगार्षीपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत्स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञपते) जैसे गृहाश्रम धर्म्म के पालने हारे ! हम लोग (स्वाहा) प्रेमास्पद वाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (सूक्तोक्तौ) उस प्रबन्ध कि जिस में वेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी २ बातें हैं और (नमोवाके) वेद प्रमाण सिद्ध अन्न और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप (समुद्रे) आर्द्र व्यवहार और (अप्सु) सब के प्राणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृदयम्) हृदय को संतुष्टि में (विधेम) नियत करें वैसे उस से जानी हुई (ओषधीः)

सोमल्यामि

फिर भी गृहस्थ धर्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

यस्यैं ते य॒ज्ञियो॒ गर्भो॒ यस्यै॒ योनि॑र्हिर॒ण्ययी॑ । अङ्गा॒न्यह्रु॑ता य॒स्य तं मा॒त्रा सम॑जीगम॒ᳪ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (यस्यै) जिस (ते) तेरी (हिरण्ययी) रोग रहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्यै) जिस तेरा (यज्ञियः) यज्ञ के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्य) जिस गर्भ के (अह्रुता) सुन्दर सीधे (अङ्गानि) अङ्ग हैं (तम्) उस को (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ समागम करके (स्वाहा) धर्म्म युक्त क्रिया से (सम्) (अजीगमम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं ॥ २१ ॥

भावार्थः—पुरुष को चाहिये कि गृहाश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना वीर्य्य की बढ़ती शुद्धि से उस की उन्नति करें स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ को प्राप्त होके उस की स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और बल वाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २१ ॥

पुरुदस्म इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

पु॒रु॒द॒स्मो विषु॑रूप॒ इन्दु॑र॒न्तर्म॑हि॒मान॑मानञ्ज॒ धीरः॑ । एक॑पदीं द्वि॒पदीं॑ त्रि॒पदीं॒ चतु॑ष्पदीम॒ष्टाप॑दीं॒ भुव॒नानु॑ प्रथन्ता॒ᳪ स्वाहा॑ ॥ ३० ॥

पदार्थः—(पुरुदस्मः) जिस के गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है (विषुरूपः) जिस ने जन्म क्रम से अनेक रूप रूपान्तर विद्या विषयों में प्रवेश किया है (इन्दुः) जो परमैश्वर्य्य को सिद्ध करने वाला (धीरः) समस्त व्यवहारों में ध्यान देने हारा पुरुष है वह गृहस्थ धर्म्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (महिमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करै, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान कर के जिस (एकपदीम्) जिस में एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिस में दो अर्थात् संसार सुख और मोक्ष सुख (त्रिपदीम्) जिस से वाणी मन और शरीर तीनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिस से चारों धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदीम्) और जिस मे आठों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं उस (स्वाहा)

पदार्थः—हे (अवभृथ) गर्भ के धारण करने के पश्चात् उस की रक्षा करने (निचुम्पुण) और मन्द २ चलने वाले पति आप (निचुम्पुणः) नित्य मन हरने और (निचेरुः) धर्म के साथ नित्य द्रव्य का सञ्चय करने वाले (असि) हैं । तथा (देवानाम्) विद्वानों के बीच में (समित्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (असि) हैं । हे (देव) सब से अपनी जय चाहने वाले (देवैः) विद्वान् और (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के साथ वर्त्तमान आप जो मैं (देवकृतम्) कामी पुरुषों वा (मर्त्यकृतम्) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनः) अपराध को (अयासिषम्) प्राप्त होना चाहूं उस (पुरुराव्णः) बहुत से अपराध करने वालों के (रिषः) धर्म छुड़ाने वाले काम से मुझे (पाहि) दूर रख ॥ २७ ॥

भावार्थः—स्त्री अपने पति की नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य आनन्दित चित्त आप को प्रतिदिन चाहती हूं वैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो जिस से मैं दुष्टाचरण करने वाले मनुष्य के किये हुए अपराध की भागिनी किसी प्रकार न होऊं ॥ २७ ॥

एजत्वित्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । यथायमित्यस्यापि साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथा यं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥२८॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष जैसे । (वायुः) पवन (एजति) कम्पता है वा जैसे (समुद्रः) समुद्र (एजति) अपनी लहरों से उछलता है वैसे तुम्हारा (अयम्) यह (दशमास्यः) पूर्ण दश महीने का गर्भ (एजतु) क्रम २ से बढ़े और ऐसे बढ़ता हुआ (अयम्) यह (दशमास्यः) दश महीने में परि पूर्ण हो कर ही (अस्रत्) उत्पन्न होवे ॥ २८ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य्य धर्म्म से शरीर की पुष्टि, मन की संतुष्टि और विद्या की वृद्धि को प्राप्त हो कर और विवाह किये हुए जो स्त्री पुरुष हों वे यत्न के साथ गर्भ को रक्खें कि जिस से वह दश महीने के पहिले गिर न जाय क्योंकि जो गर्भ दश महीने से अधिक दिनों का होता है वह प्रायः बल और बुद्धि वाला होता है और इस से पहिले होता है वह वैसा नहीं होता ॥ २८ ॥

यस्या इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ धर्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

यस्यै॑ ते य॒ज्ञियो॒ गर्भो॒ यस्यै॒ योनि॑र्हिर॒ण्ययी॑ । अङ्गा॒न्यह्रु॑ता य॒स्य तं मा॒त्रा सम॑जीगम॒ꣳ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (यस्यै) जिस (ते) तेरी (हिरण्ययी) रोग रहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्यै) जिस तेरा (यज्ञियः) यज्ञ के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्य) जिस गर्भ के (अह्रुता) सुन्दर सीधे (अङ्गानि) अङ्ग हैं (तम्) उस को (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ समागम करके (स्वाहा) धर्म युक्त क्रिया से (सम्) (अजीगमम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं ॥ २९ ॥

भावार्थः—पुरुष को चाहिये कि गृहाश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना वीर्य्य की बढ़ती शुद्धि से उस की उन्नति करें स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ को प्राप्त होके उस की स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और बल वाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २९ ॥

पुरुदस्म इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

पु॒रु॒द॒स्मो विषु॑रूप॒ इन्दु॑र॒न्तर्म॑हि॒मान॑मानञ्ज॒ धीरः॑ । एक॑पदीं द्वि॒पदीं॑ त्रि॒पदीं॒ चतु॑ष्पदीम॒ष्टाप॑दीं॒ भुव॒नानु॑ प्रथन्ता॒ꣳ स्वाहा॑ ॥ ३० ॥

पदार्थः—(पुरुदस्मः) जिस के गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है (विषुरूपः) जिस ने जन्म क्रम से अनेक रूप रूपान्तर विद्या विषयों में प्रवेश किया है (इन्दुः) जो परमैश्वर्य्य को सिद्ध करने वाला (धीरः) समस्त व्यवहारों में ध्यान देने हारा पुरुष है वह गृहस्थ धर्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (महिमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करै, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान कर के जिस (एकपदीम्) जिस में एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिस में दो अर्थात् संसार सुख और मोक्ष सुख (त्रिपदीम्) जिस से वाणी मन और शरीर तीनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिस से चारों धर्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदीम्) और जिस से चारों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं उस (स्वाहा)

समस्त विद्या युक्त वाणी को जान कर सब गृहस्थ जन (भुवना) जिन में प्राणीमात्र निवास किया करते हैं उन घरों की (प्रथन्ताम्) प्रशंसा करें और उस से सब मनुष्यों को (अनु) अनुकूलता से बढ़ावें ॥ ३० ॥

भावार्थः—विवाह किये हुए स्त्री पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम की विद्या को सब प्रकार जानकर उस के अनुसार सन्तानों को उत्पन्न कर मनुष्यों को बढ़ा और उन को ब्रह्मचर्य्य नियम से समस्त अङ्ग उपाङ्ग सहित विद्या का ग्रहण करा के उत्तम २ सुखों को प्राप्त होके आनन्दित करें ॥ ३० ॥

मरुतो यस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में भी गृहस्थधर्म का विषय कहा है ॥

मरु॑तो॒ यस्य॒ हि क्षये॑ पा॒था दि॒वो वि॑महसः । स सु॑गो॒पात॑मो॒ जनः॑ ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (विमहसः) विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य (मरुतः) विद्वान् गृहस्थ लोगो ! तुम (यस्य) जिस गृहस्थ के (क्षये) घर में सुवर्ण उत्तम रूप (दिवः) दिव्य गुण स्वभाव या प्रत्येक कामों के करने की रीति को (पाथ) प्राप्त हो (सः) (हि) वह (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार वाणी और पृथिवी की पालना करने वाला (जनः) मनुष्यों को सेवा के योग्य है ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य उत्तम शिक्षा विद्या शरीर और आत्मा का बल आरोग्य पुरुषार्थ ऐश्वर्य सज्जनों का सङ्ग आलस्य का त्याग यम नियम और उत्तम सहाय के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता ॥ ३१ ॥

मही द्यौरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । दम्पतीदेवते । आर्षी गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

म॒ही द्यौः पृ॑थि॒वी च॑ न इ॒मं य॒ज्ञं मि॑मिक्षताम् । पि॒पृ॒तां नो॒ भरी॑मभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों (मही) अति प्रशंसनीय (द्यौः) दिव्य पुरुष की आकृति युक्त पति और अति प्रशंसनीय (पृथिवी) बढ़े हुए शील और क्षमा धारण करने आदि की सामर्थ्य वाली तू (भरीमभिः) धीरता और सब को संतुष्ट करने वाले गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से (नः) हमारा (च) औरों का भी (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को (मिमिक्षताम्) सुअभिषिक्त और (पिपृताम्) परिपूर्ण करना चाहो ॥ ३२ ॥

उपयामेत्यस्य विराडार्षीपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ प्रकारान्तर से गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने॥ ३३॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं को मारने वाले गृहाश्रमी! तू (ग्रावा) मेघ के तुल्य सुख वर्षाने वाला है (ते) तेरे जिस रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा रथ में (ब्रह्मणा) अन्न वा धन से (हरी) धारण और आकर्षण अर्थात् खींचने के समान घोड़े (युक्ता) युक्त किये जाते हैं उस गृहाश्रम करने को (आतिष्ठ) प्रतिज्ञा कर इस गृहाश्रम में (ते) तेरा जो (मनः) मन (अर्वाचीनम्) नम्रपन को पहुँचाता है उस को (वग्नुना) वेदवाणी से शान्त कर जिस से तू (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम करने की सामग्री ग्रहण किये हुए (असि) है इस कारण (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये (त्वा) तुझ को आज्ञा देता हूँ॥ ३३॥

भावार्थः—गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमैश्वर्य पाने के लिये गृहाश्रम ही सेवना उचित है॥ ३३॥

युक्ष्वाहीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। गृहपतिर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः।

गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य पूर्ववच्छन्दः स्वरश्च॥

अथ राजविषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोम-

पा गिरामुपश्रुतिञ्चर । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिने एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा करने और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले तुम (केशिना) जिन के अच्छे २ बाल हैं उन (वृषणा) बैल के समान बलवान् (कक्ष्यप्रा) अभीष्ट देश तक पहुंचाने वाले (हरी) चलाने हारे घोड़ों को (रथे) रथ में (युक्ष्व) जोड़ो (अथ) इस के अनन्तर (नः) हम लोगों की (गिराम्) विनयपत्रों की (उपश्रुतिम्) प्रार्थना को (हि) चित्त देकर (चर) जानो। आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम की सामग्री को ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस कारण (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम के लिये (त्वा) तुझे आज्ञा देता हूं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में पिछले मंत्र से " रथे " यह पद अर्थ से आता है। प्रजा, सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आप को शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रहने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों को अच्छी शिक्षा देकर आनन्दित और बल वाले रखने चाहिये फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य की रक्षा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्ववत् ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिने एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले सभाध्यक्ष आप जो (हरी) हरण कारक बल और आकर्षण रूप घोड़ों से (अप्रतिधृष्टशवसम्) जिस ने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य बढ़ाने और सेना रखने वाले सेनासमूह को (वहतः) बढ़ाते हैं उन से उक्त होकर (ऋषीणाम्) वेद मन्त्र जानने वाले विद्वानों और (च) वीरों के (स्तुतिः) गुणों के (मानुषाणाम्) साधारण मनुष्यों के (यज्ञम्) संगम करने योग्य व्यवहार

और (च उन की पालना करो और (उप) समीप प्राप्त हो जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) निमित्त राज्य धर्म है जो तू (उपयामगृहीतः) सब सामग्री से संयुक्त है उस (त्वा) तुझ को (षोडशिने) षोडश कलायुक्त (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये प्रजा सेनाजन आश्रय लेवें और हम भी लेवें ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (इन्द्र) (सोमपाः) (चर) इन तीन पदों की योजना होती है । राजा राज्य कर्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को योग्य यह है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर औरों का उपकार सदा किया करें ॥ ३५ ॥

यस्मान्नेत्यस्य विवस्वान् ऋषिः । परमेश्वरो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (परः) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (जातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आविवेश) व्याप्त होरहा है (सः) वह (प्रजया) सब संसार से (संरराणः) उत्तम दाता होता हुआ (षोडशी) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश दशों इन्द्रिय मन अन्न वीर्य्य तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापतिः) संसार मात्र के स्वामी परमेश्वर (त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) ज्योति अर्थात् सूर्य्य बिजुली और अग्नि को (सचते) सब पदार्थों में स्थापित करता है ॥ ३६ ॥

भावार्थः—गृहाश्रम की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि जो सर्वत्र व्याप्त सब लोकों का रचने और धारण करने वाला दाता न्यायकारी सनातन अर्थात् सदा ऐसाही बना रहता है सत् अविनाशी चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव और सब पदार्थों से अलग रहने वाला छोटे से छोटा बड़े से बड़ा सर्वशक्तिमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम वा जिस के समान नहीं है उस की उपासना करें ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानृषिः । सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते । साम्नी त्रिष्टुप्छन्दः । तयोरहमित्यस्य विराडार्चो त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम् । तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे प्रजाजन ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य युक्त (च) राज्य के अंग... हित (सम्राट्) सब जगह एक चक्र राज करने वाला राजा (वरुणः) ... (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति है (तौ) दोनों (अग्रे) प्रथम (ते) तेरा (भक्षम्) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से ... और (अहम्) मैं (तयोः) उनका (एतम्) इस (भक्षम्) स्थित पदार्थ का (अनु) पीछे (भक्षयामि) सेवन करके कराऊं । ऐसे करते हुए हम तुम सब को (सोमस्य) वि... द्यारूपी ऐश्वर्य्य के बीच (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विद्याओं की प्रकाशक (वाक्) वेदवाणी है उससे (स्वाहा) सब मनुष्य (तृप्यतु) संतुष्ट रहें ॥३७॥

भावार्थः—प्रजा के बीच अपनी २ सभाओं सहित राजा होने के योग्य होते... एक चक्रवर्त्ती अर्थात् एक चक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल २ का ईश्वर हो ये दोनों प्रकार के राजा जन उत्तम २ न्याय नम्रता सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजा जनों से यथायोग्य राज्य कर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्यवचन का आचरण करें इस प्रकार धर्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को संतोष देकर आप संतोष पावें ... पत्काल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥३७॥

अग्नेपवस्वेत्यस्य वैखान ऋषिः । राजादयो गृहपतयो देवताः । भुरिक्त्रिपाद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपयामेत्यस्य स्वराडार्च्यनुष्टुप्छन्दः । अग्नेवर्चस्विन्नित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा

वर्चसे । अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वन्देवेष्वसि वर्चस्वानहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (वर्चः) उत्तम २ ज्ञान तथा (वर्चस्विन्) सुन्दर प्रकार से वेदाध्ययन करने वाले (अग्ने) सभापति आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम (वर्चः) वेद का पढ़ना तथा (रयि) निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि जन में (रयिम्) धन और (पोषम्) पुष्टि को (दधत्) धारण करते हुए (पवस्व) पवित्र हूजिए (उपयामगृहीतः) राज्य व्यवहार के लिये हम ने स्वीकार किये हुए (असि) आप हैं (त्वा) तुझ को (वर्चसे) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिये (आग्नेय) वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिये हम स्वीकार करते हैं (ते) तुम्हारी (एषः) यह (योनिः) राजभूमि निवास स्थान है (त्वा) तुझ को (वर्चसे) हम लोग अपनी विद्या प्रकाश रूप प्रताप होने के लिये बार २ प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं। हे तेजधारी सभापते राजन्! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) उत्तम २ विद्वानों में (वर्चस्वान्) प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले (असि) हैं वैसे (अहम्) मैं (मनुष्येषु) विद्याशील पुरुषों में आप के सदृश (भूयासम्) होऊं ॥ ३८ ॥

भावार्थः—राजा आदि सभ्यजनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम २ विद्या और अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें जिससे समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म्म प्रचार करने में उत्तम होवें ॥ ३८ ॥

उत्तिष्ठन्नित्यस्य वैखानस ऋषिः । राजादयो गृहस्था देवताः । उत्तिष्ठन्नित्यस्योपयेत्येतस्य चार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । इन्द्रेत्यस्यार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः सोममिन्द्र चमू सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वन्देवेष्वस्योजिष्ठोऽहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य रखने वाले वा ऐश्वर्य्य में रमने वाले सभापति आप (चमू) सेना के साथ (सुतम्) उत्पादन किये हुए (सोमम्) सोम को (पीत्वी) पी के (ओजसा) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के बल के (सह) साथ (उत्तिष्ठन्) अच्छे गुण कर्म्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए (शिप्रे) युद्धादि

कर्मों से डाढ़ी और नासिका आदि अङ्गों को (अवेपयः) कंपाओ अर्थात् यथायोग्य कामों में अङ्गों की चेष्टा करो । हम लोगों ने आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये (असि) हैं इस से (त्वा) आप को सावधानता से (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं (ओजसे) अत्यन्त पराक्रम और (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिये (त्वा) आप को प्रेरणा करते हैं । हे (ओजिष्ठ) अत्यन्त तेजधारी ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वालों में (ओजिष्ठः) अत्यन्त पराक्रम वाले (असि) हैं वैसे ही मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) होऊं ॥ ३९ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खाने पीने के पदार्थों से शरीर के बल की उन्नति देवें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और परमेश्वर की उपासना भी यथोक्त व्यवहारों में करें ॥ ३९ ॥

अदृश्रमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गृहपतयो राजादयो देवताः । अदृश्रमित्यस्य सूर्य्येत्यस्य चार्षी गायत्री । उपयामगृहीतोसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२॥ अनु भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—जैसे (अस्य) इस जगत् के पदार्थों में (भ्राजन्तः) प्रकाश को प्राप्त हुई (रश्मयः) कान्ति (केतवः) वा उन पदार्थों को जानने वाले (अग्नयः) सूर्य्य विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं वैसे ही (जनान्) मनुष्यों को (अनु) एक अनुकूलता के साथ (अदृश्रम्) मैं दिखलाऊं हे सभापते ! आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं जिन (ते) आपका (एषः) यह राज्य कर्म्म (योनिः) ऐश्वर्य्य का कारण है उन (त्वा) आपको (भ्राजाय) जिलाने वाले (सूर्य्याय) प्राण के लिये चिताता हूं तथा उन्हीं आप को (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशित (सूर्य्याय) चराचरात्मा जगदीश्वर के लिये भी चिताता हूं । हे (भ्राजिष्ठ) पराक्रम से प्रकाशमान (सूर्य) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्र- जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) समस्त विद्यार्थी से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान

(भ्राजिष्ठः) अत्यन्त प्रकाशित हैं वैसे मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) प्रकाशमान होऊं ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे इस संसार में सूर्य्य की किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और सभासद् जन शुभ गुण कर्म्म और स्वभावों में प्रकाशमान हों क्योंकि ऐसा है कि मनुष्य शरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का संग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दुर्लभ नहीं है इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न किया करें ॥ ४० ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्य्यो देवता । पूर्वस्य निचृदार्षी । उपयामेत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ ईश्वरपक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदु॒त्यं जा॒तवे॑दसं दे॒वं व॑हन्ति के॒तवः॑ । दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य॑म् उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ सूर्या॑य त्वा भ्रा॒जायै॒ष ते॒ योनिः॒ सूर्या॑य त्वा भ्रा॒जाय॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता वा प्राप्त कराता वा वेद और संसार के पदार्थ जिस से उत्पन्न हुए हैं (देवम्) शुद्ध स्वरूप जगदीश्वर ! जिस को (विश्वाय) संसार के उपकार के लिये (दृशे) ज्ञान चक्षु से देखने को (केतवः) किरणों के तुल्य सर्व अंशों में प्रकाशमान विद्वान् (उत्) (वहन्ति) अपने उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (उ) तर्क वितर्क के साथ (त्यम्) उस जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त हों । हे जगदीश्वर ! जो आप हम लोगों से (भ्राजाय) प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त (सूर्य्याय) प्राण के लिये (उपयामगृहीतः) यम नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को उक्त कामना के लिये समस्त जन स्वीकार करें और हे ईश्वर ! जिन (ते) आपका (एषः) यह कार्य्य और कारण की व्याप्ति से एक अनुमान होना (योनिः) अनुपम प्रमाण है उन (त्वा) आप को (भ्राजाय) प्रकाशमान (सूर्य्याय) ज्ञानरूपी सूर्य्य को पाने के लिये एक कारण जानते हैं ॥ ४१ ॥

भावार्थः—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही यह जगदीश्वर सब को उपास-

नीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है ॥ ४१ ॥

आजिघ्रेत्यस्य कुसुरुविन्दु ऋषिः । पत्नी देवता । स्वराड्ब्राह्म्युष्णिग् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में स्त्री के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ जिघ्र कुलशंम्मह्या त्वां विशुन्त्विन्दंवः । पुनंरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रंन्धुक्ष्वोरुधारा पयंस्वती पुनर्माविंशताद्रयिः ॥४२॥

पदार्थः—हे (महि) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री ! जो तू (उरुधारा) विद्या और अच्छी २ शिक्षाओं को अत्यन्त धारण करने (पयस्वती) प्रशंसित अन्न और जल रखने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (कलशम्) नवीन घट का (आजिघ्र) आघ्राण कर अर्थात् उस को जल से पूर्ण कर उस की उत्तम सुगन्धि को प्राप्त हो (पुनः) फिर (त्वा) तुझे (सहस्रम्) असंख्यात (इन्दवः) सोम आदि ओषधियों के रस (आविशन्तु) प्राप्त हों जिस से तू दुःख से (निर्वर्त्तस्व) दूर रहे अर्थात् कभी तुझ को दुःख न प्राप्त हो । तू (ऊर्जा) पराक्रम से (नः) हम को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर (पुनः) पीछे (मा) मुझे (रयिः) धन (आविशतात्) प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

भावार्थः—विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थों को जैसे आप खावें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिस से बुद्धि बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें ॥ ४२ ॥

इडेरन्त इत्यस्य कुसुरुविन्दुर्ऋषिः । पत्नी देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरंस्वति महि विश्रुति । एता तेऽअघ्न्ये नामांनि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अघ्न्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्मा से विनाश को प्राप्त न होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुण युक्त (हव्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी

उत्तम गुण प्रकाश करने वाले (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम हैं तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझ को (सुहनम्) उत्तम उपदेश (ब्रूतात्) किया कर ॥४३॥

भावार्थः—जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने २ पति और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म सिखलावे जिस से किसी तरह वे अधर्म की ओर न डिगें वे दोनों स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें ॥ ४३ ॥

वि न इत्यस्य शासऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।
उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म के निमित्त
राजपक्ष में कुछ उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वि न॑ इन्द्र॒ मृधो॑ जहि नी॒चा य॑च्छ पृतन्य॒तः । यो अ॒स्माँ२॥ अ॑भि॒दास॒त्यध॑रङ्गमया॒ तमः॑ । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒सीऽन्द्रा॑य त्वा वि॒मृध॑ ए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा वि॒मृधे॑ ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नः) हमारे (पृतन्यतः) हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करने हारे शत्रुओं को (जहि) मार और उन (नीचा) नीचों को (यच्छ) वश में ला और जो शत्रुजन (अस्मान्) हम लोगों को (अभिदासति) सब प्रकार दुःख देवे उस (विमृधः) दुष्ट को (तमः) जैसे अन्धकार को सूर्य नष्ट करता है वैसे (अधरम्) अधोगति को (गमय) प्राप्त कर जिस (ते) तेरा (एषः) उक्त कर्म करना (योनिः) राज्य का कारण है इससे (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्री से ग्रहण किया हुआ (असि) है इसी से (त्वा) तुझ को (विमृधः) जिस में बड़े २ युद्ध करने वाले शत्रु जन हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य देने वाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं (त्वा) तुझ को (विमृधे) जिस के शत्रु नष्ट होगये हैं (इन्द्राय) उस राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म से अपना वर्त्ताव न वर्तें ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो खोटे काम करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल की उन्नति देकर सब को दुःख देना चाहे उस को राजा सब प्रकार से दण्ड दे तो भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयों को न छोड़े तो उस को मारडाले अथवा नगर से इस को दूर निकाल बन्ध रक्खे ॥ ४४ ॥

वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषिः । ईश्वर सभेशौ राजानौ देवते । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । उपयामेत्यस्य स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । आद्यस्य धैवतः परस्य गान्धारः स्वरश्च ॥

अब गृहस्थ धर्म में राजा और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४५ ॥

पदार्थः - हम (अद्य) आज (वाजे) विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिन (वाचः) वेदवाणी के स्वामी वा रक्षा करने वाले (विश्वकर्माणम्) जिन के सब धर्मयुक्त कर्म हैं जो (मनोजुवम्) मन चाहती गति का जानने वाला है उस परमेश्वर वा सभापति को (हुवेम) चाहते हैं सो आप (साधुकर्मा) अच्छे २ कर्म करने वाले (विश्वशम्भूः) समस्त सुख को उत्पन्न कराने वाले जगदीश्वर वा सभापति (नः) हमारे (अवसे) प्रेम बढ़ाने के लिये (विश्वानि)(हवनानि) दिये हुए सब प्रार्थना वचनों को (जोषत्) प्रेम से मानें जिन (ते) आप का (एषः) यह उक्त कर्म (योनिः) एक प्रेमभाव का कारण है वे आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (विश्वकर्मणे) समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (त्वा) आप की प्रार्थना तथा (विश्वकर्मणे) समस्त काम की सिद्धि के लिये शिल्पविद्या कुशलता से उत्तम ऐश्वर्य वाले आप का सेवन करते हैं ॥४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—जो परमेश्वर वा न्यायाधीश सभापति हमारे किये हुए कामों को जाच कर उन के अनुसार हम को यथायोग्य नियमों में रखता है जो किसी को दुःख देने वाले छल कपट के काम को नहीं करता जिस परमेश्वर वा सभापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहार सिद्धि को पाकर धर्मशील होता है वही ईश्वर परमार्थसिद्धि वा सभापति व्यवहार सिद्धि के निमित्त हम लोगों को सेवने योग्य है ॥ ४५ ॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य शास ऋषिः । विश्वकर्मेन्द्रो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) समस्त अच्छे काम करने वाले जन आप (वर्द्धनेन) वृद्धि के निमित्त (हविषा) ग्रहण करने योग्य विज्ञान से (अवध्यम्) जिस बुरे व्यसन और अधर्म से रहित (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य देने तथा (त्रातारम्) समस्त प्रजा जनों की रक्षा करने वाले सभापति को (अकृणोः) कीजिये कि (तस्मै) उसे (पूर्वीः) प्राचीन धार्मिक जनों ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है वे (विशः) प्रजाजन (समनमन्त) अच्छे प्रकार मानें जैसे (अयम्) यह सभापति (उग्रः) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमत्कारी और (विहव्यः) अनेक प्रकार के राज्य साधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आदि रखने वाला (असत्) हो वैसे प्रजा भी इस के साथ वर्त्तें ऐसी युक्ति कीजिये (उपयामगृहीतः) यहां से लेकर मंत्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिये ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूलें किन्तु उन की अनुमति में सब कोई अपना २ वर्त्ताव रक्खें प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी अवृद्धि को नहीं पहुंचता है और ईश्वर वा राजा के बिना प्रजा जन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने वाले काम भी नहीं कर सकते इस से प्रजा जन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्म के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ४६ ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋषिः । विश्वकर्मेन्द्रो देवता । विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसङ्गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसङ्गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) अच्छे २ कर्म करने वाले जन ! मैं जो (ते) आप का (अनुष्टुप्) अज्ञान छुड़ाने वाला (अभिगरः) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसा वाक्य है इन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेद मंत्र गायत्री छन्द के अर्थ को जानने वाले (त्वा) आप को (अग्नये) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं वा (त्रिष्टुप्छन्दसम्) परम ऐश्वर्य देने वाले त्रिष्टुप् छन्द युक्त वेद मन्त्रों का अर्थ कराने हारे (त्वा) आप को (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (जगच्छन्दसम्) समस्त ज-

पदार्थों की धारणा (स्वाहा) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य क्रिया हो। तुम (इह) इस गृहाश्रम में (रमध्वम्) रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस (मात्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिये (धरुणम्) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को (उपसृजन्) उत्पन्न कर और यह (धरुणः) उक्त गुण वाला पुत्र (मातरम्) उस अपनी माता का (धयन्) दूध पीवे। वैसे (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (रायः) धन की (पोषम्) समृद्धि को (स्वाहा) सत्य भाव से (दीधरत्) उत्पन्न कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रक्खें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥

सत्रस्येत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सत्रस्य ऋद्धिर॑स्यग॑न्म ज्योति॑र॒मृता॑ अभूम। दिवं॑ पृथि॒व्या अध्यारु॑हा॒माविदाम देवान्त्स्व॒र्ज्योतिः॑ ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप (सत्रस्य) प्राप्त हुए राज प्रजा व्यवहाररूप यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्धि रूप (असि) हैं आप के सङ्ग से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकाश को (अगन्म) प्राप्त होवें और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों (दिवः) सूर्यादि (पृथिव्याः) पृथिवी आदि लोकों के (अधि) बीच (अरुहाम) पूर्ण वृद्धि को पहुंचें (देवान्) विद्वानों दिव्य २ भोगों (ज्योतिः) विज्ञान विषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त होवें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है ॥ ५२ ॥

युवमित्यस्य देवा ऋषयः। गृहपतयो देवताः। पूर्वस्यार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। दूरेचेत्यस्यानुष्णिक्छन्दः। ऋषभः स्वरः। अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। भूर्भुवरित्यस्य विराट्प्राजापत्या पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

योग्य बल पराक्रम धीरज जितेन्द्रियता वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजा पालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मानें ॥ ४९ ॥

उशिक्त्वमित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । स्वराडार्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उशिक् त्वन्देव सोमाग्नेः प्रियम्पाथोऽपीहि वशी त्वन्देव सोमेन्द्रस्य प्रियम्पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वन्देव सोम विश्वेषान्देवानाम्प्रियम्पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य गुण सम्पन्न (सोम) समस्त ऐश्वर्य्य युक्त राजन्! आप (उशिक्) अति मनोहर होके (अग्ने.) उत्तम विद्वान् के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) रक्षा योग्य व्यवहार को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त करो और जानो हे (देव) दानशील (सोम) हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति कराने वाले आप (वशी) जितेन्द्रिय होकर (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य वाले धार्मिक जन के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) जानने योग्य कर्म को (अपि) निश्चय से (इहि) जानो हे (देव) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान (सोम) ऐश्वर्य्य युक्त आप (अस्मत्सखा) हम लोग जिन के मित्र हैं ऐसे आप होकर (विश्वेषाम्) समस्त (देवानाम्) विद्वानों के प्रेम उत्पन्न कराने हारे (पाथः) विद्वान के आचरण को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त हो तथा जानो ॥ ५० ॥

भावार्थः—राजा राजपुरुष सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ, अच्छे २ नियम और मित्रभाव से धार्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग को चलें क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये बिना कोई विद्या धर्म्म सब से एक प्रीति भाव और ऐश्वर्य्य को नहीं पा सकता है ॥ ५० ॥

इह रतिरित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो गृहस्था देवताः । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अथ गार्हस्थ्य धर्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । उपसृजन्धरुणम्मात्रे धरुणो मातरन्धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो तुम लोगों की (इह) इस गृहाश्रम में (रतिः) प्रीति (इह) इस में (धृतिः) सब व्यवहारों की धारणा (इह) इसी में (स्वधृतिः) अपने

सन्तानों को प्राप्त (स्वाहा) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य क्रिया हो। तुम (इह) इस गृहाश्रम में (रमध्वम्) रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस (मात्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिये (धरुणम्) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को (उपसृजन्) उत्पन्न कर और यह (धरुणः) धारण हुआ बालक पुत्र (मातरम्) उस अपनी माता का (धयन्) दूध पीवे। ऐसे (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (रायः) धन की (पोषम्) समृद्धि को (स्वाहा) सत्य भाव से (दीधरत्) उत्पन्न कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रक्खें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥

सत्रस्येत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम । दिवं पृथिव्या अध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप (सत्रस्य) प्राप्त हुए राज प्रजा व्यवहाररूप यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्धि रूप (असि) हैं आप के सङ्ग से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकाश को (अगन्म) प्राप्त होवें और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों (दिवः) सूर्यादि (पृथिव्याः) पृथिवी आदि लोकों के (अधि) बीच (अरुहाम) पूर्ण वृद्धि को पहुंचें (देवान्) विद्वानों दिव्य २ भोगों (ज्योतिः) विज्ञान विषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त होवें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है ॥ ५२ ॥

युवमित्यस्य देवा ऋषयः। गृहपतयो देवताः। पूर्वस्यार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। दूरेचेत्यस्यानुष्णिक्छन्दः। ऋषभः स्वरः। अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। भूर्भुवरित्यस्य विराट्प्राजापत्या पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

युवन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् । अस्माकꣳ शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (पुरोयुधा) युद्ध समय में आगे लड़ने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन ! (युवम्) तुम दोनों (यः) जो (नः) हमारी (पृतन्यात्) सेना से लड़ना चाहे (तन्तम्) (इत्) उसी २ को (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्र विद्या के बल से (हतम्) मारो और (यत्) जो (अस्माकम्) हमारे शत्रुओं की (गहनम्) दुर्जय सेना हमारी सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो और (यत्) जो २ (छन्त्सत्) बल को बढ़ावे उस २ को (चत्ताय) आनन्द बढ़ाने के लिये (इद्धतम्) अवश्य मारो और (दूरे) दूर पहुंचा दो । हे (शूर) शत्रुओं को युद्ध से बचाने वाले सभापते ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब प्रकार से (परिदर्षीष्ट) विदीर्ण कर दीजिये जिस से हम लोग (भूः) इस भूलोक (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुख रूप लोक में (प्रजाभिः) अपने सन्तानों से (सुप्रजाः) प्रशंसित सन्तानों वाले (वीरैः) वीरों से (सुवीराः) बहुत अच्छे २ वीरों वाले और (पोषैः) पुष्टियों से (सुपोषाः) अच्छी २ पुष्टि वाले (विश्वतः) सब ओर से (स्याम) होवें ॥ ५३ ॥

भावार्थः—जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी न हों तब तक सेना वीर आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के बिना कभी विजय नहीं होता । तथा जब तक शत्रुओं को निर्मूल करने हारे सभापति आदि नहीं होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी हो सकते हैं ॥ ५३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो अच्छेतः । सविता सन्यां विश्वकर्म्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम ने यदि (व्याहृतायाम्) उच्चारित उपदिष्ट की हुई (वाचौ) वेदवाणी में (परमेष्ठी) परमानन्द स्वरूप में स्थित (प्रजापतिः) समस्त प्रजा के स्वामी को (अच्छेतः) अच्छे प्रकार प्राप्त (विश्वकर्मा) सब विद्या और कर्मों को जानने वाले सर्वथा श्रेष्ठ सभापति को (दीक्षायाम्) सभा के नियमों के धारण में (सोमक्रयण्याम्) ऐश्वर्य ग्रहण करने में (पूषा) सब को पुष्ट करने हारे उत्तम वैद्य को और (सन्याम्) जिस से सनातन सत्य प्राप्त हो उस में (सविता) सब जगत् का उत्पादक (अभिषीतः) सुविचार से धारण किया (अन्धः) उत्तम सुसंस्कृत अन्न का सेवन किया तो सदा सुखी हों ॥ ५४ ॥

भावार्थः—जो ईश्वर वेद विद्या से अपने सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के विना निरन्तर सुख क्योंकर हो सकता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषयों को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग । जो विद्वानों ने (क्रयाय) व्यवहार सिद्धि के लिये (इन्द्रः) बिजुली (मरुतः) पवन (असुरः) मेघ (पण्यमानः) स्तुति के योग्य (मित्रः) सखा (शिपिविष्टः) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (विष्णुः) सर्व शरीर व्याप्त धनंजय वायु और इन में से एक २ पदार्थ (नरन्धिषः) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (विष्णुः) हिरण्यगर्भ ईश्वर (ऊरौ) ढापने आदि क्रियाओं में (आसन्नः) संनिकट वा (उपोत्थितः) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (क्रीतः) व्यवहार में वर्त्ता हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥ ५५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों को क्रिया कुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

प्रोह्यमाणइत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः विश्वेदेवा गृहस्था देवताः । आर्षी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रोह्यमाणः सोम आगतो वरुण आसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नी-
ध्र इन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्रियमाणः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम को इस ईश्वर की सृष्टि में (आसन्द्याम्) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (आगत) आया हुआ पुरुष जैसे विराजमान हो वैसे (प्रोह्यमाणः) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (सोमः) ऐश्वर्य का समूह (वरुणः) सहायकारी पुरुष के समान जल का समूह (आग्नीध्रे) पदार्थ के स्थलों में (अग्निः) अग्नि (उपावह्रियमाणः) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए (अथर्वा) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (हविर्द्धाने) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में (इन्द्रः) बिजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

भावार्थः—तर्क के विना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के विना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता ॥ ५६ ॥

विश्वेदेवाइत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक्साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब गृहस्थ कर्म में कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वे देवा अᳫंशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपा आप्याय्यमानो
यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः ।
शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वानो ! तुम्हारा जो (अंशुषु) अलग २ संसार के पदार्थों में (न्युप्तः) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार (आप्रीतपाः) अच्छी प्रीति के साथ (विष्णुः) व्याप्त होने वाली बिजुली (आप्याय्यमानः) अति बढ़े हुए के समान (यमः) सूर्य्य (सूयमानः) उत्पन्न होने हारा (विष्णुः) व्यापक अव्यक्त (संभ्रियमाणः) अच्छे प्रकार पुष्ट किया हुआ (वायुः) प्राण (पूयमानः) पवित्र किया हुआ (शुक्रः) पराक्रम का समूह (पूतः) शुद्ध (शुक्रः) शीघ्र चेष्टा करने हारा और (मंथी) बिलोड़ने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए (क्षीरश्रीः) दुग्धादि पदार्थों को पकाने और (सक्तुश्रीः) प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

विश्वेदेवाश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

विश्वे॑ दे॒वाश्च॑म॒सेषू॑न्नी॒तोऽसु॑र्हो॒माया॒द्यतो॑ रु॒द्रो हू॒यमा॑नो॒ वा-
तो॒ऽभ्यावृ॑त्तो नृ॒चक्षाः॒ प्रति॑ख्यातो भ॒क्षो भ॒क्ष्यमा॑णः पि॒तरो॑ नारा-
श॒ꣳसाः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—जिन विद्वानों ने यज्ञ विधान से (चमसेषु) मेघों में सुगन्धि आदि वस्तु (उन्नीतः) ऊंचे पहुंचाया (असुः) अपना जीवन (उद्यतः) अच्छे यत्न में लगा रक्खा (रुद्र) जीव को पवित्र कर (हूयमानः) स्वीकार किया (नृचक्षाः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला (प्रतिख्यातः) जिन्हों ने यथागुणवाद से चाहा (वातः) बाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु शुद्ध किये फल (भक्ष्यमाणः) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ (भक्षः) खाइये (नाराशंसा) प्रशंसा कर मनुष्यों के उपदेशक (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् (पितर) उन सब के उपकारकों को जानो समझने चाहिये ॥ ५८ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने सुगन्धि पुष्टि मधुरता और रोग नाशक गुण युक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उनका होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन कर के शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५८ ॥

सन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्षी बृहती छन्दः । निषादः स्वरः । यापत्येतेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ गृहस्थ के कर्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

स॒न्नः सिन्धु॑रवभृ॒थायोद्य॑तः समु॒द्रो᳖ऽभ्यवह्रि॒यमा॑णः सलि॒लः
प्रप्लु॑तो॒ ययो॒रोज॑सा स्कभि॒ता रजा॑ꣳसि वी॒र्ये᳖भिर्वी॒रत॑मा॒ शवि॑-
ष्ठा। या पत्ये॑ते॒ अप्र॑तीता॒ सहो॑भि॒र्विष्णू॑ अग॒न्वरु॑णा पू॒र्वहू॑तौ ॥५९॥

पदार्थः—जिन्होंने (अवभृथाय) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र करने के लिये (अभ्यवह्रियमाणः) भोगने योग्य (सलिलः) जिस में उत्तम जल है वह व्यवहार (उद्यतः) नियम से संपादन किया (सिन्धुः) नदियां (सन्नः) निर्माण कीं (समुद्रः) समुद्र (प्रप्लुतः) अपने उत्तम गुणों से पाया है वे विद्वान् लोग (ययोः) जिन के (ओजसा) बल से (रजांसि) लोक लोकान्तर (स्कभिता) स्थित हैं (या) जो (वीर्येभिः) और पराक्रमों से (वीरतमा) अत्यन्त वीर (श-

विष्ठा) नित्य यज्ञ संपादन करने वाले (सद्योगिः) यज्ञों से (अप्रतीता) मूर्खों को जानने अयोग्य (विष्णू) व्याप्त होने हारे (वरुणा) अतिश्रेष्ठ स्वीकार करने (पूर्वहूतौ) जिस का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो जो (यशंते) श्रेष्ठ को प्राप्त होते हैं उन यज्ञ कर्म भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को (अगन्) प्राप्त हो वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ५९ ॥

भावार्थः—यज्ञ आदि व्यवहारों के बिना गृहाश्रम में सुख नहीं होता ॥५

देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराट् साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः धैवतः स्वरः ॥

फिर भी यज्ञ विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवाँन्दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानुन्तरिक्षम
न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्र
णमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

पदार्थः—जो (यज्ञः) पूर्वोक्त सब के करने योग्य यज्ञ (दिवम्) विद्या के और (देवान्) दिव्य भोगों को प्राप्त करता है जिस को विद्वान् लोग (अगन् हों (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) विद्यादि गुण (अष्टु) प्राप्त (यज्ञः) यज्ञ (अन्तरिक्षम्) मेघ मण्डल और (मनुष्यान्) मनुष्यों को प्राप्त है जिस को भद्र मनुष्य (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ विणम्) धनादि पदार्थ (अष्टु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (पृथिवीम्) और (पितॄन्) वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता है जिस को आप्त लोग (प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) प्रत्येक ऋतु (अष्टु) प्राप्त हो जो (यज्ञः) यज्ञ (कम्) किसी (च) (लोकम्) लोक होता है (यम्) जिस को धर्मात्मा लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस मेरा (भद्रम्) कल्याण (अभूत्) हो ॥ ६० ॥

भावार्थः—जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुष्यों न करना चाहिये ॥ ६० ॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । साम्न्युष्णिक् छ ऋषभः स्वरः ॥

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं यह विषय अगले मन्त्र में कह

चतु॑स्त्रिꣳशत्तन्त॑वो॒ ये वि॑तत्नि॒रे य इ॒मं य॒ज्ञꣳ स्व॒धया॒ दद॑न्ते ।
तेषां॑ छि॒न्नꣳ सम्वे॒तद्द॑धामि॒ स्वाहा॑ घ॒र्मो अप्ये॑तु दे॒वान् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(ये) जो (चतुस्त्रिंशत्) आठ वसु ग्यारह रुद्र बारह आदित्य इन्द्र प्रजापति और प्रकृति (तन्तवः) सूत के समान (यज्ञम्) सुख उत्पन्न करने हारे यज्ञ को (वितत्निरे) विस्तार करते हैं अथवा (ये) जो (स्वधया) अन्न आदि उत्तम पदार्थों से (इमम्) इस यज्ञ को (ददन्ते) देते हैं (तेषाम्) उन का जो (छिन्नम्) अलग किया हुआ यज्ञ (एतत्) उस को (स्वाहा) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी से (सम्) (दधामि) इकट्ठा करता हूं (उ) और वही (घर्मः) यज्ञ (देवान्) विद्वानों को (अपि) निश्चय से (एतु) प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

भावार्थः—इस प्रत्यक्ष चराचर जगत् के चौंतीस ३४ तत्त्व कारण हैं उन के गुण और दोषों को जो जानते हैं उन्हीं को सुख मिलता है ॥ ६१ ॥

यज्ञस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर यज्ञ का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

य॒ज्ञस्य॒ दोहो॒ वित॑तः पुरु॒त्रा सो अ॑ष्ट॒धा दिव॑म॒न्वात॑तान । स
य॑ज्ञ धुक्ष्व॒ महि॑ मे प्र॒जाया॑ꣳ रा॒यस्पोषं॒ विश्व॒मायु॑रशीय॒ स्वाहा॑ ॥६२॥

पदार्थः—हे (यज्ञ) सङ्गति करने योग्य विद्वन् आप जो (यज्ञस्य) यज्ञ का (पुरुत्रा) बहुत पदार्थों में (विततः) विस्तृत (अष्टधा) आठों दिशाओं से आठ प्रकार का (दोहः) परिपूर्ण सामग्री समूह है (सः) वह (दिवम्) सूर्य्य के प्रकाश को (अन्वाततान) व्याप कर फिर फैलने देता है (सः) वह आप सूर्य्य के प्रकाश में यज्ञ करने वाले गृहस्थ तू उस यज्ञ को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर जो (मे) मेरी (प्रजायाम्) प्रजा में (विश्वम्) सब (महि) महान् (रायः) धनादि पदार्थों की (पोषम्) समृद्धि को वा (आयुः) जीवन को बार २ विस्तारता है उस को मैं (स्वाहा) सत्ययुक्त क्रिया से (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ ६२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीव को अत्यन्त सुख पहुंचावें ॥ ६२ ॥

आपवस्वेत्यस्य कश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य किस के तुल्य यज्ञ का सेवन करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ पंवस्व हिरंण्यवदश्ववत्सोम वीरवंत् । वाजं गोमंन्तमा भंर स्वाहा ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे सोम ऐश्वर्य्य चाहने वाले गृहस्थ ! तू (स्वाहा) सत्य वाणी या सत्य क्रिया से (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (अश्ववत्) अश्व आदि उत्तम पशुओं के समान (वीरवत्) प्रशंसित वीरों के तुल्य (गोमन्तम्) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले (वाजम्) अन्नादि मय यज्ञ का (आभर) आश्रय रख और उस से संसार को (आ) अच्छे प्रकार (पवस्व) पवित्र कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें तदनन्तर वीरों को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रम रूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें ॥ ६३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ धर्म सेवन के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार गृहस्थ धर्म का वर्णन राज प्रजा और सभापति आदि का कर्त्तव्य कहा है इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय में कहे अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

यह आठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



ओ३म्

अथ नवमाऽध्यायारम्भः ॥



विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

देवसवितरित्यस्य इन्द्राबृहस्पती ऋषी । सविता देवता ।

स्वराडार्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग चक्रवर्त्ती राजा को कैसा २ उपदेश करें इस विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यगुणयुक्त (सवितः) संपूर्ण ऐश्वर्य्य वाले ! राजन् आप (भगाय) सब ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) वेद वाणी से (यज्ञम्) सब को सुख देने वाले राज धर्म का (प्र) (सुव) प्रचार और (यज्ञपतिम्) राज धर्म के रक्षक पुरुष को (प्र) (सुव) प्रेरणा कीजिये जिस से (दिव्यः) प्रकाशमान दिव्य गुणों में स्थित (गंधर्वः) पृथिवी को धारण और बुद्धि को शुद्ध करने वाला (वाचस्पतिः) पढ़ने पढ़ाने और उपदेश से विद्या का रक्षक सभापति राज पुरुष है वह (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करे और हमारे (वाजम्) अन्न को सत्य वाणी से (स्वदतु) अच्छे प्रकार भोगे ॥ १ ॥

भावार्थः—न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है ॥ १ ॥

ध्रुवसदंत्वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । ध्रुवसदमिति पूर्वस्यार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । अप्सुषदमित्यस्य विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याऽधिकार में स्वीकार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनि-

रिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् पृथिविसदं त्वान्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) योग विद्या के प्रसिद्ध अंग यम के सेवने वाले पुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो । उस (ध्रुवसदम्) निश्चल विद्या विनय और योग धर्मों में स्थित (नृपदम्) नायक पुरुषों में अवस्थित (मनः सदम्) विज्ञान में स्थिर (जुष्टम्) प्रीतियुक्त (त्वा) आपको (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं । जिस (ते) आपका (एपः) यह (योनिः) सुख निमित्त है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप का (गृह्णामि) धारण करता हूं । हे राजन् ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य धारण के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) प्रजा और राजपुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो उस (अप्सुसदम्) जलों के बीच चलते हुए (घृतसदम्) घी आदि पदार्थों को प्राप्त हुए और (व्योमसदम्) विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए (जुष्टम्) सब के प्रिय (त्वा) आप का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं । हे सब की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष राजन् ! जिस (ते) आप का (एपः) यह (योनिः) सुखदायक घर है उस (जुष्टतमम्) अति प्रसन्न (त्वा) आप को (इन्द्राय) दुष्ट शत्रुओं के मारने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं हे सब भूमि में प्रसिद्ध राजन् ! मैं (इन्द्राय) विद्या योग और मोक्ष रूप ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) साधन उपसाधनों से युक्त (असि) हो उस (पृथिविसदम्) पृथिवी में भ्रमण करते हुए (अन्तरिक्षसदम्) अवकाश में चलने वाले (दिविसदम्) न्याय के प्रकाश में नियुक्त (देवसदम्) धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित (नाकसदम्) सब दुःखों से रहित परमेश्वर और धर्म में स्थिर (जुष्टम्) सेवनीय (त्वा) आप का (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं । हे सब सुख देने और प्रजापालन करने हारे राजपुरुष ! जिस (ते) तेरा (एपः) यह (योनिः) रहने का स्थान है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त प्रिय (त्वा) आप को (इन्द्राय) उत्तम सुख होने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—हे राज प्रजाजनो ! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य भोगने के लिये [illegible] सब के सुख के लिये सुख देता वैसा ही आचरण तुम लोग भी करो कि [illegible] अर्थ काम और मोक्ष फलों की प्राप्ति युक्त होवें ॥ २ ॥

अपामित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर प्रजाजनों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपाᳬ रसमुद्वयसᳬ सूर्य्ये सन्तᳬ समाहितम्। अपाᳬ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥ ३॥

पदार्थः—हे राजन्! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य प्राप्ति के लिये (वः) तुम्हारे लिये (सूर्ये) सूर्य के प्रकाश में (सन्तम्) वर्त्तमान (समाहितम्) सब प्रकार चारों ओर धारण किये (उद्वयसम्) उत्कृष्ट जीवन के हेतु (अपाम्) जलों के (रसम्) सार का ग्रहण करता हूं (यः) जो (अपाम्) जलों के (रसस्य) सार का (रसः) सार वीर्य धातु है (तम्) उस (उत्तमम्) कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं जो आप (उपयामगृहीतः) साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार किये गये (असि) हो उस (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक वर्त्तने वाले आप का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप को (इन्द्राय) परम सुख होने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं॥ ३॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषों को शरीर और आत्मा के बल बढ़ने के लिये ब्रह्मचर्य ओषधि विद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करें। जिस से सब मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें॥ ३॥

ग्रहा इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। राजधर्मराजादयो देवताः। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वान् की अच्छे प्रकार परीक्षा करके सङ्ग करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम्। तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जᳬ समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। सम्पृचौ स्थः सम्मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम्॥ ४॥

विश्वम्) सब (भुवनम्) जगत् (आविवेश) प्रविष्ट है और जहां (देवः) सब का प्रकाशक (सविता) सब जगत् का उत्पादक परमात्मा (नः) हमारा (धर्म्म) धारण (साविषत्) करे (तस्याम्) उस में (नाम) प्रसिद्ध (वाजस्य) संग्राम के (प्रसवे) ऐश्वर्य्य में (मातरम्) मान्य देने हारी (अदितिम्) अखंडित (महीम्) पृथिवी को (वचसा) वेदोक्त न्याय के उपदेशरूप वचन से हम लोग (नु) शीघ्र (करामहे) ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जो यह भूमि प्राणियों के लिये सौभाग्य के उत्पन्न माता के समान रक्षा और सब को धारण करनेहारी प्रसिद्ध है उस का विद्या न्याय और धर्म के योग से राज्य के लिये तुम लोग सेवन करो ॥ ५ ॥

अप्स्वन्तरित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । अपो देवता । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ।

फिर स्त्री पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है ।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः । देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनायं वाजंᳬ सेत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (देवीः) दिव्यगुणवाली (आपः) अन्तरिक्ष में व्यापक स्त्री पुरुष होगो! तुम (यः) जो (वः) तुह्मारा (समुद्रस्य) सागर के (ककुन्मान्) प्रशस्त चंचल गुणों से युक्त (वाजसाः) संग्रामों के सेवने को हेतु (प्रतूर्त्तिः) अति शीघ्र चलनेवाला समुद्र के (ऊर्मिः) आच्छादन करनेहारे तरंगों के समान पराक्रम और जो (अप्सु) प्राण के (अन्तः) मध्य में (अमृतम्) मरण धर्म रहित कारण और जो (अप्सु) जलों के मध्य अल्पमृत्यु से छुड़ाने वाला (भेषजम्) रोग निवारक औषध के समान गुण है जिस से (अयम्) यह सेनापति (वाजम्) संग्राम और अन्न का प्रबन्ध करे (तेन) उस से (अपाम्) उक्त प्राणों और जलों की (प्रशस्तिषु) गुण प्रशंसाओं में (वाजिनः) प्रशंसित बल और पराक्रम वाले (अश्वाः) कुलीन घोड़ों के समान वेगवाले (भवत) हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—स्त्रियों को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर जल के समान शान्तस्वभाव वीरपुत्रों को उत्पन्न करने नित्य ओषधियों को सेवने और जलादि पदार्थों को ठीक २ जाननेवाली होवें इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणों के वेत्ता पुरुषों से संयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी होते हैं ॥ ६ ॥

वातोवेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सेनापतिर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके वेग वाले हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वातो॑ वा॒ मनो॑ वा गन्ध॒र्वाः स॒प्तवि॑ꣳशतिः । ते अग्रे॒ऽश्वम॑युञ्जँ॒स्ते अ॑स्मिन् ज॒वमाद॑धुः ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् लोग (वातः) वायु के (वा) समान (मनः) मन के (वा) समतुल्य और जैसे (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (गन्धर्वाः) वाय इन्द्रिय और भूतों को धारण करने हारे (अस्मिन्) इस जगत् में (अग्रे) पहिले (अश्वम्) व्यापकता और वेगादि गुणों को (अयुञ्जन्) संयुक्त करते हैं (ते) वेही (जवम्) उत्तम वेग को (आदधुः) धारण करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो एक समिष्ट वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, और धनंजय, (दश) बारहवां मन, तथा इसके साथ श्रोत्र आदि दश इन्द्रिय और पांच सूक्ष्म भूत ये सब २७ सत्ताईस पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् में पहिले रचे हैं । जो पुरुष इन के गुण कर्म और स्वभाव को ठीक २ जान और यथायोग्य कार्यों में संयुक्त करके अपनी २ ही स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

वातरंहेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उस राजा को विद्वान् लोग क्या २ उपदेश करें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

वात॑रꣳहा भव वाजिन् यु॒ज्यमा॑न॒ इन्द्र॑स्येव॒ दक्षि॑णः श्रि॒यै॑धि । युञ्जन्तु॑ त्वा म॒रुतो॑ वि॒श्ववे॑दस॒ आ ते॒ त्वष्टा॑ प॒त्सु ज॒वन्द॑धातु ॥८॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) शास्त्रोक्त क्रिया कुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन्! जिस (त्वा) आप को (विश्व वेदसः) समस्त विद्याओं के जानने हारे (मरुतः) विद्वान् लोग राज्य और शिल्प विद्याओं के कार्यों में (युञ्जन्तु) युक्त और (त्वष्टा) वेगादि गुण विद्या का जानने हारा मनुष्य (ते) आप के (पत्सु) पगों में (जवम्) वेग को (आदधातु) अच्छे प्रकार धारण करे । वह आप (वातरंहाः) वायु के समान वेग वाले (भव) हूजिये और (युज्यमानः) सावधान होके (दक्षिणः) प्रशंसित धर्म से चलने के चलने के बल से युक्त होके (इन्द्रस्येव) परम ऐश्वर्य वाले राजा के समान (श्रिया) शोभा युक्त राज्य संपत्ति वा राणी से सहित (एधि) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे राजसम्बन्धी स्त्री पुरुषो ! आप लोग अभिमान रहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों की उन्नति को देखकर प्रसन्न होने वाले होकर विद्वानों के साथ मिल के राज धर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठ के अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्न कर के श्रीमान् हुआ कीजिये ॥ ८ ॥

जव इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । वीरो देवता । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो वाजजितो वाजं ᳪ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) श्रेष्ठ शास्त्र बोध और योगाभ्यास से युक्त सेना वा सभा के स्वामी राजन् ! (ते) आप का (यः) जो (जवः) वेग (गुहा) बुद्धि में (निहितः) स्थित है (यः) जो (श्येने) पक्षी में जैसा (परीत्तः) सब ओर दिया हुआ (च) और जैसे (वाते) वायु में (अचरत्) विचरता है (तेन) उस से (नः) हम लोगों के (बलेन) सेना का पराक्रम से (बलवान्) बहुत बल से युक्त (भव) हूजिये हे (वाजिन्) वेगयुक्त राजपुरुष ! उसी बल से (समने) संग्राम में (पारयिष्णुः) दुःख के पार करने और (वाजजित्) संग्राम के जीतने वाले हूजिये हे (वाजिनः) प्रशंसित वेग से युक्त योद्धा लोगो ! तुम (बृहस्पतेः) बड़ों की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष के (भागम्) सेवा को प्राप्त हो के (वाजम्) बोध वा अन्नादि पदार्थों को (सरिष्यन्तः) प्राप्त होते हुए (वाजजितः) संग्राम के जीतने हारे होओ और सुगन्धियुक्त पदार्थों का (अवजिघ्रत) सेवन करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शीघ्रकारी हो के अपने सब सभासद् सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख से युक्त कर धर्मात्माओं की निरन्तर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ९ ॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । विराडुत्कृतिश्छन्दः ॥

...रें मूढ़ों का नहीं यह

मनुष्य लोगों को उचित है कि विद्वानों का अनुकरण

विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥ पतेरुत्तमं नाकंᳬ रु

देवस्याहᳬ सवितुः सवे सत्यसवसो बृह इन्द्रस्योत्तमं नाकंᳬ

हेयम् । देवस्याहᳬ सवितुः सवे सत्यसवम सो बृहस्पतेरुत्तमं

रुहेयम् । देवस्याहᳬ सवितुः सवे सत्यप्रस सवस इन्द्रस्योत्तमं

नाकमरुहम् । देवस्याहᳬ सवितुः सवे सत्यप्र

नाकमरुहम् ॥ १० ॥) मैं सभाध्यक्ष राजा (स-

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! जैसे (अहम् उस (देवस्य) सब ओर से

त्यसवसः) जिस का ऐश्वर्य्य और जगत् का कारण सत्य है (सवितुः) सब जगत् को

प्रकाशमान (बृहस्पतेः) बड़े प्रकृत्यादि पदार्थों के रक्षक में (उत्तमम्) सब से उ-

उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये जगत् को (रुहेम्) आरूढ़ होऊं

त्तम (नाकम्) सब दुःखों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप पुरुष (सत्यसवसः) स-

हे राजा के सभासद् लोगो ! जैसे (अहम्) मैं परोपकारी ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने

त्यन्याय से युक्त (देवस्य) सब सुख देने (सवितुः) सम्पू (सवे) ऐश्वर्य्य में (उ-

हारे (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य के सहित चक्रवर्ती राजा प्राप्त हो के (रुहेयम्) आ-

त्तमम्) प्रशंसा के योग्य (नाकम्) दुःख रहित भोग को प्र अहम्) मैं विद्या चाहने

रूढ़ होऊं । हे पढ़ने पढ़ाने हारे विद्या प्रिय लोगो ! जैसे ी उस (देवस्य) संपूर्ण वि-

द्वारा जन (सत्यप्रसवसः) जिस से अविनाशी प्रकट बोध सवितुः) समग्र विद्या बोध

द्या और शुभ गुण, कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त (ने हारे वेद वेदांगोपांगों के

के उत्पन्न कर्त्ता (बृहस्पतेः) उत्तम वेद वाणी की रक्षा करने से उत्तम (नाकम्) सब

पारदर्शी के (सवे) उत्पन्न किये विज्ञान में (उत्तमम्) स विजय प्रिय लोगो ! जैसे

दुःखों से रहित आनन्द को (अरुहम्) आरूढ़ हुआ हूं दे ॥ य विनय और विजयादि

(अहम्) मैं योद्धा मनुष्य (सत्यप्रसवसः) जिस से सत्यन्य सवितुः) शत्रुओं के वि-

उत्पन्न हों उस (देवस्य) धनुर्वेद युद्ध विद्या के प्रकाशक (पुरुष की (सवे) प्रेरणा

जय में प्रेरक (इन्द्रस्य) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे ने हारे संग्राम को (अरु-

में (उत्तमम्) विजय नामक उत्तम (नाकम्) सब सुख दे ॥ १० ॥

हम्) आरूढ़ हुआ हूं वैसे आप भी सब लोग आरूढ़ हूजिये के पुरुषों को चाहिये कि

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-सब राजा और प्रजा

सत्या सं॑वाग॑भूय॒येन्द्रं वाज॑मजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं॒ वनस्पतयो विमु॑च्यध्वम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पतयः) किरणों के समान न्याय के पालने हारे राज तुम लोगो (यया) जिस से (बृहस्पतिम्) वेद शास्त्र के पालने हारे विद्वान् को (वाजम्) वेद शास्त्र के बोध को (अजीजपत) बढ़ाओ (बृहस्पतिम्) बड़े राज्य के रक्षक राज पुरुष के संग्राम को (अजीजपत) जिताओ (सा) वह (यया) पूर्व कही वा आगे जिस को कहेंगे (वः) तुम लोगों की (सम्वाक्) राजनीति में स्थित अच्छी वाणी (सत्या) सत्य स्वरूप (अभूत्) होवे, हे (वनस्पतयः) सूर्य की किरणों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करने हारे राज पुरुषो तुम लोग (यया) जिस से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य प्राप्त कराने हारे सेनापति को (वाजम्) युद्ध को (अजीजपत) जिताओ (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य युक्त पुरुष को (वाजम्) अतुल्य लक्ष्मी को प्राप्त कराने हारे उद्योग को (अजीजपत) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें (सा) वह (यया) आगे पीछे जिस का प्रतिपादन किया है (वः) तुम लोगों की (सम्वाक्) विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली वाणी (सत्या) सदा सत्य भाषणादि लक्षणों से युक्त (अभूत) होवे ॥ १२ ॥

भावार्थः—राजा उस के नौकर और प्रजा पुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को असत्य होने कभी न दें जितना कहें उतना ठीक २ करें जिस की वाणी सब काल में सत्य होती है वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विश्वास और वे सुखों को नहीं बढ़ा सकते ॥ १२ ॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि धर्मात्मा राज पुरुषों का अनुकरण करें अन्य तुच्छ बुद्धियों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो बृ॒ह॒स्पते॑र्वाज॒जितो॒ वाजं॑ जेषम् । वाजि॑नो वाज॒जितोऽध्व॑न स्कभ्नु॒वन्तो॒ योज॑ना॒ मिमा॑नाः॒ काष्ठां॑ गच्छत ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जैसे (अहम्) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण सेनापति (सत्यप्रसवसः) जिस के बनाये जगत् में कारण रूप से पदार्थ नित्य हैं उस (सवितुः) सब ऐश्वर्य्य के देने (देवस्य) सब के प्रकाशक (वाजजितः) विज्ञान

आदि से उत्कृष्ट (बृहस्पतेः) उत्तम वेदवाणी के पालने हारे जगदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये इस ऐश्वर्य्य में (वाजम्) संग्राम को (जेष्म) जीतें वैसे तुम लोग भी जीतो हे (वाजिनः) विज्ञान रूपी वेग से युक्त (वाजजितः) संग्राम को जीतने हारे (योजना) बहुत कोशों से शत्रुओं को (मिमानाः) फेंकते और (अध्वनः) शत्रुओं के मार्गों को रोकते हुए तुम लोग जैसे (काष्ठाम्) दिशाओं में (गच्छत) चलो हो वैसे हम लोग भी चलें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—योद्धा लोग सेनाध्यक्ष के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओं को जीत और उन के मार्गों को रोक सकते हैं । और इन अध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करते हों वहीं जाके उन को वश में करें ॥ १३ ॥

एषस्येत्यस्य दधिक्रावाऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले होवें
तभी विजय प्राप्त होवे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि । क्रतुं दधिक्रा अनु सꣳसनिष्यदत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थः—जैसे (स्यः) वह (एषः) और यह (वाजी) वेगयुक्त (आसनि) मुख और (ग्रीवायाम्) कण्ठ में (बद्धः) बंधा (क्रतुम्) कर्म अर्थात् गति को (संसनिष्यदत्) अतीव फैलाता हुआ (पथाम्) मार्गों के (अङ्कांसि) चिन्हों को (अनु) समीप (आपनीफणत्) अच्छे प्रकार चलता हुआ (दधिक्राः) धारण करने हारों को चलाने हारा घोड़ा (क्षिपणिम्) सेना को जाता है वैसे ही (अपिकक्षे) इधर उधर के ठीक २ अवयवों में सेनापति अपनी सेना को (स्वाहा) सत्यवाणी से (तुरण्यति) वेगयुक्त करता है ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०— सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुये वीर पुरुष घोड़ों के समान दौड़ते हुए शीघ्र शत्रुओं को मार सकते हैं जो सेनापति उत्तम कर्म करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता वह प्रशंसित हुआ विजय को प्राप्त होता है अन्यथा पराजय ही होता है ॥ १४ ॥

उतेत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सेनापति आदि राजपुरुष कैसा पराक्रम करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः। श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥१५॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! जो (ऊर्जा) पराक्रम और (स्वाहा) सत्यक्रिया के (सह) साथ (अस्य) इस (द्रवतः) रसप्रद वृक्ष का पत्ता और (तुरण्यतः) शीघ्र उड़ने वाले (वेः) पक्षी के (पर्णम्) पंखों के (न) समान (उत) और (प्रगर्धिनः) अत्यन्त इच्छा करने (ध्रजत) चाहते हुए (श्येनस्येव) बाज पक्षी के समान तथा (तरित्रतः) अति शीघ्र चलते हुए (दधिक्राव्णः) घोड़े के सदृश (अङ्कसम्) अच्छे लक्षण युक्त मार्ग में (परि) (अनु) (वाति) सब प्रकार अनुकूल चलता है (स्म) वही पुरुष शत्रुओं को जीत सकता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो वीर पुरुष नीलकण्ठ श्ये पक्षी और घड़े के समान पराक्रमी होते हैं उन के शत्रुलोग सब ओर से विलाय जा हैं ॥ १५ ॥

शन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः। जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१६॥

पदार्थः—जो (मितद्रवः) नियम से चलने (स्वर्काः) जिन का अन्न वा सत्कार सुन्दर हो वे योद्धा लोग (अहिम्) मेघ के समान चेष्टा करते और बढ़े हुए (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दूसरों को क्लेश देने हारे डाकुओं के (जम्भयन्तः) हाथ पांव तोड़ते हुए (वाजिनः) श्रेष्ठ युद्ध विद्या के जानने वाले वीर पुरुष (नः) हम (देवताता) विद्वान् लोगों के कर्मों तथा (हवेषु) संग्रामों में (सनेमि) सनातन (शम्) सुख को (भवन्तु) प्राप्त होवें (अस्मत्) हमारे लिये (अमीवाः) रोगों के समान वर्त्तमान शत्रुओं को (युयवन्) पृथक् करें ॥ १६ ॥

भावार्थः—श्रेष्ठ प्रजा पुरुषों के पालने में तत्पर और रोगों के समान शत्रुओं के नष्ट करने हारे राज पुरुष ही सब को सुख दे सकते हैं अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

स्व नाभानेदिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये कर देवें और इसीलिये राजपुरुष ग्रहण करें, अन्यथा नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ते न॒ अर्वन्तो हवन॒श्रुतो॒ हवं॒ विश्वे॑ शृण्वन्तु वा॒जिनो॑ मि॒तद्र॑वः । सहस्रसा मे॒धसा॑ता सनि॒ष्यवो॑ म॒हो ये धनं॑ समि॒थेषु॑ ज॒भ्रिरे॑ ॥ १७ ॥

पदार्थः—(ये) जो (अर्वन्तः) ज्ञानवान् (हवनश्रुतः) ग्रहण करने योग्य शास्त्रों को सुनने (वाजिनः) प्रशंसित बुद्धिमान् (मितद्रवः) शास्त्रयुक्त विषय को प्राप्त होने (सहस्रसाः) असंख्य विद्या के विषयों को सेवने और (सनिष्यवः) अपने आत्मा को सुन्दर भक्ति करने हारे राजपुरुष (मेधसाता) समागमों के दान से युक्त (समिथेषु) संग्रामों में (नः) हमारे बड़े (धनम्) ऐश्वर्य्य को (जभ्रिरे) धारण करें वे (विश्वे) सब विद्वान् लोग हमारा (हवम्) पढ़ने पढ़ाने से होने वाले बोध शब्दों और वादी प्रतिवादियों के विवाद को (शृण्वन्तु) सुनें ॥ १७ ॥

भावार्थः—जो ये राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा करें नहीं तो न लें हम भी उन को कर न देवें । इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिये अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं यह निश्चित है ॥ १७ ॥

वाजे वाज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब वे राजा और प्रजा के पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

वाजे॑वाजेऽवत वाजिनो नो॒ धने॑षु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः । अ॒स्य मध्वः॑ पिबत मा॒दय॑ध्वं तृ॒प्ता या॑त प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ॥१८ ॥

पदार्थः—हे (ऋतज्ञाः) सत्य विद्या के जानने हारे (अमृताः) अपने अपने स्वरूप से नाश रहित जीते ही मुक्ति सुख को प्राप्त (वाजिनः) वेगयुक्त (विप्राः) विद्या और अच्छी शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषो तुम लोग (वाजे वाजे) संग्राम २ के बीच (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस को (पिबत) पीओ । हमारे धनों से (तृप्ताः) तृप्त होके (मादयध्वम्) आनन्दित होओ । और (देवयानैः) जिन में विद्वान् लोग चलते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से सदा (यात) चलो ॥ १८ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ और सुन्दर शिक्षा

से ठीक२ बोध को प्राप्त होकर धर्मात्मा विद्वानों के मार्ग से सदा चलें। अन्य प्राणी भी सदा तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अन्न आदि से युक्त रसों का सेवन कर प्रजा की रक्षा से ही आनन्द को प्राप्त होवें। और प्रजापुरुषों को निरन्तर प्रसन्न रक्खें ॥ १८ ॥

आ मा वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृत्कृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्यों को धर्माचरण से किस किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे। आ मा गन्तां पितरामातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात्। वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमव जिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे पूर्वोक्त विद्वान् लोगो! जिन आप लोगों के सहाय से (वाजस्य) वेदादि शास्त्रों के अर्थों के बोधों का (प्रसवः) सुन्दर ऐश्वर्य (मा) मुझ को (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त होवे (इमे) ये (विश्वरूपे) सब रूप विषयों के सम्बन्धी (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि का राज्य (च) और (अमृतत्वेन) सब रोगों की निवृत्ति कारक गुण के साथ (सोमः) सोमवल्ली आदि ओषधि विज्ञान मुझ को प्राप्त हो और (पितरा मातरा) विद्या युक्त पिता माता (आगन्ताम्) प्राप्त होवें वे आप (वाजिनः) प्रशंसित बलवान् (वाजजितः) संग्राम के जीतने वाले (वाजम्) संग्राम को प्राप्त होते हुए (निमृजानाः) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग (बृहस्पतेः) बड़ी सेना के स्वामी के (भागम्) सेवने योग्य भाग को (अवजिघ्रत) निरन्तर प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वान् के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के धर्म का आचरण करते हैं उन को इस लोक और परलोक में परमैश्वर्य का साधक राज्य विद्वान् मातापिता और नीरोगता प्राप्त होती है। जो पुरुष विद्वानों का सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सब सुखों को भोगते हैं। इस से विरुद्ध चलने हारे नहीं ॥ १९ ॥

आपयइत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या २ प्राप्त होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा

वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन आन्त्यायनाय स्वाहाऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझ को (वसवे) सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (वसवे) सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया (क्रतवे) बुद्धि बढ़ने के लिये (स्वाहा) पढ़ाने की प्रवृत्ति कराने हारी क्रिया (वसवे) विद्या निवास के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (अहर्पतये) पुरुषार्थ पूर्वक गणित विद्या से दिन पालने के लिये काल गति को जनाने हारी वाणी (मुग्धाय) मोह प्राप्ति के निमित्त (अह्ने) दिन होने के लिये (स्वाहा) विज्ञान युक्त वाणी (वैनंशिनाय) नष्ट स्वभाव युक्त कर्म्मों में रहने हारे (मुग्धाय) मूर्ख के लिये (स्वाहा) चिताने वाली वाणी (आन्त्यायनाय) नीच प्राप्ति वाले (विनंशिने) नष्ट स्वभाव युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) पदार्थों को जनाने हारी वाणी (भुवनस्यपतये) संसार के स्वामी ईश्वर के लिये (स्वाहा) योग विद्या को प्रकट करने हारी बुद्धि और (अधिपतये) सब अधिष्ठाताओं के ऊपर रहने वाले पुरुष के लिये (स्वाहा) सब व्यवहारों को जनाने हारी वाणी (गम्यात्) प्राप्त होवे। वैसा प्रयत्न आलस्य छोड़ के किया करो ॥ २० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त होवें कि जिस से सब सुख सदा मिलते रहें ॥ २० ॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारी (आयुः) अवस्था (यज्ञेन) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर (कल्पताम्) समर्थ होवे (प्राणः) जीवने का हेतु बलकारी प्राण (यज्ञेन) धर्म युक्त विद्याभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) प्रत्यक्ष के विषय शिष्टाचार से (कल्पताम्) समर्थ हो (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) वेदाभ्यास

से (कल्पताम्) समर्थ हो और (पृष्ठम्) पूछना (यज्ञेन) संवाद से (कल्पताम्) स- र्थ हो (यज्ञः) यज धातु का अर्थ (यज्ञेन) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से (कल्पताम्) समर्थित हो जैसे हम लोग (प्रजापतेः) सब के पालने हारे ईश्वर के समान धर्मात्मा राजा के (प्रजाः) पालने योग्य सन्तानों के सदृश (अभूम) होवें तथा (देवाः) वि- द्वान् पुरुष (अमृताः) जीवन मरण से छूटे (स्वः) मोक्ष सुख को (अगन्म) प्र- प्रकार प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

भावार्थः—मैं ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता हूं कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्म- युक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले पुरुष ही की प्रजा होना अन्य किसी मूर्ख क्षुद्राशय पुरुष की प्रजा होना स्वीकार कभी मत करो जैसे मुझ को न्यायाधीश मान मेरी आ- ज्ञा में वर्त्तो और अपना सब कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो वैसे जो पुरुष धर्म युक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पा- लन करे उसी को सभापति राजा मानो ॥ २१ ॥

अस्मेइत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । दिशो देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अस्मे वो अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चांᳬसि सन्तु वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयन्ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! मैं ईश्वर (कृष्यै) खेती के लिये (त्वा) तुझे (क्षेमाय) रक्षा के लिये (त्वा) तुझे (रय्यै) संपत्ति के लिये (त्वा) तुझे और (पोषाय) पुष्टि के लिये (त्वा) तुझ को नियुक्त करता हूं । जो तू (ध्रुवः) दृढ (यन्ता) नियमों से चलने हारा (असि) है (धरुणः) धारण करने वाला (यमनः) उद्योगी (असि) है जिस (ते) तेरी (इयम्) यह (राट्) शोभा युक्त है इस (मात्रे) मान्य की हेतु (पृथि- व्यै) विस्तारयुक्त भूमि से (नमः) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों इस (मात्रे) मान्य देने हारी (पृथिव्यै) पृथिवी को अर्थात् भूगर्भ विद्या को जान के इस से (नमः) अन्न जला- दि पदार्थ प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और वर्त्तो कि जो (अस्मे) हमारा ( ) मन आदि इन्द्रिय हैं वे (वः) तुम्हारे लिये हों जो (अस्मे) हमारा ( ) और जो (अस्मे) हमारे (क-

तुः) बुद्धि वा कर्म हैं (वः) तुम्हारे हित के लिये हों जो हमारे (वर्चांसि) पढ़ा पढ़ाया और अन्न हैं वे (वः) तुम्हारे लिये (सन्तु) हों जो यह सब तुम्हारा है वह हमारा भी हो ऐसा आचरण आपस में करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सदैव पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहो और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न हों उन की रक्षा कर के यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो वैसा यत्न करो। कभी विरोध मत करो कोई अपना कार्य्य सिद्ध करे उस का तुम भी किया करो ॥ २२ ॥

वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन को इस विषय में कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु । ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (अग्रे) प्रथम (प्रसवः) ऐश्वर्य्य युक्त होकर (वाजस्य) वैद्यक शास्त्र बोध सम्बन्धी (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करने हारे (राजानम्) विद्या न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा को (सुषुवे) ऐश्वर्य्य युक्त करता हूं। जैसे उस की रक्षा में (ओषधीषु) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली यव आदि ओषधियों और (अप्सु) जलों के बीच में वर्त्तमान ओषधी हैं (ताः) वे (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मधुमतीः) प्रशस्त मधुर गुण वाली (भवन्तु) हों जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (पुरोहिताः) सब के हितकारी हम लोग (राष्ट्रे) राज्य में निरन्तर (जागृयाम) आलस्य छोड़ के जागते रहें वैसे तुम भी वर्त्ता करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—शिष्ट मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्याओं की चतुराई रोगरहित और सुन्दर गुणों में शोभायमान पुरुष को राज्याधिकार देकर उस की रक्षा करने वाला वैद्य ऐसा प्रयत्न करे कि जिस से इस के शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का आवेश न हो। इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मनुष्यों आदि मुख्यों और प्रजाजनों को रोग रहित करें। जिस से वे राज्य के सज्जनों के पालने और दुष्टों के ताड़ने में प्रयत्न करते रहें राजा और प्रजा के पुरुष परस्पर पिता पुत्र के समान वर्त्ता करें ॥२३॥

वाजस्येमामित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

राजा किस का आश्रय लेकर किस के साथ क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्। अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिं सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (वाजस्य) राज्य के मध्य में (प्रसवः) उत्पन्न हुए (सम्राट्) अच्छे प्रकार राज धर्म्म में प्रवर्त्तमान मैं (इमाम्) इस भूमि को (दिवम्) प्रकाशित और (इमा) इन (विश्वा) सब और (भुवनानि) घरों को (शिश्रिये) अच्छे प्रकार आश्रय करता हूं वैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार शोभित करो और जो (स्वाहा) धर्म्म युक्त सत्यवाणी से (प्रजानन्) जानता हुआ (अदित्सन्तम्) राज्य कर देने की इच्छा न करने वाले से (दापयति) दिलाता है (सः) सो (नः) हमारे (सर्ववीरम्) सब वीरों को प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (नियच्छतु) ग्रहण करे ॥ २४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्य लोगो ! मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जान कर जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो उसी को चक्रवर्त्ती राजा करो और जो कर देने वालों से कर दिलावे वह मन्त्री होने को योग्य होवे जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ हो उसे सेनापति करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोशाध्यक्ष करो ॥ २४ ॥

वाजस्येमामित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर राजा कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

वाजस्य नु प्रसव आ बभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः। सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—जो (वाजस्य) वेदादिशास्त्रों से उत्पन्न बोध को (स्वाहा) सत्यनीति से (प्रसवः) प्राप्त होकर (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या को जानने वाला पुरुष (आ) अच्छे प्रकार (बभूव) होवे (च) और (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) मांडलिक राजनिवास स्थानों और (सनेमि) सनातन नियम धर्म सहित वर्त्तमान (प्रजाम्) पालने योग्य प्रजाओं को (पुष्टिम्) पोषण (नु) शीघ्र (वर्धयमानः) बढ़ाता हुआ (परि) सब ओर से (याति) प्राप्त होता है वह (अस्मे) हम लोगों का राजा

भावार्थः—ईश्वर सब से उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुम जो प्रशंसित गुण कर्म्म स्वभाव वाला राज्य की रक्षा में समर्थ हो इस को सभाध्यक्ष कर के आप्त नीति से चक्रवर्त्ति राज्य करो ॥ २५ ॥

सोममित्यस्य तापस ऋषिः । सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्य्यबृहस्पतयो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर कैसे राजा का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

सोमꣳ राजानुमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्य्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा ॥२६॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (अवसे) रक्षा आदि के अर्थ (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर (सूर्य्यम्) विद्वानों में सूर्य्यवद्विद्वान् (ब्रह्माणम्) साङ्गोपाङ्ग चार वेदों को पढ़ने वाले (बृहस्पतिम्) बड़ों के रक्षक (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले (सोमम्) शान्त गुण सम्पन्न (राजानम्) धर्माचरण से प्रकाशमान राजा और (आदित्यान्) विद्या के लिये जिन ने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रह कर पूर्ण विद्या पढ़ सूर्य्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्ग से विद्या पढ़ के गृहाश्रम का (आरभामहे) आरम्भ करें वैसे तुम भी किया करो॥२६॥

भावार्थः—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिये ब्रह्मचर्य्य व्रतादि से विद्या के पारगन्ता विद्वानों के बीच जिस ने अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य व्रत किया हो ऐसे राजा को स्वीकार कर के सच्ची नीति को बढ़ावें ॥ २६ ॥

अर्य्यमणमित्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमंत्रोक्ता देवताः । स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा किन को किस में प्रेरणा करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अर्य्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (स्वाहा) सत्यनीति से (दानाय) विद्यादि दान के लिये (अर्य्यमणम्) पक्षपात रहित न्याय करने (बृहस्पतिम्) सब विद्याओं को पढ़ाने (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य्य युक्त (वाचम्) वेदवाणी (विष्णुम्) सब के अधिष्ठाता (सवितारम्) वेदविद्या तथा सब ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने (वाजिनम्) अच्छे बल वेग से युक्त शूरवीर और (सरस्वतीम्) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विज्ञान युक्त पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री को अच्छे कर्मों में (चोदय) सदा प्रेरणा किया कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् हो कर सब न्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म्म बढ़ाने के लिये निरन्तर प्रेरणा करे जिस से विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हों ॥ २७ ॥

अग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा क्या क्या करे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अग्ने॒ अच्छा॑ वदे॒ह नः॑ प्र॒ति नः॑ सु॒मना॑ भव । प्र नो॑ यच्छ सहस्रजित्त्व॒ꣳ हि ध॑न॒दा असि॒ स्वाहा॑ ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् आप (इह) इस समय में (स्वाहा) सत्यवाणी से (नः) हम को (अच्छ) अच्छे प्रकार (वद) सत्य उपदेश कीजिये (नः) हमारे ऊपर (सुमनाः) मित्रभाव युक्त (भव) हूजिये (हि) जिस से (सहस्रजित्) आप बिन सहाय हजार को जीतने (धनदा) ऐश्वर्य्य देने वाले (असि) हैं इस से (नः) हमारे लिये (प्रयच्छ) दीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा, प्रजा और सेनाजन मनुष्यों से सदा सत्य प्रियवचन कहैं उन को धन दे उन से धन ले शरीर और आत्मा का बल बढ़ा और मित्र शत्रुओं को जीतकर धर्म्म से प्रजा को पाले ॥ २८ ॥

प्रन इत्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमंत्रोक्ता देवताः । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्रजा और सन्तानों से राजा और माता आदि कैसे बर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

प्र नो॑ यच्छत्वर्य॒मा प्र पू॒षा प्र बृह॒स्पतिः॑ । प्र वाग्दे॒वी द॑दातु नः॒ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—जैसे (अर्य्यमा) न्यायाधीश (नः) हमारे लिये उत्तम शिक्षा (प्रयच्छतु) देवे जैसे (पूषा) पोषण करने वाला शरीर और आत्मा की पुष्टि की शिक्षा (प्र) अच्छे प्रकार देवें जैसे (बृहस्पतिः) विद्वान् (प्र) (स्वाहा) सत्युत्तम विद्या देवे वैसे (वाक्) उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त (देवी) प्रकाशमान पढ़ाने वाली माता हमारे विद्या युक्त वाणी का (प्रदातु) उपदेश सदा किया करे ॥ २९ ॥

:—यहां जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आ- प्रजा और पुत्रादिकों को सत्य२ उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा को ग्रहण करावें जिस से प्रजा और पुत्र पुत्री आदि सदा आनन्द में रहैं ।२९।

ऽयेत्यस्य तापस ऋषिः। सम्राड् देवता। जगतीछन्दः। निषादः स्वरः॥

कहां कैसे को राजा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रियेण दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ॥ ३०॥

पदार्थः—हे सब अच्छे गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वन्! (असौ) यह मैं (सवितुः) जगत् के उत्पन्न करने वाले ईश्वर (देवस्य) प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिल्प विद्या युक्त (वाचः) वेदवाणी के मध्य (अश्विनोः) सूर्य चन्द्रमा के समान धारण पोषण गुण युक्त (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) तुम को (दधामि) धारण करता हूं और (बृहस्पतेः) बड़े विद्वान् (यन्त्रियेण) कारीगरी विद्या से सिद्ध किये राज्य में (साम्राज्येन) चक्रवर्ती राजा के गुण से सहित (त्वा) तुझ को (अभि) सब ओर से (सिंचामि) सुगंधित रसों से मार्जन करता हूं॥ ३०॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी बल पराक्रम पुष्टि युक्त चतुर सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्रजा पालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें॥ ३०॥

अग्निरेकेत्यस्य तापस ऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। अत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ाया करे इस०॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतान्तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम्॥ ३१॥

पदार्थः—हे राजन्! (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान आप (एकाक्षरेण) एक अक्षर से चिताने हारी एक अक्षर की छन्दो गायत्री छन्द से (प्राणम्) शरीर में [illegible] समान प्रजाजनों को (उत्) (जयत्) उत्तम [illegible] उन को मैं भी (उत्) (जेषम्) [illegible] चन्द्रमा के समान [illegible]

पदः) दो पैर वाले (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों को (उज्जयताम्) उत्तम (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं । हे सर्वप्रधानपुरुष ! (त्रिष्टुप्) मेश्वर के समान न्यायकारी आप जैसे (त्र्यक्षरेण) तीन अक्षर की दैवी ... से जिन (त्रीन्) जन्मस्थान और नामवाची (लोकान्) देखने योग्य लोकों ... जयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं ।... पैश्वर्य्य की इच्छा करने वाले न्यायाधीश ! आप जैसे (पशून्) हिरणादि पशुओं ... धजयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं ।

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार ... तो उस को भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावें और जो ऐसा न करे तो उस को प्रजा भी न बढ़ावे ॥ ३१ ॥

पूषेत्यस्य तापस ऋषिः । पूषादयो मंत्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजाजन किन के दृष्टान्तों से क्या २ करें इस० ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषम् । मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषम् । बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (पूषा) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करने वाले आप जैसे (पंचाक्षरेण) पांच अक्षर की दैवीपंक्ति से (पंच) पूर्वादि चार और एक ऊपर की (दिशः) दिशाओं को (उदजयत्) उत्तम कीर्त्ति से भरते हो वैसे (ताः) उन को मैं भी (उज्जेषम्) श्रेष्ठ कीर्त्ति से भरदेऊं । हे राजन् ! (सविता) सूर्य्य के समान आप जैसे (षडक्षरेण) छः अक्षरों की दैवी त्रिष्टुप् से जिन (षट्) छः (ऋतून्) वसन्तादि ऋतुओं को (उदजयत्) शुद्ध करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) शुद्ध करूं । हे सभाजनो ! (मरुतः) वायु के समान आप जैसे (सप्ताक्षरेण) सात अक्षरों की दैवी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊंट, बकरी, भेड़ और गधा इन सात (ग्राम्यान्) गांव के (पशून्) पशुओं को (उदजयन्) बढ़ाते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी बढ़ाऊं । हे सभेश ! (बृहस्पतिः) समस्त विद्याओं के जानने वाले विद्वान् के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याजुषी अनुष्टुप् से जिस (गायत्रीम्) गान करने वाले की रक्षा करने वाली विद्वान् स्त्री को (उदजयत्) प्रतिष्ठा करते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्रतिष्ठा करूं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा सब का पोषण जिस की सब दि-
शों में कीर्त्ति ऐश्वर्य्य युक्त सभा के कामों में चतुर पशुओं का रक्षक और वेदों का
जानने वाला हो उस को राजा प्रजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उ-
न्नत देवें ॥ ३२ ॥

मित्र इत्यस्य तापस ऋषिः । मित्रादयो मंत्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस० ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदंजयत् तमुज्जेषम् । वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदंजयत्तामुज्जेषमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदंजयत्तामुज्जेषम् । विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदंजयँस्तामुज्जेषम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (मित्रः) सब के हितकारी आप जैसे (नवाक्षरेण) नव प्रकार की याजुषी बृहती से जिस (त्रिवृतम्) कर्म्म उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जानते हो वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं । हे प्रशंसा के योग्य सभेश ! (वरुणः) सब प्रकार से श्रेष्ठ आप जैसे (दशाक्षरेण) दश अक्षरों की याजुषी पंक्ति से जिस (विराजम्) विराट् छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उदजयत्) प्राप्त हुए हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्राप्त होऊं (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य देने वाले आप जैसे (एकादशाक्षरेण) ग्यारह अक्षरों की आसुरी पंक्ति से जिस (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाची को (उदजयत्) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं । हे सभ्यजनो ! (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानो आप जैसे (द्वादशाक्षरेण) बारह अक्षरों की साम्नी गायत्री से जिस (जगतीम्) जगती से कही हुई नीति का (उदजयत्) प्रचार करते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्रचार करूं ॥ ३३ ॥

भावार्थः—राज पुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शिक्षा कर इन प्रजा जनों को उत्तम गुण युक्त विद्वान् करें जिस से ये ऐश्वर्य के भागी होकर राज भक्त हों ॥ ३३ ॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषिः । वस्वादयो मंत्रोक्ता देवताः । वसव इत्यस्य निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । आदित्या इत्यस्य निचृद्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म्म कार्य्य का उप० ॥

पदः) दो पैर वाले (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों को (उज्जयताम्) उत्तम करो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं । हे सर्वप्रधानपुरुष ! (विष्णुः) परमेश्वर के समान न्यायकारी आप जैसे (त्र्यक्षरेण) तीन अक्षर की दैवी अनुष्टुप्छन्द से जिन (त्रीन्) जन्मस्थान और नामवाची (लोकान्) देखने योग्य लोकों को (उदजयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं । हे (सोम) ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले न्यायाधीश ! आप जैसे (पशून्) हिरणादि पशुओं को (उज्जयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं ॥३१॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ावे तो उस को भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावें और जो ऐसा न करे तो उस को प्रजा भी कभी न बढ़ावे ॥ ३१ ॥

पूर्वेत्सस्य तापस ऋषिः । पूषाद्यो मंत्रोक्ता देवताः । धृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजाजन किन के दृष्टान्तों से क्या २ करें इस० ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषम् । मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषम् । बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (पूषा) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करने वाले आप जैसे (पंचाक्षरेण) पांच अक्षर की दैवीपंक्ति से (पंच) पूर्वादि चार और एक ऊपर नीचे की (दिशः) दिशाओं को (उदजयत्) उत्तम कीर्त्ति से भरते हो वैसे (ताः) उन को मैं भी (उज्जेषम्) श्रेष्ठ कीर्त्ति से भरदेऊं । हे राजन् ! (सविता) सूर्य्य के समान आप जैसे (षडक्षरेण) छः अक्षरों की दैवी त्रिष्टुप् से जिन (षट्) छः (ऋतून्) वसन्तादि ऋतुओं को (उदजयत्) शुद्ध करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) शुद्ध करूं । हे सभाजनो ! (मरुतः) वायु के समान आप जैसे (सप्ताक्षरेण) सात अक्षरों की दैवी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊंट, बकरी, भेड़ और गधा इन सात (ग्राम्यान्) गांव के (पशून्) पशुओं को (उदजयत्) बढ़ाते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी बढ़ाऊं । हे सभेश ! (बृहस्पतिः) समस्त विद्याओं के जानने वाले विद्वान् के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याजुषी अनुष्टुप् से जिस (गायत्रीम्) गान करने वाले की रक्षा करने वाली विद्वान् स्त्री को (उदजयत्) प्रतिष्ठा करते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्रतिष्ठा करूं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा सब का पोषण जिस की सब दिशाओं में कीर्त्ति ऐश्वर्य युक्त सभा के कामों में चतुर पशुओं का रक्षक और वेदों का ज्ञाता हो उस को राजा प्रजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उन्नति देवें ॥ ३२ ॥

मित्र इत्यस्य तापस ऋषिः। मित्रादयो मंत्रोक्ता देवताः। धृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस० ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषम्। वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषम्। विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे राजन्! (मित्रः) सब के हितकारी आप जैसे (नवाक्षरेण) नव अक्षर की याजुषी बृहती से जिस (त्रिवृतम्) कर्म्म उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जानते हो वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं। हे प्रशंसा के योग्य सभेश! (वरुणः) सब प्रकार से श्रेष्ठ आप जैसे (दशाक्षरेण) दश अक्षरों की याजुषी पंक्ति से जिस (विराजम्) विराट् छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उदजयत्) प्राप्त हुए हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्राप्त होऊं (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य देने वाले आप जैसे (एकादशाक्षरेण) ग्यारह अक्षरों की आसुरी पंक्ति से जिस (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाची को (उदजयत्) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं। हे सभ्यजनो! (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानो आप जैसे (द्वादशाक्षरेण) बारह अक्षरों की साम्नी गायत्री से जिस (जगतीम्) जगती से कही हुई नीति का (उदजयत्) प्रचार करते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्रचार करूं ॥ ३३ ॥

भावार्थः—राज पुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शिक्षा कर इन प्रजा जनों को उत्तम गुण युक्त विद्वान् करें जिस से ये ऐश्वर्य के भागी होकर राज भक्त हों ॥ ३३ ॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषि। वस्वादयो मंत्रोक्ता देवताः। वसव इत्यस्य निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। आदित्या इत्यस्य निचृद्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म्म कार्य्य का उप० ॥

वसव॒स्त्रयो॑दशाक्षरेण त्रयोद॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तमुज्जे॑षम् । रु॒द्राश्चतु॑र्दशाक्षरेण चतु॒र्द॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तमुज्जे॑षम् । आ॒दि॒त्याः पञ्च॑दशाक्षरेण पञ्चद॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तमुज्जे॑षम॒दि॑ति॒ः षोड॑शाक्षरेण षोड॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जय॒त्तमुज्जे॑षम् । प्र॒जाप॑तिः स॒प्तद॑शाक्षरेण सप्तद॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जय॒त्तमुज्जे॑षम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे राजादि मनुष्य जनो ! (वसवः) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ने वाले विद्वानो आप लोग जैसे (त्रयोदशाक्षरेण) तेरह अक्षरों की आसुरी अनुष्टुप् वेदस्थ छन्द से जिन (त्रयोदशम्) दश प्राण जीव महत्तत्त्व और अव्यक्त कारण रूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ समूह को (उदजयन्) श्रेष्ठता से जानें वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं । हे बल पराक्रम और पुरुषार्थ युक्त (रुद्राः) चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ने हारे विद्वानो ! जैसे आप (चतुर्दशाक्षरेण) चौदह अक्षरों की साम्नी उष्णिक् छन्द से (चतुर्दशम्) दश इन्द्रिय मन बुद्धि चित्त और अहंकाररूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ विद्या को (उदजयन्) प्रशंसित करें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) प्रशंसित करूं हे (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण करने हारे पूर्ण विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त बल से युक्त सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वानो आप लोग जैसे (पंचदशाक्षरेण) पंद्रह अक्षरों की आसुरी गायत्री से (पंचदशम्) चार वेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद (गानविद्या) तथा अर्थ वेद (शिल्पशास्त्र) छः अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष मिल के चौदह उन का संख्यापूरक पंद्रहवां क्रिया कुशलता रूप (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को (उदजयन्) अच्छे प्रकार से जानें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं । हे (अदितिः) आत्मारूप से नाश रहित सभाध्यक्ष राजा की विदुषी स्त्री अखण्डित ऐश्वर्य युक्त आप जैसे (षोडशाक्षरेण) सोलह अक्षर की साम्नी अनुष्टुप् से (षोडशम्) प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों की व्याख्या युक्त (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जानें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं । हे नरेश ! (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक आप जैसे (सप्तदशाक्षरेण) सत्रह अक्षरों की निचृदार्षी गायत्री छन्द से (सप्तदशम्) चार वर्ण चार आश्रम सुनना, विचारना, ध्यान करना,

अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त का रक्षण, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए को अच्छे मार्ग सब के उपकार में खर्च करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष का अनुष्ठान रूप (स्तोमम्) अच्छे प्रकार प्रशंसनीय को उत्तमता से जाने वैसे मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्य लोगो ! इन चार मन्त्रों से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा उस का अनुष्ठान कर तुम सुखी होवो ॥ ३४ ॥

एषतइत्यस्य वरुणऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य चक्रवर्त्ति राज्य सेवने को योग्य होता है इस० ॥

एष ते॑ निर्ऋते भा॒गस्तं जु॑षस्व॒ स्वाहा॒ऽग्निने॑त्रेभ्यो दे॒वेभ्यः॑ पुरः॒सद्भ्यः॒ स्वाहा॑ य॒मने॑त्रेभ्यो दे॒वेभ्यो॑ दक्षिणा॒सद्भ्यः॒ स्वाहा॑ वि॒श्वदे॑वनेत्रेभ्यो दे॒वेभ्यः॑ पश्चा॒त्सद्भ्यः॒ स्वाहा॑ मि॒त्रावरु॑णनेत्रेभ्यो वा म॒रुन्ने॑त्रेभ्यो वा दे॒वेभ्य॑ उत्तरा॒सद्भ्यः॒ स्वाहा॒ सोम॑नेत्रेभ्यो दे॒वेभ्य॑ उपरि॒सद्भ्यो॒ दुव॑स्वद्भ्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) सर्वथ सत्याचरण युक्त राजन् ! (ते) आप का जो (एषः) यह (भागः) सेवने योग्य है उस को (अग्निनेत्रेभ्यः) अग्नि के प्रकाश के समान नीति युक्त (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) सत्य वाणी (पुरःसद्भ्यः) जो प्रथम सभा वा राज्य में स्थित हों उन (देवेभ्यः) न्यायाधीश विद्वानों से (स्वाहा) धर्म युक्त क्रिया (यमनेत्रेभ्यः) जिन की वायु के समान सर्वत्र गति (दक्षिणासद्भ्यः) जो दक्षिण दिशा में राज प्रबन्ध के लिये स्थित हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) दानक्रिया (विश्वदेवनेत्रेभ्यः) सब विद्वानों के तुल्य नीति के ज्ञानी (पश्चात्सद्भ्यः) जो पश्चिम दिशा में राज कर्मचारी हों उन (देवेभ्यः) दिव्य गुण देने हारे विद्वानों से (स्वाहा) उत्साह कारक वाणी (मित्रावरुणनेत्रेभ्यः) प्राण और अपान के समान वा (मरुन्नेत्रेभ्यः) ऋत्विक् यज्ञ के कर्त्ता (वा) सत्पुरुष के समान न्यायकारक वा (उत्तरासद्भ्यः) जो उत्तर दिशा में न्यायाधीश हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से दूत कर्म की कुशलता क्रिया (सोमनेत्रेभ्यः) चन्द्रमा के समान ऐश्वर्य युक्त होकर सब को आनन्ददायक (उपरिसद्भ्यः) विद्या विनय धर्म और ईश्वर की सेवा करने हारे (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) आप्त पुरुषों की वाणी को प्राप्त हो के तू सदा धर्म का (जुषस्व) सेवन किया कर ॥ ३५ ॥

भावार्थः—हे राजन् ! सभाध्यक्ष आप चार सब ओर से उत्तम विद्वानों से युक्त हो

सेवन करो और (ये) जो (उपरिसदः) ऊंचे आसन वा व्यवहार में स्थित (दुवस्वन्तः) बहुत प्रकार से धर्म के सेवन से युक्त (सोमनेत्राः) सोम आदि ओषधियों के जानने तथा (देवाः) आयुर्वेद को जानने हारे हैं उन से (स्वाहा) अमृत रूपी ओषधि विद्या का सेवन कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! तुम लोग जब धार्मिक सुशील विद्वान् होकर सब दिशाओं में स्थित सब विद्याओं के जानने वाले आप्त विद्वानों की परीक्षा और सत्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त होगे तब यह तुम्हारे समीप आके तुम्हारे साथ सङ्ग करके धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की सिद्धि करावें जो देश देशान्तर तथा द्वीप द्वीपान्तर में विद्या नम्रता अच्छी शिक्षा काम की चतुराई को ग्रहण करते हैं वे ही सब को अच्छे सुख कराने वाले होते हैं ॥ ३६ ॥

अग्नेसहस्वेत्यस्य देववातऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी राजा आदि किस प्रकार वर्तें इस० ॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब विद्या जानने वाले विद्वान् राजन् ! (दुष्टरः) दुःख से तरने योग्य (तरन्) शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप (यज्ञवाहसि) जिस में राज धर्म युक्त राज्य में (अभिमातीः) अभिमान आनन्द युक्त (पृतनाः) बल और अच्छी शिक्षा युक्त वीर सेना को (सहस्व) सहो (अरातीः) दुःख देने वाले शत्रुओं को (अपास्य) दूर निकालिये और (वर्चः) विद्या बल और न्याय को (धाः) धारण कीजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—राजादि सभा सेना के स्वामी लोग अपने दृढ़ विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त सेना के सहित आप अजय और शत्रुओं को जीतते हुए भूमि पर उत्तम यश का विस्तार करें ॥ ३७ ॥

देवस्यत्वेत्यस्य देववातऋषिः । रक्षोघ्नो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

प्रजा जन … में के … ीश का स्वीकार करें इस० ॥

…नो बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
…रक्षः स्वाहा । रक्षसां त्वा वधा-
…ो हतः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे राजन्! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सवितुः) ऐश्वर्य के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) प्रकाशित न्याय युक्त (प्रसवे) ऐश्वर्य में (उपांशोः) समीपस्थ सेना से (वीर्येण) सामर्थ्य से (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के समान सेनापति के (बाहुभ्याम्) भुजों से (पूष्णः) पुष्टिकारक वैद्य के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (रक्षः) राक्षसों के (वधाय) नाश के अर्थ (त्वा) आप को (जुहोमि) ग्रहण करता हूं जैसे तूने (रक्षः) दुष्ट को (हतम्) नष्ट किया वैसे हम लोग भी (अवधिष्म) दुष्टों को मारें जैसे (असौ) वह दुष्ट (हतः) नष्ट होजाय वैसे हम लोग इन सब को (अवधिष्म) नष्ट करें ॥ ३८ ॥

भावार्थः—प्रजा जनों को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करने हारे और जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें ॥ ३८ ॥

सवितात्वेत्यस्य देववात ऋषिः। रक्षोघ्नो देवता। अति जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

सभ्य मनुष्य राजा को किस२ विषय में प्रेरणा करें इस० ॥

सविता त्वा सवानाᳬसुवताम॒ग्निर्गृहप॑तीनाᳬ सोमो वनस्पतीनाम्। बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे सभापते राजन्! जो तू (सवानाम्) ऐश्वर्यों के (सविता) सूर्य्य के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्निः) पावक के सदृश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सोमः) सोमवल्ली के सदृश (धर्मपतीनाम्) धर्म के पालने हारों के मध्य में (सत्यः) सज्जनों में सज्जन (वरुणः) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्रः) सखा के तुल्य (वाचे) वेदवाणी के लिये (बृहस्पतिः) महाविद्वान् के सदृश (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिये (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य से युक्त के तुल्य (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं के लिये (रुद्रः) शुद्ध वायु के सदृश है उस (त्वा) तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में (सुवताम्) करें ॥३९ ॥

भावार्थः—हे राजन्! जो आप को अधर्म से लौटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा उन्हीं का सङ्ग सदा करो औरों का नहीं ॥ ३९ ॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः। यजमानो देवता। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

[illegible] स्वरः ॥

इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य (देवाः) विद्वान् लोगो तुम जो (एषः) यह (सोमः) चन्द्रमा के समान प्रजा में शिक्षक (वः) तुम क्षत्रियादि और हम ब्राह्मणादि और जो (अमी) परोक्ष में वर्त्तमान हैं उन सब का राजा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) उस उत्तम पुरुष का (पुत्रम्) पुत्र (अमुष्यै) उस विद्यादि गुणों से श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् स्त्री के पुत्र को (अस्यै) इस (विशे) प्रजा के लिये इसी पुरुष को (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय)) प्रशंसा के योग्य (महते) बड़े (जानराज्याय) धार्मिक जनों के राज्य करने (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष (इन्द्रियाय) धन के वास्ते (असपत्नम्) शत्रुरहित (सुवध्वम्) कीजिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजा के मनुष्यो ! तुम जो विद्वान् माता और पिता से अच्छे प्रकार सुशिक्षित कुलीन बड़े उत्तम २ गुण कर्म और स्वभाव युक्त जितेन्द्रियादि गुण युक्त ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या से सुशील शरीर और आत्मा के पूर्ण बल युक्त धर्म से प्रजा का पालक प्रेमी विद्वान् हो उस को सभापति राजा मान कर चक्रवर्त्ति राज्य का सेवन करो ॥ ४० ॥

इस अध्याय में राजधर्म के वर्णन से इस अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह नवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ दशमाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

अपो देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इस के पश्चात् इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के अनुकूल चलें इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒पो दे॒वा मधु॑मतीरगृभ्ण॒न्नूर्ज॑स्वती राज॒स्वश्चिता॑नाः । या-भि॑र्मि॒त्रावरु॑णाव॒भ्यषि॑ञ्च॒न्याभि॒रिन्द्र॒मन॑य॒न्नत्यरा॑तीः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (देवाः) चतुर विद्वान् लोग (याभिः) जिन क्रियाओं से (मित्रावरुणौ) प्राण तथा उदान को (अभ्यषिञ्चन्) सब प्रकार सींचते और जिन क्रियाओं से (इन्द्रम्) बिजुली को प्राप्त और (अरातीः) शत्रुओं को (अनयन्) जीतते हैं उन क्रियाओं से (मधुमतीः) प्रशंसनीय मधुरादि गुण युक्त (ऊर्जस्वतीः) बल पराक्रम बढ़ाने (चेतानाः) चैतन्यता देने और (राजस्वः) ज्ञान प्रकाश युक्त राज्य को प्राप्त कराने हारे (अपः) जल वा प्राणों को (अगृभ्णन्) ग्रहण करो ॥ १ ॥

भावार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परीक्षा करके उन से उपयोग लेवें । शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रीति से वर्त्तें । और इन जल तथा प्राणों से उपकार लेवें ॥ १ ॥

वृष्ण ऊर्मिरित्यस्य वरुण ऋषिः । वृषा देवता । स्वराड्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या २ मांगें यह० ॥

वृष्ण॑ ऊ॒र्मिर॑सि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॑ । वृष्ण॑ ऊ॒र्मिर॑सि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देहि । वृ॒ष॒से॒नो॒ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ [illegible] । वृ॒ष॒से॒नो॒ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देहि ॥ २ ॥

[illegible]र्थः—हे राजन् ! जिस कारण आप (वृष्णः) सुख के वर्षा कारक ज्ञान के प्रा[illegible]नि (राष्ट्रदाः) राज्य के देने हारे (असि) हैं इस से (मे) मुझे (स्वाहा)

सत्य नीति से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये (वृषः) सुख की वृष्टि करने वाले राज्य के (ऊर्मिः) जानने और (राष्ट्रदाः) राज्य प्रदान करने हारे (असि) हैं (अमुष्मै) उस राज्य को रक्षा करने वाले को (राष्ट्रम्) न्याय से प्रकाशित राज्य को (देहि) दीजिये (राष्ट्रदाः) राजाओं के कर्मों के देने हारे (वृषसेनः) बलवान् सेना से युक्त (असि) हैं (मे) मुझ वर्त्तमान मेरे लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये । तथा (राष्ट्रदाः) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले (वृषसेनः) आनन्दित पुरुषसेना से युक्त (असि) हैं इस से आप (अमुष्मै) उस परोक्ष पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो राज पुरुष दुष्ट प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पुरुषों का सत्कार कर के अधिकार और शोभा को देता है उस के लिये चक्रवर्त्ती राज्य का अधिकार होना योग्य है ॥ २ ॥

अर्थेत इत्यस्य वरुण ऋषिः । अपां पतिर्देवता । पूर्वस्याभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः । देहीत्यस्य निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा मन्त्री सेना और प्रजा के पुरुष आपस में किस प्रकार वर्तें इस० ॥

अ॒र्थेत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम्मे॑ दत्त॒ स्वाहा॒र्थेत॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्तौज॑स्वती स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम्मे॑ दत्त॒ स्वाहौज॑स्वती स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्ताप॑: परिवा॒हिणी॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम्मे॑ दत्त॒ स्वाहाप॑: परिवा॒हिणी॑ स्थ राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ दत्ताऽपाम्पति॑रसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम्मे॑ देहि॒ स्वाहा॒ऽपाम्पति॑रसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देह्य॒पां गर्भो॑ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॒ऽपां गर्भो॑ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रम॒मुष्मै॑ देहि ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग (अर्थेतः) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य सेवने हारे सभासद (स्थ) होवें आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जो तुम लोग (अर्थेतः) पदार्थों को जानते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) होवे तुम लोग (अमुष्मै) राज्य के रक्षक उस पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (ओजस्वतीः) विद्या बल और पराक्रम से युक्त हुई रानी लोग आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य

को (दत्त) दीजिये । जो आप लोग (ओजस्वतीः) जितेन्द्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य की देने वाली (स्थ) हैं वे आप लोग (अमुष्मै) विद्या बल और पराक्रम से युक्त पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति से (परिवाहिणीः) अपने समान प्यारी (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जो तुम लोग (परिवाहिणीः) अपने अनुकूल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली (आपः) आत्मा के समान प्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं वे आप (अमुष्मै) उस ब्रह्मचारी वीर पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे सभाध्यक्ष ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) जलाशयों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं सो (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रम्) राज को (देहि) दीजिये । हे सभापति ! जो आप (स्वाहा) सत्य वचनों से (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) प्राणों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं वे (अमुष्मै) उस प्राणियों के पोषक पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये । हे वीर पुरुष राजन् ! जो आप (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रदा) राज्य देने वाले (अपाम्) सेनाओं के बीच (गर्भः) गर्भ के समान रक्षित (असि) हैं सो आप (मे) विचारशील मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये हे राजन् ! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) प्रजाओं के विषय (गर्भः) स्तुति के योग्य (असि) हैं सो आप (अमुष्मै) उस प्रशंसित पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उन की स्त्रियां हों उन को चाहिये कि अपनी उन्नति के लिये दूसरों की उन्नति को सह के सब मनुष्यों को राज्य के योग्य करें । और आप भी चक्रवर्ती राज्य का भोग किया करें ऐसा न हो कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि करके अपने राज्य का भङ्ग करें ॥ ३ ॥

सूर्य्यत्वचस इत्यस्य वरुण ऋषिः । सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । पूर्वस्य जगती छन्दः । निषादः स्वरः । सूर्य्यवर्चस इति द्वितीयस्य स्वराट् पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः । व्रजक्षित इति तृतीयस्य शविष्ठाइति चतुर्थस्य च स्वराट् विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । व्रजक्षितस्थेत्यस्य स्वराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । शक्वरीस्थेत्यस्य । भुरिगाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । मधुमतीरित्यस्य भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसा हो के किस २ के लिये क्या २ देना चाहिये यह वि० ॥

सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्थ

राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! तुम लोग (सूर्य्यत्वचसः) सूर्य के समान अपने न्याय प्रकाश से सब तेज को ढाकने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य न्याय के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिये (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे मनुष्यो ! जिस कारण (सूर्यत्वचसः) सूर्य्य प्रकाश के समान विद्या पढ़ने वाले होते हुए तुम लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिये (अमुष्मै) उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे विद्वान् मनुष्यो ! (सूर्यवर्चसः) सूर्य के समान तेजधारी होते हुए तुम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हो इस कारण (मे) तेजस्वी मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिस कारण (सूर्यवर्चसः) सूर्य्य के समान प्रकाशमान होते हुए आप लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इसलिये (अमुष्मै) उस प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण (मान्दाः) मनुष्यों को आनन्द देने हारे होते हुए आप लोग (स्वाहा) सत्य वचनों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हो इस लिये

(मे) आनन्द देने हारे मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिस लिये आप लोग (मान्दाः) प्राणियों को सुख देने वाले होके (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हो इस लिये (अमुष्मै) उस सुख दाता जन को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (व्रजक्षितः) गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए (स्वाहा) सत्य क्रियाओं के सहित (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) पशु रक्षक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (व्रजक्षितः) स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस से (अमुष्मै) उस गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिये राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस लिये आप लोग (वाशाः) कामना करते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) इच्छायुक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (वाशाः) इच्छा युक्त होते हुये (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हैं इस लिये (अमुष्मै) उस इच्छायुक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (शविष्ठाः) अत्यन्त बल वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस कारण (मे) बलवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (शविष्ठाः) अति पराक्रमी (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस अति पराक्रमी जन के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे राणी लोगो! जिस लिये आप (शक्वरीः) सामर्थ्य वाली होती हुई (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं इस लिये (मे) सामर्थ्यवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप (शक्वरीः) सामर्थ्य युक्त (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस सामर्थ्य युक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस लिये आप लोग (जनभृतः) श्रेष्ठ मनुष्यों का पोषण करने हारी होती हुई (स्वाहा) सत्य कर्मों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस लिये (मे) श्रेष्ठ गुण युक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस लिये आप (जनभृतः) सज्जनों को धारण करने हारी (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (अमुष्मै) उस सत्य प्रिय पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे सभाध्यक्षादि राजपुरुषो! जिस लिये आप लोग (विश्वभृतः) सब संसार का पोषण करने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य वाणी के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस लिये (मे) सब के पोषक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये।

जिन के लिये सम्यक् (विराजः) विज्ञान को प्रकाश करने हारे (मान्दाः) आनन्द देने (स्थ) हैं इस लिये (अमुष्मै) उस आनन्द करने हारे मनुष्य के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (व्रजक्षितः) सब विद्या में स्थित जिन में स्थिति करने हारे हुए (स्थन) सब विद्या से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस कारण (मे) मुझ गुणों में स्थान युक्त (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप लोग (वाशाः) सब विद्या और धर्म मार्ग को चाहने हारे (स्वराजः) आप से आप ही प्रकाशमान (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (अमुष्मै) उस धर्मज्ञ पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे सज्जन स्त्री लोगो ! आप को चाहिये कि (क्षत्रियाय) राजपुत्रों के लिये (महि) बड़े पूजा के योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के राज्य को (मनस्वाः) चाहती हुई (सहौजसः) बल पराक्रम के सहित वर्त्तमान (क्षत्रियाय) राजपुत्रों के लिये (महि) बड़े (क्षत्रम्) राज्य को (दधतीः) धारण करती हुई (अनाधृष्टाः) शत्रुओं के वश में न आने वाली (मधुमतीः) मधुर आदि रस वाली ओषधी (मधुमतीभिः) मधुरादिगुणयुक्त वसन्त आदि ऋतुओं से गुणों को (पृच्यन्ताम्) मिश्र किया करें । हे सज्जन पुरुषो ! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को (सीदत) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जो सूर्य्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश करने हारे सब को आनन्द देने और गौ आदि पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करने वाले स्वाधीन हैं वे ही औरों के लिये राज्य देने और आप सेवन करने को समर्थ होते हैं अन्य नहीं ॥ ४ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । भुरिग् धृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

राजा लोगों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा राजाओं के समान अपने सब काम करें और क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायी, तथा लंपटों के तुल्य कदापि न हों इस० ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहांशाय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं वैसा मैं भी होऊं जिस से (तवेव) आप के समान (मे) मेरा

(त्विषिः) विद्याओं का प्रकाश होवे जैसे आप ने (अग्नये) बिजुली आदि के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और प्रियाचरण युक्त विद्या (सोमाय) ओषधि जानने के लिये (स्वाहा) वैद्यक की पुरुषार्थ युक्त विद्या (सवित्रे) सूर्य्य को समझने के लिये (स्वाहा) भूगोल विद्या (सरस्वत्यै) वेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जानने वाली वाणी के लिये (स्वाहा) व्याकरणादि वेदों के अङ्गों का ज्ञान (पूष्णे) प्राण तथा पशुओं की रक्षा के लिये (स्वाहा) योग और व्याकरण की विद्या (बृहस्पतये) बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिये (स्वाहा) ब्रह्म विद्या (इन्द्राय) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के लिये (स्वाहा) विचारविद्या (घोषाय) सत्य और प्रियभाषण से युक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या (श्लोकाय) तत्त्वज्ञान का साधक शास्त्र श्रेष्ठ काव्य गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिये (स्वाहा) छन्द और शुभमूल काव्य शास्त्र आदि की विद्या (अंशाय) परमाणुओं के समझने के लिये (स्वाहा) सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिये (स्वाहा) पुरुषार्थज्ञान (अर्य्यम्णे) न्यायाधीश होने के लिये (स्वाहा) राजनीति समझ को ग्रहण करते हैं वैसे मुझे भी करना अवश्य है ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी आशंसा (इच्छा) करनी चाहिये कि जैसे सत्यवादी धर्मात्मा राजा लोगों के गुण कर्म स्वभाव होते हैं वैसे ही हम लोगों के भी होवें ॥ ५ ॥

पवित्रेस्थ इत्यस्य वरुणऋषिः । आपो देवताः । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्या ग्रहण करें वैसे कन्या भी करें इस० ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे सभापति राजपुरुष ! जिस लिये आप (वाचः) वेदवाणी के (अनिभृष्टम्) भृष्टतारहित आचरण किये (बन्धुः) भाई (असि) हैं (सोमस्य) ओषधियों के काटने वाले (तपोजाः) ब्रह्मचर्य्यादि तप से प्रसिद्ध (असि) हैं आप की आज्ञा से (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (वैष्णव्यौ) सब विद्या अच्छी शिक्षा शुभ गुण कर्म और स्वभाव में व्यापनशील और (पवित्र) शुद्ध आचरणवाली (स्थः) तुम दोनों हो । हे पढ़ाने परीक्षा करने

और पढ़ने हारी स्त्री लोगों में (सवितुः) ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये इस जगत् में (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के समान (अच्छिद्रेण) छेद रहित (पवित्रेण) विद्या अच्छी शिक्षा धर्मज्ञान जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्य आदि करके पवित्र किये हुए मैं (वः) तुम लोगों को (उत्पुनामि) अच्छे प्रकार पवित्र करता हूं तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (राजस्वः) राजाओं में वीरों को उत्पन्न करने वाली हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजा आदि पुरुषो ! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिये शुद्ध विद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो। जिस से ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त होके युवा हुई प्रियवर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न करें ॥ ६ ॥

सधमाद इत्यस्य वरुण ऋषिः। वरुणो देवता। विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

राजाओं को यह अवश्य चाहिये कि सब प्रजा और अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और सुशिक्षा युक्त करें यह० ॥

सुधमादो द्युम्निनीरापं एता अनाधृष्टा अपस्यो वसानाः। पुस्त्यासु चक्रे वरुणः सुधस्थमुपाᳬ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (वरुणः) श्रेष्ठ राजा हो वह (एताः) विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई (सधमादः) एक साथ प्रसन्न होने वाली (द्युम्निनीः) प्रशंसनीय धन कीर्त्ति से युक्त (अनाधृष्टाः) जो किसी से न धर्षें (आपः) जल के समान शान्ति युक्त (वसानाः) वस्त्र और आभूषणों से ढपी हुईं (पस्त्यासु) घरों के (अपस्यः) कामों में चतुर विद्वान् स्त्री होवें उन (अपाम्) विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो (शिशुः) बालक हो उस को (मातृतमासु) अति मान्य करने हारी धाइयों के (अन्तः) समीप (सधस्थम्) एक समीप के स्थान में शिक्षा के लिये रक्खे ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सब स्त्रियों को विद्वान् और उन से उत्पन्न हुए बालकों को विद्या युक्त धाइयों के आधीन करे कि जिस से किसी के बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के बिना न रहें। और स्त्री भी निर्बल न हों ॥ ७ ॥

क्षत्रस्येत्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। स्वराट् कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

सब प्रजा पुरुषों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सब ओर से रक्षा करें यह० ॥

क्षत्रस्योल्वमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य

नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत् । दृवासि रुजासि क्षुमासि । पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (क्षत्रस्य) अपने राज कुल में (उल्बम्) बलवान् (असि) हैं (क्षत्रस्य) क्षत्रिय पुरुष को (जरायु) वृद्धावस्था देने हारे (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (योनिः) निमित्त (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (नाभिः) प्रबन्धकर्त्ता (असि) हैं (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (वार्त्रघ्नम्) मेघ का नाश करने हारे के समान कर्मकर्त्ता (असि) हैं (मित्रस्य) मित्र के मित्र (असि) हैं (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठ (असि) हैं (दृवा) शत्रुओं के विदारण करने वाले (असि) हैं (रुजा) शत्रुओं को रोगातुर करने हारे (असि) हैं और (क्षुमा) सत्य का उपदेश करने हारे (असि) हैं जो (अयम्) यह वीर पुरुष (त्वया) आप राजा के साथ (वृत्रम्) मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को (वधेत्) मारे (एनम्) इस (प्राञ्चम्) प्रथम प्रबंध करने वाले (एनम्) राजपुरुष की तुम लोग (दिग्भ्यः) सब दिशाओं से (पात) रक्षा करो इस (तिर्य्यञ्चम्) तिर्छे चले हुए (एनम्) राज पुरुष की (पात) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो कन्या और पुत्रों में स्त्री और पुरुषों में विद्या पढ़ाने वाला कर्म है वही राज्य का बढ़ाने शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि की प्रवृत्ति करने वाला होता है । इसी कर्म से सब कालों और सब दिशाओं में रक्षा होती है ॥ ८ ॥

आविर्मर्या इत्यस्य वरुण ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगाष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि अपना स्वभाव अच्छा करके आप्त विद्वान् आदि को अवश्य प्राप्त होवें इस० ॥

आविर्मर्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मर्याः) मनुष्यो ! तुम लोग जो (गृहपतिः) घरों के पालन करने हारे (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पुरुष को (आविः) प्रकटता से (आवित्तः) प्राप्त वा निश्चय करके जाना (वृद्धश्रवाः) श्रेष्ठता से सब शास्त्रों को सुने हुए (इन्द्रः) शत्रुओं के मारने हारे सेनापति को (आविः) प्रकटता से (आवित्तः) प्राप्त हो वा जाना (धृतव्रतौ) सत्य आदि व्रतों को धारण करने हारे (मित्रावरुणौ) मित्र और श्रेष्ठ जनों को (आविः) प्रकटता से (आवित्तौ) प्राप्त वा

जाना (विश्ववेदाः) सब ओषधियों को जानने हारे (पूषा) पोषण कर्त्ता वैद्य को (आविः) प्रसिद्धि से (आवित्तः) प्राप्त हुए (विश्वशम्भुवौ) सब के लिये सुख देने हारे (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि को (आविः) प्रकटता से (आवित्ते) जाने (उरुशर्मा) बहुत सुख देने वाली (अदितिः) विद्वान् माता को प्रसिद्ध (आवित्ता) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जावें ॥ ९ ॥

भावार्थः—जबतक मनुष्य लोग श्रेष्ठ विद्वानों उत्तम विद्वान् माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त नहीं होते तब तक सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति करने को समर्थ नहीं होते ॥ ९ ॥

अवेष्टा इत्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करके किस २ को प्राप्त हों यह वि० ॥

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (अवेष्टाः) विरोधी के सङ्ग (दन्दशूकाः) दूसरों को दुःख देने के लिये काट खाने वाले हैं । उन को जीत के (प्राचीम्) पूर्व दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हो उस (त्वा) आप को (गायत्री) पढ़ा हुआ गायत्री छन्द (रथन्तरम्) रथों से जिस के पार हों ऐसा धन (साम) सामवेद (त्रिवृत्) तीन मन वाणी और शरीर के बलों का बोध कराने वाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वसन्तः) वसन्त (ऋतुः) ऋतु (ब्रह्म) वेद ईश्वर और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकुल रूप (द्रविणम्) धन (अवतु) प्राप्त होवे ॥ १० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होते हैं वे शत्रुओं को जीत के ऐश्वर्य को प्राप्त हो सकते हैं ॥ १० ॥

दक्षिणामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे यह वि० ॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदशस्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् ! जिस (त्वा) आप को (त्रिष्टुप्) इस नाम के छन्द से सिद्ध विज्ञान (बृहत्) बड़ा (साम) सामवेद का भाग (पञ्चदश) पांच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, पांच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण पांच भूत अर्थात् जल, भूमि अग्नि, वायु, और आकाश इन पन्द्रह की पूर्ति करने हारा (स्तोम) स्तुति के योग्य (ग्रीष्म ऋतुः) ग्रीष्म ऋतु (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रिय कुलरूप और (द्रविणम्) राज्य से प्रकट हुआ धन

(अवतु) प्राप्त हो । वह आप (दक्षिणाम्) दक्षिण दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हूजिये । और शत्रुओं को जीतिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रिय कुल को बढ़ावे उस का तिरस्कार शत्रुजन कभी न कर सकें ॥ ११ ॥

प्रतीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि वैश्य कुल को नित्य बढ़ावें यह वि० ॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् ॥ १२ ॥

पदार्थः-हे राजपुरुष ! जिस (त्वा) आप को (जगती) जगती छन्द में कहा हुआ अर्थ (वैरूपम्) विविध प्रकार के रूपों वाला (साम) सामवेद का अंश (सप्तदशः) पांच कर्म इन्द्रिय पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, विषय पांच महाभूत अर्थात् सूक्ष्म भूत, कार्य्य और कारण इन सत्रह का पूरण करने वाला (स्तोमः) स्तुतियों का समूह (वर्षाः) (ऋतुः) वर्षा ऋतु (द्रविणम्) द्रव्य और (विट्) वैश्य जन (अवतु) प्राप्त हों । सो आप (प्रतीचीम्) पश्चिम दिशा को (आरोह) आरूढ़ और धन को प्राप्त हूजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष राज नीति के साथ वैश्यों की उन्नति करें वे ही लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥ १२ ॥

उदीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये यह वि० ॥

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳसामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे सभापति राजा ! आप (उदीचीम्) उत्तर की दिशा में (आरोह) प्रसिद्धि को प्राप्त हूजिये । जिस से (अनुष्टुप्) जिस को पढ़ के सब विद्याओं से दुःखों की स्तुति करें वह छन्द (वैराजम्) अनेक प्रकार के अर्थों से शोभायमान (साम) सामवेद का भाग (एकविंश.) सोलह कला चार पुरुषार्थ के अवयव और एक कर्त्ता इन इक्कीस को पूर्ण करने हारा (स्तोमः) स्तुति का विषय (शरत्) (ऋतुः) शरद् ऋतु (द्रविणम्) ऐश्वर्य्य और (फलम्) फलरूप सेवाकारक शूद्रकुल (त्वा) आप को (अवतु) प्राप्त होवे ॥ १३ ॥

भावार्थ:—जो पुरुष आलस्य को छोड़ सब समय में पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं वे सब के फलों को भोगते हैं ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न विद्या से अनेक पदार्थों को जानें यह वि० ॥

ऊर्ध्वामारो॑ह प॒ङ्क्तिस्त्वा॑वतु शाक्वररैव॒ते साम॑नी त्रिणवत्रय॒स्त्रिंशौ॒ स्तोमौ॑ हेमन्तशिशि॒रावृ॒तू वर्चो॒ द्रवि॑णं॒ प्रत्य॑स्तं॒ नमु॑चेः॒ शिरः॑ ॥ १४ ॥

पदार्थ:—हे राजन् ! आप जो (ऊर्ध्वाम्) ऊपर की दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध होवें तो (त्वा) आप को (पङ्क्तिः) पङ्क्ति नाम का पढ़ा हुआ छन्द (शाक्वररैवते) शक्वरी और रैवती छन्द से युक्त (सामनी) सामवेद के पूर्व उत्तर दो अवयव (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) तीन काल नव अङ्कों की विद्या और तैंतीस वसु आदि पदार्थ जिन दोनों से व्याख्यान किये गये हैं उन के पूर्ण करने वाले (स्तोमौ) स्तोत्रों के दो भेद (हेमन्तशिशिरौ) (ऋतू) हेमन्त और शिशिर ऋतु (वर्चः) ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या का पढ़ना और (द्रविणम्) ऐश्वर्य्य (अवतु) तृप्त करे और (नमुचेः) दुष्ट चोर का (शिरः) मस्तक (प्रत्यस्तम्) नष्ट भ्रष्ट होवे ॥ १४ ॥

भावार्थ:—जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार विहार युक्त हो के विद्या योगाभ्यास और सत्सङ्गों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं । वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और इन को कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता ॥ १४ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

राज और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर आपस में एक दूसरे की रक्षा करें यह वि० ॥

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व॒ मे॒ त्विषि॑र्भूयात् । मृ॒त्योः पा॒ह्यो-जो॑ऽसि॒ सहो॑ऽस्य॒मृत॑मसि ॥ १५ ॥

पदार्थ:—हे परम आप्त विद्वन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य का (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं (ओजः) पराक्रम युक्त (असि) हैं वैसा मैं भी होऊं (तवेव) आप के समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्या प्रकाश से भाग्योदय (भूयात्) हो आप मुझ को (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) बचाइये ॥ १५ ॥

भावार्थ:—हे पुरुषो ! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा के लिये भी इच्छा करें जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राजपुरुष भी प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें ॥ १५ ॥

हिरण्यरूपा इत्यस्य वरुण ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । स्वराडार्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हों और अज्ञानी पुरुषों के लिये
सत्य का उपदेश करके उन को बुद्धिमान् विद्वान् बनावें यह वि० ॥

हिर॑ण्यरूपा उ॒षसो॑ विरो॒क उ॒भावि॑न्द्रा उ॒दि॑थः॒ सूर्य॑श्च । आ॒रो॑हतं वरुण मित्र॒ गर्त्तं॒ तत॑श्चक्षाथा॒मदि॑तिं॒ दिति॑ञ्च । मि॒त्रो॑ऽसि॒ वरु॑णोऽसि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे उपदेश करने हारे (मित्र) सब के सुहृद ! जिस लिये आप (मित्रः) सुख देने वाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारने हारे बलवान् सेनापति जिस लिये आप (वरुणः) सब से उत्तम (असि) हैं इसलिये आप दोनों (गर्त्तम्) उपदेश करने वाले के घर पर (आरोहतम्) जाओ (अदितिम्) अविनाशी (च) और (दितिम्) नाशमान पदार्थों का (चक्षाथाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्यरूपौ) प्रकाश स्वरूप (उभौ) दोनों (इन्द्रौ) परमैश्वर्य्य करने हारे जैसे (विरोके) विविध प्रकार की रुचि कराने हारे व्यवहार में (सूर्य्यः) सूर्य्य (च) और चन्द्रमा (उषसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं । वैसे तुम दोनों जन (उदिथः) विद्याओं का उपदेश करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करने हारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहां सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता । जहां यह बात नहीं होती वहां अन्ध परम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं ॥ १६ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पूर्वोक्त कार्य्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राज्याधिकार देना चाहिये यह वि० ॥

सोम॑स्य त्वा द्यु॒म्नेना॒भिषि॑ञ्चाम्य॒ग्नेर्भ्राज॑सा॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च॒सेन्द्र॑स्येन्द्रि॒येण॑ । क्ष॒त्राणां॑ क्ष॒त्रप॑तिरे॒ध्यति॑ दि॒द्यून् पा॑हि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे प्रशंसित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा जैसे मैं जिस तुझ को (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (द्युम्नेन) यश रूप प्रकाश से (अग्नेः) अग्नि के स- [illegible]) तेज से (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इ- [illegible] के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों के सहित (त्वा) आपको [illegible]) राज्याऽधिकारी करता हूं । वैसे ये आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल [illegible] हों उनके बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालने हारे (एधि) अति तत्पर

कीजिये और (रिपून्) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करने हारे व्यवहारों की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि युक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उस को राज्य का अधिकार देवें। और उस राजा को चाहिये कि राज्याधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करने हारे प्रजा पुरुषों को निरन्तर बढ़ावे ॥ १७ ॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से ले के अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचार युक्त करें यह वि० ॥

इमन्देवा असपत्नᳬ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाᳬ राजा ॥ १८ ॥

पदार्थः - हे (देवाः) वेद शास्त्रों को जानने हारे सेनापति लोग आप 'जो (एषः) यह उपदेशक वा सेनापति (वः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है । जो (अमी) ये धर्मात्मा राजपुरुष हैं उन का (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपुत्र के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्यै) प्रशंसा करने योग्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्त्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपत्नम्) जिस का कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र को (सुवध्वम्) उत्पन्न करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें । जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें तो इन की उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥ १८ ॥

प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषिः । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

हिरण्यरूपा इत्यस्य वरुण ऋषिः । मित्रा वरुणौ देवते । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हों और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उन को बुद्धिमान् विद्वान् बनावें यह वि० ॥

हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्य्यश्च । आ रोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च । मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे उपदेश करने हारे (मित्र) सब के सुहृद् ! जिस लिये आप (मित्रः) सुख देने वाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारने हारे बलवान् सेनापति जिस लिये आप (वरुणः) सब से उत्तम (असि) हैं इसलिये आप दोनों (गर्त्तम्) उपदेश करने वाले के घर पर (आरोहतम्) जाओ (अदितिम्) अविनाशी (च) और (दितिम्) नाशमान पदार्थों का (चक्षाथाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्यरूपौ) प्रकाश स्वरूप (उभौ) दोनों (इन्द्रौ) परमैश्वर्य्य करने हारे जैसे (विरोके) विविध प्रकार की रुचि कराने हारे व्यवहार में (सूर्य्यः) सूर्य्य (च) और चन्द्रमा (उषसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं । वैसे तुम दोनों जन (उदिथः) विद्याओं का उपदेश करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करने हारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहां सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता । जहां यह बात नहीं होती वहां अन्ध परम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं ॥ १६ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पूर्वोक्त कार्य्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राज्याधिकार देना चाहिये यह वि० ॥

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्य्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे प्रशंसित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा जैसे मैं जिस तुझ को (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (द्युम्नेन) यश रूप प्रकाश से (अग्नेः) अग्नि के समान (भ्राजसा) तेज से (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इन्द्रस्य) बिजुली के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों के सहित (त्वा) आपको (अभिषिंचामि) राज्याऽधिकारी करता हूं । वैसे वे आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल .. . हों उनके बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालने हारे (अत्येधि) अति तत्पर

जैसे और (दिवम्) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करने हारे व्यवहारों को (पाहि) रक्षार सदा कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि गुणयुक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उस को राज्य का अधिकार देवें। और उस राजा को चाहिये कि राज्याधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्मादि के प्रकाश करने हारे प्रजा पुरुषों को निरन्तर बढ़ावे ॥ १७ ॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मन्त्र के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से ले के अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचार युक्त करें यह वि० ॥

इमन्देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) वेद शास्त्रों को जानने हारे सेनापति लोग आप जो (एषः) यह उपदेशक वा सेनापति (वः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है । जो (अमी) ये धर्मात्मा राजपुरुष हैं उन का (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपुत्र के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्यै) प्रशंसा करने योग्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्त्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपत्नम्) जिस का कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र को (सुवध्वम्) उत्पन्न करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें । जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें तो इन की उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥ १८ ॥

प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषिः । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जगत् में राजऔरप्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहिये यह वि० ॥

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचं इयानाः । ता आवृत्रन्नधरागुदक्ता अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः । विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे राजा के कारीगर पुरुष ! जो तू (स्वसिचः) जिन को अपने लोग जल से सींचते हैं (इयानाः) चलते हुए (उदक्ताः) फिर २ ऊपर को जायें (अहिंबुध्न्यम्) अन्तरिक्ष में रहनेवाले मेघ के (अनुरीयमाणाः) पीछे २ चलाने से चलते हुए (नावः) समुद्र के ऊपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान (वृषभस्य) वर्षा करने हारे (पर्वतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) ऊपर के भाग से (प्रचरन्ति) चलते हैं जिन से तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के इस जगत् में (विक्रमणम्) पराक्रम सहित (असि) है (विष्णोः) व्यापक वायु के बीच (विक्रान्तम्) अनेक प्रकार चलने हारा (असि) है और (विष्णोः) व्यापक बिजुली के बीच (क्रान्तम्) चलने का आधार (असि) है जो (अधराक्) मेघ से नीचे (आवृत्रम्) मेघ के समान विचरते हैं उन विमानादि यानों को तू सिद्ध कर ॥ ११ ॥

भावार्थः—जैसे मेघ वर्षके भूमि के तले को प्राप्त हो के पुनः आकाश को प्राप्त होता है । वह जल नदियों में जाके पीछे समुद्र को प्राप्त होता है । जो जल के भीतर अर्थात् जिन के ऊपर नीचे जल होता है । वैसे ही सब कारीगरलोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बना के भूमि जल और आकाश मार्ग से अभीष्ट देशों में यथेष्ट जाना आना करें । जब तक ऐसे यान नहीं बनाते तब तक द्वीप द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं आसकता । जैसे पक्षी अपने शरीर रूप संघात को आकाश में उड़ा लेचलते हैं वैसे चतुर कारीगर लोगों को चाहिये कि इस अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिरावें ॥ ११ ॥

प्रजापत इत्यस्य देवश्रात ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ।

मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त हों यह वि० ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्य पिताऽसावस्य पिता वयँ स्याम पतयो रयीणाँ स्वाहा । रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (प्रजापते) प्रजा के स्वामी ईश्वर ! जो (एतानि) जीव प्रकृति आदि

मात इत्यस्य देववात ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

प्रजा पुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

मा त इन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता वि दसाम। तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) सभापति राजन्! (वज्रहस्त) जिस के हाथों में वज्र के समान शस्त्र हों उस आप के साथ (वयम्) हम राजप्रजा पुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तासः) अधर्मकारी (मा) न होवें (ते) आप की (अब्रह्मता) वेद तथा ईश्वर से रहित निष्ठा (मा) न हो और न (विदसाम्) नष्ट करें जो (तुराषाट्) शीघ्रकारी शत्रुओं को सहने हारे आप जिन (रश्मीन्) घोड़े के लगाम की रस्सी और (स्वश्वान्) सुन्दर घोड़ों को (यमसे) नियम से रखते हैं। और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता होवें ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछौने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले होवें। और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फसें ॥ २२ ॥

अग्नय इत्यस्य देववातऋषिः। अग्न्यादयो मंत्रोक्ता देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामो-जसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा। पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो अहं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो! जैसे राजा और राज पुरुष हम लोग (गृहपतये) गृहाश्रम के स्वामी (अग्नये) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्य नीति (सोमाय) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों वा ऋत्विज लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शान्ति की देने हारी वाणी और (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो। हे (पृथिवि) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मान्य करने हारी जननी तू (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसीः) बुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देऊं ॥ २३ ॥

भावार्थः—राजा आदि राज पुरुषों को प्रजा के हित प्रजा पुरुषों को राज पुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्त्तना चाहिये। माता को योग्य है कि

हुए मित्र और मूर्खता रूप अविद्या देकर सन्तानों की बुद्धि नष्ट न करें। और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें ॥ २३ ॥

हंस इत्यस्य वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिगार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना पूर्वक सब के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा करें यह वि० ॥

हुᳬसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि जो परमेश्वर (हंसः) सब पदार्थों को स्थूल करता (शुचिषत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निवास करता और कराता (अन्तरिक्षसत्) अवकाश में रहता (होता) सब पदार्थ देता ग्रहण करता और प्रलय करता (वेदिषत्) पृथिवी में व्यापक (अतिथिः) अभ्यागत के समान सत्कार करने योग्य (दुरोणसत्) घर में स्थित (नृषत्) मनुष्यों के भीतर रहता (वरसत्) उत्तम पदार्थों में बसता (ऋतसत्) सत्य प्रकृति आदि नाम वाले कारण में स्थित (व्योमसत्) पोल में रहता (अब्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गोजाः) पृथिवी आदि तत्वों को उत्पन्न करता (ऋतजाः) सत्य विद्याओं के पुस्तक वेदों को प्रसिद्ध करता (अद्रिजाः) मेघ पर्वत और वृक्ष आदि को रचता (ऋतम्) सत्यस्वरूप और (बृहत्) सब से बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने हारे इस परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को धर्म अर्थ काम मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

इयदित्यस्य वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करें यह वि० ॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेहि।
ऊर्गस्यूर्जं मयि धेहि। इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (इयत्) इतना (आयुः) जीवन (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जिस से आप (युङ्) सब को समाधि कराने वाले (असि) हैं (वर्चः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (असि) हैं इस कारण (ऊर्क्) अत्यन्त बलवान् (असि) हैं इस लिये (ऊर्जम्) बल पराक्रम को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये। हे राज और प्रजा के पुरुषो (वीर्यकृतः) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य और परमात्मा के आश्रय से (वाम्) तुम राज प्रजा पुरुषों के (बाहू) बल और पराक्रम को (अभ्युपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूं ॥ २५ ॥

मात इत्यस्य देववात ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

प्रजा पुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

मा त॑ इन्द्र ते व॒यं तु॑राषा॒डयु॑क्तासो अब्र॒ह्मता॒ वि द॑साम।
तिष्ठा॒ रथ॒मधि॒ यं व॑ज्रहस्ता र॒श्मीन्दे॑व यमसे॒ स्वश्वा॑न् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) सभापति राजन्! (वज्रहस्त) जिस के हाथों में वज्र के समान शस्त्र हो उन आप के साथ (वयम्) हम राजप्रजा पुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तासः) अधर्मकारी (मा) न होवें (ते) आप की (अब्रह्मता) वेद तथा ईश्वर से रहित निष्ठा (मा) न हो और न (विदसाम) नष्ट करें जो (तुराषाट्) शीघ्रकारी शत्रुओं का सहने हारे आप जिन (रश्मीन्) घोड़े के लगाम की रस्सी और (स्वश्वान्) सुन्दर घोड़ों का (यमसे) नियम से रखते हैं। और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता होवें ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछौने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले होवें। और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फसें ॥ २२ ॥

अग्नय इत्यस्य देववातऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥

अ॒ग्नये॑ गृ॒हप॑तये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ वन॒स्पत॑ये॒ स्वाहा॑ म॒रुता॒मो-
ज॑से॒ स्वाहेन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॒ स्वाहा॑। पृथि॑वि मात॒र्मा मा॑ हिꣳसी॒-
र्मो अ॒हं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो! जैसे राजा और राज पुरुष हम लोग (गृहपतये) गृहाश्रम के स्वामी (अग्नये) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (सोमाय) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों वा ऋत्विज लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शान्ति की देने हारी वाणी और (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो। हे (पृथिवि) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मान्य करने हारी जननी तू (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसीः) बुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देऊं ॥ २३ ॥

भावार्थः—राजा आदि राज पुरुषों को प्रजा के हित प्रजा पुरुषों को राज पुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्तना चाहिये। माता को योग्य है कि

इसी शिक्षा से [illegible] अविद्या देकर मनुष्यों की बुद्धि नष्ट न करें। और स-
न्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें ॥ २३ ॥

हंस इत्यस्य वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिगार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना पूर्वक सब के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा करें यह वि०॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि जो परमेश्वर (हंसः) सब प-
दार्थों को स्थूल करता (शुचिषत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निवास कर-
ता और कराता (अन्तरिक्षसत्) अवकाश में रहता (होता) सब पदार्थ देता ग्रहण
करता और प्रलय करता (वेदिषत्) पृथिवी में व्यापक (अतिथिः) अभ्यागत के
समान सत्कार करने योग्य (दुरोणसत्) घर में स्थित (नृषत्) मनुष्यों के भीतर
रहता (वरसत्) उत्तम पदार्थों में बसता (ऋतसत्) सत्य प्रकृति आदि नाम वाले
कारण में स्थित (व्योमसत्) पोल में रहता (अब्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गो-
जाः) पृथिवी आदि तत्त्वों को उत्पन्न करता (ऋतजाः) सत्य विद्याओं के पुस्तक
वेदों को प्रसिद्ध करता (अद्रिजाः) मेघ पर्वत और वृक्ष आदि को रचता (ऋतम्)
सत्यस्वरूप और (बृहत्) सब से बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने
हारे इस परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को
धर्म अर्थ काम मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

इयदसीत्यस्य वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करें यह वि०॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धे
ऊर्गस्यूर्जं मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपाव-
हरामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (इयत्) इतना (आयुः) जीवन (मयि) मुझ में
(धेहि) धरिये जिस से आप (युङ्) सब को समाधि कराने वाले (असि) हैं (व-
र्चः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (असि) हैं इस कारण (ऊर्क्) अत्यन्त बलवान् (अ-
सि) हैं इस लिये (ऊर्जम्) बल पराक्रम को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण की-
जिये। हे राज और प्रजा के पुरुषो (वीर्यकृतः) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे (इ-
न्द्रस्य) ऐश्वर्य और परमात्मा के आश्रय से (वाम्) तुम राज प्रजा पुरुषों के (बा-
हू) बल और पराक्रम को (अभ्युपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन
करता हूं ॥ २५ ॥

मातइत्यस्य देवयात ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्रजा पुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्तना चाहिये यह वि० ॥

मा त इन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता वि दसाम । तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) सभापति राजन् ।(वज्रहस्त) जिस के हाथों में वज्र के समान शस्त्र हो उस आप के साथ (वयम्) हम राजप्रजा पुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तासः) अधर्मकारी (मा) न होवें (ते) आप की (अब्रह्मता) वेद तथा ईश्वर से रहित निष्ठा (मा) न हो और न (विदसाम्) नष्ट करें जो (तुराषाट्) शीघ्रकारी शत्रुओं को सहने हारे आप जिन (रश्मीन्) घोड़े के लगाम की रस्सी और (स्वश्वान्) सुन्दर घोड़ों को (यमसे) नियम से रखते हैं । और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता होवें ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछौने पर बैठें भी एकसा व्यवहार करने वाले होवें । और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फसें ॥ २२ ॥

अग्नयइत्यस्य देवयातऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः

अब माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥ .

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामं जसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो अहं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राज पुरुष हम लोग (गृहपतये) गृहाश्रम के स्वामी (अग्नये) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा,) वाणी (सोमाय) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों वा ऋत्विज लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शान्ति की देने हारी वाणी और (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो । हे (पृथिवि) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मान्य करने हारी जननी तू (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसीः) बुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देऊं ॥ २३ ॥

भावार्थः—राजा आदि राज पुरुषों को प्रजा के हित प्रजा पुरुषों को राज पुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्तना चाहिये । माता को योग्य है कि

पुत्रों [को] शिक्षा और मूर्खता का अविद्या देकर सन्तानों की बुद्धि नष्ट न करे। और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें ॥ २३ ॥

हंस इत्यस्य वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिगार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना पूर्वक सब के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा करें यह वि०॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! आप लोगों को चाहिये कि जो परमेश्वर (हंसः) सब पदार्थों को स्थूल करता (शुचिषत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निवास करता और कराता (अन्तरिक्षसत्) अवकाश में रहता (होता) सब पदार्थ देता ग्रहण करता और प्रलय करता (वेदिषत्) पृथिवी में व्यापक (अतिथिः) अभ्यागत के समान सत्कार करने योग्य (दुरोणसत्) घर में स्थित (नृषत्) मनुष्यों के भीतर रहता (वरसत्) उत्तम पदार्थों में बसता (ऋतसत्) सत्य प्रकृति आदि नाम वाले कारण में स्थित (व्योमसत्) पोल में रहता (अब्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गोजाः) पृथिवी आदि तत्वों को उत्पन्न करता (ऋतजाः) सत्य विद्याओं के पुस्तक वेदों को प्रसिद्ध करता (अद्रिजाः) मेघ पर्वत और वृक्ष आदि को रचता (ऋतम्) सत्यस्वरूप और (बृहत्) सब से बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने हारे इस परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को धर्म अर्थ काम मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

इयदसीत्यस्य वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करें यह वि०॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेहि। ऊर्गस्यूर्जं मयि धेहि। इन्द्रस्य वां वीर्य्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर! आप (इयत्) इतना (आयुः) जीवन (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जिस से आप (युङ्) सब को समाधि कराने वाले (असि) हैं (वर्चः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (असि) हैं इस कारण (ऊर्क्) अत्यन्त बलवान् (असि) हैं इस लिये (ऊर्जम्) बल पराक्रम को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये। हे राज और प्रजा के पुरुषो (वीर्य्यकृतः) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्य और परमात्मा के आश्रय से (वाम्) तुम राज प्रजा पुरुषों के (बाहू) बल और पराक्रम को (अभ्युपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूं ॥ २५ ॥

वायु में सुगन्धि युक्त द्रव्यों को प्राप्त करा वायु जल और ओषधियों की शुद्धि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है वैसे ही न्याय युक्त कर्मों के साथ आचरण करने वाले होके सब प्रजाओं को सुख युक्त करो ॥ २९ ॥

सवित्रेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा या राणी को कैसे गुणों से युक्त होना चाहिये इस वि० ॥

सुवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥३०॥

पदार्थः—हे प्रजा और राजपुरुषो ! जैसे मैं (प्रसवित्रा) प्रेरणा करने वाले वायु (सवित्रा) सम्पूर्ण चेष्टा उत्पन्न कराने हारे के समान शुभ कर्म (सरस्वत्या) प्रशंसित विज्ञान और क्रिया से युक्त (वाचा) वेद वाणी के समान सत्य भाषण (त्वष्ट्रा) छेदक और प्रताप युक्त सूर्य के समान न्याय (रूपैः) सुन्दर रूप (पूष्णा) पृथिवी (पशुभिः) गौ आदि पशुओं के समान प्रजा के पालन (इन्द्रेण) बिजुली (अस्मे) हम (बृहस्पतिना) बड़ों के रक्षक चार वेदों के जानने हारे विद्वान् के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार (ओजसा) बल (वरुणेन) जल के समुदाय (तेजसा) तीक्ष्ण ज्योति के समान शत्रुओं के जलाने (अग्निना) अग्नि (राज्ञा) प्रकाशमान आनन्द के होने (सोमेन) चन्द्रमा (दशम्या) दशमंख्या को पूर्ण करने वाली (देवतया) प्रकाशमान और (विष्णुना) व्यापक ईश्वर के समान शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (प्रसूतः) प्रेरणा किया हुआ मैं (प्रसर्पामि) अच्छे प्रकार चलता हूं । वैसे तुम लोग भी चलो ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्यादि के गुणों से युक्त पिता के समान रक्षा करने हारा हो वह राजा होने के योग्य है । और जो पुत्र के समान वर्त्तमान करे वह प्रजा होने योग्य है ॥

अश्विभ्यामित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्व्यादयो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे होके क्या करें यह वि० ॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे राजा तथा प्रजा पुरुषो ! तुम (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के समान ... और उपदेशक (पच्यस्व) शुद्ध बुद्धि वाले हो (सरस्वत्यै) अच्छी शिक्षा ... के लिये (पच्यस्व) दृढ़ हो (सुत्राम्णे) अच्छे रक्षा करने हारे

([illegible]) [illegible] है [illegible], ([illegible]) [illegible] पुरुषार्थ करो (पवित्रेण) शुद्धधर्म के आचरण से (वायुः) वायु के समान (पूतः) निर्मल (प्रत्यङ्) पूजा को प्राप्त (सोमः) अच्छे गुणों से युक्त ऐश्वर्य वाले (वरिष्ठः) अत्यन्त ज्ञानवान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (युज्यः) योगाभ्यास सहित (सखा) मित्र हो ॥ ३१ ॥

भावार्थ— मनुष्य को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा आप्त अध्यापक और उपदेशक से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो शुद्ध धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र योग के अङ्गों से ईश्वर की उपासना और संपत्ति होने के लिये प्रयत्न कर के आप्त मैं मित्रभाव से वर्ते ॥ ३१ ॥

कुविदङ्गेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवता । निचृदष्टी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा आदि सभा के पुरुष किस के तुल्य क्या २ करें यह वि० ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूर्य । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) ज्ञानवान् राजन् ! जो (कुवित्) बहुत ऐश्वर्य वाले आप (अश्विभ्याम्) विद्या को प्राप्त हुए शिक्षक लोगों के लिये (उपयामगृहीतः) ब्रह्मचर्य के नियमों से स्वीकार किये (असि) हैं उन (सरस्वत्यै) विद्या युक्त वाणी के लिये (त्वा) आप को (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (त्वा) आप को और (सुत्राम्णे) अच्छी रक्षा के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं । उन के लिये सत्कार के साथ भोजन आदि दीजिये । जैसे (यवमन्तः) बहुत जौ आदि धान्य से युक्त खेती करने हारे लोग (इहेह) इस २ व्यवहार में (यवम्) यवादि अन्न को (अनुपूर्वम्) क्रम से (दान्ति) लुनते (काटते) हैं । भुस से (चित्) भी (यवम्) जवों को (वियूय) पृथक् करके रक्षा करते हैं वैसे सत्य असत्य को ठीक २ विचार के इन की रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमाल०—जैसे खेती करने वाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी से अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा करके भोगते और असार को फेंकते हैं और जैसे ठीक २ राज्य का भाग राजा को देते हैं वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि अत्यन्त परिश्रम से इन की रक्षा न्याय के आचरण से ऐश्वर्य को उत्पन्न कर और सुपात्रों के लिये देतेहुए आनन्द को भोगें ॥ ३२ ॥

युवमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सभा और सेनापति प्रयत्न से वैश्यों की रक्षा करें यह वि० ॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (सचा) मिले हुए (विपिपाना) विविध राज्य के रक्षक (शुभः)

कल्याण कारक व्यवहार के (पतौं) पालन करने हारे (अश्विना) सूर्य्य चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति (युवम्) तुम दोनों (नमुचौ) जो अपने दुष्ट कर्म को न छोड़े (आसुरे) मेघ के व्यवहार में (कर्मसु) खेती आदि कर्मों में वर्त्तमान (सुरामम्) अच्छी तरह जिस में रमण करें ऐसे (इन्द्रम्) परमैश्वर्य युक्त धनी को निरन्तर (आवतम्) रक्षा करो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है राज्य की रक्षा के विना किसी चेष्टावान् नर की कार्य में निर्विघ्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती। और न प्रजा जनों के अनुकूल हुए विना राजपुरुषों की स्थिरता होती है। इसलिये वन के सिंहों के समान परस्पर सहायी हो के सब राज और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहैं ॥ ३३ ॥

पुत्रमिवेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। अश्विनौ देवते। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः। यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥३४॥

पदार्थः—हे (मघवन्) विशेष धन के होने से सत्कार के योग्य (इन्द्र) सब सभाओं के मालिक राजन्! (यत्) जो आप (शचीभिः) अपनी बुद्धियों के बल से (सुरामम्) अच्छा आराम देने हारे रस को (व्यपिबः) विविध प्रकार से पीवें उस आप का (सरस्वती) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणी के समान स्त्री (अभिष्णक्) सेवन करे (अश्विना) राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए (उभा) तुम दोनों सेनापति और न्यायाधीश (काव्यैः) परम विद्वान् धर्मात्मा लोगों ने किये (दंसनाभिः) कर्मों से (पितरौ) जैसे माता पिता (पुत्रम्) अपने सन्तान की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की (आवथुः) रक्षा करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—सब अच्छे २ गुणों से युक्त राजधर्म का सेवने हारा धर्मात्मा अध्यापक और पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष अपने हृदय को प्यारी अपने योग्य अच्छे लक्षणों से युक्त रूप और लावण्य आदि गुणों से शोभायमान विद्वान् स्त्री के साथ विवाह करे। जो कि निरन्तर पति के अनुकूल हो। और पति भी उस के सम्मति का हो। राजा अपने मन्त्री नौकर और स्त्री के सहित प्रजाओं में सत्पुरुषों की रीति पर पिता के समान और प्रजा पुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्तें। इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिल के आनन्दित होवें ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह दशवां अध्याय समाप्त हुआ।

ओ३म्

अथैकादशोऽध्यायः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥

युञ्जान इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। विराडा-
र्ष्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है। इस के प्रथम मन्त्र में
योगाभ्यास और भूगर्भ विद्या का उपदेश किया है॥

यु॒ञ्जा॒नः प्र॑थ॒मं मन॑स्त॒त्त्वाय॑ सवि॒ता धियः॑ ।
अ॒ग्नेर्ज्योति॑र्नि॒चाय्य॑ पृथि॒व्या अध्याभ॑रत् ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (सविता) ऐश्वर्य्य को चाहने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) तत्त्व परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान होने के लिये (प्रथमम्) पहिले (मनः) विचार स्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में युक्त करता हुआ (अग्नेः) पृथिवी आदि में रहने वाली बिजुली के (ज्योतिः) प्रकाश को (निचाय्य) निश्चय कर के (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे वह योगी और भूगर्भ विद्या का जानने वाला होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—जो पुरुष योगाभ्यास और भूगर्भविद्या किया चाहे वह यम आदि योग के अङ्ग और क्रिया कौशलों से अपने हृदय को शुद्ध कर तत्त्वों को

प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये सब योगियों के साथही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें ॥ ५ ॥

यस्य प्रयाणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।
आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
मनुष्य किस की उपासना करें यह वि० ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा । यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे योगी पुरुषो ! तुम को चाहिये कि (यस्य) जिस (देवस्य) सब सुख देने हारे ईश्वर के (महिमानम्) स्तुति विषय को (प्रयाणम्) कि जिस से सब सुख प्राप्त होवे उस के (अनु) पीछे (अन्ये) जीवादि और (देवाः) विद्वान् लोग (ययुः) प्राप्त होवें (यः) जो (एतशः) सब जगत् में अपनी व्याप्ति से प्राप्त हुआ (सविता) सब जगत् का रचने हारा (देवः) शुद्धस्वरूप भगवान् (महित्वना) अपनी महिमा और (ओजसा) पराक्रम से (पार्थिवानि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) सब लोकों को (विममे) विमान आदि यानों के समान रचता है वह (इत) ही निरन्तर उपासनीय मानो ॥ ६ ॥

भावार्थः-जो विद्वान् लोग सब जगत् के बीच २ पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने, रचने और सुख देने हारे शुद्ध सर्वशक्तिमान् सब के हृदयों में व्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं वेही सुख पाते हैं अन्य नहीं॥६॥

देवसवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।
आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह वि० ॥

देवं सवितः प्र सुंव यज्ञं प्र सुंव यज्ञपतिं भ-

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जो नियम से आहार विहार करने हारे जितेन्द्रिय पुरुष एकान्त देशमें परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे तत्त्वज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं ॥ ४ ॥

युजे वामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।
विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
मनुष्य लोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें इस वि० ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु प-
थ्येव सूरेः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ-
ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे योगशास्त्र के ज्ञान की इच्छा करने वाले मनुष्यो आप लोग जैसे (श्लोकः) सत्य वाणी से संयुक्त मैं (नमोभिः) सत्कारों से जिस (पूर्व्यम्) पूर्व के योगियों ने प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) सब से बड़े व्यापक ईश्वर को (युजे) अपने आत्मा में युक्त करता हूं वह ईश्वर (वाम्) तुम योग के अनुष्ठान और उपदेश करने हारे दोनों को (सूरेः) विद्वान् को (पथ्येव) उत्तम गति के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है वैसे (एतु) विविध प्रकार से प्राप्त होवे । जैसे (विश्वे) सब (पुत्राः) अच्छे सन्तानों के तुल्य आज्ञाकारी मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अमृतस्य) अविनाशी ईश्वर के योग से (दिव्यानि) सुख के प्रकाश में होने वाले (धामानि) स्थानों को (आतस्थुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे मैं भी उन को प्राप्त होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालं०-योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें। उन के संग से योग की विधि को जान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योग विधि सहज में प्राप्त होती है । कोई भी जीवात्मा इस संग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सब सुखों को

प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये सब योगविद्या के साथही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें ॥ ५ ॥

यस्यप्रयाणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।

आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस की उपासना करें यह वि० ॥

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य इद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा । यः पार्थि॑वानि विम॒मे स एत॑शो॒ रजां॑ꣳसि दे॒वः स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे योगी पुरुषो ! तुम को चाहिये कि (यस्य) जिस (देवस्य) सब सुख देने हारे ईश्वर के (महिमानम्) स्तुति विषय को (प्रयाणम्) कि जिस से सब सुख प्राप्त होवे उस के (अनु) पीछे (अन्ये) जीवादि और (देवाः) विद्वान् लोग (ययुः) प्राप्त होवें (यः) जो (एतशः) सब जगत में अपनी व्याप्ति से प्राप्त हुआ (सविता) सब जगत् का रचने हारा (देवः) शुद्धस्वरूप भगवान् (महित्वना) अपनी महिमा और (ओजसा) पराक्रम से (पार्थिवानि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) सब लोकों को (विममे) विमान आदि यानों के समान रचता है वह (इत्) ही निरन्तर उपासनीय मानो ॥ ६ ॥

भावार्थः-जो विद्वान् लोग सब जगत् के बीच २ पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने, रचने और सुख देने हारे शुद्ध सर्वशक्तिमान् सब के हृदयों में व्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं वेही सुख पाते हैं अन्य नहीं॥६॥

देवसवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।

आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह वि०॥

देव॑ सवितः॒ प्र सु॑व य॒ज्ञं प्र सु॑व य॒ज्ञप॑तिं भ-

गाय । दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्ययोग विद्या मे उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (सवितः) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करने हारे परमेश्वर आप (नः) हमारे (यज्ञम्) सुखों को प्राप्त कराने हारे व्यवहार को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये तथा (यज्ञपतिम्) इन सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये (गन्धर्वः) पृथिवी को धरने (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और (केतपूः) विज्ञान से पवित्र करने हारे आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिये और (वाचस्पतिः) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को स्वादिष्ट अर्थात् कोमल मधुर कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या को सिद्ध कर सकते हैं वे सत्यवादी होके सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।
शक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इ॒मं नो॑ देव सवितर्य॒ज्ञं प्रण॑य देवा॒व्य॑ꣳस॒खि॒विदं॑ꣳसत्रा॒जितं॒न्धन॒जित॑ꣳस्व॒र्जितं॑म् । ऋ॒चा स्तोम॒ꣳसम॑र्धय गाय॒त्रेण॑ रथन्त॒रं बृ॒हद्गा॑य॒त्रव॑र्त्तनि॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सवितः)

सत्कर्मों में प्रेरणा करने हारे सकलैश्वर्ययुक्त आप (नः) हमारे (इ-मम्) पीछे कहे और आगे जिस को कहेंगे उस (देवाव्यम्) दिव्य विद्वान् वा दिव्य गुणों की जिस से रक्षा हो (सखिविदम्) मित्रों को जिस से प्राप्त हों (सत्राजितम्) सत्य को जिस से जीतें (धनजितम्) धन को जिस से उत्पन्न करें (स्वर्जितम्) सुख को जिस से बढ़ावें । और (ऋचा) ऋग्वेद से जिस की (स्तोमम्) स्तुति हो उस (यज्ञम्) विद्या और धर्म का संयोग कराने हारे यज्ञ को (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (प्रणय) प्राप्त कीजिये (गायत्रेण) गायत्री आदि छन्द से (गायत्रवर्त्तनि) गायत्री आदि छन्दों की गान विद्या (बृहत्) बड़े (रथन्तरम्) अच्छे २ यानों से जिस के पार हों उस मार्ग को (समर्धय) अच्छे प्रकार बढ़ाइये ॥ ८ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य ईर्षा द्वेष आदि दोषों को छोड़ ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं। वे संपत् को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिग-
निराकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य भूमि आदि पदार्थों से बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रंसवेऽश्विनोंर्बाहुभ्यां पू-
ष्णोहस्ताभ्याम् । आदंदे गायत्रेणछन्दंसाङ्गिर-
स्वत्पृंथिव्याः सधस्थांदग्निपुरीष्यमङ्गिरस्वदा-
भंर त्रैष्टुंभेन छन्दंसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष मैं जिस (त्वा) आप को (देवस्य) सूर्य्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (सवितुः) सब ऐश्वर्य्य में (अ-श्विनोः) प्राण और उदान के (बाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से तथा (पूष्णः) पुष्टि कारक बिजुली के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण (अङ्गिरस्वत्) अंगारों के समान (आददे) ग्रहण करता हूं सो आप (गा-यत्रेण) गायत्री मंत्र से निकले (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (पृ-

गाय । द्वि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्ययोग विद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (सवितः) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करने हारे परमेश्वर आप (नः) हमारे (यज्ञम्) सुखों को प्राप्त कराने हारे व्यवहार को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये तथा (यज्ञपतिम्) इस सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये (गन्धर्वः) पृथिवी को धारने (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और (केतपूः) विज्ञान से पवित्र करने हारे आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिये और (वाचस्पतिः) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को स्वादिष्ट अर्थात् कोमल मधुर कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या को सिद्ध कर सकते हैं वे सत्यवादी होके सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।
शाक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इ॒मं नो॑ देव सवितर्य॒ज्ञं प्रण॑य देवा॒व्यꣳस॒खि॒विदꣳसत्रा॒जितं॒ धन॒जित॒ꣳस्व॒र्जित॑म् । ऋ॒चा स्तोम॒ꣳसम॑र्धय गाय॒त्रेण॑ रथन्त॒रं बृ॒हद्गा॑य॒त्रव॑र्त्तनि॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

पदार्थः-हे (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सवितः)

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिग
तिजगतीछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य भूमि आदि तत्त्वों से बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थः-हे विद्वन् पुरुष मैं जिस (त्वा) आप को (देवस्य) सूर्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (सवितुः) सब ऐश्वर्य्य में (अश्विनोः) प्राण और उदान के (बाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से तथा (पूष्णः) पुष्टि कारक बिजुली के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण (अङ्गिरस्वत्) अङ्गारों के समान (आददे) ग्रहण करता हूं सो आप (गायत्रेण) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (प-

विश्वाः) पृथिवी के (सधस्थात्) एक स्थान से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य और (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मंत्र से निकले (छन्दसा) स्वतंत्र अर्थ के साथ (अङ्गिरस्वत्) जिन्हीं के सदृश (पुरीष्यम्) जल को उत्पन्न करने हारे (अग्निम्) बिजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को (आभर) धारण कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जानने हारे विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा करके और पृथिवी आदि पदार्थों में रहने वाले अग्नि का स्वीकार करें ॥ ९ ॥

अभ्रिरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होवें यह वि० ॥

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया॒ वयम॒ग्निꣳ शकेम॒ खनि॑तुꣳ स॒धस्थ॒ऽआ । जाग॑तेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् ॥१०॥

पदार्थः हे कारीगर पुरुष जो (त्वया) तेरे साथ (सधस्थे) एक स्थान में वर्त्तमान (वयम्) हमलोग जो (अभ्रिः) भूमि खोदने और (नारी) विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्यों को सिद्ध करने हारी लोहे आदि की कसी (असि) है जिस से कारीगर लोग भूगर्भ विद्या को प्राप्त होके सब को ग्रहण करके (जागतेन) जगती मंत्र से विधान किये (छन्दसा) सुखदायक स्वतन्त्र साधन से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (खनितुम्) खोदने के लिये (आशकेम) सब प्रकार समर्थ हों उसको तू बना ॥ १० ॥

भावार्थः-मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त कर के सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें । परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्व विद्या को प्राप्त हो के ऐसा कर सकते हैं ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १० ॥

भरद्वानुंष्टुभेन छन्दंसाङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(सविता) ऐश्वर्य्य का उत्पन्न करने हारा कारीगर मनुष्य (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के योग से (हिरण्ययीम्) तेजोमय शुद्ध धातु से बने (अभ्रिम्) खोदने के शस्त्र को (हस्ते) हाथ में लिये हुए (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अग्नेः) विद्युत् आदि अग्नि के (ज्योतिः) तेज को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे लोहे और पत्थरों में बिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है । उसकी विद्या को ठीक ठीक जान और कार्यों में उपयुक्त कर के इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

प्रतूर्त्तमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । वाजी देवता । आस्तारपङ्क्ति-
श्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथि-
व्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञा
आप का विज्ञ वि

(जन्म) प्रसिद्धि (तव) आप का (अन्तरिक्षे) आकाश में (नाभिः) बन्धन और (पृथिव्याम्) इस पृथिवी में (योनिः) निमित्त प्रयोजन है सो आप विमानादि यानों के अधिष्ठाता होकर (वरिष्ठाम्) अत्यन्त उत्तम (सम्यतम्) अच्छे प्रकार विभाग की हुई गति को (प्रतूर्त्तम्) अतिशीघ्र (इत्) ही (अनु) पश्चात् (आ) (द्रव) अच्छे प्रकार चलिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीच में परम प्रयत्न के साथ प्रसिद्ध हों और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना आना करते हैं तब उन को धन की प्राप्ति सुगम होती है ॥ १२ ॥

युञ्जाथामित्यस्य कुश्रिर्ऋषिः । वाजी देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या कहां जोड़ना चाहिये यह वि० ॥

**युञ्जाथाᳬरासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू ।
अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥**

पदार्थः—हे (वृषण्वसू) सूर्य और वायु के समान सुख वर्षाने वा सुख में बसने हारे कारीगर तथा यान के स्वामी लोगो (युवम्) तुम दोनों (अस्मिन्) इस (यामे) यान में (रासभम्) जल और अग्नि के वेगगुणरूप अश्व तथा (अस्मयुम्) हम को लेचलने तथा (भरन्तम्) धारण करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध वा बिजुलीरूप अग्नि को (युञ्जाथाम्) युक्त करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस विमान आदि यान में यन्त्र कला जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं ॥ १३ ॥

योगेयोगइत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्रजाजन कैसे पुरुष को राजा मानें यह वि० ॥

**योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १४ ॥**

पदार्थः—हे (सखायः) परस्पर मित्रता रखने हारे लोगो जैसे हम-लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (योगेयोगे) जिस २ में (वाजेवाजे) हों सङ्ग्राम २ के बीच (तवस्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य युक्त पुरुष को राजा (हवामहे) मानते हैं वैसे ही तुमलोग भी मानो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परस्पर मित्र हो के एक दूसरे की रक्षा के लिये अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा मानते हैं वे सब विघ्नों से अ-लग हो के सुख की उन्नति कर सकते हैं ॥ १४ ॥

प्र तूर्वन्नित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । गणपतिर्देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त हो यह वि० ॥

प्र तूर्वन्नेह्यवक्राम॒न्नश॑स्ती रु॒द्रस्य॒ गाण॑पत्यं म॒यो॒भूरे॑हि । उ॒र्व॒न्तरि॑क्ष॒ वी॑हि स्व॒स्तिग॑व्यूति॒रभ॑यानि कृ॒ण्वन् पू॒ष्णा स॒युजा॑ स॒ह ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे राजन् (स्वस्तिगव्यूतिः) सुख के साथ जिस का मार्ग है ऐसे आप (सयुजा) एक साथ युक्त करने वाली (पूष्णा) बल पुष्टि से युक्त अपनी सेना के (सह) साथ (अशस्तीः) निन्दित शत्रुओं की सेनाओं को (प्रतूर्वन्) मारते हुए (एहि) प्राप्त हूजिये । शत्रुओं के देशों का (अव-क्रामन्) उल्लङ्घन करते हुए (एहि) आइये (मयोभूः) सुख को उत्पन्न करते आप (रुद्रस्य) शत्रुओं को रुलाने हारे अपने सेनापति के (गाण-पत्यम्) सेना समूह के स्वामीपन को (एहि) प्राप्त हूजिये । और (अ-भयानि) अपने राज्य में सब प्राणियों को भय रहित ([illegible]) करते हुए (अन्तरिक्षम्) उरु [illegible] प्राप्त हूजिये ॥ १५ ॥

[illegible] करईव भा-
[illegible] ओं के साथ
[illegible] सदा हम से

शत्रुओं को मारे और सज्जनों की रक्षा करके सर्वत्र सुन्दर कीर्त्ति फैलावे॥१५॥

पृथिव्या इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वदा भ॑रा॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वदच्छे॑मो॒ऽग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वद्भ॑रिष्यामः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे हम लोग (पृथिव्याः) भूमि और अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक स्थान से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) अच्छा सुख देने हारे (अग्निम्) भूमि मण्डल की बिजुली को (अच्छ) उत्तम रीति से (इमः) प्राप्त होते और जैसे (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुखदायक (अग्निम्) अन्तरिक्षस्थ बिजुली को (भरिष्यामः) धारण करें वैसे आप भी (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुख देने वाले (अग्निम्) पृथिवी पर वर्त्तमान अग्नि को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें मूर्खवत् नहीं । और सब काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें॥१६॥

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग किसके समान क्या करें यह वि० ॥

अन्व॒ग्निरु॒षसा॒मग्र॑मख्य॒दन्वहा॑नि प्रथ॒मो जा॒तवे॑दाः । अनु॒ सूर्य॑स्य पुरु॒त्रा च॑ र॒श्मीननु॒ द्यावा॑पृथि॒वी आ त॑तन्थ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जैसे (प्रथमः) (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में पहिले ही विद्यमान सूर्य लोक और (अग्निः) (उषसाम्) उषः काल से (अग्रम्) पहिले ही (अहानि) दिनों को (अन्वख्यात) प्रसिद्ध करता है (सूर्यस्य) सूर्य के (अग्रम्) पहिले (पुरुधा) बहुत (रश्मीन्) किरणों को (अन्वाततन्थ) फैलाता तथा (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी लोक को प्रसिद्ध करता है । वैसे विद्या के व्यवहारों की प्रवृत्ति कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे कारण रूप विद्युत् और कार्य्य रूप प्रसिद्ध अग्नि क्रमसे सूर्य्य, उषःकाल और दिनों को उत्पन्न करके पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं । वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य विद्या धर्म्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाश युक्त करें ॥ १७ ॥

आगत्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ सभापति राजा किस के समान क्या करे यह वि० ॥

आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो वि धूनुते । अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा नि चिकीषते ॥ ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे राजन् आप जैसे (वाजी) वेगवान घोड़ा (अध्वानम्) अपने मार्ग को (आगत्य) प्राप्त होके (सर्वा) सब (मृधः) सङ्ग्रामोंको (विधूनुते) कपाता है और जैसे गृहस्थ पुरुष (चक्षुषा) नेत्रों से (महति) सुन्दर (सधस्थे) एक स्थान में (अग्निम्) अग्नि का (निचिकीषते) चयन किया चाहता है । वैसे और घर - द्या का प्रचार कीजिये

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—गृहस्थों को चाहिये कि घोड़ों के समान जाना आना कर, शत्रुओं को जीत, आग्नेयादि अस्त्रविद्या को सिद्ध कर, अपने बलाऽबल को विचार और राग द्वेष आदि दोषों की शान्ति कर के अधर्मी शत्रुओं को जीतें ॥ १८ ॥

आक्रम्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य जन्म पा, और विद्या पढ़ के पश्चात् क्या करें यह वि० ॥

आक्रम्यं वाजिन्पृथिवीमग्निमिंच्छ रुचा त्वम् । भूम्यां वृत्वायं नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा (त्वम्) आप (रुचा) प्रीति से शत्रुओं को (आक्रम्य) पादाक्रान्त कर (पृथिवीम्) भूमि के राज्य और (अग्निम्) विद्युत की (इच्छ) इच्छा कीजिये । और (भूम्याः) पृथिवी के बीच (नः) हमलोगों को (वृत्वाय) स्वीकार करके हमारे लिये (ब्रूहि) भूगर्भ और अग्नि विद्या का उपदेश कीजिये (यतः) जिस से (वयम्) हमलोग (तम्) उस विद्या में (खनेम) प्रविष्ट होवें ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भ और अग्नि विद्या से पृथिवी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों को उत्साह के साथ प्राप्त होवें । और जो पृथिवी को खोदने वाले नौकर चाकर हैं उन को इस विद्या का उपदेश करें ॥ १९ ॥

द्यौस्तइत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य क्या कर के क्या सिद्ध करें यह वि० ॥

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवीसधस्थमात्मान्तरिक्षꣳ

समुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वमभितिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥

पदार्थः-हे विद्वन् राजन् जिस (ते) आप का (द्यौः) प्रकाश के तुल्य विनय (पृष्ठम्) इधर का व्यवहार (पृथिवी) भूमि के समान (सधस्थम्) साथ स्थिति (अन्तरिक्षम्) आकाश के समान अविनाशी धैर्ययुक्त (आत्मा) अपना स्वरूप और (समुद्रः) समुद्र के तुल्य (योनिः) निमित्त है सो (त्वम्) आप (चक्षुषा) विचार के साथ (विख्याय) अपना ऐश्वर्य प्रसिद्ध करके (पृतन्यतः) अपनी सेना को लड़ाने की इच्छा करते हुए मनुष्य के (अभि) सन्मुख (तिष्ठ) स्थित हूजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष न्यायमार्ग के अनुसार उत्साह, स्थान, और आत्मा जिस के दृढ़ हों विचार से सिद्ध करने योग्य जिस के प्रयोजन हों उस की सेना धीर होती है वह निश्चल विजय करने को समर्थ होवे ॥ २० ॥

उत्क्रामेत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । द्रविणोदा देवता । आर्षी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य
उत्पन्न करें यह वि० ॥

उत्क्राम महते सौभगायास्माद्रास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् । वयꣳस्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥

पदार्थः-हे (वाजिन्) ऐश्वर्य को प्राप्त हुए विद्वन् जैसे (द्रविणोदाः) धनदाता (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के (अस्मात्) इस (आस्थानात्) निवास के स्थान से (उपस्थे) समीप में (अग्निम्) अग्नि विद्या का (खनन्तः) खोज करते हुए (वयम्) हम लोग (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (सुमतौ) अच्छी बुद्धि में प्रवृत्त (स्याम) होवें वैसे आप (उत्क्राम) उन्नति को प्राप्त हूजिये ॥ २१ ॥

आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा । पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नैरभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

पदार्थः-हे ज्ञान चाहने वाले पुरुष जैसे मैं (मनसा) मन तथा (घृतेन) घी के साथ (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकस्थ वस्तुओं में (प्रतिक्षियन्तम्) प्रत्यक्ष निवास और निश्चय कारक (तिरश्चा) तिरछे चलने रूप (वयसा) जीवन से (पृथुम्) विस्तार युक्त (बृहन्तम्) बड़े (अन्नैः) जौ आदि अन्नों के साथ (रभसम्) बल वाले (व्यचिष्ठम्) अतिशय करके फैंकने वाले (दृशानम्) देखने योग्य वायु के गुणों को (आजिघर्मि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूं वैसे (त्वाम्) आप को भी इस वायु के गुणों को धारण कराता हूं ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों को वायु में पहुंचा उस सुगन्ध से रोगों को दूर कर अधिक अवस्था को प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

आ विश्वत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीप-ङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाले हैं इस वि० ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत । मर्य्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभि-मृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

पदार्थः-हे मनुष्य (न) जैसे (विश्वतः) सब ओर से (अग्निः) बिजुली और प्राण वायु शरीर में व्यापक होके (अभिमृशे) सहने वाले के लिये हितकारी हैं वैसे (तन्वा) शरीर से (जर्भुराणः) शीघ्र हाथ पांव आदि अ-

भावार्थः- मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में ऐश्वर्य्य पाने के लिये निरन्तर उद्यत रहैं। और आपस में हिल मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से रत्नों को प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

उदक्रमीदित्यस्य मयोभूर्ऋषिः । द्रविणोदा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य इस संसार में किस के समान हो के किस को प्राप्त हों यह वि० ॥

उदक्रमीद्द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳसुकृतं पृथिव्याम्। ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳस्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

पदार्थः-हे भूगर्भ विद्या के जानने हारे विद्वान् (द्रविणोदाः) धन दाता आप जैसे (वाजी) बल वाला (अर्वा) घोड़ा ऊपर को उछलता है वैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी के बीच (अधि) (उदक्रमीत्) सब से अधिक उन्नति को प्राप्त हूजिये (सुकृतम्) धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य (सुलोकम्) अच्छा देखने योग्य (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ (नाकम्) सब दुःखों से रहित सुख को (अकः) सिद्ध कीजिये (ततः) इस के पश्चात् (स्वः) सुखपूर्वक (रुहाणाः) प्रकट होते हुए हम लोग भी इस पृथिवी पर (सुप्रतीकम्) सुन्दर प्रीति का विषय (अग्निम्) व्यापक बिजुली रूप अग्नि को (खनेम) खोज करें ॥ २२ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में वाचकलु० —हे मनुष्यो जैसे पृथिवी पर घोड़े अच्छी २ चाल चलते हैं वैसे हम तुम सब मिलकर पुरुषार्थी हों पृथिवी आदि की पदार्थ विद्या को प्राप्त हो और दुःखों को दूर करके सबसे उत्तम सुख को प्राप्त हों ॥ २२ ॥

आत्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य व्यापक वायु को किस साधन से जानें यह वि० ॥

आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा । पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

पदार्थः-हे ज्ञान चाहने वाले पुरुष जैसे मैं (मनसा) मन तथा (घृतेन) घी के साथ (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकस्थ वस्तुओं में (प्रतिक्षियन्तम्) प्रत्यक्ष निवास और निश्चय कारक (तिरश्चा) तिरछे चलने रूप (वयसा) जीवन से (पृथुम्) विस्तार युक्त (बृहन्तम्) बड़े (अन्नैः) जौ आदि अन्नों के साथ (रभसम्) बल वाले (व्यचिष्ठम्) अतिशय करके फैंकने वाले (दृशानम्) देखने योग्य वायु के गुणों को (आजिघर्मि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूं वैसे (त्वाम्) आप को भी इस वायु के गुणों को धारण कराता हूं ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों को वायु में पहुंचा तथा सुगन्ध से रोगों को दूर कर अधिक अवस्था को प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

आविश्वत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाले हैं इस वि० ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत । मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

पदार्थः-हे मनुष्य (मः) जैसे (विश्वतः) सब ओर से (अग्निः) बिजुली और प्राण वायु शरीर में व्यापक होके (अभिमृशे) सहने वाले के लिये हितकारी है वैसे (तन्वा) शरीर से (जर्भुराणः) शीघ्र हाथ पांव आदि अ-

कैसा सेनापति करना चाहिये इस वि० ॥

परिं त्वाग्ने पुरं वयं विप्रंᳬसहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ २६ ॥

पदार्थः-हे (सहस्य) अपने को बल चाहने वाले (अग्नि) अग्निवत् विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष जैसे (वयम्) हम लोग (दिवे दिवे) प्रतिदिन (भङ्गुरावताम्) खोटे स्वभाव वालों के (पुरम्) नगर को अग्नि के समान (हन्तारम्) मारने (धृषद्वर्णम्) दृढ सुन्दर वर्ण से युक्त (विप्रम्) विद्वान् (त्वा) आप को (परि) सब प्रकार से (धीमहि) धारण करें वैसे तू हम को धारण कर ॥ २६ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि न्याय से प्रजा की रक्षा करने अग्नि के समान शत्रुओं को मारने और सब काल में सुख देने हारे पुरुष को सेनापति करें ॥ २६ ॥

त्वमग्नइत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर सभाध्यक्ष कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

त्वमंग्ने द्युभिस्त्वमांशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मंन-
स्परिं । त्वंवनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां
नृपते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (नृपते) मनुष्यों के पालने हारे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् (त्वम्) आप (द्युभिः) दिनों के समान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से सूर्य्य के समान (त्वम्) आप (आशुशुक्षणिः) शीघ्र २ दुष्टों को मारने हारे (त्वम्) आप (अद्भ्यः) वायु वा जलों से (त्वम्) आप (अश्मनः) मेघ वा पाषाणादि से (त्वम्) आप (वनेभ्यः) जङ्गल वा किरणों से (त्वम्) आप (ओषधिभ्यः) सोमलता

आदि ओषधियों से (त्वम्) आप (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (शुचिः) पवित्र (परि) सब प्रकार (जायसे) प्रसिद्ध होते हो इस कारण आपका आश्रय लेके हम लोग भी ऐसे ही होवें ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो राजा सभासद् वा प्रजा का पुरुष सब पदार्थों से गुण ग्रहण और विद्या तथा क्रिया की कुशलता से उपकार ले सकता धर्म के आचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है वही सब सुखों को प्राप्त हो सकता है अन्य आलसी पुरुष नहीं ॥ २७ ॥

देवस्यत्वेत्यस्य गृत्समदऋषिः । अग्निर्देवता ।

भुरिक् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुंरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामि । ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजंस्रेण भानुना दीद्यंतम् । शिवं प्रजाभ्योऽहिंसन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामः ॥ २८ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) भूगर्भ तथा शिल्प विद्या के जानने हारे विद्वान् जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के (बाहुभ्याम्) आकर्षण तथा धारण रूप बाहुओं के समान और (पूष्णः) प्राण के (हस्ताभ्याम्) बल और पराक्रम के तुल्य (त्वा) आप को आगे करके (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थात्) एक स्थान से (पुरीष्यम्) पूर्ण सुख देने हारे (ज्योतिष्मन्तम्) बहुत ज्योति वाले (अज-

स्तेण) निरन्तर (भानुना) दीप्ति से (दीद्यतम्) अत्यन्त प्रकाशमान (पुरीष्यम्) सुन्दर रक्षा करने (अग्निम्) वायु में रहने वाली बिजुली को (अङ्गिरस्वत) वायु के समान (खनामि) सिद्ध करता हूं। और जैसे (स्वा) आप का आश्रय लेके हम लोग (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक प्रदेश से (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मवायु के समान वर्त्तमान (अहिंसन्तम्) जो कि ताड़ना न करे ऐसे (पुरीष्यम्) पालनेहारे पदार्थों में उत्तम (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवम्) मङ्गल कारक (अग्निम्) अग्नि को (खनामः) प्रकट करते हैं वैसे सब लोग किया करें ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो राजा और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहने वाले बिजुली रूपी अग्नि को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध कर के कार्यों में प्रयुक्त करते हैं वे कल्याण कारक ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं। कोई भी उत्पन्न हुआ पदार्थ बिजुली की व्याप्ति के विना खाली नहीं रहता ऐसा तुम सब लोग जानो ॥ २८ ॥

अपांपृष्ठमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसी बिजुली का ग्रहण करें यह वि० ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् । वर्धमानो महाँ २ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिस कारण (अग्नेः) सर्वत्र अभिव्याप्त बिजुली रूप अग्नि के (योनिः) संयोग वियोगों के जानने (महान्) पूजनीय (वर्धमानः) विद्या तथा क्रिया की कुशलता से नित्य बढ़ने वाले आप (असि) हैं। इस लिये (अभितः) सब ओर से (पिन्वमानम्) जल वर्षाते हुए (अपाम्) जलों के (पृष्ठम्) आधार भूत (पुष्करे) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (दिवः) दीप्ति के (मात्रया) विभाग बढ़े हुए (समुद्रम्) अच्छे

प्रकार जिस में ऊपर को जल उठते हैं उस समुद्र (च) और वहां के सब पदार्थों को जान के (वरिम्णा) बहुत्व के साथ (आप्रथस्व) अच्छे प्रकार गुणों को विस्तार करने वाले हूजिये ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग पृथिवी आदि स्थूल पदार्थों में बिजुली जिस प्रकार वर्त्तमान है वैसे ही जलों में भी है ऐसा समझ और उस से उपकार लेके बड़े २ विस्तार युक्त सुखों को सिद्ध करो ॥ २९ ॥

शर्मचेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । दम्पती देवते । विराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या २ सिद्ध करें यह वि० ॥

शर्मं च स्थो वर्मं च स्थोऽछिद्रे बहुले उभे ।
व्यचस्वती संवसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम् ॥३०॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों (शर्म) गृहाश्रम (च) और उस की सामग्री को प्राप्त हुए (स्थः) हो (वर्म) सब ओर उस के सहायकारी पदार्थों को (उभे) दो (बहुले) बहुत अर्थों को ग्रहण करने हारे (व्यचस्वती) सुख की व्याप्ति से युक्त (अच्छिद्रे) निर्दोष बिजुली और अन्तरिक्ष के समान जिस घर में धर्म अर्थ के कार्य्य (स्थः) हैं । उस घर में (भृतम्) पोषण करने हारे (पुरीष्यम्) रक्षा करने में उत्तम (अग्निम्) अग्नि को ग्रहण करके (संवसाथाम्) अच्छे प्रकार आच्छादन करके बसो ॥ ३० ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के साथ सत्कार और उपकार पूर्वक क्रिया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से युक्त सब ऋतुओं में सुखदायक सब ओर की रक्षा और अग्नि आदि साधनों से युक्त घरों को बना के उस में सुख पूर्वक निवास करें ॥ ३० ॥

संवसाथामित्यस्य गृत्समदऋषिः । जायापती देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त वि० ॥

सं वसाथाᳬस्वर्विदा समीचीउरसात्मना। अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥३१॥

पदार्थः-हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों जो (समीची) अच्छे प्रकार पदार्थों को जानने (भरिष्यन्ती) और सब का पालन करने हारे (स्वर्विदा) सुख को प्राप्त होते हुए (ज्योतिष्मन्तम्) अच्छे प्रकार से युक्त (अन्तः) मध्य पदार्थों के बीच वर्त्तमान (अग्निम्) बिजुली को (इत्) ही (आत्मना) (उरसा) अपने अन्तःकरण से (अजस्रम्) निरन्तर (संवसाथाम्) अच्छी तरह आच्छादन करो तो लक्ष्मी को भोग सको ॥३१॥

भावार्थः-जो गृहस्थ मनुष्य बिजुली को उत्पन्न करके ग्रहण कर सकते हैं वे व्यवहार में दरिद्र कभी नहीं होते ॥३१॥

पुरीष्यइत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वान् पुरुष बिजुली को कैसे उत्पन्न करे यह वि० ॥

पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने। त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ३२ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) क्रिया की कुशलता को सिद्ध करने हारे विद्वन् जो (वाघतः) शास्त्रवित् आप (पुरीष्यः) पशुओं को सुख देने हारे (असि) हैं उन (त्वा) आप को (अथर्वा) रक्षक (प्रथमः) उत्तम (विश्वभराः) सब का पोषक विद्वान् (विश्वस्य) सब संसार के (मूर्ध्नः) ऊपर वर्त्तमान (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से (अधि) समीप अग्नि को (निरमन्थत्) नित्य मन्थन करके ग्रहण करता है वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥३२॥

भावार्थः-जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष होवें वे अपने अच्छे विचा-

र और पुरुषार्थ से अग्नि आदि की पदार्थ विद्या को प्रसिद्ध करके सब मनुष्यों को शिक्षा करें ॥ ३२ ॥

तमुत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

तमु॑ त्वा द॒ध्यङ्ङृषिः॑ पु॒त्र ई॑धे॒ अथ॑र्वणः । वृ॒त्र॒हणं॑ पुर॒न्द॒रम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः— हे राजन् जैसे (अथर्वणः) रक्षक विद्वान् का (पुत्रः) पवित्र शिष्य (दध्यङ्) सुख दायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ (ऋषिः) वेदार्थ जानने हारा (उ) तर्क वितर्क के साथ संपूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिस (वृत्रहणम्) सूर्य के समान शत्रुओं को मारने और (पुरन्दरम्) शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने वाले आप को (ईधे) तेजस्वी करता है वैसे उन आप को सब विद्वान् लोग विद्या और विनय से उन्नति युक्त करें ॥ ३३ ॥

भावार्थः–जो पुरुष वा स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़ के विद्वान् वा विदुषी होवें वे राजपुत्र और राजकन्याओं को विद्वान् और विदुषी कर के उनसे धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करावें ॥ ३३ ॥

तमुत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम् । ध॒न॒ञ्ज॒यꣳरणे॑रणे ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष जो आप (पाथ्यः) अन्न जल आदि पदार्थों की सिद्धि में कुशल (वृषा) पराक्रमी शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं (तम्) पूर्वोक्त पदार्थ विद्या जानने (धनंजयम्) शत्रुओं से धन जीतने (उ) और

दस्युहन्तमम्) अतिशय करके डाकुओं को मारनेवाले (रथा) आप की रों की सेना राजधर्म की शिक्षा से (अनीषे) प्रदीप्त करें ॥ ३४ ॥

भावार्थः—राजा तथा राजपुरुषों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा वि- नों से विनय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चोरों मार शत्रुओं को जीत कर परम ऐश्वर्य्य की उन्नति करें ॥ ३४ ॥

सीदेत्यस्य देवश्रवोदेववातावृषी । होतादेवता ।

निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् का क्या काम है यह वि० ॥

सीदं होतः स्व उं लोके चिकित्वान्त्सादयां यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौं । देवावीर्देवान्हविषां यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयोंधाः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् (होतः) दान देने वाले (चिकि- त्वान्) विज्ञान से युक्त आप (लोके) देखने योग्य (स्वे) अपने में (सीद) स्थिर लिये (सुकृतस्य) अच्छे कर्म योग्य कर्म करने हारे धर्मात्मा के (योनौ) रण में (यज्ञम्) धर्मयुक्त राज्य और प्रजा के व्यवहार को (सादय) प्त कराइये (हविषा) देने लेने योग्य न्याय से (देवावीः) विद्वानों वा देव्य गुणों को (यजासि) सत्कार सेवा संयोग कीजिये (यजमाने) राजा आदि मनुष्यों में (वयः) बड़ी उमर को (धाः) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि इस जगत् में दो वर्म निर- तर करें । प्रथम ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोग रहित बल से युक्त और पूर्ण अवस्थावाला करें, दूसरे विद्या और शिक्षा की कुशलता के ग्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार बढ़ावें कि जिस से सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुए सब काल में आनन्द भोगें ॥ ३५ ॥

निहोतेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों का कर्त्तव्य अग०॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२॥ असदत्सुदक्षः। अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः॥ ३६॥

पदार्थः—जो जन मनुष्यजन्म को पा के (होतृषदने) दानशील विद्वानों के स्थान में (दीदिवान्) धर्मयुक्त व्यवहार का चाहने (त्वेषः) शुभगुणों से प्रकाशमान (विदानः) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने (शुचिजिह्वः) सत्यभाषण से पवित्र वाणीयुक्त (सुदक्षः) अच्छे बल वाला (अदब्धव्रतप्रमतिः) रक्षा करने योग्य धर्माचरणरूपी व्रतों से उत्तम बुद्धियुक्त (वसिष्ठः) अत्यन्त बसने (सहस्रम्भरः) असंख्य शुभगुणों को धारण करने वाला (होता) शुभगुणों का ग्राहक पुरुष निरन्तर (न्यसदत्) स्थित होवे तो वह संपूर्ण सुख को प्राप्त हो जावे॥ ३६॥

भावार्थः—जब माता पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देके पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थितिपूर्वक पढ़वावें तब वे कन्या और पुत्र सूर्य्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों॥ ३६॥

संसीदस्वेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

इस पठनपाठन विषय में अध्यापक कैसा होवे यह वि०॥

सꣳसीदस्व महाँ२॥ असि शोचस्व देववीतमः। विधूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्॥ ३७॥

पदार्थः—हे (प्रशस्त) प्रशंसा के योग्य (मियेध्य) दुष्टों को पृथक् करने वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् (देववीतमः) विद्वानों को अत्यन्त

हुए आप (विधूमम्) निर्मल (दर्शतम्) देखने योग्य (अरुषम्) सुन्दर रूप को (सृज) सिद्ध कीजिये तथा (शोचस्व) पवित्र हूजिये । जिस कारण आप (महान्) बड़े २ गुणों में युक्त विद्वान् (असि) हैं । इसलिये पढ़ाने की गद्दी पर (संसीदस्व) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों का अत्यन्त प्रिय अच्छे रूपगुण और लावण्य से युक्त पवित्र बड़ा धर्मात्मा आप्त विद्वान् होवे वही शास्त्रों के पढ़ाने को समर्थ होता है ॥ ३७ ॥

अपोदेवीरित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । स्वराड्भुरिक्-सारिणीबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आगे जल आदि पदार्थों के शोधने से प्रजा में क्या होता है इस वि० ॥

अपो देवीरुपं सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः । तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष आप (मधुमती.) प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त (देवीः) पवित्र (अपः) जलों को (उपसृज) उत्पन्न कीजिये जिस से (तासाम्) उन जलों के (आस्थानात्) आश्रय से (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों वाली (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियों को (प्रजाभ्यः) रक्षा करने योग्य प्राणियों के (अयक्ष्माय) यक्ष्मा आदि रोगों की निवृत्ति के लिये (उज्जिहताम्) प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रक्खे । एक जो सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु वर्षा जल और ओषधियों को शुद्ध करें। दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोग रहित रक्खे। इस कर्म के विना संसार में सार्वजनिक सुख नहीं हो सकता ॥३८॥

सन्नहत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वायुर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ स्त्रीपुरुष का कर्त्तव्य कर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सन्ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्। यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे पत्नि रानी (उत्तानायाः) बड़े शुभलक्षणों के विस्तार से युक्त (ते) आप का (यत्) जो (विकस्तम्) अनेक प्रकार से शिक्षा को प्राप्त हुआ (हृदयम्) अन्तःकरण है उस को यत्न से शुद्ध हुआ (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला (वायुः) पवन (संदधातु) अच्छे प्रकार पुष्ट करे हे (देव) अच्छे सुख देने हारे पति स्वामी (यः) जो विद्वान् आप (प्राणथेन) सुख के हेतु प्राण वायु से (देवानाम्) धर्मात्मा विद्वानों का हित अनेक प्रकार से शिक्षित हृदय को (चरसि) प्राप्त होते हो उस (कस्मै) सुखस्वरूप (तुभ्यम्) आप के लिये मुझ से (वषट्) क्रिया की कुशलता (अस्तु) प्राप्त होवे ॥ ३९ ॥

भावार्थः-पूर्ण जवान पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे उस के साथ विरुद्ध कभी न करे। जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उस का अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर कार्य्यों संभालें ॥ ३९ ॥

सुजात इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय का उपदेश अ० ॥

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः। वासो अग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (विभावसो) प्रकाश सहित धन से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (ज्योतिषा) विद्या प्रकाश के साथ (सुजातः) अच्छे प्रसिद्ध आप (क्षयः) सुखदायक (वरूथम्) श्रेष्ठ (शर्म) घर को (आसदः) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (विश्वरूप्यम्) अनेक चित्र विचित्ररूपी (वासः) वस्त्र को (संवसस्व) धारण कीजिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० विवाहित स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रक्खें ॥ ४० ॥

उदु तिष्ठेत्यस्य विश्वमना ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी विद्वानों का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया। दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे (स्वध्वर) अच्छे माननीय व्यवहार करने वाले सज्जन विद्वन् गृहस्थ आप निरन्तर (उत्तिष्ठ) पुरुषार्थ से उन्नति को प्राप्त हो के अन्य मनुष्यों को प्राप्त सदा किया कीजिये (देव्या) शुद्ध विद्या और शिक्षा से युक्त (धिया) बुद्धि वा क्रिया से (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (सुशुक्वनिः) अच्छे पवित्र पदार्थों के विभाग करने हारे आप (उ) तर्क के साथ (दृशे) देखने को (बृहता) बड़े (भासा) प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दर प्रशंसित गुणों के साथ सब विद्याओं को (याहि) प्राप्त हूजिये। और हमारे लिये भी सब विद्याओं को प्राप्त कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-विद्वान् लोगों को चाहिये कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दान से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करें। क्योंकि अच्छी शिक्षा के विना मनुष्यों के सुख के लिये और कोई भी आश्रय नहीं है। इसलिये सब को उचित है कि आलस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्वइत्यस्य कण्वऋषिः। अग्निर्देवता। उपरिष्टाद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्व ऊ षुण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे अध्यापक विद्वान् आप (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में रहने वाले (देवः) प्रकाशक (सविता) सूर्य के (न) समान (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (सुतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये (यत्) जो आप (अञ्जिभिः) प्रकट करने हारे किरणों के सदृश (वाघद्भिः) शुद्ध विद्या में कुशल बुद्धिमानों के साथ (वाजस्य) विज्ञान के (सनिता) सेवन हारे हूजिये (उ) उसी को हम लोग (विह्वयामहे) विशेष करके बुलाते हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—अध्यापक और उपदेशक विद्वान् को चाहिये कि जैसे सूर्य भूमि और चन्द्रमा आदि लोकों से ऊपर स्थित होके अपनी किरणों से सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है। वैसे उत्तम गुणों से विद्या और न्याय का प्रकाश करके सब प्रजाओं को सदा सुशोभित करें ॥ ४२ ॥

ात इत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता।
वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

ता　　हार अगले मन्त्र में कहा है ॥

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु । चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जो आप जैसे (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी में (जातः) प्रसिद्ध (चारुः) सुन्दर (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में (विभृतः) विशेष करके धारण वा पोषण किया (चित्रः) आश्चर्यरूप (गर्भः) स्वीकार करने योग्य सूर्य्य (मातृभ्यः) मान्य करनेहारी माता अर्थात् किरणों से (तमांसि) रात्रियों तथा (अक्तून्) अन्धेरों को (पर्य्यधिकनिक्रदत्) सब ओर से अधिक करके चलता हुआ (गाः) चलाता है वैसे ही (शिशुः) बालक (गाः) विद्या को प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्मचर्य्य आदि अच्छे नियमों से उत्पन्न किया पुत्र विद्या पढ़ के माता पिता को सुख देता है वैसे ही माता पिता को चाहिये कि प्रजा को सुख देवें ॥ ४३ ॥

स्थिरो भवेत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ माता पिता अपने सन्तानों को किस प्रकार शिक्षा करें यह वि० ॥

स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त पुत्र तू विद्याग्रहण के लिये (स्थिरः) दृढ़ (भव) हो (वाजी) नीति को प्राप्त होके (वीड्वङ्गः) दृढ़ अति बलवान् अवयवों से युक्त (आशुः) शीघ्र कर्म करने वाला (भव) हो तू (अग्नेः) अग्नी संबन्धी (सुषदः) सुन्दर व्यवहारों में स्थित और (पुरीषवाहणः) पालन आदि शुभकर्मों को प्राप्त कराने वाला (पृथुः) सुख का विस्तार करने हारा (भव) हो ॥ ४४ ॥

भावार्थः—हे अच्छे सन्तानों तुम को चाहिये कि ब्रह्मचर्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल पूर्ण दृढ़ कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अस्त्र विद्या से शत्रुओं का विनाश करो इस प्रकार माता पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें॥ ४४॥

शिवइत्यस्य चित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट्पथ्या-
बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उन को प्रजा में कैसे वर्तना चाहिये इस वि०॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा व-
नस्पतीन्॥ ४५॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणों के समान प्रिय सुसन्तान तू (मानुषीभ्यः) मनुष्य आदि (प्रजाभ्यः) प्रसिद्ध प्रजाओं के लिये (शिवः) कल्याणकारी मङ्गलमय (भव) हो (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि के विषय में (मा) मत (अभिशोचीः) अतिशोच मत कर (अन्तरिक्षम्) अवकाश के विषय में (मा) मत शोच कर और (वनस्पतीन्) वट आदि वनस्पतियों का शोच मत कर॥ ४५॥

भावार्थः—सुसन्तानों को चाहिये कि प्रजा के प्रति मङ्गलाचारी हो के पृथिवी आदि पदार्थों के विषय में शोक रहित होवें। किन्तु इन सब पदार्थों की रक्षा विधान कर उपकार के लिये उत्साह के साथ प्रयत्न करें॥४५॥

प्रैतुवाजीत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवताः। ब्राह्मी-
बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी उक्त वि०॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा।
भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा। वृषाग्निं

वृषणं भरन्नपां गर्भँ समुद्रियम् । अग्न आ-
याहि वीतये ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् उत्तम सन्तान तू (कनिक्रदत्) चलते और (नानदत्) शीघ्र शब्द करते हुए (रासभः) देने योग्य (पत्वा) चलने वाले वा (वाजी) घोड़ा के समान (आयुषः) नियत वर्षों की अवस्था से (पुरा) पहिले (मा) न (प्रैतु) मरे (पुरीष्यम्) रक्षा के हेतु पदार्थों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली (भरन्) धारण करता हुआ (मा-पादि) इधर उधर मत भाग जैसे (वृषा) अतियलवान् (अपाम्) जलों के (समुद्रियम्) समुद्र में हुए (गर्भम्) स्वीकार करने योग्य (वृषणम्) वर्षाकरने हारे (अग्निम्) सूर्य्य को (भरन्) धारणकरता हुआ (वीतये) सुखों की व्याप्ति के लिये (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म्म युक्त व्यवहार की उन्नति करावें ॥ ४६ ॥

ऋतमित्यस्य त्रितऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्ब्राह्मी त्रि-
ष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या २ आचरण करना और क्या २ छोड़ना
चाहिये यह वि० ॥

ऋतँ सत्यमृतँ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गि-
रस्वद्भरामः । ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतँ
शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः । व्यस्यन् विश्वा
अनिरा अमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि ॥४७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (अतम्) यथार्थ (सत्यम्) नाश रहित (अतम्) अव्यभिचारी (सत्यम्) सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना (पुरीष्यम्) रक्षा के साधनों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली को (अङ्गिरस्वत्) वायु के तुल्य (भरामः) धारण करते हैं (एतम्) इस पूर्वोक्त (आयन्तम्) प्राप्त हुए (शिवम्) मङ्गलकारी (अग्निम्) बिजुली को प्राप्त हो के तुम लोग भी (अभिमोदध्वम्) आनन्दित रहो जो (ओषधयः) जौ आदि ओषधि (युष्माः) तुम्हारे (प्रति) लिये प्राप्त होवें उन को हम लोग धारण करते हैं वैसे तुम भी करो। हे वैद्य आप (विश्वाः) सब (अनिराः) जो निरन्तर देने योग्य न हों (अमीवाः) ऐसी रोगों की पीड़ा (व्यस्यन्) अनेक प्रकार से अलग करते और (अत्र) इस आयुर्वेद विद्या में (निषीदन्) स्थित हो के (नः) हम लोगों की (दुर्मतिम्) दुष्ट बुद्धि को (अपजहि) सब प्रकार दूर कीजिये इस प्रकार इस वैद्य की प्रार्थना करो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी पर कारण ब्रह्म दूसरा कारण यथार्थ अविनाशी अव्यक्त जीव सत्य भाषणादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अग्नि और ओषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के ज्वर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषों को छुड़ा के मद्य आदि द्रव्यों के त्याग से अच्छी बुद्धि कर और सुख को प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहो। और कभी इस से विपरीत आचरण कर सुख को छोड़ के दुःखसागर में मत गिरो ॥ ४७ ॥

ओषधय इत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

स्त्रियों को क्या २ आचरण करना चाहिये यह वि० ॥

ओषधयः प्रति गृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः। अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासदत्॥४८॥

पदार्थः—हे स्त्रियो तुम लोग जो (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि

हैं जिन से (अयम्) यह (ऋत्वियः) ठीक ऋतुकाल को प्राप्त हुआ (गर्भः) गर्भ (वः) तुम्हारे (प्रत्नम्) प्राचीन (सधस्थम्) नियत स्थान गर्भाशय को प्राप्त होवे उन (पुष्पवतीः) श्रेष्ठ पुष्पों वाली (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त ओषधियों को (प्रतिगृभ्णीत) निश्चय करके ग्रहण करो ॥४८॥

भावार्थः—माता पिता को चाहिये कि अपनी कन्याओं को व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यकशास्त्र पढ़ावें । जिन से वे कन्या लोग रोगों का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाली ओषधियों को जान और अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४८ ॥

विपाजसेत्यस्योत्कील ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या २ प्रतिज्ञा करें यह वि०॥

विपाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे पते जो आप (पृथुना) विस्तृत (वि) विविध प्रकार के (पाजसा) बल के साथ (शोशुचानः) शीघ्र शुद्ध सदा वर्त्तें और (अमीवाः) रोगों के समान प्राणियों को पीड़ा देने हारी (रक्षसः) दुष्ट . (द्विषः) शत्रु रूप व्यभिचारिणी स्त्रियों को (बाधस्व) ताड़ना देवें तो मैं (बृहतः) बड़े (सुशर्मणः) अच्छे शोभायमान (सुहवस्य) सुन्दर लेना देना व्यवहार जिस में हो ऐसे (अग्नेः) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान आपके (शर्मणि) सुखकारक घर में और (प्रणीतौ) उत्तम धर्मयुक्त नीति में आप की स्त्री (स्याम्) होऊं ॥ ४९ ॥

भावार्थः—विवाह समय में स्त्री पुरुष को चाहिये कि व्यभिचार छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का संग सर्वदा छोड़ आपस में भी अति विषयासक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होके पर-

स्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले सन्तानों को उत्पन्न करें । क्योंकि स्त्री वा पुरुष के लिये अप्रिय आयु का नाशक निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं है इसलिये इस व्यभिचार कर्म को सब प्रकार छोड़ और धर्माचरण करने वाला हो के पूर्ण अवस्था के सुख को भोगें ॥ ४९ ॥

आपोहिष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

आपो हिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

पदार्थः-हे (आपः) जलों के समान शुभगुणों में व्याप्त होने वाली श्रेष्ठ स्त्रियो जो तुम लोग (मयोभुवः) सुख भोगने वाली (स्थ) हो (ताः) वे तुम (ऊर्जे) बलयुक्त पराक्रम और (महे) बड़े २ (चक्षसे) कहने योग्य (रणाय) सङ्ग्राम के लिये (नः) हम लोगों को (हि) निश्चय करके (दधातन) धारण करो ॥ ५० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे स्त्री अपने पतियों को रक्खें वैसे पति भी अपनी २ स्त्रियों को सदा सुख देवें । ये दोनों युद्ध कर्म में भी पृथक् २ न वर्त्तें । अर्थात् इकट्ठे ही सदा वर्त्ताव रक्खें ॥ ५० ॥

योवइत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः ।
गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

पदार्थः-हे स्त्रियो (वः) तुम्हारा और (नः) हमारा (इह) इस गृहाश्रम में जो (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) कर्त्तव्य आनन्द है (तस्य) उस का (मातरः) (उशतीरिव) जैसे कामयमान माता अपने पुत्रों का सेवन करती हैं वैसे (भाजयत) सेवन करो ॥ ५१ ॥

भावार्थः-स्त्रियों को चाहिये कि जैसे माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं वैसे अपने २ पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें। ऐसे ही अपनी२ स्त्रियों की पति भी सेवा करें। जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ५१ ॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः।
गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥
फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शान्त स्वभाव से वर्त्तमान स्त्रियो जो तुम लोग (नः) हम लोगों के (क्षयाय) निवासस्थान के लिये (जिन्वथ) तृप्त और (जनयथ) अच्छे सन्तान उत्पन्न करो उन (वः) तुम लोगों को हम लोग (अरम्) सामर्थ्य के साथ (गमाम) प्राप्त होवें। जिसधर्म युक्त व्यवहार की प्रतिज्ञा करो उस का पालन करने वाली होओ और उसी का पालन करने वाले हम लोग भी होवें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जिस पुरुष की जो स्त्री वा जिस स्त्री का जो पुरुष हो वे आपस में किसी का अनिष्ट चिन्तन कदापि न करें ऐसे ही सुख और सन्तानों से शोभायमान हो के धर्म्म से घर के कार्य्य करें ॥ ५२ ॥

मित्र इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। मित्रो देवताः।
उपरिष्टाद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥
फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा

सह । सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वासꣳसृजामि प्रजाभ्यः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे पते जो आप (मित्रः) सब के छोके मित्र (प्रजाभ्यः) पालने योग्य प्रजाओं को (अयक्ष्माय) आरोग्य के लिये (ज्योतिषा) विद्या और न्याय की अच्छी शिक्षा के प्रकाश के (सह) साथ (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष (च) और (भूमिम्) पृथिवी के साथ (संसृज्य) सम्बन्ध कर के मुझ को सुख देते हो । उस (सुजातम्) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (जातवेदसम्) वेदों के जानने हारे (त्वा) आप को मैं (संसृजामि) प्रसिद्ध करती हूं ॥ ५३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त हो के अच्छे २ सन्तानों को उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

रुद्राइत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । रुद्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषां भानुरजस्त्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो (इव) जैसे (रुद्राः) प्राणवायु के अवयव रूप समानादि वायु (संसृज्य) सूर्य को उत्पन्न कर के (पृथिवीम्) भूमि को (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) प्रकाश के साथ (समीधिरे) प्रकाशित करते हैं (तेषाम्) उन से उत्पन्न हुआ (शुक्रः) कान्तिमान् (भानुः) सूर्य (देवेषु) दिव्य पृथिवी आदि में (अजस्त्रः) निरन्तर (रोचते) प्रकाश करता है वैसेही विद्यारूपी न्याय सूर्य को उत्पन्न कर के प्रजा पुरुषों को प्रकाशित और उन से प्रजाओं में दिव्य सुख का प्रचार करो ॥ ५४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे वायु सूर्य का सूर्य प्रकाश का प्रकाश नेत्रों से देखने के व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस के सुख के साधन उपसाधन करने वाले होके सुखों को सिद्ध करें ॥५४॥

संसृष्टामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । सिनीवाली देवता ।
विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
स्त्रियों को कैसी होनी चाहिये यह वि० ॥

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे पते आप जैसे कारीगर मनुष्य (हस्ताभ्याम्) हाथों से (कर्मण्याम्) क्रिया से सिद्ध की हुई (मृदम्) मट्टी को योग्य करता है वैसे (धीरैः) अच्छा संयम रखने (वसुभिः) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए (रुद्रैः) और जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या बल को पूर्ण किया हो उन्हों ने (संसृष्टाम्) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई हो उस ब्रह्मचारिणी युवती को (मृद्वीम्) कोमल गुण स्वभाव वाली (कृणोतु) कीजिये और जो स्त्री (सिनीवाली) प्रेमबद्ध कन्याओं को बलवान् करने वाली है (ताम्) उस को अपनी स्त्री करके सुखी कीजिये ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे कुम्हार आदि कारीगर लोग जल मट्टी को कोमल कर उस से घड़े आदि पदार्थ बना के सुख से काम सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् माता पिता से शिक्षा को प्राप्त हुए हृदय को प्रिय ब्रह्मचारिणी कन्याओं को पुरुष लोग विवाह के लिये ग्रहण करके सब काम सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

सिनीवालीत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता ।
विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर भी पूर्वोक्त वि० ॥

सि॒नी॒वा॒ली सु॑कप॒र्दा सु॑कुरी॒रा स्वौ॑प॒शा।
तुभ्य॑मदिते म॒ह्योखां द॑धातु॒ हस्त॑योः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (महि) सत्कार के योग्य (अदिते) अखंडित आनन्द ... गने वाली स्त्री जो (सिनीवाली) प्रेम से युक्त (सुकपर्दा) अच्छे ... ली (सुकुरीरा) सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने हारी और (स्वौपशा) ... स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली जिस (तुभ्यम्) तेरे (हस्तयोः) ... हाथों में (उखाम्) दाल आदि रांधने की बटलोई को (दधातु) ... करे (सा) उस का तू सेवन कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः—श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर ... को रक्खें कि जिस से सब पाक आदि की सेवा ठीक २ समय पर होती रहे ॥

उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदितिर्देवता।
भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी वही वि० ॥

उखां॑ कृणोतु॒ शक्त्या॑ बा॒हुभ्या॒मदि॑तिर्धि॒या।
मा॒ता पु॒त्रं यथो॒पस्थे॒ साग्निं बि॑भर्तु॒ गर्भ॒ आ।
म॒खस्य॒ शिरो॑ऽसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ पुरुष जिस कारण तू (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तमाङ्ग के समान (असि) है इस कारण आप (धिया) बुद्धि वा कर्म तथा (शक्त्या) पाक विद्या के सामर्थ्य और (बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (उखाम्) पकाने की बटलोई को (कृणोतु) सिद्ध कर जो (अदितिः) जननी आप की स्त्री है (सा) वह (गर्भे) अपनी कोख में (यथा) जैसे माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रम्) पुत्र को सुखपूर्वक बैठावे वैसे (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य को (बिभर्तु) धारण करे ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—कुमार स्त्री पुरुषों को योग्य है कि ... साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर बल बुद्धि और

पराक्रमयुक्त सन्तान उत्पन्न होने के लिये वैद्यकशास्त्र की रीति से बड़ी २ ओषधियों से पाक बना के और विधिपूर्वक गर्भाधान करके पीछे पथ्य से रहें और आपस में मित्रता के साथ वर्त्त के पुत्रों के गर्भाधानादि कर्म किया करें॥ ५७ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिंधुद्वीप ऋषिः । वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवताः ।
पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य चोत्कृती छन्दसी । षड्जः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या कर के क्या करें यह वि० ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातान्यजमानायाऽऽदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषङ्गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा। सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (महि) सत्कार के योग्य (अदिते) अखण्डित आनन्द भोगने वाली स्त्री जो (सिनीवाली) प्रेम से युक्त (सुकपर्दा) अच्छे केशों वाली (सुकुरीरा) सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने हारी और (स्वौपशा) अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली जिस (तुभ्यम्) तेरे (हस्तयोः) हाथों में (उखाम्) दाल आदि रांधने की बटलोई को (दधातु) धारण करे (सा) उस का तू सेवन कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः—श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर दासियों को रक्खें कि जिस से सब पाक आदि की सेवा ठीक २ समय पर होती रहे ॥५६॥

उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। अदितिर्देवता।
भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥
फिर भी वही वि०॥

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया। माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ। मखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ पुरुष जिस कारण तू (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तमाङ्ग के समान (असि) है इस कारण आप (धिया) बुद्धि वा कर्म से तथा (शक्त्या) पाक विद्या के सामर्थ्य और (बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (उखाम्) पकाने की बटलोई को (कृणोतु) सिद्ध कर जो (अदितिः) जननी आप की स्त्री है (सा) वह (गर्भे) अपनी कोख में (यथा) जैसे माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रम्) पुत्र को सुखपूर्वक बैठावे वैसे (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य को (बिभर्तु) धारण करे ॥५७॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—कुमार स्त्री पुरुषों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर बल बुद्धि और

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री जो तू (अङ्गिरस्वत्) धनंजय प्राण वायु के समतुल्य (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (पृथिव्यसि) विस्तृत सुख करने हारी है उस (त्वा) तुझ को (गायत्रेण) वेद में विधान किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से (वसवः) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य रहने वाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) करें। हे कुमार ब्रह्मचारी पुरुष जो तू (अङ्गिरस्वत्) प्राणवायु के समान निश्चल है और (पृथिवी) पृथिवी के समान क्षमायुक्त (असि) है जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) उक्त वसु संज्ञक विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपादन किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से मेरा पति (कृण्वन्तु) करें। सो तू (मयि) अपनी प्रियपत्नी मुझ में (प्रजाम्) सुन्दर सन्तानों (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) गौ पृथिवी वा वाणी के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) स्थापन कर। मैं तू दोनों (सजातान्) एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को (यजमानाय) विद्या देने हारे आचार्य को विद्या ग्रहण के लिये समर्पण करें। हे स्त्रि जो तू (अङ्गिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (अन्तरिक्षम्) अविनाशी प्रेम युक्त (असि) है उस (त्वा) तुझ को (रुद्राः) रुद्र संज्ञक चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवने हारे विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेद में कहे हुए (छन्दसा) त्रिष्टुप्छन्द से मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) करें। हे वीर पुरुष जो तू आकाश के समान निश्चल है और दृढ़ प्रेम से युक्त है जिस तुझ को चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे विद्वान् लोग वेद में प्रतिपादन किये त्रिष्टुप्छन्द से मेरा स्वामी करें। सो तू (मयि) अपनी प्रियपत्नी मुझ में (प्रजाम्) बल तथा सत्यधर्म से युक्त सन्तानों (रायः) राज्यलक्ष्मी की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) पढ़ाने के अधिष्ठातृत्व और (सुवीर्यम्) अच्छे पराक्रम को (धारय) धारण कर मैं तू दोनों (सजातान्) एक उदर से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर वेद विद्या की शिक्षा होने के लिये (यजमानाय) अङ्ग उपाङ्गों के सहित वेद पढ़ाने हारे अध्यापक को देवें। हे विद्वान् स्त्री जो तू (अङ्गिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) अचल (असि) है (द्यौः) सूर्य्य के सदृश प्रकाशमान

(असि) है उस (त्वा) तुझ को (आदित्याः) अड़तालीसवर्ष ब्रह्मचर्य कर के पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वान् लोग (जागतेन) वेद में कहे (छन्दसा) जगती छन्द से मेरी पत्नी (कृण्वन्तु) करें। हे विद्वान् पुरुष जो तू आकाश के तुल्य दृढ़ और सूर्य्य के तुल्य तेजस्वी है उस तुझ को अड़तालीसवर्ष ब्रह्मचर्य सेवने वाले पूर्ण विद्या से युक्त धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदोक्त जगती छन्द से मेरा पति करें। वह तू (मयि) अपनी प्रिय भार्य्या मुझ में (प्रजाम्) शुभगुणों से युक्त सन्तानों (रायः) चक्रवर्त्ति राज्य लक्ष्मी को (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) संपूर्ण विद्या के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों (प्रजाताम्) अपने सन्तानों को जन्म से उपदेश करके सब विद्या ग्रहण करने के लिये (यजमानाय) क्रिया कौशल के सहित सब विद्याओं के पढ़ाने हारे आचार्य्य को समर्पण करें। हे सुन्दर ऐश्वर्य युक्त पति जो तू (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (दिशः) सब दिशाओं में कीर्त्तिवाली (असि) है। उस तुझ को (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में शोभायमान (विश्वे) सब (देवाः) उपदेशक विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) वेद में कहे (छन्दसा) अनुष्टुप्छन्द से मेरे आधीन (कृण्वन्तु) करें हे पुरुष जो तू सूत्रात्मा वायु के सदृश स्थिर है (दिशः) सब दिशाओं में कीर्त्तिवाला (असि) है जिस (त्वा) तुझ को सब प्रजा में शोभायमान सब विद्वान् लोग मेरे आधीन करें। सो आप (मयि) मुझ में (प्रजाम्) शुभ लक्षण युक्त सन्तानों (रायः) सब ऐश्वर्य की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) वाणी की चतुराई और (सुवीर्य्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों अच्छा उपदेश होने के लिये (प्रजाताम्) अपने सन्तानों को (यजमानाय) सत्य के उपदेशक अध्यापक के समीप समर्पण करें ॥ ५८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जब स्त्री पुरुष एक दूसरे की परीक्षा करके आपस में दृढ़ प्रीति वाले होवें। तब वेदोक्त रीति से पढ़ कर विस्तार और वेदोक्त नियमानुसार विवाह करके धर्म से सन्तानों को

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री जो तू (अङ्गिरस्वत्) प्र
प्राण वायु के समतुल्य (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (पृथिव्यसि
स्थल शुद्ध करने हारी है उस (त्वा) तुझ को (गायत्रेण) वेद में
किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से (वसवः) चौबीस वर्ष
रहने वाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) करें। हे कुमार
पुरुष जो तू (अङ्गिरस्वत्) प्राणवायु के समान निश्चल है (
पृथिवी के समान क्षमायुक्त (असि) है उस (त्वा) तु
चक्र वसु संज्ञक विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपा
सा) गायत्री आदि छन्दों से मेरा पति (कृण्वन्तु) करें
अपनी विवाहिता मुझ में (प्रजाम्) सुन्दर सन्तानों
(पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) गौ पृथिवी वा वाणी
वीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) स्थापन क
तान्) एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब सन्तानों
देने हारे आचार्य को विद्या ग्रहण के लिये
(अङ्गिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा)
[illegible]

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवता । स्वराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग पढ़ने द्वारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को कैसे शुद्ध करें यह वि० ॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् । विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे प्रशस्तवाणि जो (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद के (छन्दसा) गायत्री छन्द से (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान (धूपयन्तु) संस्कार युक्त करें (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेदोक्त (छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से (अङ्गिरस्वत्) विज्ञान के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें । (आदित्याः) सर्वोत्तम अध्यापक विद्वान् लोग (जागतेन) (छन्दसा) वेदोक्त जगती छन्द से (अङ्गिरस्वत्) ब्रह्माण्ड के शुद्ध वायु के सदृश (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) धर्म युक्त व्यवहार के ग्रहण से संस्कार करें (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में सत्य धर्म और विद्या के प्रकाश करने वाले (विश्वे) सब (देवाः) सत्योपदेष्टा विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) वेदोक्त अनुष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (अङ्गिरस्वत्) बिजुली के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) सत्योपदेश से संस्कार करें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य युक्त राजा (त्वा) तेरा (धूपयतु) राजनीति विद्या से संस्कार करे । (वरुणः) श्रेष्ठ न्यायाधीश (त्वा) तुझ को (धू-

उत्पन्न करें । जब कन्या पुत्र आठ वर्ष के हों तब माता पिता उनको अच्छी शिक्षा देवें । इसके पीछे ब्रह्मचर्य धारण करा के विद्या पढ़ने के लिये लिये अपने घर से बहुत दूर आप्त विद्वान् पुरुषों और आप्त विद्वान्-स्त्रियों की पाठशालाओं में भेज देवें । वहां पाठशाला में जितने धन का खर्च करना उचित हो उतना करें । क्योंकि सन्तानों को विद्यादान के बिना कोई उपकार वा धर्म नहीं बन सकता । इस लिये इस का निरन्तर अनुष्ठान किया करें ॥ ५८ ॥

अदित्या इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता ।
आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु । कृत्वाय सा महीमुखाम्मृन्मयीं योनिमग्नये । पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे पढ़ाने हारी विद्वान् स्त्री जिस कारण तू (अदित्यै) विद्या प्रकाश के लिये (रास्ना) दानशील (असि) है इसलिये (ते) तुझ से (बिलम्) ब्रह्मचर्य को धारण (कृत्वाय) करके (अदितिः) पुत्र और कन्या विद्या को (गृभ्णातु) ग्रहण करें सो (सा) तू (अदितिः) माता (मृन्मयीम्) मट्टी की (योनिम्) मिली और पृथक् (महीम्) बड़ी (उखाम्) पकाने की बटलोई को (अग्नये) अग्नि के निकट (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (प्रायच्छत्) देवे विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त बटलोई में (इति) इस प्रकार (श्रपयान्) अन्नादि पदार्थों को पकाओ ॥ ५९ ॥

भावार्थः—लड़के पुरुषों और लड़कियां स्त्रियों की पाठशाला में जा ब्रह्मचर्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखें और आहार विहार भी अच्छे नियम से सेवें । कभी विषय की कथा न सुनें । मद्य मांस आलस्य और अत्यन्त निद्रा को त्याग के पढ़ाने वाले की सेवा और उस के अनुकूल वर्त्त के अच्छे नियमों को धारण करें ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवता । स्वराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग पढ़ने हारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को कैसे शुद्ध करें यह वि० ॥

वसंवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दंसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वां धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दंसाङ्गिरस्वदांदित्यास्त्वां धूपयन्तु जागतेन छन्दंसाङ्गिरस्वत् । विश्वें त्वा देवा वैंश्वानरा धूपयन्त्वानुंष्टुभेन छन्दंसाङ्गिरस्वदिन्द्रंस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुंस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणि जो (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद के (छन्दसा) गायत्री छन्द से (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान (धूपयन्तु) संस्कार युक्त करें (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेदोक्त (छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से (अङ्गिरस्वत्) विज्ञान के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें । (आदित्याः) सर्वोत्तम अध्यापक विद्वान् लोग (जागतेन) (छन्दसा) वेदोक्त जगती छन्द से (अङ्गिरस्वत्) ब्रह्माण्ड के शुद्ध वायु के सदृश (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) धर्म युक्त व्यवहार के ग्रहण से संस्कार करें (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में सत्य धर्म और विद्या के प्रकाश करने वाले (विश्वे) सब (देवाः) सत्योपदेष्टा विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) वेदोक्त अनुष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (अङ्गिरस्वत्) बिजुली के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) सत्योपदेश से संस्कार करें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य युक्त राजा (त्वा) तेरा (धूपयतु) राजनीति विद्या से संस्कार करे । (वरुणः) श्रेष्ठ न्यायाधीश (त्वा) तुझ को (धू-

पयतु) ध्यान क्रिया से संयुक्त करे और (विष्णुः) सब विद्या और योगाङ्गों का वेत्ता योगीजन (त्वा) तुझ को (धूपयतु) योग विद्या से सं-स्कार युक्त करे तू इन सब की सेवा किया कर ॥ ६० ॥

भावार्थः—सब अध्यापक स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि सब श्रेष्ठ क्रियाओं से कन्या पुत्रों को विद्या और शिक्षा से युक्त शीघ्र करें । जिस से ये पूर्ण ब्रह्मचर्य ही करके गृहाश्रम आदि का यथोक्त काल में आचरण करें ॥ ६० ॥

अदितिष्ट्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदित्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः । वरूत्रीष्ट्वेत्युत्तरस्य प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् स्त्रियों कन्याओं को उत्तम शिक्षा से यथोक्त विद्या युक्त करके इसलोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करावें यह वि० ॥

अदि॑तिष्ट्वा दे॒वी वि॒श्वदे॑व्यावती पृथि॒व्याः
स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वत् ख॑नत्ववट दे॒वानां॑ त्वा प-
त्नीर्दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अ-
ङ्गिर॒स्वद्द॑धतूखे । धि॒षणा॑स्त्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्या-
वतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वद॒भीन्ध॑ता-
मुखे॒ वरू॑त्रीष्ट्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः
स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वच्छ्र॑पयन्तूखे॒ ग्नास्त्वा॑ दे॒वी-
र्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒ध[illegible] अ[illegible]
त्प॑चन्तूखे जन॑यस्त्वा छिन्न[illegible] वी

व्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तू-
खे ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे (अवट) खुदाई और निन्दा रहित बालक (विश्वदेव्यावती) सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली (अदितिः) अखण्ड विद्या पढ़ाने हारी (देवी) विद्वान् स्त्री (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुभस्थान में (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के समान (खनतु) जैसे भूमि को खोद के कूप जल निकाल करते हैं वैसे विद्यायुक्त करे। हे (मखे) ज्ञानयुक्त कुमारी (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्री लोग (विश्वदेव्यावतीः) संपूर्ण विद्वानों में अधिक विद्यायुक्त (देवीः) विदुषी (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (अङ्गिरस्वत्) प्राण के सदृश (त्वा) तुझ को (दधतु) धारण करें। हे (मखे) विज्ञान की इच्छा करने वाली (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में उत्तम (धिषणाः) प्रशंसित वाणीयुक्त बुद्धिमती (देवीः) विद्यायुक्त स्त्री लोग (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अभीन्धताम्) प्रदीप्त करें। हे (मखे) अन्न आदि पकाने की बटलोई के समान विद्या को धारण करने हारी कन्ये (विश्वदेव्यावतीः) उत्तम विदुषी (वरूत्रीः) विद्या ग्रहण के लिये स्वीकार करने योग्य (देवीः) रूपवती स्त्री लोग (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुद्ध स्थान में (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के तुल्य (श्रपयन्तु) शुद्ध तेजस्विनी करें। हे (मखे) ज्ञान चाहने हारी कुमारी (विश्वदेव्यावतीः) बहुत विद्यावानों में उत्तम (देवीः) शुद्ध विद्या से युक्त (ग्नाः) वेदवाणी को जानने वाली स्त्रीलोग (पृथिव्याः) भूमि के एक (सधस्थे) उत्तम स्थान में (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत) बिजुली के तुल्य (पचन्तु) दृढ़ बल धारिणी करें। हे (मखे) ज्ञान की इच्छा रखने वाली कुमारी (विश्वदेव्यावतीः) उत्तम विद्या पढ़ी (अच्छिन्नपत्राः) अखण्डित नवीन शुद्ध वस्त्रों को धारने वा यानों में चलने वाली (जनयः) शुभगुणों से प्रसिद्ध (देवीः) दिव्य गुणों को देने हारी स्त्री लोग (पृथि-

ष्ठ्याः) पृथिवी के (सधस्थे) उत्तम प्रदेश में (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) ओषधियों के रस के समान (पचन्तु) संस्कार युक्त करें। हे कुमारि कन्ये तू इन पूर्वोक्त सब स्त्रियों से ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या ग्रहण कर ॥ ६१ ॥

भावार्थः—माता पिता आचार्य्य और अतिथि अर्थात् भ्रमणशील विरक्त पुरुषों को चाहिये कि जैसे रसोइया बटलोई आदि पात्रों में अन्न का संस्कार कर के उत्तम सिद्ध करते हैं। वैसे ही बाल्यावस्था से लेके विवाह से पहिले २ लड़कों और लड़कियों को उत्तम विद्या और शिक्षा से सम्पन्न करें ॥ ६१ ॥

मित्रस्येत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। मित्रो देवता।
निचृद्गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उस के ऐश्वर्य्य की निरन्तर
रक्षा करे यह वि० ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री तू (चर्षणीधृतः) अच्छी शिक्षा से मनुष्यों का धारण करने हारे (मित्रस्य) मित्र (देवस्य) कमनीय अपने पति के (चित्रश्रवस्तमम्) आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थ जिस से हों ऐसे (सानसि) सेवने योग्य प्राचीन (द्युम्नम्) धन की (अवः) रक्षा कर ॥ ६२ ॥

भावार्थः—घर के काम करने में कुशल स्त्री को चाहिये कि घर के भीतर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक २ बढ़ाया करे ॥ ६२ ॥

देवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। भुरिग्
बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः

सुबाहुरुत शक्त्यां । अध्यंथमाना पृथिव्यामा-
शा दिशऽआपृण ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि (सुबाहुः) अच्छे जिस के भुजा (सुपाणिः) सुन्दर हाथ और (स्वङ्गुरिः) शोभायुक्त जिस की अङ्गुली हों ऐसा (सविता) सूर्य के समान ऐश्वर्यदाता (देवः) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से युक्त पति (शक्त्या) अपने सामर्थ्य से (पृथिव्याम्) पृथिवी पर स्थित (त्वा) तुझ को (उद्वपतु) वृद्धि के साथ गर्भवती करे और तू भी अपने सामर्थ्य से (अव्यथमाना) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी (आशाः) इच्छा और कीर्त्ति से सब (दिशः) दिशाओं को (आपृण) पूरण कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि आपस में प्रसन्न एक दूसरे को हृदय से चाहने वाले परस्पर परीक्षा कर अपनी २ इच्छा से स्वयम्वर विवाह अत्यन्त विषयासक्ति को त्याग ऋतुकाल में गमन करने वाले होकर अपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें। क्योंकि इसी से जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रगट और बल की हानि भी नहीं होती। इस लिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥ ६३ ॥

उत्थायेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर वह कैसी होवे यह वि० ॥

उत्थायं बृहती भवोदुत्तिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मि-
त्रैतां तं उखां परिं ददाम्यभित्या एषा मा भें-
दि ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे विदुषि कन्ये तू (ध्रुवा) मङ्गल कार्यों में निश्चित बुद्धि वाली और (बृहती) बड़े पुरुषार्थ से युक्त (भव) हो । विवाह करने के लिये (उत्तिष्ठ) उत्तिष्ठ उद्यत हो (उत्थाय) आलस्य छोड़ के उठ कर इस

पति का स्वीकार कर। हे (मित्र) मित्र (ते) तेरे लिये (एताम्) इस (उखाम्) प्राप्त होने योग्य कन्या को (अभित्त्यै) भयरहित होने के लिये (परिददामि) सब प्रकार देता हूं (उ) इसलिये तू (एषा) इस प्रत्यक्ष प्राप्त हुई स्त्री को (मा भेदि) भिन्न मत कर ॥ ६४ ॥

भावार्थः—कन्या और वर को चाहिये कि अपनी २ प्रसन्नता से कन्या पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा करके ग्रहण करने की इच्छा करें जब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे तभी माता पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और ये दोनों आपस में भेद या व्यभिचार कभी न करें। किन्तु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री हो कर मिल के चलें ॥ ६४ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः। धृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उन स्त्री पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

वसवस्त्वा छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण) श्रेष्ठ विद्याओं का जिस से गान किया जावे उस वेद के विभाग रूप स्तोत्र (छन्दसा) गायत्रीछन्द से जिस (त्वा) तुझको (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के तुल्य (आछृन्दन्तु) प्रकाशमान करें (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) कर्म उपासना और ज्ञान जिस से स्थिर हों उस (छन्दसा) वेद के स्तोत्र भाग से (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (त्वा) तुझ को (आछृ-

न्दन्तु) प्रज्वलित करें (आदित्याः) उत्तम विद्वान् लोग (जागतेन) जगत् की विद्या प्रकाश करने हारे (छन्दसा) वेद के स्तोत्र भाग से (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के सदृश तेजधारी (आच्छृन्दन्तु) शुद्ध करें (वैश्वानराः) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (देवाः) सत्य उपदेश देने हारे (विश्वे) सब विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) विद्या ग्रहण के पश्चात् जिस से दुःखों को छुड़ावें उस (छन्दसा) वेद भाग से (त्वा) तुझ को (अङ्गिरस्वत्) समस्त ओषधियों के रस के समान (आच्छृन्दन्तु) शुद्ध संपादित करें ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों को चाहिये कि जो विद्वान् स्त्री लोग तुम को शरीर और आत्मा का बल कराने हारे उपदेश से सुशोभित करें उन की सेवा और सत्सङ्ग निरन्तर करो और अन्य तुच्छ बुद्धि वाले पुरुषों वा स्त्रियों का सङ्ग कभी मत करो ॥ ६५ ॥

आकूतिमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता-
देवताः। विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

आकूतिम॒ग्निम्प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॒ मनो॑ मे॒धाम॒ग्निम्प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑ चि॒त्तं विज्ञा॑तम॒ग्निं प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑ वा॒चो विधृ॑तिम॒ग्निम्प्र॒युज॒ꣳ स्वाहा॑। प्र॒जाप॑तये॒ मन॑वे॒ स्वाहा॒ऽग्नये॑ वैश्वान॒राय॒ स्वाहा॑ ॥ ६६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग वेद के गायत्री आदि मन्त्रों से (स्वाहा) सत्य क्रिया से (आकूतिम्) उत्साह देने वाली क्रिया के (प्रयुजम्) प्रेरणा करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (स्वाहा) सत्यवाणी से (मनः)

इच्छा के साधन को (मेधाम्) बुद्धि और (प्रयुजम्) सम्बन्ध करने हारी (अग्निम्) बिजुली को (स्वाहा) सत्य व्यवहारों से (विज्ञातम्) जाने हुए विषय के (प्रयुजम्) व्यवहारों में प्रयोग किये (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशित (चित्तम्) चित्त को (स्वाहा) योग क्रिया की रीति से (प्राणः) प्राणियों की (विधृतिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयुजम्) संप्रयोग किये हुए (अग्निम्) योगाभ्यास से उत्पन्न हुई बिजुली को (प्रजापतये) प्रजा के स्वामी (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी को और (अग्नये) विज्ञान स्वरूप (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया को युक्त कराके निरन्तर (आच्छृन्दन्तु) अच्छे प्रकार शुद्ध करो ॥ ६६ ॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र से (आच्छृन्दन्तु) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों को पढ़ और स्वाध्याय आदि को बढ़ा कर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं से सत्यता से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः। सविता देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिये यह वि०॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्। विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ ६७ ॥

पदार्थः—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं (विश्वः) सब (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) सब के नायक (देवस्य) सब जगत् का प्रकाशक परमेश्वर की (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत) स्वीकार करें (विश्वः) सब मनुष्य (पुष्यसे) पोषण वा रक्षा के लिये (इषुध्यति) बाणादि आयुधों को धारण करें (स्वाहा) सत्य वाणी और (द्युम्नम्) प्रकाशयुक्त यश वा धन

को (वृणीत) ग्रहण करें । और जैसे इस से तू (पुष्यसे) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होवें ॥ ६७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—गृहस्थ मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्त्ति करने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥ ६७ ॥

मास्विदत्यस्य आत्रेय ऋषिः । अम्बा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या २ कहें यह वि० ॥

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरय-
स्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे (अम्ब) माता तू हम को विद्या से (मा) मत (सुभित्थाः) छुड़ावे और (मा) मत (सुरिषः) दुःख दे (धृष्णु) दृढ़ता से (सुवीरयस्व) सुन्दर आरम्भ किये कर्म्म की समाप्ति कर । ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों (अग्निः) अग्नि के समान (च) (इदम्) करने योग्य इस सब कर्म्म को (करिष्यथः) आचरण करो ॥ ६८ ॥

भावार्थः—माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिस से वे परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें । और जो करने योग्य है वही करें न करने योग्य कभी न करें ॥ ६८ ॥

दृंहस्वेत्यस्यात्रेय ऋषिः । अम्बा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

फिर पति अपनी स्त्री से क्या २ कहे यह वि० ॥

दृꣳहस्व देवि पृथिवी स्वस्तये आसुरी माया
स्वधयां कृतासि । जुष्टं देवेभ्यं इदमस्तु हव्यम-
रिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ६९ ॥

इच्छा के साधन को (मेधाम्) बुद्धि और (प्रयुजम्) सम्बन्ध करने हारी (अग्निम्) बिजुली को (स्वाहा) सत्य व्यवहारों से (चित्तम्) जाने हुए विषय के (प्रयुजम्) व्यवहारों में प्रयोग किये (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशित (चित्तम्) चित्त को (स्वाहा) योग क्रिया की रीति से (वाचः) वाणियों को (विधृतिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयुजम्) संप्रयोग किये हुए (अग्निम्) योगाभ्यास से उत्पन्न हुई बिजुली को (प्रजापतये) प्रजा के स्वामी (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी को और (अग्नये) विज्ञान स्वरूप (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया को युक्त कराके निरन्तर (आच्छृन्दन्तु) अच्छे प्रकार शुद्ध करो ॥ ६६ ॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र से (आच्छृन्दन्तु) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों को पढ़ और उत्साह आदि को बढ़ा कर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । सविता देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् । वि॒श्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ ६७ ॥

पदार्थः—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं (विश्वः) सब (मर्तः) मनुष्य (नेतुः) सब के नायक (देवस्य) सब जगत् का प्रकाशक परमेश्वर के (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत) स्वीकार करें (विश्वः) सब मनुष्य (राये) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (इषुध्यति) बाणादि आयुधों को धारण करें (स्वाहा) सत्य वाणी और (द्युम्नम्) प्रकाशयुक्त यश वा अन्न

को (गृणीत) ग्रहण करें । और जैसे इस से तू (पुष्यसे) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होवें ॥ ६७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-गृहस्थ मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्ति कराने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥ ६७ ॥

मासिरित्यस्य आत्रेयऋषिः । अम्बा देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या २ कहें यह वि० ॥

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्बं धृष्णु वीरयस्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे (अम्ब) माता तू हम को विद्या से (मा) मत (सुभित्थाः) छुड़ावे और (मा) मत (सुरिषः) दुःख दे (धृष्णु) दृढ़ता से (सुवीरयस्व) सुन्दर आरम्भ किये कर्म्म की समाप्ति कर । ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों (अग्निः) अग्नि के समान (च) (इदम्) करने योग्य इस सब कर्म्म को (करिष्यथः) आचरण करो ॥ ६८ ॥

भावार्थः—माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिस से ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें । और जो करने योग्य है वही करें न करने योग्य कभी न करें ॥ ६८ ॥

दृंहस्वेत्यस्यात्रेयऋषिः । अम्बा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।

फिर पति अपनी स्त्री से क्या २ कहे यह वि० ॥

दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृतासि । जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ६९ ॥

पदार्थः—हे (पृथिवी) भूमि के समान विद्या के विस्तार को प्राप्त हुई (देवि) विद्या से युक्त पत्नि तू ने (स्वस्तये) सुख के लिये (स्वपया) अन्न या जल से जो (आसुरी) प्राणपोषक पुरुषों की (माया) बुद्धि है उस को (कृता) सिद्ध की (असि) है। उस से तू मुझ पति को (इंहस्व) उन्नति दे (अरिष्टा) हिंसा रहित हुई (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संग करने योग्य गृहाश्रम में (उदिहि) प्रकाश को प्राप्त हो जो तू ने (जुष्टम्) सेवन किया (इदम्) यह (हव्यम्) देने लेने योग्य पदार्थ है वह (देवेभ्यः) विद्वानों या उत्तम गुण होने के लिये (अस्तु) होवे ॥ ६९ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पति को प्राप्त हो के घर में वर्त्तती है वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिये प्रयत्न करे। सब अन्न आदि खाने पीने के पदार्थ रुचिकारक बनवावे वा बनावे। और किसी को दुःख या किसी के साथ वैरबुद्धि कभी न करे ॥ ६९ ॥

द्रवन्नइत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह स्त्री अपने पति से कैसे २ कहे यह वि० ॥

द्रुवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः।
सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ७० ॥

पदार्थः—हे पते (द्रुन्नः) वृक्षादि ओषधि ही जिस के अन्न हैं ऐसे (सर्पिरासुतिः) घृत आदि पदार्थों को शोधने वाले (प्रत्नः) सनातन (होता) देने लेने हारे (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (सहसः) बलवान् के (पुत्रः) पुत्र (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुण कर्म और स्वभाव से युक्त आप सुख होने के लिये इस गृहाश्रम के बीच शोभायमान हूजिये ॥ ७० ॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र से (स्वस्तये) (अस्मिन्) (यज्ञे) (उदिहि) इन चार पदों की अनुवृत्ति आती है। कन्या को उचित है कि जिस पिता ब्रह्मचर्य से बलवान् हो और जो पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि प-

दार्थों को इकट्ठा कर सके उस शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह करके निरन्तर सुख भोगे ॥ ७० ॥

परस्या इत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर पति अपनी स्त्री को क्या २ उपदेश करे यह वि० ॥

परस्या अधि संवतोऽवराँ२॥ अभ्यातर। यत्राहमस्मि ताँ२॥ अव ॥ ७१ ॥

पदार्थ—हे कन्ये ! जिस (परस्याः) उत्तम कन्या तेरा मैं (अधि) स्वामी हुआ चाहता हूं सो तू (संवतः) संविभाग को प्राप्त हुए (अवरान्) नीच स्वभावों को (अभ्यातर) उल्लंघन और (यत्र) जिस कुल में (अहम्) मैं (अस्मि) हूं (तान्) उन उत्तम मनुष्यों की (अव) रक्षा कर ॥ ७१ ॥

भावार्थः—कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल और विद्या वाले वा बराबर के पति को स्वीकार करे किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाले को नहीं। जिस के साथ विवाह करे उस के सम्बन्धी और मित्रों को सब काल में प्रसन्न रक्खे ॥ ७१ ॥

परमस्या इत्यस्य वारुणिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या २ कहे इस वि० ॥

परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहा गहि। पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥ ७२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पावक के समान तेजस्विन् विद्वान् पुरुष पते (रोहिदश्वः) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों से युक्त (पुरीष्यः) पालने में श्रेष्ठ (पुरुप्रियः) बहुत मनुष्यों की प्रीति रखने वाले (त्वम्) आप (इह) इस गृहाश्रम में (परावतः) दूर देश से (परमस्याः) अति उत्तम गुण रूप और स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति सुन के (आगहि) आइये और उन

के साथ (तृपः) दूसरों के पदार्थों की आकांक्षा करने हारे शत्रुओं का (तर) तिरस्कार कीजिये ॥ ७२ ॥

भावार्थः--मनुष्यों को चाहिये कि अपनी कन्या वा पुत्र का समीप देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जावे उतना ही अधिक सुख होवे निकट करने में कलह ही होता है ॥ ७२ ॥

यदग्ने इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता।
निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर स्त्री पुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या २ प्रतिज्ञा करें और करावें यह वि० ॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि।
सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥

पदार्थः--हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष वा स्त्री आप जैसे (कानि कानि चित्) कोई २ भी वस्तु (ते) तेरी हैं वे हम लोग (दारूणि) काष्ठ के पात्र में (दध्मसि) धारण करें। (यत्) जो कुछ हमारी चीज़ है (तत्) सो (सर्वम्) सब (ते) तेरी (अस्तु) होवे जो हमारा (घृतम्) घृतादि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को तू (जुषस्व) सेवन कर। जो कुछ तेरा पदार्थ है सो सब हमारा होवे जो तेरा घृतादि पदार्थ है उस को हम ग्रहण करें ॥ ७३ ॥

भावार्थः--ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रक्खें। किन्तु ऐश्वर्य से आपस में कभी भेद न करें जिस से सब के लिये सुखों की वृद्धि होवे। और विघ्न न उठे इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी परस्पर वर्त्तें ॥ ७३ ॥

यदत्त्युपजिह्विकेत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए पते आप और (उपजिह्विका) जिस की जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल अर्थात् वश में हो ऐसी स्त्री (यत्) जो (अत्ति) भोजन करे (यत्) जो (वम्रः) मुख से बाहर निकाला प्राणवायु (अतिसर्पति) अत्यन्त चलता है (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) तेरा (अस्तु) होवे । जो तेरा (घृतम्) घी आदि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को (जुषस्व) सेवन किया कर ॥ ७४ ॥

भावार्थः—जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता हो उस के अनुकूल स्त्री पुरुष दोनों वर्त्तें । जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का है वह स्त्री का भी होवे । इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिये किन्तु आपस में मिल के आनन्द भोगें ॥ ७४ ॥

अहरहरित्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ लोग आपस में कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै । रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष (अहरहः) नित्यप्रति (तिष्ठते) वर्त्तमान (अश्वायेव) जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ धरते हैं वैसे (अस्मै) इस गृहस्थ पुरुष के लिये (अप्रयावम्) अन्याय से पृथक् गृहाश्रम के योग्य (घासम्) भोगने योग्य पदार्थों को (भरन्तः) धारण करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि तथा (इषा) अन्नादि से (संमदन्तः) सम्यक् आनन्द को प्राप्त हुए (प्रतिवेशाः) धर्म विषयक

प्रवेश के निमित्त हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य्य को (मारिषाम) कभी न-ष्ट न करें ॥ ७५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—गृहस्थ मनुष्यों को चाहिये कि जैसे घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये जो दूध आदि पदार्थों का पशुओं के पालक नित्य इकट्ठे करते हैं वैसे अपने ऐश्वर्य्य को बढ़ा के सुख देवें। और धन के अहंकार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें किन्तु दूसरों की वृद्धि वा धन देख के सदा आनन्द मानें ॥ ७५ ॥

नाभेत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे मनुष्य लोग आपस में कैसे संवाद करें यह वि० ॥

नाभा॑ पृथि॒व्याः स॑मिधा॒ने अ॒ग्नौ रा॒यस्पोषा॑य बृह॒ते ह॑वामहे । इ॒र॒म्म॒दं बृ॒हदु॑क्थं॒ यज॑त्रं॒ जेता॑रम॒ग्निं पृत॑नासु सास॒हिम् ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे गृहि लोगो जैसे हम लोग (बृहते) बड़े (रायः) लक्ष्मी के (पोषाय) पुष्ट करने हारे पुरुष के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा) बीच (समिधाने) अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए (अग्नौ) अग्नि में और (पृतनासु) सेनाओं में (सासहिम्) अत्यन्त सहनशील (इरम्मदम्) अन्न से आनन्दित होने वाले (बृहदुक्थम्) बड़ी प्रशंसा से युक्त (यजत्रम्) संग्राम करने योग्य (अग्निम्) बिजुली के समान शीघ्रता करने हारे (जेतारम्) विजय शील सेनापति पुरुष को (हवामहे) बुलाते हैं। वैसे तुम लोग भी इस को बुलाओ ॥ ७६ ॥

भावार्थः—पृथिवी का राज्य करते हुए मनुष्यों को चाहिये कि आग्नेय आदि अस्त्रों और तलवार आदि शस्त्रों का संचय कर और पूर्ण बुद्धि तथा शरीर बल से युक्त पुरुष को सेनापति करके निर्भयता के साथ वर्त्तें ॥ ७६ ॥

याः सेनाइत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राज पुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न से चोर आदि दुष्टों का बार २ निवारण करें यह वि० ॥

याः सेनां अभीत्वरीराव्याधिनीरुगंणा उत । ये स्तेना ये च तस्कंरास्ताँस्तें अग्नेऽपिं दधा-म्यास्ये ॥ ७७ ॥

पदार्थः—हे सेना और सभा के स्वामी जैसे मैं (याः) जो (अभीत्वरीः) संमुख हो के युद्ध करने हारी (आव्याधिनीः) बहुत रोगों से युक्त वा ताड़ना देने हारी (उगणाः) शस्त्रों को लेके विरोध में उद्यत हुई (सेनाः) सेना हैं उन (उत) और (ये) जो (स्तेनाः) सुरङ्ग लगा के दूसरों के पदार्थों को हरने वाले (च) और (ये) जो (तस्कराः) द्यूत आदि कपट से दूसरों के पदार्थ लेने हारे हैं (तान्) उन को (ते) इस (अग्ने) अग्नि के (आस्ये) जलती हुई लपट में (अपिदधामि) गेरता हूं वैसे तू भी इन को वश में धरा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हों उन का निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हो तथा डाकू चोर खोटे वचन बोलने हारे मिथ्यावादी व्यभिचारी मनुष्य होवें उन को अग्नि से जलाने आदि भयंकर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर वश में करें ॥

दंष्ट्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । अग्निर्देवता ।
भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उन दुष्टों को किस २ प्रकार ताड़ना करें यह वि० ॥

दंष्ट्रांभ्यां मुलिम्लून् जम्भ्यैस्तस्कंराँ२॥ उत । हनुंभ्याᳪस्तेनान् भंगवस्ताँस्त्वं खांद सुखांदि-तान् ॥ ७८ ॥

पदार्थः--हे (भगवः) ऐश्वर्य्य वाले सभा सेना के स्वामी जैसे (त्वम्) आप (जम्भ्यैः) मुख के जीभ आदि अवयवों और (दंष्ट्र्याभ्याम्) तीक्ष्ण दांतों से जिन (मलिम्लून) मलीन आचरण वाले सिंह आदि को और (हनुभ्याम्) मसूड़ों से (तस्करान्) चोरों के समान वर्त्तमान (सुराऽदितान्) अन्याय से दूसरों के पदार्थों के भोगने और (स्तेनान्) रात में भीति आदि फोड़ तोड़ के पराया माल मारने हारे मनुष्यों को (खाद) जड़ से नष्ट करें वैसे (तान्) उन को हम लोग (उत) भी नष्ट करें ॥ ७८ ॥

भावार्थः--राज पुरुषों को चाहिये कि जो गौ आदि बड़े उपकार के पशुओं को मारने वाले सिंह आदि वा मनुष्य हों उन तथा जो चोर आदि मनुष्य हैं उन को अनेक प्रकार के बन्धनों से बांध ताड़ना दे नष्ट कर वश में लावें ॥ ७८ ॥

येजनेष्वित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । सेनापतिर्देवता ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर वे राजपुरुष किस २ का निवारण करें यह वि० ॥

ये जनेषु मलिम्लवस्तेनासस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वघायवस्तांस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

पदार्थः--हे सभापते मैं सेनाध्यक्ष (ये) जो (जनेषु) मनुष्यों में (मलिम्लवः) मलीन स्वभाव से जाते आते (स्तेनासः) गुप्त चोर जो (वने) वन में (तस्कराः) प्रसिद्ध चोर लुटेरे और (ये) जो (कक्षेषु) कटरी आदि में (अघायवः) पाप करते हुए जीवन की इच्छा करने वाले हैं (तान्) उन को (ते) आप के (जम्भयोः) फैलाये मुख में ग्रास के समान (दधामि) धरता हूं ॥ ७९ ॥

भावार्थः--सेनापति आदि राजपुरुषों को यही मुख्य कर्त्तव्य है कि जो ग्राम और वनों में प्रसिद्ध चोर तथा लुटेरे आदि पापी पुरुष हैं उन को राजा के आधीन करें ॥ ७९ ॥

योअस्मभ्यमित्यस्यनाभानेदिष्ठऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही॰ वि ॥

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः। निन्दाद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥ ८० ॥

पदार्थः—हे सभा और सेना के स्वामिन् आप (यः) जो (जनः) मनुष्य (अस्मभ्यम्) हम धर्म्मात्माओं के लिये (अरातीयात्) शत्रुता करे (यः) जो (नः) हमारे साथ (द्वेषते) दुष्टता करे (च) और हमारी (निन्दात्) निन्दा करे (यः) जो (अस्मान्) हम को (धिप्सात्) दम्भ दिखावे और हमारे साथ छल करे (तम्) उस (सर्वम्) सब को (भस्मसा) जला के संपूर्ण भस्म (कुरु) कीजिये ॥ ८० ॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक और राजपुरुषों को चाहिये कि पढ़ाने शिक्षा उपदेश और दण्ड से निरन्तर विरोध का विनाश करें ॥ ८० ॥

संशितमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। पुरोहितयजमानौ देवते। निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

अब पुरोहित यजमान आदि से किस २ पदार्थ की इच्छा करें ॥

संशितं मे ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्। संशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (यस्य) जिस यजमान पुरुष का (पुरोहितः) प्रथम धारण करने हारा (अस्मि) हूं उस का और (मे) मेरा (संशितम्) प्रशंसा के योग्य (ब्रह्म) वेद का विज्ञान। और उस यजमान का (संशितम्) प्रशंसा के योग्य (वीर्यम्) पराक्रम प्रशंसित (बलम्) बल (संशितम्) और प्रशंसा के योग्य (जिष्णु) जय का स्वभाव वाला (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल होवे ॥ ८१ ॥

भावार्थः—जो जिस का पुरोहित और जो जिस का यजमान है वे दोनों आपस में हित चित्त से योग बल और धर्माचरण से आत्मा की

सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्रप्रदेहि) अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इस अन्न के (दातारम्) देने हारे को (तारिषः) तृप्तकर तथा (नः) हमारे (द्विपदे) दो पगवाले मनुष्यादि तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले गौ आदि पशुओं के लिये (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कर ॥ ८३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें और दूसरों को देवें । मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें । जिस से ईश्वर की सृष्टिक्रमानुकूल आचरण से सब के सुखों की सदा उन्नति होवे ॥ ८३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सभा और सेना के अध्यक्ष और प्रजा के मनुष्यों को करने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का ग्यारहवां ११ अध्याय पूरा हुआ ॥



सन्तति और ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर का बल बढ़े यही कर्म निरन्तर किया करें ॥ ८१ ॥

उदेषामित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । सभापतिर्यजमानो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्ते यह वि० ॥

उदे॑षां बा॒हू अ॑तिर॒मुद्वर्चो॒ अथो॒ बल॑म् । क्षि॒णोमि॒ ब्रह्म॑णा॒मित्रा॒नुन्न॑यामि॒स्वाँ २॥ अ॒हम् ॥ ८२ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं यजमान वा पुरोहित (ब्रह्मणा) वेद और ईश्वर के ज्ञान देने से (एषाम्) इन पूर्वोक्त चोर आदि दुष्टों के (बाहू) बल और पराक्रम को (उदतिरम्) अच्छे प्रकार उल्लङ्घन करूं (वर्चः) तेज तथा (बलम्) सामर्थ्य को और (अमित्रान्) शत्रुओं को (क्षिणोमि) मारता हूं (अथो) इस के पश्चात् (स्वान्) अपने मित्रों के तेज और सामर्थ्य को (उन्नयामि) वृद्धि के साथ प्राप्त करूं ॥ ८२ ॥

भावार्थः—राजा आदि यजमान तथा पुरोहितों को चाहिये कि पार्थिवों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के सब पदार्थों की वृद्धि सदैव सब प्रकार से किया करें ॥ ८२ ॥

अन्नपतइत्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । यजमानपुरोहितौ देवते । उपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को इस संसार में कैसे २ वर्त्तना इस वि० ॥

अन्न॑पते॒ऽन्न॑स्य नो देह्यनमी॒वस्य॑ शु॒ष्मिणः॑ । प्रप्र॑ दा॒तारं॑ तारिष॒ ऊर्जं॑ नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ॥ ८३ ॥

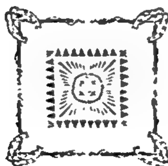
पदार्थः—हे (अन्नपते) ओषधि अन्नों के पालन करने हारे यजमान वा पुरोहित आप (नः) हमारे लिये (अनमीवस्य) रोगों के नाश से

सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्रप्रदेहि) अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इस अन्न के (दातारम्) देने हारे को (तारिषः) तृप्त कर तथा (नः) हमारे (द्विपदे) दो पगवाले मनुष्यादि तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले गौ आदि पशुओं के लिये (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कर ॥ ८३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें और दूसरों को देवें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें। जिस से ईश्वर की सृष्टिक्रमानुकूल आचरण से सब के सुखों की सदा उन्नति होवे ॥ ८३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सभा और सेना के अध्यक्ष और प्रजा के मनुष्यों को करने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का ग्यारहवां ११ अध्याय पूरा हुआ ॥



सन्तति और ब्रह्मचर्य्य जितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर
यही कर्म निरन्तर किया करें ॥ ८१ ॥

उदेषामित्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । सभापतिर्यजमानो
विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्ते यह वि

उदे॑षां बा॒हू अति॑र॒मुद्वर्चो॒ अथो॑
क्षि॒णोमि॒ ब्रह्म॑णा॒मित्रा॒नुन्न॑यामि॒स्वाँ २

॥ ८२ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं यजमान वा पुरोहित (ब्र
ईश्वर के ज्ञान देने से (एषाम्) इन पूर्वोक्त चोर आदि
बल और पराक्रम को (उदतिरम्) अच्छे प्रकार उल्ल
तेज तथा (बलम्) सामर्थ्य को और (अमित्रान्) शत्रु
मि) मारता हूं (अथो) इस के पश्चात् (स्वान्) अपने
सामर्थ्य को (उन्नयामि) वृद्धि के साथ प्राप्त करूं ॥ ८

भावार्थः—राजा आदि यजमान तथा पुरोहित
पियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के
सदैव सब प्रकार से किया करें ॥ ८२ ॥

अन्नपत इत्यस्य नाभानेदिष्ठऋषिः । यजमान
उपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यम

अब मनुष्यों को इस संसार में कैसे २ व

अन्न॑प॒तेऽन्न॑स्य नो देह्यनमी
प्रप्र॑ दा॒तारं॑ तारिष॒ ऊर्जं॑ नो धे

॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे (अन्नपते) ओषधि आदि
वा पुरोहित आप (नः) हमारे लिये

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से परमेश्वर का निश्चय कराते हैं। वैसे ही मनुष्यों को होना चाहिये ॥ १ ॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्सऋषिः । अग्निर्देवता ।
भुरिगार्षीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (अग्निम्) बिजुली को (द्रविणोदाः) बलदाता (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करें जो (रुक्मः) रुचिकारक हो के (अन्तः) अन्तःकरण में (विभाति) प्रकाशित होता है जो (समनसा) एक विचार से विदित (विरूपे) अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध युक्त (समीची) सब प्रकार सब को प्राप्त होने वाली (द्यावाक्षामा) प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोषासा) रात्रि और दिन जैसे (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को दो माता (धापयेते) दूध पिलाती हैं वैसे उस को तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे जननी माता और धायी बालक को दूध पिलाती है वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करती है और जो बिजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है इस बात का तुम सब निश्चय करो ॥ २ ॥

विश्वारूपाणीत्यस्य श्यावाश्वऋषिः । सविता देवता ।
विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
अब अगले मन्त्र में परमेश्वर के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावी-

ओ३म्

अथ द्वादशाध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

दृशानइत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ बारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः । अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (दृशानः) दिखलाने हारा (द्यौः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (उर्व्या) अतिस्थूल भूमि के साथ सब मूर्तिमान् पदार्थों को (व्यद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है वैसे जो (श्रिये) (रुचानः) शोभायमान लक्ष्मी के अर्थ रुचि कर्त्ता (रुक्मः) सुशोभित जन (अभवत्) होता और जो (सुरेताः) उत्तम वीर्य युक्त (अमृतः) नाशरहित (दुर्मर्षम्) शत्रुओं के दुःख से निवारण के योग्य (आयुः) जीवन को (अजनयत्) प्रकट करता है (वयोभिः) अवस्थाओं के साथ (एनम्) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता हो उस को तुम सदा निरन्तर सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से परमेश्वर को निश्चय कराते हैं। वैसे ही मनुष्यों को होना चाहिये ॥ १ ॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्सऋषिः । अग्निर्देवता ।
भुरिगार्षीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (अग्निम्) बिजुली को (द्रविणोदाः) बलदाता (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करें जो (रुक्मः) रुचिकारक हो के (अन्तः) अन्तःकरण में (विभाति) प्रकाशित होता है जो (समनसा) एक विचार से विदित (विरूपे) अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध युक्त (समीची) सब प्रकार सब को प्राप्त होने वाली (द्यावाक्षामा) प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोषासा) रात्रि और दिन जैसे (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को दो माता (धापयेते) दूध पिलाती हैं वैसे उस को तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे जननी माता और धायी बालक को दूध पिलाती हैं वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करती है और जो बिजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है इस बात का तुम सब निश्चय करो ॥ २ ॥

विश्वारूपाणीत्यस्य श्यावाश्वऋषिः । सविता देवता ।
विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
अब अगले मन्त्र में परमेश्वर के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावी-

भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। विनाकमख्यत्सविता वरे-
ण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वरेण्यः) ग्रहण करने योग्य (कविः) जिस की दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है वा सर्वज्ञ (सविता) सब संसार का उत्पादक जगदीश्वर वा सूर्य (उषसः) प्रातःकाल का समय (प्रयाणम्) प्राप्त करने को (अनुविराजति) प्रकाशित होता है (विश्वा) सब (रूपाणि) पदार्थों के स्वरूप (प्रतिमुञ्चते) प्रसिद्ध करता है और (द्विपदे) मनुष्यादि दो पग वाले (चतुष्पदे) तथा गौ आदि चार पग वाले प्राणियों के लिये (नाकम्) सब दुःखों से पृथक् (भद्रम्) सेवने योग्य सुख को (व्यख्यत) प्रकाशित करता और (प्रासावीत्) उत्पत्ति करता है ऐसे उस सूर्य लोक को उत्पन्न करने वाले ईश्वर को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—जिस परमेश्वर ने संपूर्ण रूपवान् द्रव्यों का प्रकाशक प्राणियों के सुख का हेतु प्रकाशमान सूर्य लोक रचा है उसी की भक्ति सब मनुष्य करें ॥

सुपर्णोऽसीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। गरुत्मान् देवता।

धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर विद्वानों के गुणों का उप०॥

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं च-
क्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोम आत्मा छन्दाᳬस्यङ्गा-
नि यजूᳬषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञा-
यज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि ग-
रुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिस से (ते) आपका (त्रिवृत्) तीन कर्म उपासना और ज्ञानों से युक्त (शिरः) दुःखों का जिस से नाश हो (गायत्रम्) गायत्री छन्द से कहे विज्ञानरूप अर्थ (चक्षुः) नेत्र बृहद्रथन्तरे बड़े २ रथों के सहारा से दुःखों को छुड़ाने वाले (पक्षौ) इधर उधर के अवयव (स्तोमः) स्तुति के योग्य ऋग्वेद (आत्मा) अपना स्वरूप (छन्दांसि) उष्णिक् आदि छन्द (अङ्गानि) कान आदि (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र (नाम) नाम (यज्ञायज्ञियम्) ग्रहण करने और छोड़ने योग्य व्यवहारों के योग्य (वामदेव्यम्) वामदेव ऋषि से जाने वा पढ़ाये (साम) तीसरे सामवेद (ते) आपका (तनूः) शरीर है इससे आप (गरुत्मान्) महात्मा (सुपर्णः) सुन्दर संपूर्ण लक्षणों से युक्त (असि) हैं। जिस से (धिष्ण्याः) शब्द करने के हेतुओं में साधु (शफाः) खुर तथा (पुच्छम्) बड़ी पूंछ के समान अन्त्य का अवयव है उस के समान जो (गरुत्मान्) प्रशंसित शब्दोच्चारण से युक्त (सुपर्णः) सुन्दर उड़ने वाले (असि) हैं उस पक्षी के समान आप (दिवम्) सुन्दर विज्ञान को (गच्छ) प्राप्त हूजिये और (स्वः) सुख को (पत) ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फल और मूलों से युक्त वृक्ष शोभित होते हैं। वैसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने हारे सुशोभित होते हैं। जैसे पशु पूंछ आदि अवयवों से अपने काम करते और जैसे पक्षी पंखों से आकाश मार्ग में जाते आते आनन्दित होते हैं वैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ के साथ सुखों को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

विष्णोःक्रमइत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। विष्णुर्देवता भुरिगुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनु वि क्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्य-

भिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनु वि क्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द आरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्द आरोह दिशोऽनु वि क्रमस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः – हे विद्वन् पुरुष जिस से आप (विष्णोः) व्यापक जगदीश्वर के (क्रमः) व्यवहार के शोधक (सपत्नहा) और शत्रुओं के मारने हारे (असि) हो इस से (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दः) शुद्ध अर्थ पर (आरोह) आरूढ़ हूजिये (पृथिवीम्) पृथिव्यादि पदार्थों से (अनुविक्रमस्व) अपने अनुकूल व्यवहार साधिये तथा जिस कारण आप (विष्णोः) व्यापक कारण के (क्रमः) कार्य रूप (अभिमातिहा) अभिमानियों को मारने हारे (असि) हैं इस से आप (त्रैष्टुभम्) तीन प्रकार के सुखों से संयुक्त (छन्दः) बलदायक वेदार्थ को (आरोह) ग्रहण और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अनुविक्रमस्व) अनुकूलव्यवहार में युक्त कीजिये जिस से आप (विष्णोः) व्यापनशील बिजुली रूप अग्नि के (क्रमः) जानने हारे (अरातीयतः) विद्या आदि दान के विरोधी पुरुष के (हन्ता) नाश करने हारे (असि) हैं इस से आप (जागतम्) जगत् को जानने का हेतु (छन्दः) सृष्टि विद्या को बलयुक्त करने हारे विज्ञान को (आरोह) प्राप्त हूजिये और (दिवम्) सूर्य आदि अग्नि को (अनुविक्रमस्व) अनुक्रम से उपयुक्त कीजिये जो आप (विष्णोः) हिरण्यगर्भ वायु के (क्रमः) ज्ञापक तथा (शत्रूयतः) अपने को शत्रु का आचरण करने वाले पुरुषों के (हन्ता) मारने वाले (असि) हैं सो आप (आनुष्टुभम्) अनुकूलता के साथ सुख सम्बन्ध के हेतु (छन्दः) आनन्दकारक वेद भाग को (आरोह) उपयुक्त कीजिये और (दिशः) पूर्व आदि दिशाओं के (अनुविक्रमस्व) अनुकूल गमन कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वेद विद्या से भूगर्भ विद्याओं का निश्चय तथा पराक्रम से उन की उन्नति करके रोग और शत्रुओं का नाश करें ॥ ५ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

अक्रन्दद॒ग्निस्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑हद्वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन् । स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धो अख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो सभापति (सद्यः) एक दिन में (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (द्यौः) सूर्य प्रकाश रूप (अग्निः) विद्युत् अग्नि के समान (स्तनयन्निव) शब्द करता हुआ शत्रुओं को (अक्रन्दत्) प्राप्त होता है जैसे (क्षामा) पृथिवी (वीरुधः) वृक्षों को फल फूलों से युक्त करती है वैसे प्रजाओं के लिये सुखों को (रेरिहत्) अच्छे बुरे कर्मों का शीघ्र फल देता है जैसे सूर्य (इद्धः) प्रदीप्त और (समञ्जन्) सम्यक् पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (ठपख्यत्) प्रसिद्ध करता और (भानुना) अपनी दीप्ति के साथ (अन्तः) सब लोकों के बीच (आभाति) प्रकाशित होता है । वैसे जो सभापति शुभ गुण कर्मों से प्रकाशित हो उस को तुम लोग राज कार्यों में संयुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे सूर्य सब लोकों के बीच में स्थित हुआ सब को प्रकाशित और आकर्षण करता है और जैसे पृथिवी बहुत फलों को देती है । वैसे ही मनुष्य को राज्य के कार्यों में अच्छे प्रकार से उपयुक्त करो ॥ ६ ॥

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् पुरुष आप दुष्ट व्यवहारों से (नियंसस्व) पृथक् हूजिये (विश्वप्स्न्या) सब भोगने योग्य पदार्थों को भुगाने हारी (धारया) संपूर्ण विद्याओं के धारण करने का हेतु वाणी तथा (रय्या) धन के (सह) साथ (विश्वतः) सब ओर से (परि) सब प्रकार (पिन्वस्व) सुखों का सेवन कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि कभी अधर्म्म का आचरण न करें। और दूसरों को ऐसा उपदेश भी न करें इस प्रकार सब शास्त्र और विद्याओं से विराजमान हुए प्रशंसा के योग्य होवें ॥ १० ॥

आ त्वेत्यस्य ध्रुव ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के कर्म्मों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्र-
शत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे शुभ गुण और लक्षणों से युक्त सभापति राजा (त्वा) आप को राज्य की रक्षा के लिये मैं (अन्तः) सभा के बीच (आहार्षम्) अच्छे प्रकार ग्रहण करूं। आप सभा में (अभूः) विराजमान हूजिये (अविचाचलिः) सर्वथा निश्चल (ध्रुवः) न्याय से राज्य पालन में निश्चित बुद्धि हो कर (तिष्ठ) स्थिर हूजिये (सर्वाः) संपूर्ण (विशः) प्रजा (त्वा) आप को (वाञ्छन्तु) चाहना करें। (त्वत्) आप के पालने से (राष्ट्रम्) राज्य (माधिभ्रशत्) भ्रष्ट न होवे ॥ ११ ॥

भावार्थः—उत्तम प्रजाजनों को चाहिये कि सब से उत्तम पुरुष को सभाध्यक्ष राजा मान के उस को उपदेश करें कि आप जितेन्द्रिय हुए सब काल में धार्मिक पुरुषार्थी हूजिये। आप के बुरे आचरणों से राज्य कभी नष्ट न होवे। जिस से सब प्रजा पुरुष आप के अनुकूल वर्त्तें ॥ ११ ॥

उदुत्तममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । विराडा-
र्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वरुण) शत्रुओं को बांधने (आदित्य) स्वरूप से अविनाशी सूर्य्य के समान सत्य न्याय का प्रकाशक सभापति विद्वान् आप (अस्मत्) हम से (अधमम्) निकृष्ट (मध्यमम्) मध्यस्थ और (उत्तमम्) उत्तम (पाशम्) बन्धन को (उद्विश्रथाय) विविध प्रकार से छुड़ाइये (अथ) इस के पश्चात् (वयम्) हम प्रजा के पुरुष (अदितये) पृथिवी के अखण्डित राज्य के लिये (तव) आप के (व्रते) सत्य न्याय के पालन रूप नियम में (अनागसः) अपराध रहित (स्याम) होवें ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल सत्य आचरणों में वर्त्तमान हुए धर्मात्मा मनुष्य पाप के बन्धनों से छूट के सुखी होते हैं वैसे ही उत्तम राजा को प्राप्त हो के प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं ॥ १२ ॥

अग्नेबृहन्नित्यस्य त्रितऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् । अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आजातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे राजन् जो आप (अग्ने) अग्नि के जैसे सूर्य्य (स्वङ्गः) सुन्दर अवयवों से युक्त (आजातः) प्रकट हुआ (बृहन्) बड़ा (उषसाम्) प्रभातों के (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में (अस्थात्) स्थिर होता और (रुशता) सुन्दर (भानुना) दीप्ति रूप (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमसः)

पशुओं को प्रसिद्ध करने द्वारा (ऋतजाः) सत्य विज्ञान को उत्पन्न करने द्वारा (अद्रिजाः) मेघों का वर्षाने वाला विद्वान् (ऋतम्) सत्य स्वरूप (बृहत्) अनन्तब्रह्म और जीव को जाने उस पुरुष को सभा का स्वामी राजा बना के निरन्तर आनन्द में रहो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओं को पालने और सुख देने को समर्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है। और ऐसे राजा के विना प्रजाओं को सुख भी नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

सीद त्वमित्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

माता का कर्म्म अगले॥

सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान्। मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तरस्याᳪ शुक्रज्योतिर्वि भाहि॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या को चाहने वाले पुरुष (त्वम्) आप (अस्याम्) इस माता के विद्यमान होने में (विभाहि) प्रकाशित हो (शुक्रज्योतिः) शुद्ध आचरणों के प्रकाश से युक्त (विद्वान्) विद्यावान् आप पृथिवी के समान आधार (मातुः) इस माता की (उपस्थे) गोद में (सीद) स्थित हूजिये। इस माता से (विश्वानि) सब प्रकार की (वयुनानि) बुद्धियों को प्राप्त हूजिये। इस माता को (अन्तः) अन्तःकरण में (मा) मत (तपसा) सन्ताप से तथा (अर्चिषा) तेज से (मा) मत (अभिशोचीः) शोक युक्त कीजिये। किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त होके प्रकाशित हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् माता से विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किये माता का सेवक जैसे माता पुत्रों को पालती है वैसे प्रजाओं का पालन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्य्य से प्रकाशित होवे ॥ १५ ॥

अन्तरग्न इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करे इस वि० ॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे । त-
स्यास्त्वᳬ हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥१६॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) वेदों के ज्ञाता (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् आप जिस (उखायाः) प्राप्त हुई प्रजा के बीच में अग्नि के समान (स्वे) अपने (सदने) बैठने के स्थान में (तपन्) शत्रुओं को संताप कराते हुए (अन्तः) मध्य में (रुचा) प्रीति से वर्त्तो (तस्याः) उस प्रजा के (हरसा) प्रज्वलित तेज से आप शत्रुओं का निवारण करते हुए (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०–जैसे सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि न्याय करने की गद्दी पर बैठ के अत्यन्त प्रीति के साथ राज्य के पालन रूप कार्यों को करे वैसे प्रजाओं को चाहिये कि राजा को सुख देती हुई दुष्टों की ताड़ना करें ॥ १६ ॥

शिवो भूत्वेत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्व-
म् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहा-
सदः ॥ १७ ॥

पदार्थः - हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले विद्वान् पुरुष (त्वम्) आप (मह्यम्) इस [illegible] के लिये (शिवः) मङ्गलाचरण करने हारे (भूत्वा) होकर (इह) इस जगत् में (शिवः) मङ्गलकारी हुए (अथो) अब (दिशः) दिशाओं में रहने वाली [illegible] को

(शिवः) मङ्गलाचरण से युक्त (भूत्वा) करके (स्वम्) अपने (योनिम्) राज धर्म के आसन पर (आसद) बैठिये और (अथो) इस के पश्चात् राजधर्म में (मोद) स्थिर हूजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः राजा को चाहिये कि आप धर्मात्मा हो के प्रजा के मनुष्यों को धार्मिक कर और न्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय किया करे ॥ १७ ॥

दिवस्परीत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राज धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं प-
रि जातवेदाः । तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमि-
न्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे सभापति राजन् जो (अग्निः) अग्नि के समान आप (अस्मत्) हम लोगों से (दिवः) बिजुली के (परि) ऊपर (जज्ञे) प्रकट होते हैं उन (एनम्) आप को (प्रथमम्) पहिले जो (जातवेदाः) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध उत्पन्न हुए उन आप को (द्वितीयम्) दूसरे जो (नृमणाः) मनुष्यों में विचारशील आप (तृतीयम्) तीसरे (अप्सु) प्राण वा जलक्रियाओं में विदित हुए उन आप को (अजस्रम्) निरन्तर (इन्धानः) प्रकाशित करता हुआ विद्वान् (जरते) सब प्रकार स्तुति करता है सो आप (स्वाधीः) सुन्दर ध्यान से युक्त प्रजाओं को प्रकाशित कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम के सहित विद्या तथा शिक्षा का ग्रहण दूसरे गृहाश्रम से धन का संचय तीसरे वानप्रस्थ आश्रम से तप का आचरण और चौथे सन्यास लेकर वेदविद्या और धर्म का नित्य प्रकाश करें ॥ १८ ॥

विद्मा त इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम वि-
भृता पुरुत्रा । विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्वि-
द्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (ते) आप के जो (त्रेधा) तीन प्रकार से त्रयाणि तीन कर्म हैं उन को हम लोग (विद्म) जानें । हे स्थानों के स्वामी (ते) आप के जो (विभृत) विशेष कर के धारण करने योग्य (पुरुत्रा) बहुत (धाम) नाम जन्म और स्थान रूप हैं उन को हम लोग (विद्म) जानें हे विद्वान् पुरुष (ते) आप का (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में स्थित गुप्त (परमम्) श्रेष्ठ (नाम) नाम है उस को हम लोग (विद्म) जानें (यतः) जिस कारण आप (आजगन्थ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें (तम्) उस (उत्सम्) कूप के तुल्य तर करने हारे आप को (विद्म) हम लोग जानें ॥ १९ ॥

भावार्थः—प्रजा के पुरुष और राजा को योग्य है कि राजनीति के कामों सब स्थानों और सब पदार्थों के नामों को जानें । जैसे कुए से जल निकाल खेत आदि को तृप्त करते हैं वैसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा को और राजा प्रजाओं को तृप्त करे ॥ १९ ॥

समुद्र इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उप० ॥

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दि-
वो अग्नऊधन् । तृतीये त्वा रजसि तस्थिवा-
ꣳसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (नृमणाः) नायक पुरुषों को विचारने वाला मैं जिस (त्वा) आप को (समुद्रे) आकाश में अग्नि के समान (ईधे) प्रदीप्त करता हूं (नृचक्षाः) बहुत मनुष्यों का देखने वाला मैं (अप्सु) प्राण वा जलों के (अन्तः) बीच प्रकाशित करता हूं (दिवः) सूर्य के प्रकाश के (ऊधन्) प्रात काल में प्रकाशित करता हूं (तृतीये) तीसरे (रजसि) लोक में (तस्थिवांसम्) स्थित हुए सूर्य के तुल्य जिस आप को (अपाम्) जलों के (उपस्थे) समीप (महिषः) महात्मा विद्वान् लोग (अवर्धन्) उन्नति को प्राप्त करें सो आप हम लोगों की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—प्रजा के बीच वर्त्तमान सब श्रेष्ठ पुरुष राजकार्यों को और राजपुरुष प्रजा पुरुषों को नित्य बढ़ाते रहें ॥ २० ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (द्यौः) सूर्य लोक (अग्निः) विद्युत् अग्नि (स्तनयन्निव) शब्द करते हुए के समान (वीरुधः) ओषधियों को (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (सद्यः) शीघ्र (हि) ही (अक्रन्दत्) पदार्थों को इधर उधर चलाता (क्षामा) पृथिवी को (रेरिहत्) कंपाता और यह (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (इद्धः) प्रकाशमान हो कर (भानुना) किरणों के साथ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (ईम्) सब ओर से (व्यख्यत्) विख्यात करता है । और ब्रह्माण्ड के (अन्तः) बीच (आभाति) अच्छे प्रकार शोभायमान होता है । वैसे तुम लोग भी होओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने जिस लिये सूर्य लोक को उत्पन्न किया है इसी

लिये यह बिजुली के समान सब लोकों का आकर्षण कर और ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाने का हेतु और सब भूगोलों के बीच जैसे शोभायमान होता है वैसे राजा आदि पुरुषों को भी होना चाहिये ॥ २१ ॥

श्रीणामित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इन राजकार्यों में कैसे पुरुष को राजा बनावें यह वि० ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः । वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को चाहिये कि जो पुरुष (उषसाम्) प्रभात समय के (अग्रे) आरम्भ में (इधानः) प्रदीप्यमान सूर्य के समान (श्रीणाम्) सब उत्तम लक्ष्मियों के मध्य (उदारः) परीक्षित पदार्थों का देने (रयीणाम्) धनों का (धरुणः) धारण करने (मनीषाणाम्) बुद्धियों का (प्रार्पणः) प्राप्त कराने और (सोमगोपाः) ओषधियों वा ऐश्वर्यों की रक्षा करने (सहसः) ब्रह्मचर्य किये जितेन्द्रिय बलवान् पिता का (सूनुः) पुत्र (वसुः) ब्रह्मचर्याश्रम करता हुआ (अप्सु) प्राणों में (राजा) प्रकाशयुक्त हो कर (विभाति) शुभ गुणों का प्रकाश करता हो उस को सब का अध्यक्ष करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उचित है कि सुपात्रों को दान देने धन का व्यर्थ खर्च न करने सब को विद्या बुद्धि देने जिस ने ब्रह्मचर्याश्रम सेवन किया हो अपने इन्द्रिय जिस के वश में हों योग के यम आदि आठ अङ्गों के सेवन से प्रकाशमान सूर्य के समान अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से सुशोभित और पिता के समान अच्छे प्रजाओं का पालन करने हारा पुरुष हो उस को राज्य करने के लिये स्थापित करें ॥ २२ ॥

विश्वस्येत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृ-
णाज्जायमानः । वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायन्
जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यत्) जो विद्वान् (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोकों का (केतुः) पिता के समान रक्षक प्रकाशने हारा (गर्भः) सब के मध्य में रहने (जायमानः) उत्पन्न होने वाला (परायन्) शत्रुओं को प्राप्त होता हुआ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (आपृणात्) पूरण कर्त्ता हो (वीडुम्) अत्यन्त बलवान् (अद्रिम्) मेघ को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करे (पंच) पांच (जनाः) प्राण (अग्निम्) बिजुली को (अयजन्त) संयुक्त करते हैं (चित्) इसी प्रकार जो विद्या आदि शुभ गुणों का प्रकाश करे उस को न्यायाधीश राजा मानो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य लोक अपनी आकर्षण शक्ति से सब का धारण करता और मेघ को काटने वाला तथा प्राणों से प्रसिद्ध हुए के समान सब विद्याओं को जताने और जैसे माता गर्भ की रक्षा करे वैसे प्रजा का पालने हारा विद्वान् पुरुष हो उस को राज्याधिकार देना चाहिये ॥ २३ ॥

उशिगित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्नि-
रमृतो निधायि । इयर्त्ति धूममरुषम्भरिभ्रच्छु-
क्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग ईश्वर ने (मर्त्येषु) मनुष्यों में जो (उशिक्) चाहने योग्य (पावकः) पवित्र करने हारा (अरतिः) ज्ञान वाला (सुमेधाः) अच्छी बुद्धि से युक्त (अमृतः) नाश धर्म रहित (अग्निः) आकाशरूप ज्ञान का प्रकाश (निधायि) स्थापित किया है जो (शुक्रेण) शीघ्रकारी (शोचिषा) प्रकाश से (द्याम्) सूर्यलोक को (इनक्षन्) व्याप्त होता हुआ (धूमम्) धुंए (अरुषम्) रूप को (भरिभ्रत्) अत्यन्त धारण वा पुष्ट करता हुआ (उदियर्त्ति) प्राप्त होता है उसी ईश्वर की उपासना करो वा उस अग्नि से उपकार लेओ ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कार्य्य कारण के अनुसार ईश्वर के रचे हुए सब पदार्थों को ठीक २ जान के अपनी बुद्धि बढ़ावें ॥ २४ ॥

दृशानइत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या २ जानना चाहिये यह वि० ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः । अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुमलोग (यत्) जिस कारण (दृशानः) दिखाने हारा (रुक्मः) रुचिका हेतु (श्रिये) शोभा का (रुचानः) प्रकाशक (दुर्मर्षम्) सब दुःखों से रहित (आयुः) जीवन करता हुआ (अमृतः) नाशरहित (अग्निः) तेजस्वरूप (उर्व्या) पृथिवी के साथ (व्यद्यौत्) प्रकाशित होता है (वयोभिः) व्यापक गुणों के साथ (अभवत्) उत्पन्न होता और जो (द्यौः) प्रकाशक (सुरेताः) सुन्दर पराक्रम वाला जगदीश्वर (यत्) जिस के लिये (एनम्) इस अग्नि को (अजनयत्) उत्पन्न करता है उस ईश्वर वायु और विद्युत् रूप अग्नि को जानो ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य गुण कर्म और स्वभावों के सहित जगत् रचने

वाले अनादि ईश्वर और जगत् के कारण को ठीक २ जान के उपासना करते और उपयोग लेते हैं वे चिरञ्जीव होकर लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

यस्तेऽद्येत्यस्य वत्सप्रीऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥
फिर विद्वान् लोग कैसे रसोइया का स्वीकार करें यह वि० ॥

यस्ते अद्य कृणवंद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवंन्तमग्ने। प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभंक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (भद्रशोचे) सेवने योग्य दीप्ति से युक्त (यविष्ठ) तरुण अवस्था वाले (देव) दिव्य भोगों के दाता (अग्ने) विद्वान् पुरुष (यः) जो (ते) आपका (घृतवन्तम्) बहुत घृत आदि पदार्थों से संयुक्त (अभि) सब प्रकार से (सुम्नम्) सुखरूप (देवभक्तम्) विद्वानों के सेवने योग्य (अपूपम्) भोजन के योग्य पदार्थों वाला (वस्यः) अत्यन्त भोग्य (अच्छ) अच्छे २ पदार्थों को (कृणवत्) बनावे (तम्) उस (प्रतरम्) पाक बनाने हारे पुरुष को आप (अद्य) आज (प्रनय) प्राप्त कीजिये ॥ २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए अति उत्तम व्यञ्जन और पकौड़ी आदि तथा शाक आदि स्वाद से युक्त रुचिकारक पदार्थों को बनाने वाले पाचक पुरुष का ग्रहण करें ॥ २६ ॥

आ तमित्यस्य वत्सप्रीऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी
त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥
फिर वही वि० ॥

आ तं भंज सौश्रवसेष्वंग्न उक्थउंक्थ आ भंज शस्यमाने। प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भंवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप जो (सौश्रवसेषु) सुन्दर धन वालों में वर्त्तमान हो (तम्) उस को (आभज) सेवन कीजिये जो (शस्यमाने) स्तुति के योग्य (उक्थे उक्थे) अत्यन्त कहने योग्य व्यवहार में (प्रियः) प्रीति रक्खे (सूर्य्ये) स्तुति कारक पुरुषों में हुए व्यवहार (अग्ना) और अग्नि विद्या में (प्रियः) सेवने योग्य (जातेन) उत्पन्न हुए और (जनित्वैः) उत्पन्न होने वालों के साथ (उद्भवाति) उत्पन्न होवे और शत्रुओं को (उद्भिनत्) उच्छिन्न भिन्न करे (तम्) उस को आप (आभज) सेवन कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो पाक करने में साधु सब का हितकारी अन्न और व्यञ्जनों को अच्छे प्रकार बनावे उस को अवश्य ग्रहण करें ॥ २७ ॥

त्वामग्न इत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें इस वि० ॥

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्य्याणि। त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष जिस (त्वाम्) आपका आश्रय ले कर (उशिजः) बुद्धिमान् (यजमानाः) संगतिकारक लोग (त्वया) आप के (सह) साथ (विश्वा) सब (वार्य्याणि) ग्रहण करने योग्य (अनुद्यून्) दिनों में (वसु) द्रव्यों को (दधिरे) धारण करें (द्रविणम्) धन की (इच्छमानाः) इच्छा करते हुए (गोमन्तम्) सुन्दर किरणों के रूप से युक्त (व्रजम्) मेघ वा गोस्थान को (विवव्रुः) विविध प्रकार से ग्रहण करें वैसे हम लोग भी होवें ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नशील विद्वानों के सङ्ग से पुरुषार्थ के साथ विद्या और धन को नित्य प्रति बढ़ाते जावें ॥ २८ ॥

अस्तावीत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन विद्वानों के सङ्ग से क्या होता है यह वि० ॥

अस्तांव्यग्निर्नराᳬ सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः । अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) शत्रुओं को जीतने की इच्छा वाले विद्वानो जिन (ऋषिः) ऋषि तुम लोगों ने (नराम्) नायक विद्वानों में (सुशेवः) सुन्दर सुख युक्त (वैश्वानर) सब मनुष्यों के आधार (अग्निः) परमेश्वर की (अस्तावि) स्तुति की है जो तुम लोग (अस्मे) हमारे लिये (सुवीरम्) जिस से सुन्दर वीर पुरुष हों उस (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (धत्त) धारण करो उन के आश्रित (सोमगोपाः) ऐश्वर्य के रक्षक हम लोग (अद्वेषे) द्वेष करने के अयोग्य प्रीति के विषय में (द्यावापृथिवी) प्रकाश रूप राजनीति और पृथिवी के राज्य का (हुवेम) ग्रहण करें ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर के सेवक धर्मात्मा विद्वान् लोग हैं वे परोपकारी होने से आप्त यथार्थवक्ता होते हैं ऐसे पुरुषों के सत्संग के बिना स्थिर विद्या और राज्य को कोई भी नहीं कर सकता ॥२९॥

समिधाग्निमित्यस्य विरूपाक्ष ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किस का सेवन करें यह वि० ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो तुम लोग जैसे (समिधा) अच्छे प्रकार इन्धनों से (अग्निम्) अग्नि को प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करने वाले विद्वान्

पुरुष को (दुवस्यत) सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत अन्न तथा (घृतैः) घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम कर के जगदुपकार करते हैं वैसे (अतिथिम्) जिस के आने जाने के समय का नियम न हो उस उपदेशक पुरुष को (बोधयत) स्वागत सत्काराादि से चैतन्य करो और (अस्मिन्) इस जगत् में (हव्या) देने योग्य पदार्थों को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार दिया करो ॥३०॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों ही की सेवा और सुपात्रों ही को दान दिया करें जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का हवन करके संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान कर के जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के सिद्ध को सुखी करें ॥३०॥

उदुत्वेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् मनुष्य को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करें यह वि० ॥

उदु॑ त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वा अग्ने॒ भर॑न्तु॒ चित्ति॑भिः ।
स नो॑ भव शि॒वस्त्वꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः ॥३१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जिस (त्वा) आप को (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (चित्तिभिः) अच्छे विज्ञानों के साथ अग्नि के समान (उदुभरन्तु) पुष्ट करें (सः) सो (विभावसुः) जिस से विविध प्रकार की शोभा या विद्या प्रकाशित हों (सुप्रतीकः) सुन्दर लक्षणों से युक्त (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) मङ्गलमय वचनों के उपदेशक (भव) हूजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य जैसे विद्वानों से विद्या का संचय करता है वह वैसे ही दूसरों के लिये विद्या का प्रचार करे ॥ ३१ ॥

प्रेदग्नइत्यस्य तापस ऋषिः। अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या कर के किस को प्राप्त होवे यह वि० ॥

प्रेदंग्ने ज्योतिंष्मान् याहि शिवेभिंरर्चिभिष्ट्वम् । बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् । माहिंꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या प्रकाश करने हारे विद्वन् (त्वम्) तू जैसे (ज्योतिष्मान्) बहुत ज्योतियों से युक्त (शिवेभिः) मङ्गलकारी (अर्चिभिः) सत्कार के साधन (बृहद्भिः) बड़े २ (भानुभिः) प्रकाश गुणों से (इत्) ही (भासन्) प्रकाशमान है वैसे (प्रयाहि) सुखों को प्राप्त हूजिये और (तन्वा) शरीर से (प्रजाः) पालने योग्य प्राणियों को (मा) मत (हिंसीः) मारिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे सेनापति आदि राज पुरुषों के सहित राजन् आप अपने शरीर से किसी अनपराधी प्राणी को न मार के विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजाओं का पालन करके जीवते हुए संसार के सुख को और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के सुख को प्राप्त हूजिये ॥३२॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राज्य का प्रबन्ध कैसे करे यह वि० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयंन्निव द्यौः क्षामा रेरिंहद्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जंज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदंसी भानुना भात्यन्तः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के लोगो तुम लोगों को चाहिये कि जैसे (द्यौः) सूर्य प्रकाश करता है वैसे विद्या और न्याय का प्रकाश करने और (अग्निः) पावक के तुल्य शत्रुओं का नष्ट करने हारा विद्वान् (स्तनयन्निव) बिजुली के समान (अक्रन्दत्) गर्जता और (वीरुधः) वन के वृक्षों को (समञ्जन्) अच्छे प्रकार रक्षा करता हुआ (क्षामा) पृथिवी पर (रेरिहत्) युद्ध करे

(जज्ञानः) राजनीति से प्रसिद्ध हुआ (वह्निः) शुभ लक्षणों से प्रकाशित (सद्यः) शीघ्र (व्यख्यत्) धर्मयुक्त उपदेश करे तथा (भानुना) पुरुषार्थ के प्रकाश से (हि) ही (रोदसी) अग्नि और भूमि को (अन्तः) राजधर्म में स्थिर करता हुआ (आभाति) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है वह पुरुष राजा होने के योग्य है ऐसा निश्चित जानो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—वन के वृक्षों की रक्षा के विना बहुत वर्षा और रोगों की न्यूनता नहीं होती और बिजुली के तुल्य दूर के समाचारों से शत्रुओं को मारने और विद्या तथा न्याय के प्रकाश के विना अच्छा स्थिर राज्य भी नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥

प्रप्रायमित्यस्य वासिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कैसे पुरुष को राजव्यवहार में नियुक्त करें यह वि० ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः । अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषो तुम लोगों को चाहिये कि (यत्) जो (अयम्) यह (अग्निः) सेनापति (सूर्यः) सूर्य के (न) समान (बृहद्भाः) अत्यन्त प्रकाश से युक्त (प्रप्र) अति प्रकर्ष के साथ (रोचते) प्रकाशित होता है (यः) जो (नः) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (पूरुम्) पूर्णबल युक्त सेनाध्यक्ष के निकट (अभितस्थौ) सब प्रकार स्थित होवे (दैव्यः) विद्वानों का प्रिय (अतिथिः) नित्य भ्रमण करने हारा अतिथि (शिवः) मङ्गलदाता विद्वान् पुरुष (दीदाय) विद्या और धर्म को प्रकाशित करे जिस को मैं (भरतस्य) सेवने योग्य राज्य का रक्षक (शृण्वे) सुनता हूं । उस को सेना का अधिपति करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्यों को चाहिये कि जिस

पुण्यकीर्त्ति पुरुष का शत्रुओं में विजय और विद्या प्रचार सुनाजाये उस कुलीन पुरुष को सेना के युद्ध करने हारा अधिकारी करें ॥ ३४ ॥

आपइत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । आपो देवताः । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ सब मनुष्यों को स्वयम्बर विवाह करना चाहिये यह विष ॥

आपो॑ दे॒वीः प्रति॑गृभ्णीत॒ भस्मै॒तत्स्यो॒ने कृ॑-
णुध्वꣳ सुर॒भा उ॑ लो॒के । तस्मै॑ नमन्तां॒ जन॑यः
सु॒पत्नी॑र्मा॒तेव॑ पु॒त्रं बि॑भृता॒प्स्वे॑नत् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो जो (आपः) पवित्र जलों के तुल्य संपूर्ण शुभगुण और विद्याओं में व्याप्त बुद्धि (देवीः) सुन्दर रूप और स्वभाव वाली कन्या (सुरभौ) ऐश्वर्य्य के प्रकाश से युक्त (लोके) देखने योग्य लोकों में अपने पतियों को प्रसन्न करें उन को (प्रतिगृभ्णीत) स्वीकार करो तथा उनको सुख युक्त (कृणुध्वम्) करो जो (एतत्) यह (भस्म) प्रकाशक तेज है (तस्मै) उस के लिये जो (सुपत्नीः) सुन्दर (जनयः) विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रसिद्ध हुई स्त्री नमती हैं उन के प्रति आप लोग भी (नमन्ताम्) नम्र हूजिये (उ) और तुम स्त्री पुरुष दोनों मिल के (पुत्रम्) पुत्र को (मातेव) माता के तुल्य (अप्सु) प्राणों में (एनत्) इस पुत्र को (बिभृत) धारण करो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर प्रसन्नता के साथ स्वयंवर विवाह धर्म के अनुसार पुत्रों को उत्पन्न और उन को विद्वान् करके गृहाश्रम के ऐश्वर्य्य की उन्नति करें ॥ ३५ ॥

अप्स्वग्नइत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ जीव किस २ प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं यह विषः ॥

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे । गर्भे सन् जायसे पुनः ॥ ३६ ॥

पदार्थः — हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्वन् जीव जो तू (सधिः) सहनशील (अप्सु) जलों में (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों को (अनुरुध्यसे) प्राप्त होता है (सः) गर्भ में (सन्) स्थित हो कर (पुनः) फिर २ जन्म मरण (तव) तेरे हैं ऐसा जान ॥ ३६ ॥

भावार्थः— जो जीव शरीर को छोड़ते हैं वे वायु और ओषधि आदि पदार्थों में भ्रमण करते २ गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण कर के प्रकट होते हैं ॥ ३६ ॥

गर्भोअसीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर जीव कहां २ जाता है यह वि० ॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥३७॥

पदार्थः — हे (अग्ने) दूसरे शरीर को प्राप्त होने वाले जीव जिस से तू अग्नि के समान जो (ओषधीनाम्) सोमलता आदि वा यवादि ओषधियों के (गर्भः) दोषों के मध्य (गर्भ) गर्भ (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वनस्पतियों के बीच (गर्भः) शोधक (विश्वस्य) सब (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार के मध्य (गर्भः) ग्रहण करने हारा और जो (अपाम्) प्राण वा जलों का (गर्भः) गर्भ रूप भीतर रहने हारा (असि) है इस लिये तू अज अर्थात् स्वयं जन्म रहित (असि) है ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो तुम लोगों को चाहिये कि जो बिजुली के समान सब के अन्तर्गत जीव जन्म लेने वाले हैं उन को जानो ॥ ३७ ॥

प्रसद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मरण समय शरीर का क्या होना चाहिये यह वि० ॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान्पुनरासदः ॥३८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशमान पुरुष सूर्य के समान (ज्योतिष्मान्) प्रज्वलित प्रकाश से युक्त जीव तू (भस्मना) शरीर दाह के पीछे (पृथिवीम्) पृथिवी (च) अग्नि आदि और (अपः) जलों के बीच (योनिम्) देह धारण के कारण को (प्रसद्य) प्राप्त हो और (मातृभिः) माताओं के उदर में वास कर के (पुनः) फिर (आसदः) शरीर को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे जीवो तुम लोग जब शरीर को छोड़ो तब यह शरीर राख रूप करके पृथिवी आदि पांच भूतों के साथ युक्त करो । तुम और तुम्हारे आत्मा माता के शरीर में गर्भाशय में पहुंच फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो ॥ ३८ ॥

पुनरासद्येत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे
मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याꣳ शिवतमः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) इच्छा आदि गुणों से प्रकाशित जन जिस कारण तू (पुनः) फिर २ (आसद्य) प्राप्त हो के (अस्याम्) इस माता के (अन्तः) गर्भाशय में (शिवतमः) मङ्गलकारी हो के (यथा) जैसे बालक (मातुः) माता की (उपस्थे) गोद में (शेषे) सोता है वैसे ही माता की सेवा में मङ्गलकारी हो ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप (विश्वप्स्न्या) सब पदार्थों के भोगने का साधन (भरया) अच्छी संस्कृतवाणी के (सह) साथ (विश्वतस्परि) सब संसार के बीच (नि) निरन्तर (वर्त्तस्व) वर्त्तमान हूजिये और हम लोगों का (पिन्वस्व) सेवन कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि इस जगत् में अच्छी बुद्धि और पुरुषार्थ के साथ श्रीमान् हो कर अन्य मनुष्यों को भी धनवान् करें॥४१॥

बोधामेत्यस्य दीर्घतमाऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग आपस में कैसे पढ़ें और पढ़ावें इस वि० ॥

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः । पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त जवान (स्वधावः) प्रशंसित बहुत अन्नोंवाले (अग्ने) उपदेश के योग्य श्रोता जन तू (मे) मेरे (प्रभृतस्य) अच्छे प्रकार से धारण वा पोषण करने वाले (मंहिष्ठस्य) अत्यन्त कहने योग्य बड़े तेरी जो (त्वः) वह निन्दक पुरुष (पीयति) निन्दा करे (त्वः) कोई (अनु) परोक्ष में (गृणाति) स्तुति करे उस (ते) आप के (तन्वम्) शरीर को (वन्दारुः) अभिवादन शील मैं स्तुति करता हूं ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जब कोई किसी को पढ़ावे वा उपदेश करे तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े वा सुने । जब सत्य वा मिथ्या का निश्चय हो जावे तब सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे । ऐसे करने में कोई निन्दा और कोई स्तुति करे तो कभी न छोड़े और मिथ्या का ग्रहण कभी न करे । यही मनुष्यों के लिये विशेष गुण है ॥ ४२ ॥

स बोधीत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग क्या करके किस को प्राप्त होवें यह वि०॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोध्यस्मद्द्वेषांसि विश्वकर्मणे स्वाहा॥ ४३॥

पदार्थः—हे (वसुपते) धनों के पालक (वसुदावन्) पुत्रों के लिये धन देने वाले जो (मघवा) प्रशंसित विद्या से युक्त (सूरिः) बुद्धिमान् आप सत्य को (बोधि) जानें (सः) सो आप (विश्वकर्मणे) संपूर्ण शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश करते हुए आप (अस्मत्) हम से (द्वेषांसि) द्वेष युक्त कर्मों को (युयोधि) पृथक् कीजिये॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य के साथ जितेन्द्रिय हो द्वेष को छोड़ धर्मानुसार उपदेश कर और शुभ के ग्रहण करते हैं वे ही धर्मात्मा विद्वान् लोग संपूर्ण सत्यासत्य के जानने और उपदेश करने के योग्य होते हैं और अन्य हठ अभिमान युक्त क्षुद्र पुरुष नहीं॥ ४३॥

पुनस्त्वेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कैसे मनुष्यों के संकल्प सिद्ध होते हैं इस वि०॥

पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः॥ ४४॥

पदार्थः—हे (वसुनीथ) वेदादि शास्त्रों के बोधरूप और सुवर्णादि धन प्राप्त कराने वाले आप (यज्ञैः) पढ़ने पढ़ाने आदि क्रियारूप यज्ञों और (घृतेन) अच्छे संस्कार किये हुए घी आदि वा जल से (तन्वम्) शरीर को नित्य (वर्धयस्व) बढ़ाइये (पुनः) पढ़ने पढ़ाने के पीछे (त्वा) आप को (आदित्याः) पूर्ण विद्या के बल से युक्त (रुद्राः) मध्यस्थ विद्वान् और (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (ब्रह्माणः) चार वेदों को पढ़ के ब्रह्मा की

पदवी को पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् (समिन्धताम्) सम्यक् प्रकाशित करें। इस प्रकार के अनुष्ठान से (यजमानस्य) यज्ञ सत्संग और विद्वानों का सत्कार करने वाले पुरुष की (कामाः) कामना (सत्याः) सत्य (सन्तु) होवें ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रयत्न के साथ सब विद्याओं को पढ़ और पढ़ा के वारंवार स्मरण करते हैं कुपथ्य और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के रोग को हटा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं के संकल्प सत्य होते हैं दूसरों के नहीं ॥ ४४ ॥

अपेतेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। पितरो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

सन्तान और पिता माता परस्पर किन २ कर्मों का आचरण करें यह वि० ॥

अपे॑त वी॒त वि च॑ सर्प॒ता॒तो येऽत्र॒ स्थ पु॑रा॒णा ये च॒ नूत॑नाः। अदा॑द्य॒मोऽव॒सानं॑ पृथि॒व्या अक्र॑न्नि॒मं पि॒तरो॑ लो॒कम॑स्मै ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो (ये) जो (अत्र) इस समय (पृथिव्याः) भूमि के बीच वर्त्तमान (पुराणाः) प्रथम विद्या पढ़ चुके (च) और (ये) जो (नूतनाः) वर्त्तमान समय में विद्याभ्यास करने हारे (पितरः) पिता पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा करने वाले (स्थ) होवें (ते) वे (अस्मै) इस सत्यस्वरूपी मनुष्य के लिये (इमम्) इस (लोकम्) वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को (अक्रन्) सिद्ध करें जिन तुम लोगों को (यमः) प्राप्त हुआ परीक्षक पुरुष (अवसानम्) अवकाश वा अधिकार को (अदात्) देवे वे तुम लोग (अतः) इस अधर्म से (अपेत) पृथक् रहो और धर्म को (वीत) विशेष कर प्राप्त होओ (अत्र) और इसी में (विसर्पत) विशेषता से गमन करो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य का यही परम धर्म है जो

मनुष्यों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा का प्राप्त करना। जो अधर्म से पृथक् और धर्म से युक्त परोपकारी योगी संन्यासी आदि वृद्ध और उत्तम विद्वान् होते हैं वे निरन्तर सत्य उपदेश से अविद्या का निवारण और विद्या की प्रवृत्ति करके कृतकृत्य होवें॥४५॥

संज्ञानमसीत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्य मनुष्यों से कैसा वर्त्ताव करके सुखी हों इस वि०॥

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात्। अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम्॥४६॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जिस (संज्ञानम्) पूरे विज्ञान को प्राप्त (असि) हुए हो जो आप (अग्नेः) अग्नि से हुए (भस्म) राख के समान हो रहे हो और सहन करता (असि) हो (अग्नेः) बिजुली के जिस (पुरीषम्) पूर्ण बल को प्राप्त हुए (असि) हो उस विज्ञान सहन और बल को मेरे लिये भी दीजिये जिस (ते) आप का जो (कामधरणम्) संकल्पों का आधार अन्तःकरण है वह (कामधरणम्) कामना का आधार (मयि) मुझ में (भूयात्) होवे। जैसे तुम लोग विद्या आदि शुभगुणों से (चितः) इकट्ठे हुए (परिचितः) सब पदार्थों को सब ओर से इकट्ठे करने हारे (ऊर्ध्वचितः) उत्कृष्ट गुणों के संचय कर्त्ता पुरुषार्थ को (श्रयध्वम्) सेवन करो वैसे हम लोग भी करें॥४६॥

भावार्थः—जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिये कि सदैव विद्वानों से विद्या की इच्छा कर प्रश्न किया करें कि जितना तुम लोगों में पदार्थों का विज्ञान है उतना सब तुम लोग हम लोगों में धारण करो। और जितनी हस्तक्रिया आप जानते हैं उतनी सब हम लोगों को दिखाइये॥४६॥

अयंसइत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों को उत्तम आचरणों के अनुसार वर्त्तना चाहिये यह वि०॥

अयꣳसो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः। सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः॥४७॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए विद्वान् जैसे (ससवान्) दान देते (सन्) हुए आप (स्तूयसे) प्रशंसा के योग्य हो (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि और (इन्द्रः) सूर्य (यस्मिन्) जिस में (सोमम्) सब ओषधियों के रस को धारण करता है जिस (सुतम्) सिद्ध हुए पदार्थ को (जठरे) पेट में मैं (दधे) धारण करता हूं (सः) वह मैं (वावशानः) शीघ्र कामना करता हुआ (सहस्रियम्) साथ वर्त्तमान अपनी स्त्री को धारण करता हूं आप के साथ (वाजम्) अन्न आदि पदार्थों को (अत्यम्) व्याप्त होने योग्य के (न) समान (सप्तिम्) घोड़े को (दधे) धारण करता हूं वैसा ही तू भी हो॥४७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोप० और उपमालं०—जैसे बिजुली और सूर्य, सब रसों का ग्रहण कर जगत् को रसयुक्त करते हैं वा जैसे पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द भोगते हैं वैसे मैं इस सब का धारण करता हूं जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो वैसे मैं भी प्रशंसा के योग्य होऊं॥४७॥

अग्नेयत्त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अध्यापक लोगों को निष्कपट से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहिये यह वि०॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र। येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः॥४८॥

पदार्थः—हे (यजत्र) संगम करने योग्य (अग्ने) विद्वन् (यत्) जिस (ते) आपका अग्नि के समान (दिवि) प्रकाशशील आत्मा में (वर्चः) विज्ञान का प्रकाश (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी (ओषधीषु) यवादि ओषधियों और (अप्सु) प्राणों वा जलों में (वर्चः) तेज है (येन) जिस से (नृचक्षाः) मनुष्यों को दिखाने वाला (भानुः) सूर्य (अर्णवः) बहुत जलों को वर्षाने हारा (त्वेषः) प्रकाश है (येन) जिस से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ, ततन्थ) विस्तार युक्त करते हो (सः) सो आप सब हम लोगों में धारण कीजिये ॥ ४८ ॥

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-इस जगत् में जिस को सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान जितना होवे उतना ही शीघ्र दूसरों को बतावे जो कदाचित् दूसरों को न बतावे तो वह नष्ट हुआ किसी को प्राप्त नहीं हो सके ॥ ४८ ॥

अग्ने दिव इत्यस्य विरूपाक्ष ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वही विषय ॥

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ २॥ ऊचिषे धिष्ण्या ये । या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जो आप (दिवः) प्रकाश से (अर्णम्) विज्ञान को (यतः) जैसे (आपः) प्राण वा जल (सूर्यस्य) सूर्य के (रोचने) प्रकाश में (परस्तात्) पर हैं (च) और (याः) जो (अवस्तात्) नीचे (उपतिष्ठन्ते) समीप में स्थित हैं उन को (अच्छ) अच्छे प्रकार (जिगासि) स्तुति करते हो (ये) जो (धिष्ण्याः) [illegible] हैं उन (देवान्) दिव्यगुण विद्वानों वा पृथिवी के बीच विज्ञान को (अच्छ) अच्छे प्रकार (ऊचिषे) कहते हो [illegible] ॥ ४९

भावार्थः—जो अच्छे विचार से बिजुली और सूर्य के किरणों में ऊपर नीचे रहने वाले जलों और वायुओं के बोध को प्राप्त होते हैं वे दूसरों को निरन्तर उपदेश करें ॥ ४९ ॥

पुरीष्यास इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को द्रोहादिक छोड़ के आनन्द में रहना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ५० ॥

पदार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि (प्रावणेभिः) विद्वानों के साथ वर्त्तमान हुए (अनमीवाः) रोगरहित (अद्रुहः) द्रोह से पृथक् (सजोषसः) एक प्रकार की सेवा और प्रीति वाले (पुरीष्यासः) पूर्ण गुणयुक्त पदार्थों में निपुण (अग्नयः) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वान् लोग (यज्ञम्) विद्याविज्ञान दान और पढ़नरूप यज्ञ और (महीः) बड़ी २ (इषः) इच्छाओं को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥ ५० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे बिजुली अनुकूल हुई सनातन साथ से सब पदार्थों का सेवन करती है वैसे ही रोग द्रोहादि दोषों से रहित आपस में प्रीति वाले हो के विद्वान् लोग विज्ञान बढ़ाने वाले यज्ञ को विस्तृत कर के बड़े २ सुखों को निरन्तर भोगें ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् (ते) आप की (सा) वह (सुमतिः) सुन्दर बुद्धि (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) होवे जिस से आप का (नः) और हमारा जो (विजावा) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का उत्पादक (सूनुः) उत्पन्न होने वाला (तनयः) पुत्र (स्यात्) होवे उस बुद्धि से उस (हवमानाय) विद्या ग्रहण करते हुए के लिये (इडाम्) स्तुति के योग्य वाणी को (गोः) वाणी के सम्बन्धी (शश्वत्तमम्) अनादि रूप अत्यन्त वेदज्ञान को और (पुरुदंसम्) बहुत कर्म जिस से सिद्ध हों ऐसे (सनिम्) ऋग्वेदादि वेदविभाग को (रास) सिद्ध कीजिये और हे अध्यापक हम लोग भी सिद्ध करें ॥ ५१ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य को चाहिये कि सावधानी से गर्भाधान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान उत्पन्न कर के उन में वेद ईश्वर और विद्या युक्त बुद्धि उत्पन्न करें क्योंकि ऐसा अन्य धर्म अपत्य सुख का हितकारी कोई नहीं है ऐसा निश्चय रखना चाहिये ॥ ५१ ॥

अयंत इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ माता पिता और पुत्रादिकों को परस्पर क्या करना चाहिये यह वि० ॥

अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आ रोहाथानो वर्धया रयिम् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शुद्ध अन्तःकरण वाले विद्वान् पुरुष जो (ते) आप का (ऋत्वियः) ऋतुकाल में प्राप्त हुआ (अयम्) यह प्रत्यक्ष (योनिः) दुःखों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है (यतः) जिस से (जातः) उत्पन्न हुए आप (अरोचथाः) प्रकाशित होवें (तम्) उस को (जानन्) जानते हुए आप (आरोह) शुभगुणों पर आरूढ़ हू-

जिये (अथ) इस के पश्चात् (नः) हम लोगों के लिये (रयिम्) प्रशंसित लक्ष्मी को (वर्धय) बढ़ाइये ॥ ५२ ॥

भावार्थः-हे माता पिता और आचार्य्य ! तुम लोग पुत्र और कन्याओं को धर्मानुकूल सेवन किये ब्रह्मचर्य से श्रेष्ठ विद्या को प्रसिद्ध कर उपदेश करो। हे सन्तानो ! तुम लोग सत्यविद्या और सदाचार के साथ हम को अच्छी सेवा और धन से निरन्तर सुख युक्त करो ॥ ५२ ॥

चिदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता स्वराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये यह वि० ॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे कन्ये जो तू (चित्) चिताई (असि) हुई (तया) उस (देवतया) दिव्यगुण प्राप्त कराने हारी विद्वान् स्त्री के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (ध्रुवा) निश्चल (सीद) स्थिर हो। हे ब्रह्मचारिणी जो तू (परिचित्) त्रिविध विद्या को प्राप्त हुई (असि) है सो तू (तया) उस (देवतया) धर्मानुष्ठान से युक्त दिव्यसुखदायक क्रिया के साथ (अङ्गिरस्वत्) ईश्वर के समान (ध्रुवा) अचल (सीद) अवस्थित हो ॥ ५३ ॥

भावार्थः—सब माता पिता और पढ़ाने हारी विद्वान् स्त्रियों को चाहिये कि कन्याओं को सम्यक् बुद्धिमती करें। हे कन्या लोगो तुम जो पूर्ण अखंडित ब्रह्मचर्य से संपूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवति हो कर अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके गृहाश्रम का सेवन करो तो सब सुखों को प्राप्त हो और सन्तान भी अच्छे होवें ॥ ५३ ॥

लोकम्पृणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे कन्ये जिस (त्वा) तुझ को (योनौ) बन्ध के छेदक मोक्ष प्राप्ति के हेतु (अस्मिन्) इस विद्या के बोध में (इन्द्राग्नी) माता पिता तथा (बृहस्पतिः) बड़ी २ वेदवाणियों की रक्षा करने वाली अध्यापिका स्त्री (असीषदन्) प्राप्त करावें उस में (त्वम्) तू (ध्रुवा) दृढ़ निश्चय के साथ (सीद) स्थिर हो (अथो) इस के अनन्तर (छिद्रम्) छिद्र को (पृण) पूर्ण कर और (लोकम्) देखने योग्य प्राणियों को (पृण) प्रसन्न कर ॥ ५४ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्यों को चाहिये कि इस प्रकार की धर्मयुक्त विद्या और शिक्षा करें कि जिस को ग्रहण कर कन्या लोग छिद्र रहित हों सब बुरे व्यसनों को त्याग और समावर्तन संस्कार के पश्चात् स्वयम्बर विवाह करके पुरुषार्थ के साथ आनन्द में रहें ॥ ५४ ॥

ता अस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—जो (देवानाम्) दिव्य विद्वान् पतियों की (सूददोहसः) सुन्दर रसोइया और गौ आदि के दुहने वा ले सेवकों वाली (पृश्नयः) कोमल शरीर सूक्ष्म अङ्ग युक्त स्त्री दूसरे (जन्मन्) विद्यारूप जन्म में विदुषी

हो के (दिवः) दिव्य (अस्य) इस गृहाश्रम के (सोमम्) उत्तम ओष-धियों के रस से युक्त भोजन (श्रीणन्ति) पकाती हैं (ताः) वे प्रशस्तवाणि-नी (आ रोचते) अच्छी रुचिकारक व्यवहार में (त्रिषु) तीनों अर्थात् गत आगामी और वर्त्तमान काल विभागों में सुख देने वाली होती तथा (दिवः) उत्तम कामनाओं को भी प्राप्त होती हैं ॥ ५५ ॥

भावार्थः—जब अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए युवा विद्वानों को अपने सदृश रूप और गुण से युक्त स्त्री होवें तो गृहाश्रम में सर्वदा सुख और अच्छे सन्तान उत्पन्न होवें । इस प्रकार किये विना संसार का सुख और शरीर छूटने के पश्चात् मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वेत्यस्य जेता माधुच्छन्दस ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमार और कुमारियों को इस प्रकार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥५६॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो जैसे (विश्वाः) सब (गिरः) वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणी (समुद्रव्यचसम्) समुद्र की व्याप्ति के समान व्याप्त जिस में हो उस (वाजानाम्) यज्ञों और (रथीनाम्) प्रशंसित रथों वाले वीर पुरुषों में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित रथवाले (सत्पतिम्) सत्य ईश्वर वेद धर्म वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (पतिम्) सब ऐश्वर्य के स्वामी को (अवीवृधन्) बढ़ावें और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को बढ़ावें वैसे तुम सब प्राणियों को बढ़ाओ ॥ ५६ ॥

भावार्थः—जो कुमार और कुमारी दीर्घ ब्रह्मचर्य सेवन से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ और अपनी २ प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करें । धर्मयुक्त व्यवहार से व्यभिचार को छोड़ के सुन्दर सन्ता

नों को उत्पन्न करके परोपकार करने में प्रयत्न करें वे इस संसार और परलोक में सुख भोगें। और इस से विरुद्ध जनों को नहीं हो सकता ॥ ५६॥

समितमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

पश्चात् विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

समितꣳसंकल्पेथाꣳसंप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। इषमूर्जमभि संवसानौ॥ ५७॥

पदार्थः—हे विवाहित स्त्री पुरुषो तुम (सप्रियौ) आपस में सम्यक् प्रीति वाले (रोचिष्णू) विषयासक्ति से पृथक् प्रकाशमान (सुमनस्यमानौ) मित्र विद्वान् पुरुषों के समान वर्त्तमान (संवसानौ) सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से युक्त हुए (इषम्) इच्छा को (समितम्) इकट्ठे प्राप्त होओ और (ऊर्जम्) पराक्रम को (अभि) सम्मुख (सङ्कल्पेथाम्) एक अभिप्राय में समर्पित करो॥ ५७॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष सर्वथा विरोध को छोड़ के एक दूसरे की प्रीति में तत्पर, विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे २ वस्त्र और आभूषण धारण करने वाले हो के प्रयत्न करें तो घर में कल्याण और आरोग्य बढ़े। और जो परस्पर विरोधी हों तो दुःख सागर में अवश्य डूबें॥ ५७॥

संवामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुपरिष्टाद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना ही वेदों को पढ़ावें और उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सं वां मनाꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम्। अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं यजमानाय धेहि॥ ५८॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो जैसे मैं आचार्य (वाम्) तुम दोनों के (संमनांसि) एक धर्म्म में तथा सङ्कल्प विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को (संव्रता) सत्यभाषणादि (उ) और (सम्, चित्तानि) सम्यक् जाने हुए कर्मों में (आ) अच्छे प्रकार (अकरम्) करूं। वैसे तुम दोनों मेरी प्रीति के अनुकूल विचारो हे (पुरीष्य) रक्षा के योग्य व्यवहारों में हुए (अग्ने) उपदेशक आचार्य वा राजन् (त्वम्) आप (नः) हमारे (अधिपाः) अधिक रक्षा करने हारे (भव) हूजिये (यजमानाय) धर्मानुकूल सत्सङ्ग के स्वभाव वाले पुरुष वा ऐसी स्त्री के लिये (इषम्) अन्न आदि उत्तम पदार्थ और (ऊर्जम्) शरीर तथा आत्मा के बल को (धेहि) धारण कीजिये ॥ ५८ ॥

भावार्थः—उपदेशक मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना सब मनुष्यों का एक धर्म्म एक कर्म्म एक प्रकार की चित्तवृत्ति और बराबर सुख दुःख जैसे हों वैसे ही शिक्षा करें। सब स्त्री पुरुषों को योग्य है कि आप्त विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक मान के सेवन करें और उपदेशक वा अध्यापक इन के ऐश्वर्य और पराक्रम को बढ़ावें। और सब मनुष्यों के एक धर्म आदि के विना आत्माओं में मित्रता नहीं होती और मित्रता के विना निरन्तर सुख भी नहीं हो सकता ॥ ५८ ॥

अग्ने त्वमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

किन को पढ़ाने और उपदेश के लिये नियुक्त करना चाहिये ॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२॥
असि। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमि-
हासदः ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) उपदेशक विद्वन् जिस से (त्वम्) आप (इह) इस संसार में (पुरीष्यः) शुद्ध मत के पालने में तत्पर (रयिमान्) विद्या

स्त्री लोग कैसे पतियों की इच्छा न करें यह वि० ॥

असुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान (देवि) विद्वान् स्त्री तू (अस्मत्) हम से भिन्न (स्तेनस्य) अप्रसिद्ध चोर और (तस्करस्य) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी को छोड़ के (अन्यम्) भिन्न को (इच्छ) इच्छा कर और (असुन्वन्तम्) अभिषव आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित (अयजमानम्) दान धर्म से रहित पुरुष की (इच्छ) इच्छा मत कर और तू जिस (इत्याम्) प्राप्त होने योग्य क्रिया को (अन्विहि) ढूंढे (सा) वह (इत्या) क्रिया (ते) तेरी हो तथा उस (तुभ्यम्) तेरे लिये (नमः) अन्न वा सत्कार (अस्तु) होवे ॥ ६२ ॥

भावार्थः—हे स्त्रियो तुम लोगों को चाहिये कि पुरुषार्थरहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो । आप्त पुरुषों की प्रीति के तुल्य प्रीति वाले पुरुषों को ग्रहण करो । जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान से मनुष्यों को संयुक्त करती है वैसी होओ । ऐसे गुणों वाली तुम को हम लोग नमस्कार करते हैं । जैसे हम लोग आलसी चोरों के साथ न वर्तें वैसे तुम लोग भी मत वर्तो ॥ ६२ ॥

नमःसुत इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर ये स्त्री कैसी हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) निरन्तर सत्य आचरणों से युक्त स्त्री जिस (ते) तेरे (तिग्मतेजः) तीव्र तेजों वाले (अयस्मयम्) सुवर्णादि और (नमः) अन्नादि पदार्थ हैं सो (त्वम्) तू (एतम्) इस (बन्धम्) बांधने के हेतु अज्ञान का (सुविचृत) अच्छे प्रकार (यमेन) न्यायाधीश तथा (यम्या) न्याय करने हारी स्त्री के साथ (संविदाना) सम्यक् बुद्धि युक्त हो कर (एनम्) इस अपने पति को (उत्तमे) उत्तम (नाके) आनन्द भोगने में (अधिरोहय) आरूढ़ कर॥ ६३॥

भावार्थः—हे स्त्रियो तुम को चाहिये कि जैसे यह पृथिवी अग्नि तथा सुवर्ण अन्नादि पदार्थों से सम्बन्ध रखती है वैसे तुम भी होओ। जैसे तुम्हारे पति न्यायाधीश हो कर अपराधी और अपराधरहित मनुष्यों का सत्य न्याय से विचार कर के अपराधियों को दण्ड देते और अपराध रहितों का सत्कार करते हैं तुम लोगों के लिये अत्यन्त आनन्द देते हैं वैसे तुम लोग भी होओ॥ ६३॥

यस्यास्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। निर्ऋतिर्देवता।
आर्षीत्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होवें यह विषय अगले
मंत्र में कहा है॥

यस्यास्ते घोर आसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय। यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः॥ ६४॥

पदार्थः—हे (घोरे) दुष्टों को भय करने हारी स्त्री (यस्याः) जिस सुन्दर नियम युक्त (ते) तेरे (आसन्) मुख में (एषाम्) इन (बन्धानाम्) दुःख देते हुए रोकने वालों के (अवसर्जनाय) त्याग के लिये अमृतरूप अन्नादि पदार्थों को (जुहोमि) देता हूं जो (जनः) मनुष्य (भूमिरिति) पृथिवी के समान (याम्) जिस (त्वा) तुझ को (प्रमन्दते)

आनन्दित करता है उस तुझ को (अहम्) मैं (विश्वतः) सब ओर से (निर्ऋतिम्) पृथिवी के समान (त्वा) (परि) सब प्रकार से (वेद) जानूं । सो तू भी इस प्रकार मुझ को जान ॥ ६४ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०-जैसे पति अपने आनन्द के लिये स्त्रियों का ग्रहण करते हैं । वैसे ही स्त्री भी पतियों का ग्रहण करें इस गृहाश्रम में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति सुख का कोश होता है । खेतरूप स्त्री और बीजरूप पुरुष जो इन शुद्ध बलवान् दोनों के समागम से उत्तम विविध प्रकार के सन्तान हों तो सर्वदा कल्याण ही बढ़ता रहता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६४ ॥

यं ते देवीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यजमानो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विवाह समय में कैसी २ प्रतिज्ञा करें इस वि० ॥

यन्ते देवी निर्ऋतिराबुबन्ध पाशं ग्रीवास्वंविचृत्यम् । तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमंद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥६५॥

पदार्थः—स्त्री कहे कि हे पते (निर्ऋतिः) पृथिवी के समान मैं (ते) तेरे (ग्रीवासु) कण्ठों में (अविचृत्यम्) न छोड़ने योग्य (यम्) जिस (पाशम्) धर्म युक्त बन्धन को (आबबन्ध) अच्छे प्रकार बांधती हूं (तम्) उसको (ते) तेरे लिये भी प्रवेश करती हूं (आयुषः) अवस्था के साधन अन्न के न) समान (वि,ष्यामि) प्रविष्ट होती हूं (अथ) इस के पश्चात् (मध्यात्) मैं तू दोनों में से कोई भी नियम से विरुद्ध न चले जैसे मैं (एतम्) इस (पितुम्) अन्नादि पदार्थ को भोगती हूं वैसे (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ तू इस अन्नादि को (अद्धि) भोग । हे स्त्री (या) जो (देवी) दिव्यगुण वाली तू (इदम्) इस पतिव्रत रूप धर्म से संस्कार किये हुए प्रत्यक्ष नियम को (चकार) करे उस (भूत्यै) ऐश्वर्य करने हारी तेरे लिये (नमः अन्नादि पदार्थ को देता हूं ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार—विवाह समय में जिन व्यभिचार के त्याग आदि नियमों को करें उन से विरुद्ध कभी न चलें क्योंकि पुरुष जब विवाह समय में स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तभी पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का और जितना स्त्री का है वह सब पुरुष का समझा जाता है। जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री के निकट जावे वा स्त्री दूसरे पुरुष की इच्छा करे तो वे दोनों चोर के समान पापी होते हैं इसलिये स्त्री की सम्मति के विना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के विना स्त्री कुछ भी काम न करें यही स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि जो व्यभिचार को सब समय में त्याग दें ॥ ६५ ॥

निवेशन इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर स्त्रीपुरुष गृहाश्रम कामों के योग्य होते हैं यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभि-चष्टे शचीभिः । देवइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

पदार्थः—जो (सत्यधर्मा) सत्य धर्म से युक्त (सविता) सब जगत् के रचने वाले (देवइव) ईश्वर के समान (निवेशनः) स्त्री का साथी (सङ्गमनः) शीघ्रगति से युक्त (शचीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (वसूनाम्) पृथिवी आदि पदार्थों के (विश्वा) सब (रूपा) रूपों को (अभिचष्टे) देखता है (इन्द्रः) सूर्य के (न) समान (समरे) युद्ध में (पथीनाम्) चलते हुए मनुष्यों के सम्मुख (तस्थौ) स्थित होवे वही गृहाश्रम के योग्य होता है ॥ ६६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे ईश्वर ने सब के उपकार के लिये कारण से कार्यरूप अनेक पदार्थ रच के उप-

(योनौ) खेत में (बीजम्) यव आदि वा सिद्धि के मूल को (वपत) बोया करो (गिरा) खेती विषयक कर्मों की उपयोगी सुशिक्षित वाणी (च) और अच्छे विचार से (सभराः) एक प्रकार के धारण और पोषण में युक्त (श्रुष्टिः) शीघ्र हूजिये जो (सृण्यः) खेतों में उत्पन्न हुए यव आदि अन्न-जाति के पदार्थ हैं उन में जो (नेदीयः) अत्यन्त समीप (पक्वम्) पका हुआ (असत्) होवे वह (इत्) ही (नः) हमलोगों को (आ) (इयात्) प्राप्त होवे ॥ ६८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को उचित है कि विद्वानों से योगाभ्यास और खेती करने हारों से कृषि कर्म की शिक्षा को प्राप्त हो और अनेक साधनों को बना के खेती और योगाभ्यास करो। इससे जो २ अन्नादि पका हो उस २ का ग्रहण कर भोजन करो और दूसरों को कराओ ॥६८॥

शुनमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वही वि० ॥

शुनꣳ सुफाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं की-
नाशा अभि यन्तु वाहैः। शुनासीरा हविषा
तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तनास्मे ॥६९॥

पदार्थः—जो (कीनाशाः) परिश्रम से क्लेशभोक्ता खेती करने हारे हैं वे (फालाः) जिन से पृथिवी को जोतें उन फालों से (वाहैः) बैल आदि के साथ वर्त्तमान हल आदि से (भूमिम्) पृथिवी को (विकृषन्तु) जोतें और (शुनम्) सुख को (अभियन्तु) प्राप्त होवें। (हविषा) शुद्ध किये घी आदि से शुद्ध (तोशमाना) सन्तोषकारक (शुनासीरा) वायु और सूर्य्य के समान खेती के साधन (अस्मे) हमारे लिये (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त (ओषधीः) जौ आदि (कर्त्तन) करें और उन ओषधियों से (सु) सुन्दर (शुनम्) सुख भोगें ॥ ६९ ॥

भावार्थः—जो चतुर खेती करने हारे गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचार के साथ खेती करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं। इन खेतों में विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नहीं डालने चाहियें किन्तु बीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोयें कि जिस से अन्न भी रोग रहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की बुद्धि को बढ़ावें ॥ ६९ ॥

घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतेन सीता मधुना समंज्यतां विश्वैर्देवैरनुमतामरुद्भिः। ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥

पदार्थः—(विश्वैः) सब (देवैः) अन्नादिपदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् (मरुद्भिः) मनुष्यों की (अनुमता) आज्ञा से प्राप्त हुआ (पयसा) जल वा दुग्ध से (ऊर्जस्वती) पराक्रम संबन्धी (पिन्वमाना) सींचा वा सेवन किया हुआ (सीता) पटेला (घृतेन) घी तथा (मधुना) सहत वा शक्कर आदि से (समज्यताम्) संयुक्त करो (सीते) पटेला (अस्मान्) हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से (पयसा) जल से (अभ्याववृत्स्व) बार २ वर्त्ताओ ॥ ७० ॥

भावार्थः—सब विद्वानों को चाहिये कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त कर के बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कार युक्त करें ॥ ७० ॥

लाङ्गलमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवꣳ सोमपित्सरु । तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहनम् ॥ ७१ ॥

पदार्थः—हे किसानो तुम लोग जो (सोमपित्सरु) जौ आदि ओषधियों के रक्षकों को टेढ़ा चलाये (पवीरवत्) प्रशंसित फाल से युक्त (सुशेवम्) सुन्दर सुखदायक (लाङ्गलम्) फाले के पीछे जो दृढ़ता के लिये काष्ठ लगाया जाता है वह (च) और (प्रफर्व्यम्) चलाने योग्य (प्रस्थावत्) प्रशंसित प्रस्थान वाला (रथवाहनम्) रथ के चलने का साधन है जिस से (अविम्) रक्षा आदि के हेतु (पीवरीम्) सब पदार्थों को भुगाने का हेतु स्थूल (गाम्) पृथिवी को (उद्वपति) उखाड़ते हैं (तत्) उस को तुम भी सिद्ध करो ॥ ७१ ॥

भावार्थः—किसान लोगों को उचित है कि मोटी नहीं अन्न आदि की उत्पत्ति से रक्षा करने हारी पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल आदि साधनों से जोत एकसार कर सुन्दर संस्कार किये बीज से उत्तम धान्य उत्पन्न करके भोगें ॥ ७१ ॥

काममित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पकानेहारी को अच्छे यत्न से सुन्दर अन्न और व्यञ्जनों को बनावे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥७२॥

पदार्थः—हे (कामदुघे) इच्छा को पूर्ण करने हारी स्त्रीदयाली तू पृथिवी के समान सुन्दर संस्कार किये अन्नों से (मित्राय) मित्र (वरुणाय) उत्तम विद्वान् (च) अतिथि अभ्यागत (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य से युक्त (अश्विभ्याम्) प्राण अपान (पूष्णे) पुष्टिकारक जन (प्रजाभ्यः) सन्तानों और (ओषधीभ्यः) सोमलता आदि ओषधियों से (कामम्) इच्छा को (धुक्ष्व) पूर्ण कर ॥ ७२ ॥

भावार्थः—जो स्त्री वा पुरुष भोजन बनावें उन को चाहिये कि पकाने की विद्या सीख प्रिय पदार्थ पका और उन का भोजन करा के सब को रोग रहित रक्खें ॥ ७२ ॥

विमुच्यध्वमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अघ्न्या देवताः ।

भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को गौ आदि पशुओं को बढ़ा उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर आनन्द में रहना चाहिये इस वि० ॥

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे तुम लोग (अघ्न्याः) रक्षा के योग्य (देवयानाः) दिव्य भोगों की प्राप्ति के हेतु गौओं को प्राप्त हो सुन्दर संस्कार किये अन्नों का भोजन करके रोगों से (विमुच्यध्वम्) पृथक् रहते हो । वैसे हम लोग भी बचें । जैसे तुम लोग (तमसः) रात्रि के (पारम्) पार को प्राप्त होते हो वैसे हम भी (अगन्म) प्राप्त होवें । जैसे तुम लोग (अस्य) इस सूर्य के (ज्योतिः) प्रकाश को व्याप्त होते हो वैसे हम भी (आपाम) व्याप्त होवें ॥ ७३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं को कभी न मारें । और न मरवावें तथा न किसी को मारने दें । जैसे सूर्य के उदय से रात्रि निवृत्ति होती है वैसे वैद्यकशास्त्र की रीति से पथ्य अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचें ॥ ७३ ॥

सजूरब्द इत्यस्य कुमारहारित ऋषिः। अश्विनौ देवते।
आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

मनुष्यों को किस प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिये यह वि० ॥

सजूरब्दो अयवोभिः सजूरुषा अरुणीभिः। सजोषसावश्विना दꣳसोभिः सजूः सूर एतशेन सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम सब लोग स्त्री पुरुष जैसे (अयवोभिः) पृथक् २ क्षणादि काल के अवयवों से (सजूः) संयुक्त (अब्दः) वर्ष (अरुणीभिः) लाल कान्तियों के (सजूः) साथ वर्त्तमान (उषाः) प्रभात समय (दंसोभिः) कर्मों से (सजोषसौ) एकसा वर्त्ताव वाले (अश्विना) प्राण और अपान के समान स्त्री पुरुष वा (एतशेन) चलते घोड़े के समान व्याप्तिशील वेगवाले किरण निमित्त पवन के (सजूः) साथ वर्त्तमान (सूरः) सूर्य (इडया) अन्न आदि का निमित्त रूप पृथिवी वा (घृतेन) जल से (स्वाहा) सत्य वाणी के (सजूः) साथ (वैश्वानरः) बिजलीरूप अग्नि वर्त्तमान है वैसे ही प्रीति से वर्त्तें ॥ ७४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों में जितनी परस्पर मित्रता हो उतना ही सुख और जितना विरोध उतना ही दुःख होता है। इस से सब लोग स्त्रीपुरुष परस्पर उपकार करने के साथ ही सदा वर्त्तें ॥ ७४ ॥

या ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यों को अवश्य ओषधि सेवन कर रोगों से बचना चाहिये
यह विषय अगले मंत्र में कहा है॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (याः) जो (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी (देवेभ्यः) पृथिवी आदि से (त्रियुगम्) तीन वर्ष (पुरा) पहिले (पूर्वाः) पूर्णसुख देने में उत्तम (जाताः) प्रसिद्ध हुई जो (बभ्रूणाम्) धारण करने हारे रोगियों के (शतम्) सौ (च) और (सप्त) सात (धामानि) जन्म वा नाड़ियों के मर्मों में व्याप्त होती हैं उन को (नु) शीघ्र (मनै) जानूं ॥ ७५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो पृथिवी और जल में ओषधी उत्पन्न होती हैं उन तीन वर्ष के पीछे ठीक २ पकी हुई को ग्रहण कर वैद्यकशास्त्र के अनुकूल विधान से सेवन करें। सेवन की हुई वे ओषधि शरीर के सब अंशों में व्याप्त हो के शरीर के रोगों को छुड़ा सुखों को शीघ्र करती हैं ॥ ७५ ॥

शतञ्च इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस को सिद्ध करें यह वि० ॥

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रत्वः) सैकड़ों प्रकार की बुद्धि वा क्रियाओं से युक्त मनुष्यो (यूयम्) तुम लोग जिन के (शतम्) सैकड़ों (उत) वा (सहस्रम्) हजार हों (रुहः) नाड़ियों के अङ्कुर हैं उन ओषधियों से (मे) मेरे (इमम्) इस शरीर को (अगदम्) नीरोग (कृत) करो (अध) इस के पश्चात् (वः) आप अपने शरीरों को भी रोगरहित करो जो (वः) तुम्हारे असंख्य (धामानि) मर्म्म स्थान हैं उन को प्राप्त होओ हे (अम्ब) माता तू भी ऐसा ही आचरण कर ॥ ७६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब से पहिले ओषधियों का सेवन, पथ्य का आचरण और नियम पूर्वक व्यवहार कर के शरीर को रोगरहित

करें। क्योंकि इस के विना धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षों का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७६ ॥

ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कैसी ओषधियों का सेवन करना चाहिये यह विषय० ॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥७७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (अश्वाऽइव) घोड़ों के समान (सजित्वरीः) शरीरों के साथ संयुक्त रोगों को जीतने वाले (वीरुधः) सोमलता आदि (पारयिष्ण्वः) दुःखों से पार करने के योग्य (पुष्पवतीः) प्रशंसित पुष्पों से युक्त (प्रसूवरीः) सुख देने हारी (ओषधीः) ओषधियों को प्राप्त होकर (प्रतिमोदध्वम्) नित्य आनन्द भोगो ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०-जैसे घोड़ों पर चढ़े वीर पुरुष शत्रुओं को जीत विजय को प्राप्त हो के आनन्द करते हैं वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पथ्याहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं ॥ ७७ ॥

ओषधीरितीत्यस्य भिषगृषिः। चिकित्सुर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे सनेय-
मश्वं गां वासऽआत्मानं तव पूरुषः ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे (ओषधीः) ओषधियों के (इति) समान सुखदायक (देवीः) सुन्दर विद्वान् स्त्री (मातरः) माता मैं पुत्र (वः) तुम को (तत्) श्रेष्ठ परपरूप कर्म्म (उपब्रुवे) समीपस्थित होकर उपदेश करूं हे (पूरुष)

पुरुषार्थी श्रेष्ठ सन्तानों में माता (तव) तेरे (अश्वम्) घोड़े आदि (गाम्) गौ आदि वा पृथिवी आदि (वासः) वस्त्र आदि वा घर और (आत्मानम्) जीव को निरन्तर (सनेयम्) सेवन करूं ॥ ७८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे जौ आदि ओषधी सेवन की हुई शरीरों को पुष्ट करती हैं वैसे ही माता विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश से सन्तानों को पुष्ट करें। जो माता का धन है वह भाग सन्तान का और जो सन्तान का है वह माता का ऐसे सब परस्पर प्रीति से वर्त्त कर निरन्तर सुख को बढ़ावें ॥ ७८ ॥

अश्वत्थ इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग नित्य कैसा विचार करें यह वि० ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम्.
॥ ७९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ओषधियों के समान (यत्) जिस कारण (वः) तुम्हारा (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है। और (वः) तुम्हारा (पर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया है इस से (गोभाजः) पृथिवी को सेवन करते हुए (किल) ही (पूरुषम्) अन्न आदि से पूर्णदेह वाले पुरुष को (सनवथ) ओषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए (इत्) इस संसार में (असथ) रहो ॥ ७९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिये कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है इस से शरीर को रोगों से बचा कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें। जैसे ओषधि और वृक्ष आदि फल फूल पत्ते कन्द और शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही रोगरहित शरीरों से शोभायमान हों ॥ ७९ ॥

यत्रौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

बार २ श्रेष्ठ वैद्यों का सेवन करें यह वि० ॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यत्र) जिन स्थलों में (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी होती हैं उन को जैसे (राजानः) राज धर्म से युक्त वीरपुरुष (समिताविव) युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त होते हैं वैसे (समग्मत) प्राप्त हो और (रक्षोहा) दुष्ट रोगों का नाशक (अमीवचातनः) रोगों को निवृत्ति करने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् (भिषक्) वैद्य हो (सः) वह तुम्हारे प्रति (उच्यते) ओषधियों के गुणों का उपदेश करे और ओषधियों का तथा उस वैद्य का सेवन करो ॥ ८० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जीत के राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य से शिक्षा को प्राप्त हुए तुम लोग ओषधियों की विद्या को प्राप्त हो । जिस शुद्ध देश में ओषधि हों वहां उन को जान के उपयोग में लाओ और दूसरों के लिये भी बताओ ॥८०॥

अश्वावतीमित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिये यह वि० ॥

अश्वावतीᳬ सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥
॥ ८१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (अरिष्टतातये) दुःखदायक रोगों के छुड़ाने के लिये (अश्वावतीम्) प्रशंसित शुभगुणों से युक्त (सोमावतीम्)

बहुत रस से सहित (उदोजसम्) अति पराक्रम बढ़ाने हारी (ऊर्जयन्तीम्) बल देती हुई श्रेष्ठ ओषधियों को (आ) सब प्रकार (अविदिस) जानूं कि जिस से (सर्वाः) सब (ओषधीः) ओषधी (अस्मै) इस मेरे लिये सुख देवें । इस लिये तुम लोग भी प्रयत्न करो ॥ ८१ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि रोगों का निदान चिकित्सा ओषधि और पथ्य के सेवन से निवारण करें तथा ओषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लेवें कि जिस से रोगों की निवृत्ति हो कर पुरुषार्थ की वृद्धि होवे ॥ ८१ ॥

उच्छुष्मा इत्यस्य भिषगृषिः । ओषधयो देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ओषधियों का क्या निमित्त है इस वि० ॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनꣳ सनिष्यन्तीनामात्मानं तवं पूरुष ॥८२॥

पदार्थः—हे (पूरुष) पुरुष शरीर में सोने वाले वा देह धारी (धनम्) ऐश्वर्य्य बढ़ाने वाले को (सनिष्यन्तीनाम्) सेवन करती हुई (ओषधीनाम्) सोमलता वा जौ आदि ओषधियों के सम्बन्ध से जैसे (शुष्माः) प्रशंसित बल करने हारी (गावः) गौ वा किरण (गोष्ठादिव) अपने स्थान से बछड़ों वा पृथिवी को और ओषधियों का तत्त्व (तव) तेरे (आत्मानम्) आत्मा को (उदीरते) प्राप्त होता है उन सब का तू सेवन कर ॥ ८२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—हे मनुष्यो जैसे रक्षा की हुई गौ अपने दूध आदि से अपने बछड़ों और मनुष्य आदि को पुष्ट करके बलवान् करती है । वैसे ही ओषधियां तुम्हारे आत्मा और शरीर को पुष्ट कर पराक्रमी करती हैं जो कोई न खाये तो क्रम से बल और बुद्धि की हानि हो जावे । इसलिये ओषधी ही बल बुद्धि का निमित्त है ॥ ८२ ॥

इष्कृतिरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अच्छे प्रकार सेवन की हुई ओषधी क्या करती हैं यह वि० ॥

इष्कृतिर्नाम वो मातार्थो यूयꣳ स्थ निष्कृ-
तीः सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ
॥ ८३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो (यूयम्) तुम लोग जो (वः) तुम्हारी (इष्कृतिः) कार्यसिद्धि करने हारी (माता) माता के समान ओषधी (नाम) प्रसिद्ध है उस की सेवा के तुल्य सेवन की हुई ओषधियों को जानने वाले (स्थ) होओ (पतत्रिणीः) चलने वाली (सीराः) नदियों के समान (निष्कृतीः) प्रत्युपकारों को सिद्ध करने वाले (स्थन) होओ (अथो) इस के अनन्तर (यत्) जो क्रिया वा ओषधी अथवा वैद्य (आमयति) रोग बढ़ावे उस को (निष्कृथ) छोड़ो ॥ ८३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०— हे मनुष्यो जैसे माता पिता तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे तुम भी उनकी सेवा करो । जो २ काम रोगकारी हो उस २ को छोड़ो । इस प्रकार सेवन की हुई ओषधी माता के समान प्राणियों को पुष्ट करती हैं ॥ ८३ ॥

अतिविश्वा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवता । विराडनुष्टु-
प्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
कैसे रोग निवृत्त होते हैं यह वि० ॥

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनइव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किंच तन्वो रपः ॥८४॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम लोग जो (परिष्ठाः) सब ओर से स्थित (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोमलता और जौ आदि ओषधी (व्रजम्) जैसे गोशाला को (स्तेनइव) भित्ति फोड़ के चोर जावे वैसे पृथिवी फोड़ के (अत्यक्रमुः) निकलती हैं (यत्) जो (किंच) कुछ (तन्वः) शरीर का (रपः) पापों के फल के समान रोगरूप दुःख है उस सब को (प्राच्युच्यवुः) नष्ट करती हैं उन ओषधियों को युक्ति से सेवन करो ॥ [illegible] ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे गौओं के स्वामी से पशुओं का चुराने और छिपाने को डाकू के भागता है वैसे ही श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन किये रोग नष्ट होके भाग जाते हैं । ८४ ॥

यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यस्य) जिस के (अङ्गमङ्गम्) सब अवयवों और (परुष्परुः) मर्म २ के प्रति वर्त्तमान हो उस के उस (उग्रः) तीव्र (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (मध्यमशीरिव) बीच के मर्म स्थानों को काटते हुए के समान (विबाधध्वे) विशेषकर निवृत्तकर (ततः) उस के पश्चात् (ओषधीः) ओषधियों को (प्रसर्पथ) प्राप्त होओ ॥ ८६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार ओषधियों का सेवन करें तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं ॥ ८६ ॥

साकमित्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
कैसे २ रोगों को नष्ट करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥८७॥

पदार्थः—हे वैद्य विद्वान् पुरुष (किकिदीविना) ज्ञान बढ़ाने हारे (चाषेण) आहार से (साकम्) ओषधि युक्त पदार्थों के साथ (यक्ष्म) राजरोग (प्रपत) छूट जाता है जैसे उस (वातस्य) वायु की (ध्राज्या) गति के (साकम्) साथ (नश्य) नष्ट हो और (निहाकया) निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के (साकम्) साथ दूर हो वैसा प्रयत्न कर ॥ ८७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों का सेवन योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से वर्तें ॥ ८७ ॥

अन्या व इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

युक्ति से मिलाई हुई ओषधियां रोगों को नष्ट करती हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥८८॥

पदार्थः—हे स्त्रियो (संविदानाः) आपस में संवाद करती हुई तुम लोग (मे) मेरे (इदम्) इस (वच.) वचन को (प्रावत) पालन करो (ताः) तुम (सर्वाः) ओषधियों की (अन्याः) दूसरी (अन्यस्याः) दूसरी की रक्षा के समान (उपावत) समीप से रक्षा करो जैसे (अन्या) एक (अन्याम्) दूसरी की रक्षा करती है वैसे (वः) तुम लोगों को पढ़ाने हारी स्त्री (अवतु) तुम्हारी रक्षा करे ॥ ८८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती है वैसे ही अनुकूलता से मिलाई हुई ओषधी सब रोगों से रक्षा करती हैं। हे स्त्रियो तुम लोग ओषधिविद्या के लिये परस्पर संवाद करो ॥ ८८ ॥

या इत्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

रोगों के निवृत्त होने के लिये ही ओषधी ईश्वर ने रची हैं यह वि० ॥

याः फ॒लिनी॒र्या अ॑फ॒ला अ॑पु॒ष्पा याश्च॑ पु॒ष्पिणीः॑ । बृह॒स्पति॑प्रसूता॒स्तानो॑ मुञ्च॒न्त्वꣳहसः ॥ ८९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (याः) जो (फलिनीः) बहुत फलों से युक्त (याः) जो (अफलाः) फलों से रहित (याः) जो (अपुष्पाः) फूलों से रहित (च) और जो (पुष्पिणीः) बहुत फूलों वाली (बृहस्पतिप्रसूताः) वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ने उत्पन्न की हुई ओषधी (नः) हम को (अंहसः) दुःखदायी रोग से जैसे (मुञ्चन्तु) छुड़ावें (ताः) वे तुम लोगों को भी वैसे रोगों से छुड़ावें ॥ ८९ ॥

भावार्थः–इस मंत्र में वाचकलु०–मनुष्यों को चाहिये कि जो ईश्वर ने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिये ओषधी रची हैं उन से वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रोगों को निवृत्त कर और पापों से अलग रह कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मेत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

कौन २ ओषधी किस २ से छुड़ाती है यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥९०॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो आप जैसे ये महौषधी रोगों से पृथक् करती हैं (शपथ्यात्) शपथ सम्बन्धी कर्म (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में हुए अपराध से (अथो) इस के पश्चात् (यमस्य) न्यायाधीश के (पड्वीशात्) न्याय के विरुद्ध आचरण से (उत) और (सर्वस्मात्) सब (देवकिल्बिषात्) विद्वानों के विषय अपराध से (मा) मुझ को (मुञ्चन्तु) पृथक् रक्खें वैसे तुम लोगों को भी पृथक् रक्खें ॥ ९० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि प्रमादकारक पदार्थों को छोड़ के अन्य पदार्थों का भोजन करें और कभी सौगन्द, श्रेष्ठों का अपराध, न्याय से विरोध, और मूर्खों के समान ईर्ष्या न करें ॥ ९० ॥

अवपतन्तीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अध्यापक लोग सब को उत्तम ओषधी जनावें यह वि० ॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥९१॥

पदार्थः—हम लोग जो (दिवः) प्रकाश से (अवपतन्तीः) नीचे को आती हुई (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिन का विद्वान् लोग (पर्यवदन्) सब ओर से उपदेश करते हैं । जिन [illegible]
प्राणधारण को (अश्नवामहै) प्राप्त [illegible]
कभी न (रिष्याति) [illegible]

भावार्थः—विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिये दिव्य ओषधिविद्या को देवें जिस से सब लोग पूरी अवस्था को प्राप्त होवें। इन ओषधियों को कोई भी कभी नष्ट न करे ॥ ९१ ॥

या ओषधीरित्यस्य वरुण ऋषिः। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः।

स्त्री लोग अवश्य ओषधिविद्या का ग्रहण करें यह वि० ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः। तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳहृदे ॥९२॥

पदार्थः—हे स्त्रि जिस से (त्वम्) तू (याः) जो (शतविचक्षणाः) असंख्यात शुभगुणों से युक्त (बह्वीः) बहुत (सोमराज्ञीः) सोम जिन में राजा अर्थात् सर्वोत्तम (ओषधीः) ओषधी हैं (तासाम्) उनके विषय में (उत्तमा) उत्तम विद्वान् (असि) है इस से (शम्) कल्याणकारिणी (हृदे) हृदय के लिये (अरम्) समर्थ (कामाय) इच्छासिद्धि के लिये योग्य होती है हमारे लिये उन का उपदेश कर ॥ ९२ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि ओषधिविद्या का ग्रहण अवश्य करें क्योंकि इस के विना पूर्णकामना सुखप्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती ॥ ९२ ॥

या इत्यस्य वरुण ऋषिः। विराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कैसे सन्तानों को उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु। बृहस्पतिप्रसूता अस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥९३॥

पदार्थः—हे विवाहित पुरुष ! (याः) जो (सोमराज्ञीः) सोम जिन में उत्तम है वे (बृहस्पतिप्रसूताः) बड़े कारण के रक्षक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई (ओषधी) ओषधियां (पृथिवीम्) (अनु) भूमि के ऊपर (विष्ठिताः) विशेष कर स्थित हैं उन से (अस्यै) इस स्त्री के लिये (वीर्य्यम्)

वीज का दान दे। हे विद्वानो आप इन ओषधियों का विज्ञान सब मनुष्यों के लिये (संदत्त) अच्छे प्रकार दिया कीजिये ॥ ९३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को उचित है कि बड़ी २ ओषधियों का सेवन करके सुन्दर नियमों के साथ गर्भधारण करें और ओषधियों का विज्ञान विद्वानों से सीखें ॥ ९३ ॥

याश्चेदमित्यस्य वरुण ऋषिः। भिषजो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

शुद्ध देशों से ओषधियों का ग्रहण करें यह वि० ॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः। सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥ ९४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (याः) जो (च) विदित हुई और जिन को (उपशृण्वन्ति) सुनते हैं (याः) जो (च) समीप हों और जो (दूरम्) दूर देश में (परागता) प्राप्त हो सकती हैं उन (सर्वाः) सब (वीरुधः) सोम आदि ओषधियों को (संगत्य) निकट प्राप्त कर (इदम्) इस (वीर्य्यम्) शरीर के पराक्रम को वैद्य मनुष्य लोग जैसे सिद्ध करते हैं वैसे उन ओषधियों का विज्ञान (अस्यै) इस कन्या को (संदत्त) सम्यक् प्रकार से दीजिये ॥ ९४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग,जो ओषधियां दूर वा समीप में रोगों को हरने और बल करने हारी सुनी जाती हैं उन को उपकार में ला के रोग रहित होओ ॥ ९४ ॥

माव इत्यस्य वरुण ऋषिः। भिषजो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे यह वि० ॥

मा वो॑ रिषत्खनि॒ता यस्मै॑ चा॒हं खना॑मि वः।
द्वि॒पाच्चतु॑ष्पाद॒स्माक॒ꣳ सर्व॑मस्त्वनातु॒रम् ॥ ९५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये (खनिता) खोदी हुई ओषधी को (खनामि) उपाड़ता वा खोदता हूं वह (वः) तुम को (मा) न (रिषत्) दुःख देवे जिस से (वः) तुम्हारे और (अस्माकम्) हमारे (द्विपात्) दो पगवाले मनुष्य आदि तथा (चतुष्पात्) गौ आदि (सर्वम्) सब प्रजा उस ओषधी से (अनातुरम्) रोगों के दुःखों से रहित (अस्तु) होवे ॥ ९५ ॥

भावार्थः—जो पुरुष जिन ओषधियों को खोदे वह उन की जड़ न मेंटे जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगों को हटाता रहे ओषधियों की परम्परा को बढ़ाता रहे कि जिस से सब प्राणी रोगों के दुःखों से बच के सुखी होवें ॥ ९५ ॥

ओषधय इत्यस्य वरुणऋषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः वैद्य क्या करें इस वि० ॥

ओष॑धयः॒ सम॑वदन्त॒ सोमे॑न स॒ह राज्ञा॑ । य॒स्मै॑ कृ॒णोति॑ ब्राह्म॒ण स्तꣳ रा॑जन् पारयामसि ॥ ९६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जो (सोमेन) (राज्ञा) सर्वोत्तम सोमलता के (सह) साथ वर्त्तमान (ओषधयः) ओषधी हैं उन के विज्ञान के लिये आप लोग (समवदन्त) आपस में संवाद करो हे वैद्य (राजन्) राजपुरुष हम लोग (ब्राह्मणः) वेदों और उपवेदों का वेत्ता पुरुष (यस्मै) जिस रोगी के लिये इन ओषधियों का ग्रहण (कृणोति) करता है (तम्) उस रोगी को रोग सागर से उन ओषधियों से (पारयामसि) पार पहुंचाते हैं ॥ ९६ ॥

भावार्थः—वैद्य लोगों को योग्य है कि आपस में प्रश्नोत्तर पूर्वक निरन्तर ओषधियों के ठीक २ ज्ञान से रोगों से रोगी पुरुषों को बचा कर निरन्तर सुखी करें। और जो इन में उत्तम विद्वान् हो वह सब मनुष्यों को वैद्यक शास्त्र पढ़ावे ॥ ९६ ॥

नाशयित्रीत्यस्य वरुण ऋषिः। भिषग्वरा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

जितने रोग हैं उतनी ओषधी हैं उन का सेवन करे यह वि० ॥

नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि। अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥

पदार्थः—हे वैद्य लोगो ! जो (बलासस्य) प्रसिद्ध हुए कफ की (अर्शसः) गुदेन्द्रिय की व्याधि वा (उपचिताम्) अच्छे बढ़े हुए रोगों की (नाशयित्री) नाश करने हारी (असि) ओषधि है (अथो) और जो (शतस्य) असंख्यात (यक्ष्माणाम्) राजरोगों और अर्थात् भगन्दरादि और (पाकारोः) मुख रोगों और मर्मों का छेदन करने हारे शूल की (नाशनी) निवारण करने हारी (असि) है उस ओषधी को तुम लोग जानो ॥ ९७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं उतनी ही उन की नाश करने हारी ओषधी भी हैं इन ओषधियों को नहीं जानने हारे पुरुष रोगों से पीड़ित होते हैं। जो रोगों की ओषधी जानें तो उन रोगों की निवृत्ति करके निरन्तर सुखी होवें ॥ ९७ ॥

त्वां गन्धर्वा इत्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कौन २ ओषधी का खनन करता है यह वि० ॥

त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥ ९८ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस ओषधी से रोगी (यक्ष्मात्) यक्ष्मरोग से (अमुच्यत) छूट जाय और जिस ओषधी को उपयुक्त करो (त्वाम्) उस को (गन्धर्वाः) गानविद्या में कुशलपुरुष (अखनन्) ग्रहण करें (त्वाम्) उस को (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य (त्वाम्) उस को (बृहस्पतिः) वेदज्ञ जन और (त्वाम्) उस को (सोमः) सुन्दर गुणों से युक्त (विद्वान्) सब शास्त्रों का वेत्ता (राजा) प्रकाशमान राजा (त्वाम्) उस ओषधी को खोदे ॥ ९८ ॥

भावार्थः—जो कोई ओषधी जड़ों से, कोई शाखा आदि से, कोई पु- टवों, कोई फलों और कोई सब अवयवों करके रोगों को बचाती हैं। उन ओषधियों का सेवन मनुष्यों को यथावत् करना चाहिये ॥ ९८ ॥

सहस्वेत्यस्य वरुण ऋषिः । ओषधिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये यह वि० ॥

सह॑स्व मे॒ अरा॑तीः॒ सह॑स्व पृतनाय॒तः । सह॑-
स्व॒ सर्वं॑ पा॒प्मान॒ꣳ सह॑मानास्योषधे ॥ ९९ ॥

पदार्थः—(ओषधे) ओषधी के सदृश ओषधी विद्या को जानने हारी स्त्री जैसे ओषधी (सहमाना) बल का निमित्त (असि) है (मे) मेरे रोगों का निवारण करके बल बढ़ाती है वैसे (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर अपने (पृतनायतः) सेना युद्ध की इच्छा करते हुओं को (सहस्व) सहन कर और (सर्वम्) सब (पाप्मानम्) रोगादि को (सहस्व) मा- धर ॥ ९९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों के सेवन से बल और प्रजा के सदा अपने शत्रुओं और पापी जनों को वश में करके प्राणियों को सुखी करें ॥ ९९ ॥

दीर्घायुस्त इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः ।
विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य कैसे होके दूसरों को कैसे करें यह वि० ॥

दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम्। अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥ १०० ॥

पदार्थः—हे (ओषधे) ओषधि के तुल्य ओषधियों के गुण दोष जाननेहारे पुरुष जिस से (ते) तेरी जिस ओषधि का (खनिता) सेवन करने हारा (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये (च) और जिस पुरुष के लिये (खनामि) खोदूं उस से तू (दीर्घायुः) अधिक अवस्था वाला हो (अथो) और (दीर्घायु) बड़ी अवस्था वाला (भूत्वा) होकर (त्वम्) तू जो (शतवल्शा) बहुत अङ्कुरों से युक्त ओषधि है (त्वा) उस को सेवन करके सुखी हो और (वि,रोहतात्) प्रसिद्ध हो ॥ १०० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुमलोग ओषधियों के सेवन से अधिक अवस्था वाले होओ और धर्म का आचरण करने हारे होकर सब मनुष्यों को ओषधियों के सेवन से दीर्घ अवस्था वाले करो ॥ १०० ॥

त्वमुत्तमासीत्यस्य वरुण ऋषिः। भिषजो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह ओषधी किस प्रकार की है इस वि० ॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः। उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ२॥ अभिदासति ॥ १०१ ॥

पदार्थः—हे वैद्यजन (यः) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति) अभीष्ट सुख देता है (सः) वह (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारा (उपस्तिः) संगी (अस्तु) हो जो (उत्तमा) उत्तम (ओषधे) ओषधी (असि) है (तव) जिस के (वृक्षाः) वट आदि वृक्ष (उपस्तयः) समीप रहने वाले हैं उस ओषधी से हमारे लिये सुख दे ॥ १०१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विरोधी वैद्य की ओषधि कभी न ग्रहण करें किन्तु जो वैद्यक शास्त्रज्ञ जिस का कोई शत्रु न हो धर्मात्मा सब का मित्र सर्वोपकारी है उस से ओषधिविद्या ग्रहण करें ॥ १०१ ॥

मामेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । को देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ किसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये यह वि० ॥

मा मां हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् । यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०२॥

पदार्थः—(यः) जो (सत्यधर्मा) सत्यधर्म वाला जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी का (जनिता) उत्पन्न करने वाला (वा) अथवा (यः) जो (दिवम्) सूर्य आदि जगत् को (च) और (पृथिवी) तथा (अपः) जल और वायु को (व्यानट्) उत्पन्न कर के व्याप्त होता है (चन्द्राः) और जो चन्द्रमा आदि लोकों को (जजान) उत्पन्न करता है । जिस (कस्मै) सुखस्वरूप सुख करने हारे (देवाय) दिव्य सुखों के दाता विज्ञानस्वरूप ईश्वर का (हविषा) ग्रहण करने योग्य भक्तियोग से हम लोग (विधेम) सेवन करें । वह जगदीश्वर (मा) मुझ को (मा) नहीं (हिंसीत्) कुसंग से ताड़ित न होने देवे ॥ १०२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्यधर्म की प्राप्ति और ओषधि आदि के विज्ञान के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करें ॥ १०२ ॥

अभ्यावर्त्तस्वेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पृथिवी के पदार्थों का विज्ञान कैसे करना चाहिये यह वि० ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह वपान्ते । अग्निरिषितो अरोहत् ॥ १०३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू जो (पृथिवी) भूमि (यशेन) संगम के यो... (पयसा) जल के (सह) साथ वर्त्तती है उस को (अभ्यावर्त्तस्व) ...ओर से शीघ्र वर्त्ताव कीजिये जो (ते) आप के (वपाम्) बोने को (इ... षितः) प्रेरणा किया (अग्निः) अग्नि (अरोहत्) उत्पन्न करता है वह अग्नि गुण कर्म और स्वभाव के साथ सब को जानना चाहिये ॥ १०३ ॥

भावार्थः—जो पृथिवी सब का आधार उत्तम रसादि पदार्थों की ... जीवन का हेतु बिजुली से युक्त है उस का विज्ञान भूगर्भ विद्या से सब म... नुष्यों को करना चाहिये ॥ १०३ ॥

अग्नेयत्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । अग्निर्देवता ।
भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
किस लिये अग्नि विद्या का खोज करना चाहिये यह वि॰ ॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च युज्ञियम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष (यत्) जो अग्नि का ... शीघ्रकारी (यत्) जो (चन्द्रम्) सुवर्ण के समान आनन्द ... त्) जो (पूतम्) पवित्र (च) और (यत्) जो (यज्ञियम्) ... के योग्य स्वरूप है (तत्) वह (ते) आप के और (देवेभ्यः) ... होने के लिये (भरामसि) हम लोग धारण करें ॥ १०४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण ... लिये बिजुली आदि अग्नि विद्या को विचारें ॥ १०४ ॥

इषमूर्जमित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । ...
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अब ठीक २ आहार विहार ...

ता
ां को
के कुल
(अच्छी

इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् । आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अहम्) मैं (इतः) इस पूर्वोक्त विद्युत् स्वरूप से (आदम्) भोगने योग्य (इषम्)अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम (महिषस्य) बड़े (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) कारण (धाराम्) धारण करने वाली वाणी को प्राप्त होऊं जैसे अन्न और पराक्रम (मा) मुझ को (आविशतु) प्राप्त हो जिस से मेरे (गोषु) इन्द्रियों और (तनूषु) शरीर में प्रविष्ट हुई (सेदिम्) दुःख का हेतु (अनिराम्) जिस में अन्न का भोजन भी न कर सकें ऐसी (अमीवाम्) रोगों से उत्पन्न हुई पीड़ा को (आ, जहामि) छोड़ता हूं वैसे तुम लोग भी करो ॥ १०५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि का जो वीर्य आदि से युक्त स्वरूप है उस को प्रदीप्त करने से रोगों का नाश करें । इन्द्रिय और शरीर को स्वस्थ रोग रहित करके कार्य कारण को जानने हारी विद्यायुक्त वाणी को प्राप्त होवें और युक्ति से आहार विहार भी करें ॥ १०५ ॥

अग्ने तवेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो । बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

पदार्थः—हे (बृहद्भानो) अग्नि के समान अत्यन्त विद्याप्रकाश से युक्त (विभावसो) विविधप्रकार की कान्ति में वसने हारे (कवे) अत्यन्त

बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् पुरुष जिस से आप (शवसा) बल के साथ (दाशुषे) दान के योग्य विद्यार्थी के लिये (उक्थ्यम्) कहने योग्य (वाजम्) विज्ञान को (दधासि) धारण करते हो इस में (तव) आप का अग्नि के समान (महि) अति पूजने योग्य (श्रवः) सुनने योग्य शब्द (वयः) यौवन और (अर्चयः) दीप्ति (भ्राजन्ते) प्रकाशित होती है॥१०६॥

भावार्थः-जो मनुष्य अग्नि के समान गुणी और आप्तों के तुल्य श्रेष्ठ कीर्त्तियों से प्रकाशित होते हैं वे परोपकार के लिये दूसरों को विद्या विनय और धर्म का निरन्तर उपदेश करें॥ १०६ ॥

पावकवर्चेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।

भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

माता पिता सन्तानों के प्रति क्या २ करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पा॒व॒कव॑र्चाः शु॒क्रव॑र्चा॒ अनू॑नवर्चा॒ उदि॑यर्षि भा॒नुना॑। पु॒त्रो मा॒तरा॑ वि॒चर॒न्नुपा॑वसि पृ॒णक्षि॒ रोद॑सी उ॒भे ॥ १०७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे (पुत्रः) पुत्र ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में (विचरन्) विचरता हुआ विद्या को प्राप्त होता और (भानुना) प्रकाश से (पावकवर्चाः, शुक्रवर्चाः) बिजुली और सूर्य के प्रकाश के समान न्याय करने और (अनूनवर्चाः) पूर्ण विद्याऽभ्यास करने हारा और जैसे (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी परस्पर सम्बन्ध करते हैं वैसे (उदियर्षि) विद्या को प्राप्त होता राज्य का (पृणक्षि) सम्बन्ध करता और (मातरा) माता पिता की (उपावसि) रक्षा करता है इस से तू धर्मात्मा है ॥ १०७ ॥

भावार्थः—माता पिताओं को यह अति उचित है कि सन्तानों को उत्पन्न कर बाल्यावस्था में आप शिक्षा दे ब्रह्मचर्य करा आचार्य के कुल में भेज के विद्यायुक्त करें । सन्तानों को चाहिये कि विद्या और अच्छी

शिक्षा से युक्त हो और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को बढ़ा के अभिमान और म त्सरता रहित प्रीति से माता पिता की मन वाणी और कर्म से यथावत् सेवा करें ॥ १०७ ॥

ऊर्जोनपादित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
माता पिता और पुत्र कैसे हों इस विषय का उप० ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः । त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) बुद्धि और धन से युक्त पुत्र जिस (त्वे) तुझ में (भूरिवर्पसः) बहुत प्रशंसा के योग्य रूपों से युक्त (चित्रोतयः) आश्चर्य्य के तुल्य रक्षा आदि कर्म्म करने वाली (वामजाताः) प्रशंसा के योग्य कुलों वा कर्मों में प्रसिद्ध विद्याप्रिय अध्यापक माता आदि विद्वान् स्त्रियें (इषः) अन्नों को (सं दधुः) धरें भोजन करावें सो तू (सुशस्तिभिः) उत्तम प्रशंसायुक्त क्रियाओं के साथ (धीतिभिः) अङ्गुलियों से बुलाया हुआ (ऊर्जः) (नपात्) धर्म के अनुकूल पराक्रमयुक्त सब के हित को धारण सदा किये हुए (मन्दस्व) आनन्द में रह ॥ १०८ ॥

भावार्थः—जिन कुमार और कुमारियों की माता विद्याप्रिय विद्वान् हों वे ही निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं और जिन माता पिताओं के सन्तान विद्या अच्छी शिक्षा और ब्रह्मचर्य सेवन से शरीर और आत्मा के बल से युक्त धर्म का आचरण करने वाले हैं वे ही सदा सुखी हैं ॥ १०८ ॥

इरज्यन्नित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
मनुष्य कैसा हो यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य । स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥

पदार्थ—हे (अमर्त्य) नाश और संसारी मनुष्यों के स्वभाव से रहित (अग्ने) अग्नि के समान पुरुषार्थी जो (इरज्यन्) ऐश्वर्य का संचय करते हुए आप (दर्शतस्य) देखने योग्य (वपुषः) रूप की (सानसिम्) सनातन (क्रतुम्) बुद्धि का (पृणक्षि) संबन्ध करते हो और उसी बुद्धि में विशेष कर के (विराजसि) शोभित होते हो (स) सो आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (जन्तुभिः) मनुष्यादि प्राणियों से (रायः) धनों का (प्रथयस्व) विस्तार कीजिये ॥ १०९ ॥

भावार्थः—जो पुरुष मनुष्यों के लिये सनातन वेदविद्या को देता और सुन्दर आकार में विराजमान हो वही ऐश्वर्य्य को प्राप्त होके दूसरों के लिये प्राप्त करा सकता है ॥ १०९ ॥

इष्कर्त्तारमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।

आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कैसा पुरुष परोपकारी होता है इस विषय को कहते हैं ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥ ११० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जो आप (अध्वरस्य) बढ़ाने योग्य यज्ञ के (इष्कर्त्तारम्) सिद्ध करने वाले (प्रचेतसम्) उत्तम बुद्धिमान् (वामस्य) प्रशंसित (महः) बड़े (राधसः) धन के (रातिम्) देने और (क्षयन्तम्) निवास करने वाले पुरुष और (सुभगाम्) सुन्दर ऐश्वर्य्य की देने हारी (महीम्)

पृथिवी तथा (इषम्) अन्न आदि को और (मानसिम्) प्राचीन (रयिम्) धन को (दधासि) धारण करते हो इस से हम लोगों को सत्कार करने योग्य हो ॥ ११० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करे वैसे ही दूसरों के लिये भी करे वही आप्त सत्कार के योग्य होवे ॥ ११० ॥

ऋतावानमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यों को किन का अनुकरण करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नायं दधिरे पुरो जनाः। श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे (जनाः) विद्या और विज्ञान से प्रसिद्ध मनुष्य (गिरा) वाणी से (सुम्नाय) सुख के लिये (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (श्रुत्कर्णम्) बहुश्रुत (विश्वदर्शतम्) सब देखने हारे (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त विद्या के विस्तार के साथ वर्त्तमान (ऋतावानम्) बहुत सत्याचरण से युक्त (महिषम्) बड़े (अग्निम्) विद्वान् को (मानुषा) मनुष्यों के (युगा) वर्षों वा सत्ययुग आदि (पुरः) प्रथम (दधिरे) धारण करते हुये वैसे विद्वान् को और इन वर्षों को तू भी धारण कर यह (त्वा) तुझे सिखाता हूं ॥ १११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सत्पुरुष हो चुके हों उन्हीं का अनुकरण मनुष्य लोग करें अन्य अधर्मियों का नहीं ॥ १११ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता।
निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

राजपुरुष क्या करके कैसे हों यह वि०॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥

पदार्थः—हे (सोम) चन्द्रमा के समान कान्ति युक्त राजपुरुष जैसे सोम गुण युक्त विद्वान् के सङ्ग से (ते) तेरे लिये (वृष्ण्यम्) वीर्य्यपराक्रम वाले पुरुष के कर्म को (विश्वतः) सब ओर से (समेतु) संगत हो उस से आप (आप्यायस्व) बढ़िये (वाजस्य) विज्ञान और वेग से संग्राम के जानने हारे (संगथे) युद्ध में विजय करने वाले (भव) हूजिये ॥ ११२ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को नित्य पराक्रम बढ़ा के शत्रुओं से विजय प्राप्त होना चाहिये ॥ ११२ ॥

सन्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

शरीर और आत्मा के बल से युक्त पुरुष किस को प्राप्त होते हैं यह वि० ॥

सन्ते पयांꣳसि समुंयन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

पदार्थः—हे (सोम) शान्तियुक्त पुरुष जिन (ते) तुम्हारे लिये (पयांसि) जल वा दुग्ध (संयन्तु) प्राप्त होवें (अभिमातिषाहः) अभिमानयुक्त शत्रुओं को सहने वाले (वाजाः) धनुर्वेद के विज्ञान (सम्) प्राप्त होवें (उ) और (वृष्ण्यानि) पराक्रम (सम्) प्राप्त होवें सो (आप्यायमानः) अच्छे प्रकार बढ़ते हुए आप (दिवि) प्रकाशस्वरूप ईश्वर में (अमृताय) मोक्ष के लिये (उत्तमानि, श्रवांसि) उत्तम श्रवणों को (धिष्व) धारण कीजिये ॥ ११३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य शरीर आत्मा के बल को नित्य बढ़ाते हैं वे योगाभ्यास से परमेश्वर में मोक्ष के आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ११३ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवताः ।
आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
संसार में कौन वृद्धि को प्राप्त होता है यह वि० ॥

आप्यायस्व मदिन्तम् सोम् विश्वेभिरꣳशुभिः । भवा नः सुप्रथस्तमः सखा वृधे ॥११४॥

पदार्थः—हे (मदिन्तम) अत्यन्त आनन्दी (सोम) ऐश्वर्य वाले पुरुष आप (अंशुभिः) किरणों से सूर्य के समान (विश्वेभिः) सब साधनों से (आप्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (सुप्रथस्तमः) अत्यन्त विस्तारयुक्त सुख करने हारे (सखा) मित्र हुए (नः) हमारे (वृधे) बढ़ाने के लिये (भव) तत्पर हूजिये ॥ ११४ ॥

भावार्थः—इस संसार में सब का हित करने हारा पुरुष सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है ईर्ष्या करने वाला नहीं ॥ ११४ ॥

आ त इत्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
मनुष्यलोग किसको वश में करके आनन्द को प्राप्त होवें यह वि० ॥

आ ते वृत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वांकामया गिरा ॥११५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष (त्वाङ्कामया) तुझ को कामना करने के हेतु (गिरा) वाणी से जिस (ते) तेरा (मनः) चित्त जैसे (परमात्) अच्छे (सधस्थात्) एक से स्थान से (चित्) भी (वत्सः) बछड़ा गौ को प्राप्त होवे वैसे (आ, यमत्) स्थिर होता है सो तू मुक्ति को क्यों न प्राप्त होवे ॥ ११५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि मन और वाणी को सदैव अपने वश में रक्खें ॥ ११५ ॥

तुभ्यन्ता इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब राजा क्या करे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरस्तम) अतिशय कर के सार के ग्राहक (अग्ने) प्रकाशमान् राजन् जो (विश्वाः) सब (सुक्षितयः) श्रेष्ठ मनुष्यों वाली प्रजा (पृथक्) अलग (कामाय) इच्छा के साधक (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (येमिरे) प्राप्त होवे (ता) उन प्रजाओं की आप निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ११६ ॥

भावार्थः—जहां प्रजा के लोग धर्मात्मा राजा को प्राप्त होके अपनी अपनी इच्छा पूरी करते हैं वहां राजा की वृद्धि क्यों न होवे ॥ ११६ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग कैसे होकर क्या २ करें इस वि० ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (सम्राट्) अच्छे प्रकाशक (एकः) एक ही असहाय परमेश्वर के तुल्य (काम) स्वीकार के योग्य (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान सभापति (अमृतस्य) होके और (मर्त्यस्य) मरणधर्मवाले मनुष्य के (प्रियेषु) प्रिय (धामसु) जन्म स्थान और नामों में (विराजति) प्रकाशित होवे वही राज्य का अधिकारी होने योग्य है ॥ ११७ ॥

अथ त्रयोदशाऽध्यायारम्भः ॥

ओम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥

तत्र मयि गृह्णामीत्याद्यस्य वत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता।
आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब तेरहवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में मनुष्यों को पहली अवस्था में क्या २ करना चाहिये यह विषय कहा है॥

मयिं गृह्णाम्यग्रें अग्निꣳ रायस्पोषांय सुप्रजास्त्वायं सुवीर्य्यांय। मामु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

पदार्थः— हे कुमार वा कुमारियो जैसे मैं (अग्रे) पहिले (मयि) मुझ में (रायः) विज्ञान आदि धन के (पोषाय) पुष्टि (सुप्रजास्त्वाय) सुन्दर प्रजा होने के लिये और (सुवीर्य्याय) रोगरहित सुन्दर पराक्रम होने के अर्थ (अग्निम्) उत्तम विद्वान् को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं जिस से (माम्) मुझ को (उ) ही (देवताः) उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुण (सचन्ताम्) मिलें वैसे तुम लोग भी करो॥ १॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु० — मनुष्यों को यह उचित है कि ब्रह्मचर्य्ययुक्त कुमारावस्था में वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से पदार्थविद्या उत्तम

कर्म और ऐश्वर्य की उपासना तथा ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करें। जिस से श्रेष्ठ गुण और आप्त विद्वानों को प्राप्त होके उत्तम धन सन्तानों और पराक्रम को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

अपां पृष्ठमित्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ परमेश्वर की उपासना का वि० ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् । वर्धमानो महाँ२॥ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जो तू (अभितः) सब ओर से (अपाम्) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर आकाश दिशा बिजुली और प्राणों वा जलों के (पृष्ठम्) अधिकरण (समुद्रम्) आकाश के समान सागर (पिन्वमानम्) सींचते हुए समुद्र को (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि के (योनिः) कारण (दिवः) प्रकाशित पदार्थों का (मात्रया) निर्माण करने हारी बुद्धि से (पुष्करे) हृदयरूप अन्तरिक्ष में (वर्धमानः) उन्नति को प्राप्त हुए (च) और (महान्) सब श्रेष्ठ वा सब के पूज्य (असि) हो सो आप हमारे लिये (वरिम्णा) व्यापकशक्ति से (आ, प्रथस्व) प्रसिद्ध हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस सत्, चित् और आनन्दस्वरूप, सब जगत् का रचने हारा, सर्वत्र व्यापक, सब से उत्तम और सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना से सम्पूर्ण विद्यादि अनन्त गुण प्राप्त होते हैं उसका सेवन क्यों न करना चाहिये ॥ २ ॥

ब्रह्मजज्ञानमित्यस्य वत्सार ऋषिः । आदित्यो देवताः । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस स्वरूप वाला ब्रह्म उपासना के योग्य है यह वि० ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥ ३॥

पदार्थः—जो (पुरस्तात्) सृष्टि की आदि में (जज्ञानम्) सब का उत्पादक और ज्ञाता (प्रथमम्) विस्तारयुक्त और विस्तारकर्त्ता (ब्रह्म) सब से बड़ा जो (सुरुचः) सुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर रुचि का विषय (वेनः) ग्रहण के योग्य जिस (अस्य) इस के (बुध्न्याः) जल सम्बन्धी आकाश में वर्त्तमान सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथिवी और नक्षत्र आदि (विष्ठाः) विविधस्थलों में स्थित (उपमाः) ईश्वर ज्ञान के दृष्टान्त लोक हैं उन सब को (सः) वह (आवः) अपनी व्याप्ति से आच्छादन करता है वह ईश्वर (विसीमतः) मर्यादा से (सतः) विद्यमान देखने योग्य (च) और (असतः) अव्यक्त (च) और कारण के (योनिम्) आकाशरूप स्थान को (विवः) ग्रहण करता है उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगों को नित्य अवश्य करनी चाहिये॥ ३॥

भावार्थः—जिस ब्रह्म के जानने के लिये प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सब लोक दृष्टान्त हैं जो सर्वत्र व्याप्त हुआ सब का आवरण और सब का प्रकाश करता है और सुन्दर नियम के साथ अपनी २ कक्षा में सब लोकों को रखता है वही अन्तर्यामी परमात्मा सब मनुष्यों के निरन्तर उपासना के योग्य है इस से अन्य कोई पदार्थ सेवने योग्य नहीं॥ ३॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता।
आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥
फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग जो इस (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार का (जातः) रचने और (पतिः) पालन करने हारा (एकः) सहाय की अपेक्षा से रहित (हिरण्यगर्भः) सूर्य्यादितेजोमय पदार्थों का आधार (अग्रे) जगत् रचने के पहिले (समवर्त्तत) वर्त्तमान (आसीत्) था (स) वह (इमाम्) इस संसार को रचके (उत) और (पृथिवीम्) प्रकाशरहित और (द्याम्) प्रकाशसहित सूर्य्यादिलोकों को (दाधार) धारण करता हुआ उस (कस्मै) सुखरूप प्रजापालने वाले (देवाय) प्रकाशमान परमात्मा की (हविषा) आत्मादि सामग्री से (विधेम) सेवा में तत्पर हों। वैसे तुम लोग भी इस परमात्मा का सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को योग्य है कि इस प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से प्रथम परमेश्वर ही विद्यमान था जीव गाढ़निद्रा सुषुप्ति में लीन और जगत् का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एकरस स्थिर था जिसने सब जगत् को रचके धारण किया और अन्त्यसमय में प्रलय करता है उसी परमात्मा को उपासना के योग्य मानो ॥ ४ ॥

द्रप्स इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह वि० ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः । समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं जिस के (सप्त) पांच प्राण मन और आत्मा ये सात (होत्राः) अनुग्रह करने हारे (यः) जो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) पृथिवी (द्याम्) प्रकाश (च) और (योनिम्) कारण के अनुकूल जो (पूर्वः) सम्पूर्ण स्वरूप (द्रप्सः) आनन्द और उत्साह को (अनु) अनुकूलता से (चस्कन्द) प्राप्त होता है उस (योनिम्) स्थान के (अनु) अनुसार (संचरन्तम्) संचारी (समानम्) एक प्रकार के (द्र-

त्वम्) सर्वत्र अभिव्याप्त आनन्द को मैं (अनुजुहोमि) अनुकूल ग्रहण करता हूं वैसे तुम लोग भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को चाहिये कि जिस जगदीश्वर के आनन्द और स्वरूप का सर्वत्र लाभ होता है उस की प्राप्ति के लिये योगाभ्यास करो ॥ ५ ॥

नमोऽस्त्वित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिर्देवता च। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को संस्कार में कैसे वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो (के) कोई इस जगत् में लोक लोकान्तर और प्राणी हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) लोकों के जीवों के लिये (नमः) अन्न (अस्तु) हो (ये) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (ये) जो (दिवि) प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों में (च) और (ये) जो (पृथिवीम्) भूमि के (अनु) ऊपर चलते हैं उन (सर्पेभ्यः) प्राणियों के लिये (नमः) अन्न प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः - हे मनुष्यो जितने लोक दीख पड़ते हैं और जो नहीं दीख पड़ते हैं वे सब अपनी २ कक्षा में नियम से स्थिर हुए आकाश मार्ग में घूमते हैं उन सबों में जो प्राणी चलते हैं उनके लिये अन्न भी ईश्वर ने रचा है कि जिस से इन सब का जीवन होता है इस बात को तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

या इषव इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। स एव देवता च। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उप० ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२॥ इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे सेनापते आप (पाजः) बल को (कृणुष्व) कीजिये (प्रसितिम्) जाल के (न) समान (पृथ्वीम्) भूमि को (याहि) प्राप्त हूजिये जिस से आप (अस्ता) फेंकने वाले (असि) हैं इस से (इभेन) हाथी के साथ (अमवान्) बहुत दूतों वाले (राजेव) राजा के समान (तपिष्ठैः) अत्यन्त दुःखदायी शस्त्रों से (प्रसितिम्) फांसी को सिद्ध कर (रक्षसः) शत्रुओं को (द्रूणानः) मारते हुए (तृष्वीम्) शीघ्र (अनु) सम्मुख होकर (विध्य) ताड़ना कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—सेनापति को चाहिये कि राजा के समान पूर्ण बल से युक्त हो अनेक फांसियों से शत्रुओं को बांध उनको बाण आदि शस्त्रों से ताड़ना दे और बन्दीगृह में बन्द करके श्रेष्ठ पुरुषों को पाले ॥ ९ ॥

तव भ्रमास इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता।
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
फिर वह सेनापति क्या करे यह वि०॥

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः। तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी सेनापते (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र आचरण करने हारे आप जो (तव) आप के (भ्रमासः) भ्रमण शील वीर पुरुष जैसे (विष्वक्) सब ओर से (आशुया) शीघ्र प-

या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ॥
रनु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (याः) जो (यातुधानानाम्) पराये पदार्थों को प्राप्त होके धारण करने वाले जनों की (इषवः) गति है (वा) अथवा (ये) जो (वनस्पतीन्) वट आदि वनस्पतियों के (अनु) आश्रित रहते हैं और (ये) जो (वा) अथवा (अवटेषु) गुप्तमार्गों में (शेरते) सोते हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) चंचल दुष्ट प्राणियों के लिये (नमः) वज्र चलाओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो मार्गों और वनों में छपके दुष्ट प्राणी एकान्त में दिन के समय सोते हैं उन डाकुओं और सर्पों को शस्त्र, ओषधि आदि से निवारण करें । ७ ॥

ये वामीत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कंटक और दुष्ट प्राणी कैसे हटाना चाहिये यह वि० ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (अमी) वे परोक्ष में रहने वाले (दिवः) बिजुली के (रोचने) प्रकाश में (वा) अथवा (ये) जो (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिषु) किरणों में (वा) अथवा (येषाम्) जिन का (अप्सु) जलों में (सदः) स्थान (कृतम्) बना है (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) दुष्ट प्राणियों को (नमः) वज्र से मारो ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो जलों में आकाश में दुष्ट प्राणी वा सर्प रहते हैं उन को शस्त्रों से निवृत्त करें ॥ ८ ॥

कृणुष्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजपुरुषों को शत्रु कैसे बांधने चाहिये यह वि० ॥

और भेद से शीघ्र वश में लाके दया और न्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें॥ ११॥

उदग्न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वह क्या करे इस वि०॥

उदंग्ने तिष्ठ प्रत्या तंनुष्व न्यमित्राँ २॥ ओषतात्तिग्महेते। यो नो अरांतिꣳ समिधान चक्रे नीचा तं धंक्ष्यत सं न शुष्कंम्॥ १२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजधारी सभा के स्वामी आप राजधर्म के बीच (उत्तिष्ठ) उन्नति को प्राप्त हूजिये धर्मात्मा पुरुषों के (प्रति) लिये (आ, तनुष्व) सुखों का विस्तार कीजिये। हे (तिग्महेते) तीव्रदण्ड देने वाले राजपुरुष (अमित्रान्) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को (न्योषतात्) निरन्तर जलाइये। हे (समिधान) सम्यक् तेजधारी जन (यः) जो (नः) हमारे (अरातिम्) शत्रु को उत्साही (चक्रे) करता है (तम्) उस को (नीचा) नीची दशा में कर के (शुष्कम्) सूखे (अतसम्) काष्ठ के (न) समान (धक्षि) जलाइये॥ १२॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—राजा आदि सभ्यजनों को चाहिये कि धर्म और विनय में समाहित हो के जल के समान मित्रों को शीतल करें। अग्नि के समान शत्रुओं को जलावें। जो उदासीन हो कर हमारे शत्रुओं को बढ़ावें उन को दृढ़बन्धनों से बांध के निष्कण्टक राज्य करें॥१२॥

ऊर्ध्वो भवेत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर वह राजा किस प्रकार का हो इस वि०॥

ऊर्ध्वो भंव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अवं स्थिरा तंनुहि यातुजूनां जा-

लने हारी (उल्काः) बिजुली की गतियां जैसे (पतन्ति) श्येनपक्षी के समान शत्रुओं के दल में तथा शत्रुओं में गिरते हैं उन को (धृषता) दृढ़ सेना से (अनु) अनुकूल (दद्य) प्राप्त हूजिये और (असन्दितः) बद्ध रहित हुए (जुह्वा) घी के हवन का साधन लपट अग्नि के (तपूंषि) तेज के समान शत्रुओं के ऊपर सब ओर से बिजुली को (विसृज) छोड़िये और (पतङ्गान्) घोड़ों को सुन्दर शिक्षा युक्त कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः-इस मंत्र में वाचकलु०- सेनापति और सेना के भृत्यों को चाहिये कि आपस में प्रीति के साथ बल बढ़ा और पुरुषों को हर्ष दे और सम्यक् युद्ध कराके अग्नि आदि अस्त्रों और भुशुंडी आदि शस्त्रों से शत्रुओं के ऊपर बिजुली की वृष्टि करें जिससे शीघ्र विजय हो ॥ १० ॥

प्रतिस्पश इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो इस वि० ॥

प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः । यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं के जलाने वाले पुरुष (ते) आप का और (नः) हमारा (यः) जो (व्यथिः) व्यथा देने हारा (अघशंसः) पाप करने में प्रवृत्त चोर शत्रु जन (दूरे) दूर तथा (यः) जो (अन्ति) निकट है जैसे वह हम लोगों को (माकिः) नहीं (आ,दधर्षीत्) दुःख देवे उस शत्रु के (प्रति) प्रति आप (तूर्णितमः) शीघ्र दण्ड दाता हो के (स्पशः) बन्धनों को (विसृज) रचिये और (अस्याः) इस वर्त्तमान (विशः) प्रजा के (पायुः) रक्षक (अदब्धः) हिंसा रहित (भव) हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो समीप वा दूर रहने वाले प्रजाओं के दुःखदायी डाकू हैं उन को राजा आदि पुरुष साम, दाम, दण्ड

और भेद से शीघ्र वश में लाके दया और न्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ ११ ॥

उदग्न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करे इस वि० ॥

उदंग्ने तिष्ठ प्रत्या तंनुष्व न्युमित्राँ २॥ ओ-
पतात्तिग्महेते । यो नो अरांतिꣳ समिधान चक्रे
नीचा तं धंक्ष्यत सं न शुष्कंम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजधारी सभा के स्वामी आप राज धर्म के बीच (उत्तिष्ठ) उन्नति को प्राप्त हूजिये धर्मात्मा पुरुषों के (प्रति) लिये (आतनुष्व) सुखों का विस्तार कीजिये । हे (तिग्महेते) तीव्रदण्ड देने वाले राजपुरुष (अमित्रान्) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को (न्योषतात्) निरन्तर जलाइये । हे (समिधान) सम्यक् तेजधारी जन (यः) जो (नः) हमारे (अरातिम्) शत्रु को उत्साही (चक्रे) करता है (तम्) उस को (नीचा) नीची दशा में कर के (शुष्कम्) सूखे (अतसम्) काष्ठ के (न) समान (धक्षि) जलाइये ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—राजा आदि सभ्यजनों को चाहिये कि धर्म और विनय में समाहित हो के जल के समान मित्रों को शीतल करें । अग्नि के समान शत्रुओं को जलावें । जो उदासीन हो कर हमारे शत्रुओं को बढ़ावे उस को दृढ़बन्धनों से बांध के निष्कण्टक राज्य करें ॥१२॥

ऊर्ध्वो भवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह राजा किस प्रकार का हो इस वि० ॥

ऊर्ध्वो भंव प्रतिं विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व
दैव्यान्यग्ने । अवं स्थिरा तंनुहि यातुजूनां जा-

मिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्। अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि॥ १३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वान् पुरुष जिस लिये आप (ऊर्ध्वः) उत्तम (भव) हूजिये धर्म के (प्रति) अनुकूल होके (विध्य) दुष्ट शत्रुओं को ताड़ना दीजिये (अस्मत्) हमारे (स्थिरा) निश्चल (दैव्यानि) विद्वानों के रचे पदार्थों को (आविः) प्रकट (कृणुष्व) कीजिये दृढ़ों को (तनुहि) विस्तारिये (यातुजूनाम्) पर पदार्थों को प्राप्त होने और वेग वाले शत्रुजनों के (जामिम्) भोजन के और (अजामिम्) अन्य व्यवहार के स्थान को (अव) अच्छे प्रकार विस्तार पूर्वक नष्ट कीजिये और (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणीहि) बल के साथ मारिये इसलिये मैं (त्वा) आप को (अग्नेः) अग्नि के (तेजसा) प्रकाश के (अधि) सम्मुख (सादयामि) स्थापन करता हूं॥ १३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य को पाके उत्तम गुण, कर्म, और स्वभावों से युक्त होवें प्रजाओं और दरिद्रों को निरन्तर सुख देवें। दुष्ट अधर्माचारी मनुष्यों को निरन्तर शिक्षा करें। और सब से उत्तम पुरुष को सभापति मानें॥ १३॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह राज पुरुष कैसा हो यह वि०॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अ-
यम्। अपाᳬ रेताᳬसि जिन्वति। इन्द्रस्य
त्वौजसा सादयामि॥ १४॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (अयम्) यह (अग्निः) सूर्य (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच और (पृथिव्याः) भूमि का (मूर्द्धा) सब प्राणियों

के शिर के समान उत्तम (ककुत्) सब से बड़ा (पतिः) सब पदार्थों का रक्षक (अपाम्) जलों के वीर्याणि सारों से प्राणियों को (जिन्वति) तृप्त करता है वैसे आप भी हूजिये । मैं (त्वा) आप को (इन्द्रस्य) सूर्य के (ओजसा) पराक्रम के साथ राज्य के लिये (सादयामि) स्थापन करता हूं ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जो मनुष्य सूर्य के समान गुण कर्म और स्वभाव वाला न्याय से प्रजा के पालन में तत्पर धर्मात्मा विद्वान् हो उस को राज्याधिकारी सब लोग मानें ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (यत्र) जिस राज्य में आप जैसे (नियुद्भिः) वेग आदि गुणों के साथ वायु (रजसः) लोकों वा ऐश्वर्य का (नेता) चलाने हारा (दिवि) न्याय के प्रकाश में (मूर्द्धानम्) शिर को धारण करता है वैसे (यत्र) जहां (शिवाभिः) कल्याणकारक नीतियों के साथ (भुवः) अपनी पृथिवी के (यज्ञस्य) राजधर्म्म के पालन करने हारे हो (सचसे) संयुक्त होता अच्छे पुरुषों से राज्य को (दधिषे) धारण और (हव्यवाहम्) देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु (स्वर्षाम्) सुखों का सेवन कराने हारी (जिह्वाम्) अच्छे विषयों की ग्राहक वाणी को (चकृषे) करते हो वहां सब सुख बढ़ते हैं यह निश्चित जानिये ॥ १५ ॥

भावार्थः-जिस राज्य में राजा आदि सब राजपुरुष न्यायाचरण करने हारे धर्मात्मा होके धर्मानुकूल प्रजाओं का पालन करें वहां विद्या और अच्छी शिक्षा से होने वाले सुख क्यों न बढ़ें ॥ १५ ॥

ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजपत्नी कैसी होवे यह वि० ॥

ध्रुवासि॑ ध॒रुणास्तृ॑ता वि॒श्वक॑र्मणा । मा त्वा॑ समु॒द्र उद्व॑धी॒न्मा सु॑प॒र्णोऽअव्य॑थमाना पृथि॒वीं दृ॑ꣳह ॥१६॥

पदार्थः—हे राजा की स्त्री जिस कारण (विश्वकर्मणा) सब धर्मयुक्त काम करने वाले अपने पति के साथ वर्त्तती हुई (आस्तृता) वस्त्र आभूषण और श्रेष्ठ गुणों से ढपी हुई (धरुणा) विद्या और धर्म की धारणा करने हारी (ध्रुवा) निश्चल (असि) है सो तू (अव्यथमाना) पीड़ा से रहित हुई (पृथिवीम्) अपनी राज्यभूमि को (दृꣳह) अच्छे प्रकार बढ़ा (त्वा) तुझ को (समुद्रः) जार लोगों का व्यवहार (मा) मत (उद्वधीत्) सतावे और (सुपर्णः) सुन्दर रक्षा किये अवयवों से युक्त तेरा पति (मा) नहीं मारे ॥ १६ ॥

भावार्थः—जैसी राजनीति विद्या को राजा पढ़ा हो वैसी ही उस की राणी भी पढ़ी होनी चाहिये सदैव दोनों परस्पर पतिव्रता स्त्रीव्रत हो के न्याय से पालन करें । व्यभिचार और काम की व्यथा से रहित हो कर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न कर के स्त्रियों का न्याय राणी और पुरुषों का पुरुष राजा न्याय करे ॥ १६ ॥

प्रजापतिष्ट्वेत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा अपनी राणी को कैसे वर्त्तावे यह वि० ॥

प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयत्व॒पां पृ॒ष्ठे स॑मु॒द्रस्येम॑न् । व्यच॑स्वतीं प्रथ॑स्वतीं प्रथ॑स्व पृथि॒व्य॒सि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विदुषि स्त्री जैसे (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी (समुद्रस्य) समुद्र के (अपाम्) जलों के (एमन्) प्राप्त होने योग्य स्थान के (पृष्ठे) ऊपर नौका के समान (व्यचस्वतीम्) बहुत विद्या की प्राप्ति और सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) प्रशंसित कीर्त्ति वाली (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापन करे। जिस कारण तू (पृथिवी) भूमि के समान सुख देने वाली (असि) है इसलिये स्त्रियों के न्याय करने में (प्रथस्व) प्रसिद्ध हो वैसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करे ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—राजपुरुष आदि को चाहिये कि आप जिस २ राज कार्य्य में प्रवृत्त हों उस २ कार्य्य में अपनी २ स्त्रियों को भी स्थापन करें जो २ राजपुरुष जिस २ पुरुषों का न्याय करे उस २ की स्त्री स्त्रियों का न्याय किया करें ॥ १७ ॥

भूरसीत्यस्य विश्वधारा ऋषिः। अग्निर्देवता। प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह राणी कैसी हो यह वि० ॥

भूर॑सि भूमि॑र॒स्यदि॑तिरसि वि॒श्वधा॑या वि॒श्वस्य॒ भुव॑नस्य ध॒र्त्री। पृ॒थि॒वीं य॑च्छ पृथि॒वीं दृꣳह पृथि॒वीं मा हिꣳसीः ॥१८॥

पदार्थः—हे राणी जिस से तू (भूः) भूमि के समान (असि) है इस कारण (पृथिवीम्) पृथिवी को (यच्छ) निरन्तर ग्रहण कर जिस लिये तू (विश्वधायाः) सब गृहाश्रम के और राजसम्बन्धी व्यवहारों और (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) राज्य को (धर्त्री) धारण करने हारी (भूमिः) पृथिवी के समान असि है इस लिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (दृꣳह) बढ़ा और जिस कारण तू (अदितिः) अखण्ड ऐश्वर्य्य वाले आकाश के समान क्षोभरहित (असि) है इस लिये (पृथिवीम्) भूमि को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़ ॥ १८ ॥

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥ २० ॥

पदार्थः—हे स्त्रि तू जैसे (सहस्रेण) असंख्यात (च) और (शतेन) बहुत प्रकार के साथ (काण्डात्काण्डात्) सब अवयवों और (परुषः परुषः) गांठ २ से (परि) सब ओर से (प्ररोहन्ती) अत्यन्त बढ़ती हुई (दूर्वे) दूर्वा घास होती है वैसे (एव) ही (नः) हम को पुत्र पौत्र और ऐश्वर्य्य से (प्रतनु) विस्तृत कर ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे दूर्वा ओषधी रोगों का नाश और सुखों को बढ़ाने हारी सुन्दर विस्तार युक्त होती हुई बढ़ती है। वैसे ही विद्वान् स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे ॥२०॥

या शतेनेत्यस्याग्निर्ऋषिः। पत्नी देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह कैसी हो यह वि० ॥

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि। त-
स्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (इष्टके) ईंट के समान दृढ़ अवयवों से युक्त शुभ गुणों से शोभायमान (देवि) प्रकाश युक्त स्त्री जैसे ईंट सैकड़ों संख्या से मकान आदि का विस्तार और हजारह से बहुत बढ़ा देती है वैसे (या) जो तू हम लोगों को (शतेन) सैकड़ों पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति से (प्रतनोषि) विस्तारयुक्त करती और (सहस्रेण) हजार प्रकार के पदार्थों से (विरोहसि) विविध प्रकार बढ़ाती है (तस्याः) उस (ते) तेरी (हविषा) देने योग्य पदार्थों से (वयम्) हम लोग (विधेम) सेवा करें ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सैकड़ों प्रकार से हजारह ईंटें घर रूप बन के सब प्राणियों को सुख देती हैं वैसे जो श्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र पौत्र ऐश्वर्य्य और भृत्य आदि से सब को आनन्द देवें उन का पुरुष लोग

यावो॑ दे॒वाः सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुच॑ः।
इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभि॒ः सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृह-
स्पते ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो तुम सब लोग (याः) जो (वः) तुम्हारी (सूर्य्ये) सूर्य्य में (रुचः) रुचि और (याः) जो (गोषु) गौओं और (अश्वेषु) घोड़ों आदि में (रुचः) प्रीतियों के समान प्रीति हैं (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (नः) हमारे बीच (रुचम्) कामना को (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्यवत् अध्यापक और उपदेशक जैसे धारण करें वैसे (धत्त) धारण करो हे (बृहस्पते) पक्षपात छोड़ के परीक्षा करने हारे पूर्णविद्यायुक्त आप (नः) हमारी परीक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—जबतक मनुष्य लोगों को विद्वानों के सङ्ग देकर उनकी रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तबतक विज्ञान कभी नहीं बढ़ सकता ॥ २३ ॥

विराड्ज्योतिरित्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । प्रजापतिर्देवता ।
निचृद्बृहतीछन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष आश्रम में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वि॒राड्ज्योति॑रधारयत्स्व॒राड्ज्योति॑रधारयत्।
प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयतु पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या ज्योति॑ष्म-
तीं विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒
ज्योति॑र्यच्छ अ॒ग्निष्टेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याङ्गि-
र॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ २४ ॥

निरन्तर सत्कार करें क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के विना शुभ-गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते। और ऐसे सन्तानों के विना माता पिता को सुख कब मिल सकता है॥ २१ ॥

यास्त इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वह स्त्री कैसी होवे यह वि०॥

यास्ते॑ अग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑। ताभि॑र्नो॒ अ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजधारिणी पढ़ाने हारी विद्वान् स्त्री (याः) जो (ते) तेरी रुचि हैं (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रु-चियों से युक्त (नः) हम को जैसे (रुचः) दीप्तियां (सूर्य्ये) सूर्य्य में (रश्मिभिः) किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) अच्छे प्रकार विस्तार युक्त करती हैं वैसे तू भी अच्छे प्रकार विस्तृत सुखयुक्त कर और (अद्य) आज (रुचे) रुचि करानेहारे (जनाय) प्रसिद्ध मनुष्य के लिये (नः) हम लोगों को प्रीति युक्त (कृधि) कर॥ २२॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य्य की दीप्ति सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचि युक्त करती हैं वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्यों का प्रकाश करती हैं। जिस कुल में स्त्री और पुरुष आपस में प्रीतियुक्त हों वहां सब विषयों में कल्याण ही होता है॥ २२॥

या वो देवा इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। बृहस्पतिर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब स्त्री पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिये यह विषय०॥

यावो॑ दे॒वाः सूर्य्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुचः॑।
इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभिः॒ सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृह-
स्पते ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो तुम सब लोग (याः) जो (वः) तुम्हारी (सूर्ये) सूर्य्य में (रुचः) रुचि और (याः) जो (गोषु) गौओं और (अश्वेषु) घोड़ों आदि में (रुचः) प्रीतियों के समान प्रीति हैं (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (नः) हमारे बीच (रुचम्) कामना को (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्यवत् अध्यापक और उपदेशक जैसे धारण करें वैसे (धत्त) धारण करो हे (बृहस्पते) पक्षपात छोड़ के परीक्षा करने हारे पूर्णविद्यायुक्त आप (नः) हमारी परीक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—जबतक मनुष्य लोगों को विद्वानों के सङ्ग से इनकी रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तबतक विज्ञान कभी नहीं बढ़ सकता ॥ २३ ॥

विराड्ज्योतिरित्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । प्रजापतिर्देवता ।
निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

जो पुरुष आश्रम में कैसे वर्त्ते यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वि॒राड्ज्योति॑रधारयत्स्व॒राड्ज्योति॑रधारयत्।
प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयतु पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या ज्योति॑ष्म-
तीं॒ विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒
ज्योति॑र्यच्छ अ॒ग्निष्टेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गि-
र॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ २४ ॥

पदार्थः—जो (विराट्) अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशमान स्त्री (ज्योतिः) विद्या की उन्नति को (अधारयत्) धारण करे करावे जो (स्वराट्) सब धर्मयुक्त व्यवहारों में शुद्धाचारी पुरुष (ज्योतिः) बिजुली आदि के प्रकाश को (अधारयत्) धारण करे करावे वे दोनों स्त्री पुरुष संपूर्ण सुखों को प्राप्त होवें । हे स्त्रि जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विज्ञानयुक्त (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) सुन्दर देवस्वरूप पति के साथ तू (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा वायु के समान (ध्रुवा) दृढ़ता से (सीद) हो । हे पुरुष जो अग्नि के समान तेजधारिणी तेरी रक्षा के करने हारी स्त्री है उस देवी के साथ तू प्राणों के समान प्रीतिपूर्वक निश्चय करके स्थित हो । हे स्त्रि (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक तेरा पति (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) सुख की चेष्टा के हेतु (अपानाय) दुःख हटाने के साधन (व्यानाय) सब सुन्दर गुण कर्म और स्वभावों के प्रचार के हेतु प्राण विद्या के लिये जिस (ज्योतिष्मतीम्) प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त (त्वा) तुझ को (सादयतु) उत्तम अधिकार पर स्थापित करे सो तू (विश्वम्) समग्र (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर और इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये अपने पति को स्थिर कर ॥ २४ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष सत्संग और विद्या के अभ्यास से विद्युत आदि पदार्थविद्या और प्रीति को नित्य बढ़ाते हैं वे इस संसार में सुख भोगते हैं । पति स्त्री का और स्त्री पति का सदा सत्कार करे इस प्रकार आपस में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें ॥ २४ ॥

मधुश्चेत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । ऋतवो देवताः । पूर्वस्य भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
ते अन्तःश इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ अगले मंत्र में वसन्तऋतु का वर्णन किया है ॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

पदार्थः—जैसे (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) ज्येष्ठ महीने में हुए व्यवहार वा मेरी श्रेष्ठता के लिये जो (अग्नेः) गरमी के निमित्त अग्नि से उत्पन्न होने वाले जिन के (अन्तःश्लेषः) भीतर बहुत प्रकार के वायु का सम्बन्ध (असि) होता है वे (मधुः) मधुरगंधयुक्त चैत्र (च) और (माधवः) मधुर आदि गुण का निमित्त वैशाख (च) इन के सम्बन्धी पदार्थ युक्त (वासंतिकौ) वसन्त महीनों में हुए (ऋतू) सब को सुख प्राप्ति के साधन ऋतु सुख के लिये (कल्पेताम्) समर्थ होवें जिन चैत्र और वैशाख महीनों के आश्रय से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (आपः) जल भी भोग में (कल्पन्ताम्) आनन्ददायक हों (पृथक्) भिन्न २ (ओषधयः) जौ आदि वा सोमलता आदि ओषधि और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि भी (कल्पन्ताम्) कार्यसाधक हों हे (सव्रताः) निरन्तर वर्त्तमान सत्यभाषणादि व्रतों से युक्त (समनसः) विज्ञान वाले (देवाः) विद्वान् (ये) जो लोग (वासन्तिकौ) (ऋतू) वसन्तऋतु में हुए चैत्र वैशाख और पूर्वक मे (अन्तरा) बीच में हुए (अग्नयः) अग्नि हैं उन को (अभिकल्पमानाः) सम्मुख होकर कार्य में युक्त करते हुए आप लोग (इन्द्रमिव) जैसे उत्तम

ऐश्वर्य्य प्राप्त हों वैसे (अभिसंविशन्तु) सब ओर से प्रवेश करो जैसे (इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (तया) उस (देवतया) परमपूज्य परमेश्वररूप देवता के सामर्थ्य के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (ध्रुवे) दृढ़ता से वर्त्तते हैं वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष सदा संयुक्त (सीदतम्) स्थिर रहो ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को चाहिये कि जिस वसन्तऋतु में फल फूल उत्पन्न होता है और जिस में तीव्रप्रकाश रूपी पृथिवी जल सदृश ओषधियां फल और फूलों से युक्त और अग्नि की ज्वाला तिग्म २ होती हैं उस को युक्तिपूर्वक सेवन कर पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त होओ जैसे विद्वान् लोग अत्यन्त प्रयत्न के साथ सब ऋतुओं में सुख के लिये सम्पत्ति को बढ़ाते हैं वैसा तुम भी प्रयत्न करो ॥ २५ ॥

अषाढासीत्यस्य सविता ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता ।
निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर वह कैसी हो यह वि० ॥

अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृ-
तनायतः । सहस्रवीर्य्यासि सा माजिन्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे पत्नी जो तू (अषाढा) शत्रु के असहने योग्य (असि) है तू (सहमाना) पति आदि का सहन करती हुई अपने के सुखदेव का (सहस्व) सहन कर जो तू (सहस्रवीर्य्या) असंख्यात प्रकार के पराक्रमों से युक्त (असि) है (सा) सो तू (पृतनायतः) अपने आप सेना से युद्ध की इच्छा करते हुए (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर और जैसे मैं तुझ को प्रसन्न रखता हूं वैसे (मा) मुझ पति को (जिन्व) तृप्त किया कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्याश्रम से सेवन की हुई अत्यन्त बलवान् जितेन्द्रिय वसन्त आदि ऋतुओं के पृथक् २ काम जानने, पति के

अपराध क्षमा और शत्रुओं का निवारण करने वाली उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को वश करती है उसी को पति भी नित्य आनन्दित करता ही है ॥ २६ ॥

मधुवाता इत्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥

आगे के मन्त्र में वसन्तऋतु के अन्य गुणों का वर्णन किया है ॥

मधुवाता ऋतायते मधुं क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे वसन्त ऋतु में (नः) हम लोगों के लिये (वाताः) वायु (मधु) मधुरता के साथ (ऋतायते) जल के समान चलते हैं (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (मधु) कोमलता पूर्वक (क्षरन्ति) वर्षते हैं और (ओषधीः) ओषधियां (माध्वीः) मधुर रस के गुणों से युक्त (सन्तु) होवें वैसा प्रयत्न हम किया करें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जब वसन्तऋतु आता है तब पुष्प आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं उस ऋतु में घूमना डोलना पथ्य होता है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ २७ ॥

मधुनक्तमित्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे वसन्त ऋतु में (नक्तम्) रात्रि (मधु) कोमलता से युक्त (उत) और (उषसः) प्रातःकाल से लेकर दिन मधुर (पा-

र्थिवम्) पृथिवी का (रजः) द्व्यणुक वा त्रसरेणु आदि (मधुमत्) मधु
गुणों से युक्त और (द्यौः) प्रकाश भी (मधु) मधुरतायुक्त (पिता) र
क्षा करने हारे के समान सब (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे वैसे यु
क्ति से इस वसन्तऋतु का सेवन तुम भी किया करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब वसन्तऋतु आता है तब पक्षी
भी कोमल मधुर २ शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं
॥ २८ ॥

मधुमानित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वसन्तऋतु में मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

मधु॑मान्नो॒ वन॒स्पति॒र्मधु॑माँ२ ॥ अस्तु॒ सूर्यः॑ ।
माध्वी॒र्गावो॑ भवन्तु नः ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो जैसे वसन्तऋतु में (नः) हमारे लिये (व
नस्पतिः) पीपल आदि वनस्पति (मधुमान्) प्रशंसित कोमल गुणों वाले
और (सूर्यः) सूर्य भी (मधुमान्) प्रशंसित कोमल तापयुक्त (अस्तु)
होवे और (नः) हमारे लिये (गावः) गौओं के समान (माध्वीः)
कोमल गुणों वाली किरणें (भवन्तु) हों वैसा ही उपदेश करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग वसन्तऋतु को प्राप्त होकर जिस
प्रकार के पदार्थों के होम से वनस्पति आदि कोमल गुणयुक्त हों ऐसे यज्ञ
का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्तऋतु के सुख को सब जने तुम
लोग प्राप्त होओ ॥ २९ ॥

अपामित्यस्य गोतमऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

अपां गम्भ॑न्त्सीद॒ मा त्वा॒ सूर्यो॑ऽभिता॒प्सी-

न्माऽग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा अ-
नुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य तू वसन्त ऋतु में (अपाम्) जलों के (गम्भन्) आधार बड़े मेघ में (सीद) स्थिर हो जिस से (सूर्यः) सूर्य (त्वा) तुझ को (मा) न (अभिताप्सीत्) तपावे (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि बिजुली (त्वा) तुझ को (मा) न (अभिताप्सीत्) तप्त करे (अच्छिन्नपत्राः) सुन्दर पूर्ण अवयवों वाली (प्रजाः) प्रजा (अनु त्वा) तेरे अनुकूल और (दिव्या) शुद्ध गुणों से युक्त (वृष्टिः) वर्षा (सचताम्) प्राप्त होवे वैसे (अनुवीक्षस्व) अनुकूलता से विशेष करके विचार कर ॥ ३० ॥

भावार्थः— मनुष्य वसन्त और ग्रीष्मऋतु के बीच जलाशयस्थ शीतल स्थान का सेवन करें जिस से गर्मी से दुःखित न हों और जिस यज्ञ से वर्षा भी ठीक २ हो और प्रजा आनन्दित हो उस का सेवन करें ॥३०॥

त्रीन्समुद्रानित्यस्य गोतम ऋषिः । वरुणो देवता ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को उस वसन्त में सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत्स्वर्गानपां पतिर्वृषभ इ-
ष्टकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र
गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जैसे (अपाम्) प्राणों का (पतिः) रक्षक (वृषभः) वर्षा का हेतु (पुरीषम्) पूर्ण सुखकारक जल को (वसानः) धारण करता हुआ सूर्य (इष्टकानाम्) कामनाओं की प्राप्ति के हेतु पदार्थों के आधार रूप (त्रीन्) ऊपर नीचे और मध्य में रहने वाले तीन प्रकार

के (समुद्रान्) सब पदार्थों के स्थान भूत भविष्यत् और वर्त्तमान (स्वर्गान्) सुख प्राप्त कराने हारे लोकों को (समस्नात्) प्राप्त होता है वैसे आप भी प्राप्त हूजिये (यत्र) जिस धर्मयुक्त वसन्त के मार्ग में (सुकृतस्य) सुन्दर धर्म करने हारे पुरुष के (लोके) देखने योग्य स्थान वा मार्ग में (पूर्वे) प्राचीन लोग (परेताः) सुख को प्राप्त हुए (तत्र) उसी वसन्त के सेवन रूप मार्ग में आप भी (गच्छ) चलिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के मार्ग से चलते हुए शारीर वाचिक और मानस तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त होवें । और जिस में कामना पूरी हों वैसे प्रयत्न करें । जैसा वसन्त आदि ऋतु अपने क्रम से वर्त्तते हुए अपने २ चिन्ह प्राप्त करते हैं वैसे ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

मही द्यौरित्यस्य गोतम ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते ।
निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
माता पिता अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें इस वि०॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे माता पिता जैसे (मही) बड़ा (द्यौः) सूर्यलोक (च) और (पृथिवी) भूमि सब संसार को सींचते और पालन करते हैं वैसे तुम दोनों (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सेवने योग्य विद्याग्रहणरूप व्यवहार को (मिमिक्षताम्) सेचन अर्थात् पूर्ण होने की इच्छा करो और (भरीमभिः) धारण पोषण आदि कर्मों से (नः) हमारा (पिपृताम्) पालन करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे वसन्तऋतु में पृथिवी और सूर्य्य सब संसार का धारण प्रकाश और पालन करते हैं वैसे माता पिता को चाहिये कि अपने सन्तानों के लिये वसन्तादि ऋतुओं में अच्छे विद्यादान और अच्छी शिक्षा करके पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थी करें ॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणीत्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता ।
निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्यों को आचरण करना चाहिये इसी वि० ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि प-
स्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य की इच्छा करने हारे जीव का (युज्यः) उपासना करने योग्य (सखा) मित्र के समान वर्तमान है (यतः) जिस के प्रताप से यह जीव (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जगत् की रचना पालन प्रलय करने और न्याय आदि कर्मों और (व्रतानि) सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) स्पर्श करता है इस लिये इस परमात्मा के इन कर्मों और व्रतों को तुम लोग भी (पश्यत) देखो धारण करो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर का मित्र उपासक धर्मात्मा विद्वान् पुरुष परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों के अनुसार सृष्टि के क्रमों के अनुकूल आचरण करे और जाने वैसे ही अन्य मनुष्य करें और जानें ॥ ३३ ॥

ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता ।
भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुषों के समान विद्वान् स्त्रियां भी उपदेश करें यह वि० ॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो
अधि जातवेदाः । स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा
च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जैसे तू (धरुणा) शुभगुणों का धारण करने हारी (ध्रुवा) स्थिर (असि) है वैसे (एभ्यः) इन (योनिभ्यः) कारणों से (सः) वह (जातवेदाः) प्रसिद्ध पदार्थों में विद्यमान वायु (प्रथमम्)

पहिले (अधिकारे) अधिकता से प्रकट होता है वैसे (इतः) इस कर्म के अनुष्ठान से सर्वोपरि प्रसिद्ध हूजिये जैसे तेरा पति (गायत्र्या) गायत्री (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुप् (च) और (अनुष्टुभा) अनुष्टुप् छन्द से सिद्ध हुई विद्या से (प्रजावान्) बुद्धिमान् होकर (देवेभ्यः) अच्छे गुण वा विद्वानों से (इदम्) देने लेने योग्य विज्ञान (अस्तु) प्राप्त होवे वैसे इस विद्या से बुद्धिमती हो के आप स्त्री लोगों से अधिकारिणी कन्या विज्ञान को प्राप्त हूजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमित्तों को जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शुद्धि का उपदेश करते हैं वैसे ही स्त्रियों को भी चाहिये कि इस सृष्टिक्रम के निमित्तों को जान के स्त्रियों को वेदार्थसारोपदेशों को करें ॥ ३४ ॥

इषे राय इत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता ।

निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्तें इस वि० ॥

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऊर्जे अपत्याय । सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे पुरुष जो तू (सम्राट्) विद्यादिशुभगुणों से स्वयं प्रकाशमान (असि) है। हे स्त्री जो तू (स्वराट्) अपने आप विज्ञान करनेहारि शोभायमान (असि) है सो तुम दोनों (इषे) विज्ञान (राये) धन (सहसे) बल (द्युम्ने) यश और अन्न (ऊर्जे) पराक्रम और (अपत्याय) सन्तानों की प्राप्ति के लिये (रमस्व) यत्न करो जैसे (सारस्वतौ) [illegible] कूप के समान [illegible] प्राप्त होकर (प्रावताम्) वेदवाणी के उपदेश में कुशल होके तुम दोनों को पुरुष [illegible] और [illegible] (त्वा) तुझ को [illegible] करूं ॥ ३५ ॥

भावार्थः—विवाह करके स्त्री पुरुष दोनों आपस में प्रीति के साथ विद्वान् हो कर पुरुषार्थ से धनवान् श्रेष्ठगुणों से युक्त होके एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्मानुकूलता से वर्त्त के सन्तानों को उत्पन्न कर इस संसार में नित्य क्रीड़ा करें ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अथ शत्रुओं को कैसे जीतना चाहिये यह वि० ॥

अग्ने युक्ष्वाहि ये तवाश्वा॑सो देव साधवः॑ । अरं वहन्ति मन्यवे॑ ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (देव) श्रेष्ठविद्या वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् (ये) जो (तव) आप के (साधवः) अभीष्ट साधने वाले (अश्वासः) शिक्षित घोड़े (मन्यवे) शत्रुओं के ऊपर क्रोध के लिये (अरम्) सामर्थ्य के साथ (वहन्ति) रथ आदि यानों को पहुंचाते हैं उन को (हि) निश्चय कर के (युक्ष्व) संयुक्त कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—राजादिमनुष्यों को चाहिये कि वसन्त ऋतु में पहिले घोड़ों को शिक्षादे और रथियों को रथों पर नियुक्त करके शत्रुओं के जीतने के लिये यात्रा करें ॥ ३६ ॥

युक्ष्वाहीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

युक्ष्वा हि दे॑वहूत॑माँ२॥ अश्वाँ॑२॥ अग्ने र॒थीरि॑व । नि होता॑ पू॒र्व्यः स॑दः ॥ ३७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (पूर्व्यः) पूर्व विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त (होता) दानशील आप (देवहूतमान्) विद्वानों से स्पर्द्धा वा

पहिले (अधिक्षसे) अधिकता से प्रकट होता है वैसे (इतः) इस क
अनुष्ठान से सर्वोपरि प्रसिद्ध हूजिये जैसे तेरा पति (गायत्र्या) ग
(त्रिष्टुभा) त्रिष्टुप् (च) और (अनुष्टुभा) अनुष्टुप् मन्त्र से
हुई विद्या से (प्रजानन्) बुद्धिमान् होकर (देवेभ्यः) श्रेष्ठगुण य
द्वानों से (इष्टम्) देने लेने योग्य विज्ञान (वहतु) प्राप्त होवे वैसे
विद्या से बुद्धिमती होके आप स्त्री लोगों से ब्रह्मचारिणी कन्या वि
को प्राप्त होवें ॥ ३४ ॥

भावार्थः—मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमित्त
जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शास्त्रों का उपदेश करते हैं वै
स्त्रियों को भी चाहिये कि इन सृष्टिक्रम के निमित्तों को जान के
को वेदार्थसारोपदेशों को करें ॥ ३४ ॥

इषे राय इत्यस्य गोतम ऋषिः । जातवेदा देवता ।
निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्तें इस वि०

इषे रा॒ये र॑मस्व॒ सह॑से द्यु॒म्न ऊ॒र्जे
य । स॒म्राड॑सि स्व॒राड॑सि सार॑स्व॒तौ
प्राव॑ताम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे पुरुष जो तू (सम्राट्) विद्यादि
शमान (असि) है । हे स्त्री जो तू (स्वराट्) अप
चार से शोभायमान (असि) है सो तुम दोनों (
धन (सहसे) बल (द्युम्ने) यश और अन्न (ऊ
पत्याय) सन्तानों की प्राप्ति के लिये (रमस्व
फूलोदक के समान कोमलता को प्राप्त होकर
उपदेश में कुशल होके तुम दोनों स्त्री पुरुष
यों की (प्रावताम्) रक्षा आदि करो यह
है ॥ ३५ ॥

ऋचे त्वेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्बृहती
छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिये इस वि० ॥

ऋचे त्वां रुचेत्वां भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जिस तुझ को (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) संसार के सब पदार्थों (च) और (वैश्वानरस्य) संपूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्नेः) बिजुली रूप (वाजिनम्) ज्ञानी लोगों का अवयव रूप (इदम्) यह विज्ञान (अभूत्) प्रसिद्ध हुआ है उस (ऋचे) स्तुति के लिये (त्वा) तुझ को (रुचे) प्रीति के वास्ते (त्वा) तुझको (भासे) विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ (त्वा) तुझ को और (ज्योतिषे) न्याय के प्रकाश के लिये भी (त्वा) तुझको हम लोग आश्रय करते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे उसी के सेवन से सब मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होवें ॥ ३९ ॥

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् । सहस्रदा असि सहस्राय त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जो आप (ज्योतिषा) विद्या के प्रकाश से (अग्निः) अग्नि के तुल्य (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाश युक्त (वर्चसा) अपने तेज से (वर्चस्वान्) ज्ञान देने वाले और (रुक्म) जैसे सुवर्ण सुख देवे वैसे असंख्य सुख के देने वाले (असि) हैं उन (त्वा) आप का (सहस्राय) अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिये हम लोग सत्कार करें ॥ ४० ॥

शिक्षा किये (अग्नान्) घोड़ों को (रथीरिव) शत्रुओं के साथ बहुत रथादि सेना अंगयुक्त योद्धा के समान (युक्ष्व) युक्त कीजिये (हि) निश्चय करके न्यायासन पर (निषद) निरन्तर स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि बड़े सेना के अंगयुक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अवयवों को कार्यों में संयुक्त करें। और सभापति आदि को चाहिये कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त न्याय किया करें ॥ ३७ ॥

सम्यक्स्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे होके वाणी धारण करनी चाहिये यह वि० ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अग्नेः) बिजुली के (मध्ये) बीच में वर्तमान (हिरण्ययः) तेजोभाग के समान तेजस्वी कीर्त्ति चाहने और विद्या की इच्छा रखने वाला मैं जो (घृतस्य) जल की (वेतसः) वेगवाली (धाराः) प्रवाहरूप (सरितः) नदियों के (न) समान (अन्तः) भीतर (हृदा) अन्तःकरण के (मनसा) विज्ञानरूप वाले चित्त से (पूयमानाः) पवित्र हुई (धेनाः) वाणी (सम्यक्) अच्छे प्रकार (स्रवन्ति) चलती हैं उन को (अभिचाकशीमि) सन्मुख होकर सब के लिये शीघ्र प्रकाशित करता हूं वैसे तुम लोग भी इन वाणियों को प्राप्त होओ ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अधिक वा कम चलती शुद्ध हुई नदियां समुद्र को प्राप्त हो कर स्थिर होती हैं वैसेही विद्या शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निश्चल वाणी को प्राप्त होकर अन्यों को प्राप्त करावें ॥ ३८ ॥

ऋचे त्वेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिये इस वि० ॥

ऋचे त्वा॑ रु॒चे त्वा॑ भा॒से त्वा ज्योति॑षे त्वा । अभू॑दि॒दं विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ वाजि॑नम॒ग्नेर्वै॑श्वा॒न॒रस्य॑ च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जिस तुझ को (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) संसार के सब पदार्थों (च) और (वैश्वानरस्य) संपूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (अग्नेः) बिजुली रूप (वाजिनम्) ज्ञानी लोगों का अवयव रूप (इदम्) यह विज्ञान (अभूत्) प्रसिद्ध हुआ है उस (ऋचे) स्तुति के लिये (त्वा) तुझ को (रुचे) प्रीति के वास्ते (त्वा) तुझको (भासे) विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ (त्वा) तुझ को और (ज्योतिषे) न्याय के प्रकाश के लिये भी (त्वा) तुझको हम लोग आश्रय करते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थः-जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे उसी के सेवन से सब मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होवें ॥ ३९ ॥

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ण्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अ॒ग्निर्ज्योति॑षा॒ ज्योति॑ष्मान् रु॒क्मो वर्च॑सा॒ वर्च॑स्वान् । स॒ह॒स्र॒दा अ॑सि स॒ह॒स्राय॑ त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जो आप (ज्योतिषा) विद्या के प्रकाश से (अग्निः) अग्नि के तुल्य (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाश युक्त (वर्चसा) अपने तेज से (वर्चस्वान्) ज्ञान देने वाले और (रुक्मः) जैसे सुवर्ण सुख देवे वैसे असंख्य सुख के देने वाले (असि) हैं उन (त्वा) आप का (सहस्राय) अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिये हम लोग सत्कार करें ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि और सूर्य के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष हों उन से विद्या पढ़ के पूर्ण विद्या के ग्राहक होवें ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर वे विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष आप जैसे बिजुली (पयसा) जल से (सहस्रस्य) असंख्य पदार्थों की (प्रतिमाम्) परिमाण करने हारे सूर्य के समान निश्चय करने हारी बुद्धि और (विश्वरूपम्) सब रूप विषय को दिखाने हारे (गर्भम्) स्तुति के योग्य (आदित्यम्) सूर्य्य को धारण करती है वैसे अन्तःकरण को (समङ्ग्धि) अच्छे प्रकार शोधिये (हरसा) प्रज्वलित तेज से रोगों को (परि) सब ओर से (वृङ्ग्धि) हटाइये और (चीयमानः) वृद्धि को प्राप्त होके (शतायुषम्) सौ वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को (कृणुहि) कीजिये और कभी (मा) मत (अभिमंस्थाः) अभिमान कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग सुगन्धित पदार्थों के होम से सूर्य के प्रकाश जल और वायु को शुद्ध कर और रोग रहित हो कर सौ वर्ष जीने वाले सन्तानों को उत्पन्न करो जैसे विद्युत् अग्नि से बनाए हुए सूर्य से रूप वाले पदार्थों का दर्शन और परिमाण होता है वैसे विद्या वाले सन्तान सुख दिखाने हारे होते हैं इनसे कभी अभिमानी होके विषयासक्ति से विद्या और आयु का विनाश मत किया करो ॥ ४१ ॥

वातस्य जूतिमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् पुरुष को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये । शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् आप (परमे व्योमन्) सर्वव्याप्त उत्तम आकाश में (वातस्य) वायु के (मध्ये) मध्य में (जूतिम्) वेगरूप (अश्वम्) शीघ्र को (सरिरस्य) जलमय (वरुणस्य) उत्तम समुद्र के (नाभिम्) बन्धन को और (नदीनाम्) नदियों के [illegible] (जज्ञानम्) प्रकट हुए (शिशुम्) बालक के तुल्य वर्त्तमान (हरिम्) नीलवर्णयुक्त (अद्रिबुध्नम्) बृहत मेघ को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि प्रमाद को छोड़ के आकाश में वर्त्तमान वायु के वेग और वर्षा के प्रबन्ध रूप मेघ का विनाश न करके अपनी २ अवस्था को बढ़ावें ॥ ४२ ॥

अजस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर वह विद्वान् क्या करे यह वि० ॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः । स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जैसे मैं (पर्वभिः ... युक्त (न
मोभिः) अन्नों के साथ वर्त्तमान ...) चाहे के
सदृश (भुरण्यु ... निंत (अ-
ग्नि ... खोजता हूं
... करता हुआ

(अदितिम्) अखण्डित (विराजम्) विविध प्रकार के पदार्थों से शोभायमान (गाम्) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूं वैसे ही (मः) को आप इस अग्नि और इस पृथिवी को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अग्नि जल और अन्न का सेवन कर के राज्य और पृथिवी की सदैव रक्षा करें जिस से सब सुख प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

वरूत्रीमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उस विद्वान् को क्या नहीं करना चाहिये यह वि० ॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाथ्ठ रजसः परस्मात् । महीथ्ठ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने माहिंथ्ठसीः परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप (त्वष्टुः) छेदन कर्त्ता सूर्य के (वरूत्रीम्) ग्रहण करने योग्य (वरुणस्य) जल की (नाभिम्) रोकने हारी (परस्मात्) श्रेष्ठ (रजसः) लोक से (जज्ञानाम्) उत्पन्न हुई (असुरस्य) मेघ की (मायाम्) बनाने वाली बिजुली को और (साहस्रीम्) असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देने हारी (अविम्) रक्षा आदि का निमित्त (परमे) सब से उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान व्याप्त जगदीश्वर में वर्त्तमान (महीम्) विस्तारयुक्त पृथिवी का (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥ ४४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि जो यह पृथिवी उत्तम कारण से उत्पन्न हुई सूर्य जिस का आकर्षण कर्त्ता जल का आधार मेघका निमित्त असंख्य सुख देने हारी परमेश्वर से रची है उस को गुण कर्म और स्वभाव से जान के सुख के लिये उपयुक्त करें ॥ ४४ ॥

यो अग्निरित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस विद्वान् को क्या करना चाहिये यह वि०॥

यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि। येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने विद्वन् मनुष्य) जो (पृथिव्याः) पृथिवी के (शोकात्) सुखाने हारे अग्नि (उत वा) अथवा (दिवः) सूर्य से (अग्नेः) बिजुली रूप अग्नि से (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (अध्यजायत) उत्पन्न होता है (येन) जिस से (विश्वकर्मा) सब कर्मों का आधार ईश्वर (प्रजाः) प्रजाओं को (परि) सब ओर से (जजान) रचता है (तम्) उस अग्नि को (ते) तेरा (हेडः) क्रोध (परिवृणक्तु) सब प्रकार से छेदन करे ॥ ४५ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो तुम लोग जो अग्नि पृथिवी को फोड़ के और जो सूर्य के प्रकाश से बिजुली निकलती है उस विघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों को रक्षित रक्खो और जिस अग्नि से ईश्वर सब की रक्षा करता है उस अग्नि की विद्या को जानो ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामित्यस्य विरूप ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ ईश्वर कैसा है यह वि०॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग जो जगदीश्वर (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के बीच (चित्रम्) आश्चर्य रूप (अनीकम्) सेना के

समान किरणों से युक्त (मित्रस्य) प्राण (वरुणस्य) उदान और (अग्नेः) प्रसिद्ध अग्नि के (चक्षुः) दिखानेवाले (सूर्यः) सूर्य के समान (उद्गात्) उदय को प्राप्त हो रहा है उस के समान (जगतः) चेतन (च) और (तस्थुषः) जड़ जगत् का (आत्मा) अन्तर्यामी हो के (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाश रूप जगत् और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ) अच्छे प्रकार (अप्राः) व्याप्त हो रहा है उसी जगत् के रचने पालन करने और संहार-प्रलय करने हारे व्यापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—यह जगत् ऐसा नहीं कि जिस का कर्त्ता अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे जो ईश्वर सब का अन्तर्यामी सब जीवों के पाप पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने हारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने हारा है उसी की उपासना से धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों को सब मनुष्य प्राप्त होवें ॥ ४६ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः । मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) मनुष्य के जन्म को प्राप्त हुए (मेधाय) सुख की प्राप्ति के लिये (चीयमानः) बढ़े हुए (सहस्राक्षः) हजारह प्रकार की दृष्टि वाले राजन् तू (इमम्) इस (द्विपादम्) दो पग वाले मनुष्यादि और (मेधम्) पवित्रकारक फलप्रद (मयुम्) जंगली (पशुम्) गवादि पशु जीव को (मा) मत (हिंसीः) मारा कर उस (पशुम्) पशु की (जुष-

ष्व) सेवा कर (तेन) उस पशु से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ तू (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो यह (ते) तेरे से (शुक्) शोक (मयुम्) शस्यादिनाशक जंगली पशु को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४७ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य सब के उपकार करने हारे पशुओं को कभी न मारे किन्तु इन को अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार ले के सब मनुष्यों को आनन्द देवे जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु खेती और मनुष्यों की हानि हो उन को राजपुरुष मारें और बन्धन करें ॥ ४७ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह मनुष्य क्या करे यह वि० ॥

इमं मा हिंꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु । गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे राजन् तू (वाजिनेषु) संग्राम के कामों में (इमम्) इस (एकशफम्) एकखुरयुक्त (कनिक्रदम्) शीघ्र विकल व्यथा को प्राप्त हुए (वाजिनम्) वेगवाले (पशुम्) देखने योग्य घोड़े आदि पशु को (मा) (हिंसीः) मत मार मैं ईश्वर (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (आरण्यम्) जङ्गली (गौरम्) गौरपशु की (दिशामि) शिक्षा करता हूं (तेन) उस के रक्षण से (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो (ते) तेरे से (गौरम्) श्वेत वर्ण वाले पशु के प्रति

(शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस शत्रु को हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (ते) तुझ से (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को भी कभी न मारें जिन के मारने से जगत् की हानि और न मारने से सब का उपकार होता है उन का सदैव पालन पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उन को मारें ॥ ४८ ॥

इमꣳ साहस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता।
कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहियें य० ॥

इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये। घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्। गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गवयन्ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजन् तू (जनाय) मनुष्यादि प्राणी के लिये (इमम्) इस (साहस्रम्) असंख्य सुखों का साधन (शतधारम्) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त (व्यच्यमानम्) अनेक प्रकार से पालन के योग्य (उत्सम्) कुए के समान रक्षा करने हारे वीर्यसेचक बैल और (घृतम्) घी को (दुहानाम्) पूर्ण करती हुई (अदितिम्) नहीं मारने योग्य गौ को (माहिंसीः) मत मार और (ते) तेरे राज्य में जिस (आरण्यम्) वन में रहने वाले (गवयम्) गौ के समान नीलगाय से खेती की हानि होती हो तो उस को (अनुदिशामि) उपदेश करता हूं (तेन)

उस के मारने से सुरक्षित अन्न से (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा और (सरिरस्य) विस्तृत व्यापक आकाश के (मध्ये) मध्य में (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ तू (तन्वः) शरीर मध्य में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक (तम्) उस (गवयम्) रोझ को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस (ते) तेरे शत्रु को (द्विष्मः) हम लोग द्वेष करें उस को भी (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥४९॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे राजपुरुषो तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम जिन गौ आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिन के दूध आदि से सब प्रजा की रक्षा होती है उन को कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उन को राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जङ्गल में रहने वाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥ ४९ ॥

इममूर्णायुमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर किन पशुओं को न मारना और किन को मारना चाहिये यह० ॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् । त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् । उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या को प्राप्त हुए राजन् तू (वरुणस्य) प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुख के (नाभिम्) संयोग करने हारे (इमम्) इस (द्विप

दाम्) दो पगवाले मनुष्य पक्षी आदि (चतुष्पदाम्) चार पगवाले (पशूनाम्) गाय आदि पशुओं की (त्वचम्) चमड़े से ढांकने वाले और (त्वष्टुः) सुख प्रकाशक ईश्वर की (प्रजानाम्) प्रजाओं के (प्रथमम्) आदि (जनित्रम्) उत्पत्ति के निमित्त (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश में वर्त्तमान (ऊर्णायुम्) भेड़ आदि को (मा हिंसीः) मत मार (ते) तेरे लिये मैं ईश्वर (यम्) जिस (आरण्यम्) वनैले (उष्ट्रम्) हिंसक ऊंट को (अनुदिशामि) बतलाता हूं (तेन) उस से सुरक्षित अन्नादि से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर। (ते) तेरा (शुक्) शोक उस जंगली ऊंट को (ऋच्छतु) प्राप्त हो और जिस द्वेषी जन से हम लोग (द्विष्मः) अप्रीति करें (तम्) उस को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ५० ॥

भावार्थः—हे राजन् जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिये होती हैं और जो ऊंट भार उठाते हुए मनुष्यों को सुख देते हैं उन को जो दुष्ट जन मारा चाहें उन को संसार के दुःखदायी समझो और उन को अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये ॥

अज इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौन से पशु न मारने और कौन से मारने चाहियें यह वि० ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे । तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः । शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे राजन् तू जो (हि) निश्चित (अजः) बकरा (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है (सः) वह (अग्रे) प्रथम (जनितारम्) उत्पादक को (अपश्यत्) देखता है जिस से (मेध्यासः) पवित्र हुए (देवाः) विद्वान् (अग्रम्) उत्तम सुख और (देवताम्) दिव्यगुणों के (उपायन्) उपाय को प्राप्त होते हैं और जिस से (रोहम्) वृद्धियुक्त प्रसिद्धि को (आयन्) प्राप्त होवें (तेन) उस से उत्तम गुणों उत्तम सुख तथा (तेन) उस से वृद्धि को प्राप्त हो जो (आरण्यम्) बनैली (शरभम्) शेही (ते) तेरी प्रजा को हानि देने वाली है उस को (अनुदिशामि) बतलाता हूं (तेन) उस से बचाए हुए पदार्थों से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर और (तम्) उस (शरभम्) शल्यकी को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो और (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें उस को (शोचात्) शोकरूप (अग्नेः) अग्नि से (शुक्) शोक अर्थात् शोक से बढ़ कर शोक अत्यन्तशोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ५१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि बकरे और मोर आदि श्रेष्ठ पशु पक्षियों को न मारें और इन की रक्षा करके उपकार के लिये प्रयुक्त करें और जो अच्छे पशुओं और पक्षियों के मारने वाले हैं उन को शीघ्र ताड़ना देवें हां जो खेती को उजाड़ने हारे स्याही आदि पशु हैं उन को प्रजा की रक्षा के लिये मारें ॥ ५१ ॥

त्वं यविष्ठेत्यस्योशना ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर कैसे पशुओं की रक्षा करना और हनना चाहिये यह वि० ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (त्वम्) तू रक्षा किये हुए इन पशुओं से (दाशुषः) सुखदाता (नॄन्) धर्मरक्षक मनुष्यों को (पाहि)

रक्षा कर इन (गिरः) मत्य प्राणियों को (शृणुधि) सुन और (त्मना) अपने आत्मा से मनुष्य (वस्) और पशुओं के (तोकम्) बच्चों को (रक्ष) रक्षा कर ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बढ़ाते हैं और कृपामय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं वे आन्तर्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः । आपो देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरेत्वेति मध्यस्य
ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । गायत्रेणे-
त्युत्तरस्य निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ॥
पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले क्या उपदेश करें यह विषय० ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्य-
पान्त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सा-
दयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने साद-
यामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि । सरिरे त्वा
सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा
सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा
सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां
त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि
गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा

छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयास्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छान्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे शिक्षा करने वाला मैं (अपाम्) प्राणों की रक्षा के निमित्त (एमन्) गमनशील वायु में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों की (ओद्मन्) आर्द्रतायुक्त ओषधियों में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापन करता हूं (अपाम्) प्राप्त हुए काष्ठों की (भस्मन्) राख में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (अपाम्) व्याप्त हुए बिजुली आदि अग्नि के (ज्योतिषि) प्रकाश में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्) अवकाश वाले (अयने) स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) बैठाता हूं (सदने) स्थिति के योग्य (अर्णवे) प्राणविद्या में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (सदने) गमनशील (समुद्रे) मन के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) सम्बद्ध करता हूं (सदने) प्राप्त होने योग्य (सरिरे) वाणी के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (अपाम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी (क्षये) घर में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) अनेक प्रकार के व्याप्त शब्दों के सम्बन्धी (सधिषि) उस पदार्थ में कि जिस से अनेक शब्दों को समान यह जीव सुनता है अर्थात् कान के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थित करता हूं (अपाम्) जलों के (सदने) अन्तरिक्षरूप स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों के (सधस्थे) तुल्य स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों के (योनौ) समुद्र में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं । (अपाम्) जलों की (पुरीषे) रेतो में त्वा तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्) जलों के (पाथसि) अन्न में (त्वा) तुझ को (साद-

रक्षा कर तथा (गिरः) अन्य प्राणियों को (अगुणि) सुन और (त्मना) अपने आत्मा से मनुष्य (उस्र) और पशुओं के (तोकम्) बच्चों की (रक्ष) रक्षा कर ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बढ़ाते हैं और कृपामय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं वे आत्मसुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः । आपो देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरे त्वेति मध्यस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । गायत्रेणे-त्युत्तरस्य निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले क्या उपदेश करें यह विषय० ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि । सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा

छन्दंसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दंसा साद-
याम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दंसा सादयामि पाङ्क्ते-
न त्वा छान्दंसा सादयामि ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे शिक्षा करने हारा मैं (अपाम्) प्राणों की रक्षा के निमित्त (एमन्) गमनशील वायु में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों की (ओद्मन्) आर्द्रतायुक्त ओषधियों में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापन करता हूं (अपाम्) प्राप्त हुए काष्ठों के (भस्मन्) राख में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (अपाम्) व्याप्त हुए बिजुली आदि अग्नि के (ज्योतिषि) प्रकाश में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्) अवकाश वाले (अयने) स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) बैठाता हूं (सदने) स्थिति के योग्य (अर्णवे) प्राणविद्या में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (सदने) गमनशील (समुद्रे) मन के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) सम्बद्ध करता हूं (सदने) प्राप्त होने योग्य (सरिरे) वाणी के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (अपाम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी (क्षये) घर में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) अनेक प्रकार के व्याप्त शब्दों के सम्बन्धी (सधिषि) उस पदार्थ में कि जिस से अनेक शब्दों को समान यह जीव सुनता है अर्थात् कान के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थित करता हूं (अपाम्) जलों के (सदने) अन्तरिक्षरूप स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों के (सधस्थे) तुल्य स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों के (योनौ) समुद्र में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं। (अपाम्) जलों की (पुरीषे) रेती में त्वा तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्) जलों के (पाथसि) अन्न में (त्वा) तुझ को (साद-

यामि) प्रेरणा करता हूं (गायत्रेण) गायत्री छन्द से निकले (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मन्त्र से विहित (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (जागतेन) जगती छन्द में कहे (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् मन्त्र में कहे (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरणा करता हूं। और (पाङ्क्तेन) पङ्क्ति मंत्र से प्रकाशित हुए (छन्दसा) निर्मल अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरित करता हूं वैसे ही तू वर्त्तमान रह ॥ ५३ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि सब पुरुषों को और सब स्त्रियों को वेद पढ़ा और जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके उन को उन पदार्थों से प्रयोजन साधने में प्रवृत्त करें ॥ ५३ ॥

अयं पुर इत्यस्योशना ऋषिः। प्राणा देवताः। स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को सृष्टि से कौन २ उपकार लेने चाहिये यह वि० ॥

अयं पुरो भुवस्तस्यं प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाछशुरुपाछशोस्त्रिवृत् त्रिवृतों रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिगृहीतया त्वयां प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जैसे (अयम्) यह (पुरो भुवः) प्रथम होने वाला अग्नि है (तस्य) उस का (भौवायनः) सिद्ध कारण से रचा हुआ (भावः) जीवन का हेतु प्राण (प्राणायनः) प्राणों की रचना का हेतु (वसन्तः) सुगन्धि आदि से बसाने द्वारा वसन्त ऋतु (वासन्ती) वसन्त ऋतु का

जिस में व्याख्यान हो वह (गायत्री) गाते हुए का रक्षक गायत्रीमंत्रार्थ ईश्वर (गायत्र्यै) गायत्री मन्त्र का (गायत्रम्) गायत्री छन्द (गायत्रात्) गायत्री से (उपांशुः) समीप से ग्रहण किया जाय (उपांशोः) उस जप से (त्रिवृत्) कर्म उपासना और ज्ञान के सहित वर्त्तमान फल (त्रिवृतः) उस तीन प्रकार के फल से (रथन्तरम्) रमणीय पदार्थों से तारने हारा सुख और (वसिष्ठः) अतिशय करके निवास का हेतु (ऋषिः) सुख प्राप्त कराने हारा विद्वान् (प्रजापतिगृहीतया) अपने सन्तानों के रक्षक पति को ग्रहण करने वाली (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) सन्तानोत्पत्ति के लिये (प्राणम्) बलयुक्त जीवन का ग्रहण करते हैं वैसे तेरे साथ मैं सन्तान होने के लिये बल का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५४ ॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों को उपयोग में ला के परस्पर प्रीति के साथ अति विषयसेवा को छोड़ और सब संसार से बल का ग्रहण करके सन्तानों को उत्पन्न करो ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणेत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।
निचृद्ब्राह्मीधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अब मनुष्यों को ग्रीष्मऋतु में कैसे वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् । स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जैसे (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब कर्मों का निमित्त वायु के समान विद्वान् चलता है (तस्य) उस वायु के योग से (वैश्वकर्मणम्) जिस से सब कर्म सिद्ध होते

है यह (मनः) विचारस्वरूप प्रेरक मन (मानसः) मनकी गर्मी से उत्पन्न के तुल्य (ग्रीष्मः) रसों का नाशक ग्रीष्मऋतु (ग्रैष्मी) ग्रीष्म ऋतु के व्याख्यान वाला (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् छन्द (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द से (स्वारम्) ताप से हुआ तेज (स्वारात्) और तेज से (अन्तर्यामः) मध्यान्ह के प्रहर में विशेष दिन और (अन्तर्यामात्) मध्यान्ह के विशेष दिन से (पञ्चदशः) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी (पञ्चदशात्) उस पूर्णमासी से (बृहत्) बड़ा (भरद्वाजः) अन्न वा विज्ञान् की पुष्टि और धारण का निमित्त (ऋषिः) शब्दज्ञान प्राप्त कराने हारा कान (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति राजा ने ग्रहण की विद्या से न्याय का ग्रहण करता है वैसे मैं (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (मनः) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का ग्रहण विज्ञान का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५५ ॥

भावार्थः—जो पुरुषों को चाहिये कि प्राण का मन और मन का प्राण नियम करने वाला है ऐसा जान के प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से संपूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ॥ ५५ ॥

अयं पश्चादित्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।
निचृद् धृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अथ स्त्रीपुरुष आपस में कैसा आचरण करें यह वि० ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे उत्तम गुण वाली स्त्री जैसे (अयम्) यह सूर्य्य के समान विद्वान् (विश्वव्यचाः) सब संसार को चारों ओर के प्रकाश से व्यापक होकर प्रकट करता (पश्चात्) पश्चिम दिशा में वर्त्तमान (तस्य) उस सूर्य्य का (वैश्वव्यचसम्) प्रकाशक किरण रूप (चक्षुः) नेत्र (चाक्षुष्यः) नेत्र से देखने योग्य (वर्षाः) जिस समय मेघ वर्षते हैं वह वर्षाऋतु (वार्षी) वर्षाऋतु के व्याख्यान वाला (जगती) संसार में प्रसिद्ध जगती छन्द (जगत्याः) जगती छन्द से (ऋक्समम्) ऋचाओं के सेवन का हेतु विज्ञान (ऋक्समात्) उस विज्ञान से (शुक्रः) पराक्रम (शुक्रात्) पराक्रम से (सप्तदशः) सत्रह तत्त्वों का पूरक विज्ञान (सप्तदशात्) उस विज्ञान से (वैरूपम्) अनेक रूपों का हेतु जगत् का ज्ञान और जैसे (जमदग्निः) प्रकाशस्वरूप (ऋषिः) रूप का प्राप्त कराने हारा नेत्र (प्रजापतिगृहीतया) सन्तानरक्षक पति ने ग्रहण की हुई विद्यायुक्त स्त्री के साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (चक्षुः) विद्यारूपी नेत्रों का ग्रहण करता है वैसे मैं तेरे साथ संसार के बल का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५६ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि इस वेद के पढ़ने से सूर्य आदि प्रसिद्ध जगत् को स्वभाव से जान के सब सृष्टि के गुणों के दृष्टान्त से अच्छा देखें और चरित्र ग्रहण करें ॥ ५६ ॥

इदमुत्तरादित्यस्योशना ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अथ शरद् ऋतु में कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभऽऐडमैडान् मन्थी मन्थिनऽएकविꣳशऽएकविꣳशाद्वैराजं विश्वामित्रऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

है यह (मनः) विचारस्वरूप प्रेरक मन (मानसः) मन की शक्ति से उत्पन्न हुए सुन्दर (ग्रीष्मः) रसों का नाशक ग्रीष्मऋतु (ग्रैष्मी) ग्रीष्म ऋतु के व्याख्यान वाला (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् छन्द (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द से (स्वारम्) ताप से हुआ तेज (स्वारात्) और तेज से (अन्तर्यामः) मध्याह्न के प्रहर में विशेष दिन और (अन्तर्यामात्) मध्याह्न के विशेष दिन से (पञ्चदशः) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी (पञ्चदशात्) उस पूर्णमासी से (बृहत्) बड़ा (भरद्वाजः) मन का विज्ञान की पुष्टि और धारण का निमित्त (ऋषिः) शब्दज्ञान प्राप्त कराने हारा कान (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति राजा ने ग्रहण की विद्या से न्याय का ग्रहण करता है वैसे मैं (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (मनः) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का ग्रहण विधान करूं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५५ ॥

भावार्थः—जो पुरुषों को चाहिये कि प्राण का मन और मन का ज्ञान नियम करने वाला है ऐसा जान के प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ॥ ५५ ॥

अयं पश्चादित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।
निचृद् धृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अथ स्त्रीपुरुष आपस में कैसा आचरण करें यह वि० ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे सौभाग्यवती स्त्रि (इदम्) यह (उत्तरात्) सब से उत्तर भाग में (स्वः) सुखों का साधन दिशा रूप है (तस्य) उस के (श्रोत्रम्) सुनने का साधन (श्रौत्रम्) कान (श्रौत्री) कान की सम्बन्धी (शरत्) शरद् ऋतु (शारदी) शरद् ऋतु के व्याख्यान वाला (अनुष्टुप्) सम्बद्ध अर्थ वाला अनुष्टुप्छन्द (अनुष्टुभः) उस से (ऐडम्) वाणी के व्याख्यान से युक्त मन्त्र (ऐडात्) उस मन्त्र से (मन्थी) पदार्थों के मथने का साधन (मन्थिनः) उस साधन से (एकविंशः) इक्कीस विद्याओं का पूर्ण करने हारा सिद्धान्त (एकविंशात्) उस सिद्धान्त से (वैराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक (साम) सामवेद के ज्ञान को प्राप्त हुआ (विश्वामित्रः) सब से मित्रता का हेतु (ऋषिः) शब्द ज्ञान कराने हारा कान और (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई बिजुली आदि के लिये (श्रोत्रम्) सुनने के साधन को ग्रहण करते हैं वैसे (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्रहण की (त्वया) तेरे साथ में प्रसिद्ध हुई बिजुली आदि से (श्रोत्रम्) सुनने के साधन कान को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५७ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़ और विवाह करके बहुश्रुत होवें। और सत्यवक्ता आप्तजनों से सुने बिना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती इसलिये सदैव सज्जनों का उपदेश सुन के सत्य का धारण और मिथ्या को छोड़ देवें ॥ ५७ ॥

इयमुपरीत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।
विराडाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
अथ हेमन्त ऋतु में किस प्रकार वर्त्तें यह वि० ॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयणः । आग्रयणात्त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ

त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्म्मा ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् स्त्री जो (इयम्) यह (उपरि) सब से ऊपर विराजमान (मतिः) बुद्धि है (तस्यै) उस (मत्या) बुद्धि का होना वा कर्म (वाक्) वाणी और (वाच्यः) उस का होना वा कर्म (हेमन्तः) गर्मी का नाशक हेमन्तऋतु (हैमन्ती) हेमन्त ऋतु के व्याख्यान वाला (पङ्क्तिः) पङ्क्ति छन्द (पङ्क्त्यै) उस पङ्क्ति छन्द का (निधनवत्) मृत्यु का प्रशंसित व्याख्यान वाला सामवेद का भाग (निधनवतः) उस से (आग्रयणः) प्राप्ति का साधन ज्ञान का फल (आग्रयणात्) उस से (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) बारह और तेंतीस सामवेद के स्तोत्र (त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याम्) उन स्तोत्रों से (शाक्वररैवते) शक्ति और धन के साधक पदार्थों को जान के (विश्वकर्मा) सब शुभकर्मों के सेवने वाला (ऋषिः) वेदार्थ का वक्ता पुरुष वर्त्तता है वैसे मैं (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्रहण की (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वाचम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५८ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षारूप वाणी को सुन के अपनी बुद्धि बढ़ावें उस बुद्धि से हेमन्त ऋतु में कर्त्तव्य कर्म और सामवेद के स्तोत्रों को जान महात्मा ऋषि लोगों के समान वर्त्ताव कर विद्या और अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी का स्वीकार करके अपने सन्तानों के लिये भी इन वाणियों का उपदेश सदैव किया करें ॥ ५८ ॥

इस अध्याय में ईश्वर स्त्रीपुरुष और व्यवहार का वर्णन करने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जानो ॥

यह १३ तेरहवां अध्याय पूर्ण हुआ ॥

अथ चतुर्दशाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्न आसुव ॥

ध्रुवक्षितिरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ चौदहवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में स्त्रियों के लिये उपदेश किया है ॥

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया । उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो तू (साधुया) श्रेष्ठ धर्म के साथ (उख्यस्य) बटलोई में पकाये अन्न की सम्बन्धी और (प्रथमम्) विस्तारयुक्त (केतुम्) बुद्धि को (जुषाणा) प्रीति से सेवन करती हुई (ध्रुवक्षितिः) निश्चल वास करने और (ध्रुवयोनिः) निश्चल घर में रहने वाली (ध्रुवा) दृढधर्म से युक्त (असि) है सो तू (ध्रुवम्) निश्चल (योनिम्) घर में (आसीद) स्थिर हो (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के चाहने हारे (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) अच्छे प्रकार स्थापित करें ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने हारी स्त्रियों को यो[ग्य]
है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहाश्रम और धर्मशि[क्षा]
देके इन को श्रेष्ठ करें ॥ १ ॥

कुलायिनीत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी
बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर पूर्वोक्त विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद
सदने पृथिव्याः । अभि त्वा रुद्रा वसवो गृण-
न्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय । अश्विनाध्व-
र्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (स्योने) सुख करने हारी स्त्रि जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) प्रथम कोटि के विद्वान् और (रुद्राः) मध्य कक्षा के विद्वान् (इमा) इन (ब्रह्म) विद्या धनों को देने वाले गृहस्थों को (अभि) अभिमुख होकर (गृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (सौभगाय) सुन्दर सम्पत्ति होने के लिये इन विद्या धन को (पीपिहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (घृतवती) बहुत जल और (पुरन्धिः) बहुत सुख धारण करने वाली (कुलायिनी) प्रशंसित कुल की प्राप्ति से युक्त हुई (पृथिव्याः) अपनी भूमि के (सदने) घर में (सीद) स्थिर हो (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ चाहने वाले (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक और सदुपदेशक पुरुष (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थापित करें ॥ २ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य्य युक्त विद्या और धन ऐश्वर्य्य का सुख भोगने के लिये अपने सदृश पतियों से विवाह कर के विद्या और सुवर्ण आदि धन को पाके सब ऋतुओं में सुख देने वाले

में निवास करें तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्
ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय को ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानांꣳसुम्ने बृहते रणाय । पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि तू जैसे (स्वैः) अपने (दक्षैः) बलों और भृत्यों के साथ वर्त्तता हुआ (देवानाम्) धर्मात्मा विद्वानों के मध्य में वर्त्तमान (बृहते) बड़े (रणाय) संग्राम के लिये (सुम्ने) सुख के विषय (दक्षपिता) बलों वा चतुर भृत्यों का पालन करने हारा हो के विजय से बढ़ता है वैसे (इह) इस लोक के मध्य में (एधि) बढ़ती रह (सुम्ने) सुख में (आसीद) स्थिर हो और (पितेव) जैसे पिता (सूनवे) अपने पुत्र के लिये सुन्दर सुख देता है वैसे (सुशेवा) सुन्दर सुख से युक्त (स्वावेशा) अच्छी प्रीति से सुन्दर शुद्ध शरीर वस्त्र अलङ्कार को धारण करती हुई अपने पति के साथ प्रवेश करने हारी हो के (तन्वा) शरीर के साथ प्रवेश कर और (अध्वर्यू) गृहाश्रमादि यज्ञ की अपने लिये इच्छा करने वाले (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे जन (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थित करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०-स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी अपने पतियों के साथ स्थित रहें अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करें और नित्य ही वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीरों को संयुक्त करके वर्त्तें । विद्वान् लोग भी इन को सदा उपदेश करें और स्त्री भी इन विद्वानों के लिये सदा उपदेश करें ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते ।
स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो (स्तोमपृष्ठा) स्तुतियों के जानने की इच्छा युक्त तू (इह) इस गृहाश्रम में (पृथिव्याः) पृथिवी की (पुरीषम्) रक्षा (अप्सः) सुन्दररूप और (नाम) नाम और (घृतवती) बहुत घी आदि प्रशंसित पदार्थों से युक्त (असि) है (ताम्) उस (त्वा) तुझ को (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) सत्कार करें (इह) इसी गृहाश्रम में (सीद) वर्त्तमान रह और जिस (त्वा) तुझ को (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रमादि यज्ञ चाहने वाले (अश्विना) अध्यापक बुद्धि पढ़ाने और उपदेश करने हारे (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थित करें सो तू (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) प्रशंसित सन्तान होने का साधन (द्रविणा) धन (यजस्व) दे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो स्त्री गृहाश्रम की विद्या और क्रिया कौशल में विद्वान् हों वे ही सब प्राणियों को सुख दे सकती हैं ॥ ५ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड्
ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर भी पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् । ऊर्मि-

द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विना-
ध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो (ते) तेरा (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों से युक्त (ऋषिः) विज्ञान दाता पति मैं (अन्तरिक्षस्य) अन्तःकरण के नाशरहित विज्ञान को (धर्त्रीम्) धारण करने (दिशाम्) पूर्वादि दिशाओं की (विष्टम्भनीम्) आधार और (भुवनानाम्) सन्तानोत्पत्ति के निमित्त घरों की (अधिपत्नीम्) अधिष्ठाता होने से पालन करने वाली (त्वा) तुझ को सूर्य्य की किरण के समान (अदित्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) पीठपर (सादयामि) घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूं जो तू (अपाम्) जलों की (ऊर्मिः) तरङ्ग के सदृश (द्रप्सः) आनन्दयुक्त (असि) है उस (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) रक्षा के निमित्त यज्ञ को करने वाले (अश्विना) विद्या में व्याप्त बुद्धि अध्यापक और उपदेशक पुरुष (सादयताम्) स्थापित करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो स्त्री अविनाशी सुख देनेहारी सब दिशाओं में प्रसिद्ध कीर्त्ति वाली विद्वान् पतियों से युक्त सदा आनंदित हैं वेही गृहाश्रम का धर्म पालने और उस की उन्नति के लिये समर्थ होती हैं तेरहवें अध्याय में जो (मधुश्च) कहा है वहां से यहांतक वसंत ऋतु के गुणों की प्रधानता से व्याख्यान किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

शुक्रश्चेत्यस्योशना ऋषिः । ग्रीष्मर्त्तुर्देवता । निचृदुत्कृति-
श्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तः श्ले-
षोऽसि कल्पेताम् द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप
ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय

सव्रंताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावांपृथिवी इमे ग्रैष्मांवृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तयां देवतंयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सींदतम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो जैसे (मम) मेरे (ज्येष्ठ्याय) प्रशंसा के योग्य होने के लिये जो (शुक्रः) शीघ्र धूली की वर्षा और तीव्र ताप से आकाश को मलीन करने हारा ज्येष्ठ (च) और (शुचिः) पवित्रता का हेतु आषाढ (च) ये दोनों मिल के ग्रीष्म (ग्रैष्मौ) ग्रीष्म (ऋतू) ऋतु कहाते हैं जिन (अग्नेः) अग्नि के (अन्तःश्लेषः) मध्य में कफ के रोग का निवारण (असि) होता है जिन से ग्रीष्म ऋतु के महीनों से (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष (कल्पेताम्) समर्थ होवें (आपः) जल (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ओषधयः) यव वा सोमलता आदि ओषधियां और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि (पृथक्) अलग २ (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें जैसे (समनसः) विचारशील (सव्रताः) सत्याचरणरूप नियमों से युक्त (अग्नयः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी जो (अन्तरा) (ग्रैष्मौ) (ऋतू) (अभिकल्पमानाः) सन्मुख होकर समर्थ करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) बिजुली के समान इन अग्नियों की विद्या में (अभिसंविशन्तु) सब ओर से अच्छे प्रकार प्रवेश करें वैसे (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ तुम दोनों (इमे) इन (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी को (ध्रुवे) निश्चल स्वरूप से हम जानें (अङ्गिरस्वत्) अवयवों के धारणरूप रस के समान (सीदतम्) विशेष करके ज्ञान कर प्रसन्न रहो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०-वाचकलुप्तो० [illegible] ग्रीष्म ऋतु की व्याख्या करते हैं। हे मनुष्यो तुम लोग जो पृथिवी आदि पंच भूतों के शरीर सम्बन्धी वा बाहर अग्नि हैं कि जिन के बिना ग्रीष्म

प्राप्त नहीं हो सकता उन को प्राण और सुषुम्णा में छा के सब प्राणि को सुख दिया करो ॥ ६ ॥

सजूर्ऋतुभिरित्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः । सजूर्ऋतुभिरित्यस्य भुरिक्कृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ सजूर्ऋतुभिरिति द्वितीयस्य स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरश्च ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा । सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥७॥

पदार्थः-हे स्त्रि वा पुरुष जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस जगत् में (अध्वर्यू) रक्षा करने हारे (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुष और स्त्री (वैश्वानराय) सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त (अग्नये) अग्निविद्या के लिये (सादयताम्) नियुक्त करें और हम लोग भी जिस (त्वा) तुझ को स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) वसन्त और वर्षा आदि ऋतुओं के साथ (सजूः) एकसी तृप्ति वा सेवा से युक्त (विधाभिः) जलों के साथ (सजूः) प्रीतियुक्त (देवैः) अच्छे गुणों के साथ (सजूः) प्रीति वाली वा प्रीति वाला और (वयोनाधैः) जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्दों के साथ सम्बन्ध के हेतु (देवैः) दिव्य सुख देने हारे प्राणों के साथ (सजूः) समान सेवन से युक्त हो । हे पुरुषार्थ युक्त स्त्री वा पुरुष जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (वैश्वानराय सब जगत् के नायक (अग्नये) विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति के लिये (अध्वर्यू) रक्षक (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) स्थापित करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग नियत करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) पुरुषार्थी (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के हेतु प्राणों की चेष्टाओं के साथ (सजूः) समान सेवन वाले (वसुभिः) अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ (सजूः) प्रीति युक्त और (वयोनाधैः) विज्ञान का सम्बन्ध करने हारे (देवैः) सुन्दर विद्वानों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले हों । हे विद्या पढ़ने के लिये प्रवृत्त हुए ब्रह्मचारिणी वा ब्रह्मचारी जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस ब्रह्मचर्याश्रम में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के सुख के साधन (अग्नये) शास्त्रों के विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) पालने हारे (अश्विना) पूर्ण विद्या युक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (सादयताम्) नियुक्त करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) अनुकूल सेवन वाले (विधाभिः विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के निमित्त प्राण की चेष्टाओं से (सजूः) समान प्रीति वाले (रुद्रैः) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवा-

तथा इन ग्यारहों के (सजूः) अनुसार सेवा करने हारे और (वयोनाधैः) वेदादि शास्त्रों के जनाने का प्रबन्ध करने हारे (देवैः) विद्वानों के साथ (सजूः बराबर प्रीति वाले हों हे पूर्ण विद्या वाले स्त्री वा पुरुष जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस संसार में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के लिये पूर्ण सुख के साथ (अग्नये) पूर्ण विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) रक्षक (अश्विना) शीघ्र ज्ञानदाता लोग (सादयताम्) नियत करें और जिस (त्वा) तुझको हम नियुक्त करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) अनुकूल आचरण वाले (विधाभिः) विविध प्रकार की सत्यक्रियाओं के साथ (सजूः) समानप्रीति वाले (आदित्यैः) वर्ष के बारह महीनों के साथ (सजूः) अनुकूल आहार विहार युक्त और (वयोनाधैः) पूर्ण विद्या के विज्ञान और प्रचार के सम्बन्ध करने हारे (देवैः) पूर्ण विद्या युक्त विद्वानों के (सजूः) अनुकूल प्रीति वाले हों । हे सत्य अर्थों का उपदेश करने हारी स्त्री वा पुरुष जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस जगत् में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नये) अच्छी शिक्षा के प्रकाश के लिये (अध्वर्यू) ब्रह्मविद्या के रक्षक (अश्विना) शीघ्र पढ़ाने और उपदेश करने हारे लोग (सादयताम्) स्थित करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग नियत करें सो तू (ऋतुभिः) काल क्षण आदि सब अवयवों के साथ (सजूः) अनुकूल सेवी (विधाभिः सुखों में व्यापक सब क्रियाओं के साथ (सजूः) अनुसार होकर (विश्वैः) सब (देवैः) सत्योपदेशक पतियों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले और (वयोनाधैः) कामयमान जीवन का सम्बन्ध कराने हारे (देवैः) परोपकार के लिये सत्य असत्य के जनाने वाले जनों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले हों ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य का जन्म पा के स्त्री तथा पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मचर्य सेवन विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ गुण कर्मों में आप प्रवृत्त हो कर जिन अन्य लोगों को प्रवृत्त करें वे उन में प्रवृत्त हो कर परमेश्वर से ले कर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण करके सब ऋतुओं में आप सुखी रहें और अन्यों को सुखी करें ॥ ७ ॥

प्राणम्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। दम्पती देवते।
निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म्म उर्व्या वि भाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात्पाहि दिवो वृष्टिमेरय॥ ८॥

पदार्थः—हे पते वा स्त्रि तू (उर्व्या) बहुत प्रकार की उत्तम क्रिया से (मे) मेरे (प्राणम्) नाभि से ऊपर को चलने वाले प्राणवायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) नाभि के नीचे गुह्येन्द्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (व्यानम्) विविध प्रकार की शरीर की संधियों में रहने वाले व्यान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (विभाहि) प्रकाशित कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (श्लोकय) शास्त्रों के श्रवण से संयुक्त कर (अपः) प्राणों को (पिन्व) पुष्ट कर (ओषधीः) सोमलता वा यव आदि ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (द्विपात्) मनुष्यादि दो पगवाले प्राणियों की (अव) रक्षा कर (चतुष्पात्) चार पग वाले गौ आदि की (पाहि) रक्षा कर और जैसे सूर्य (दिवः) अपने प्रकाश से (वृष्टिम्) वर्षा करता है वैसे घर के कार्यों को (एरय) अच्छे प्रकार प्राप्त कर॥ ८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—स्त्री पुरुष को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण शास्त्रों का सुनना ओषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें॥ ८॥

मूर्धा वय इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। प्रजापत्यादयो देवताः।
पूर्वस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिः। पुरुष इत्युत्तरस्य ब्राह्मी पङ्क्ति-
श्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयो नाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्द उक्षा वयः ककुप् छन्द ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥९॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष (मूर्धा) शिर के तुल्य उत्तम ब्राह्मण का कुल (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक राजा के समान तू (वयः) कामना के योग्य (मयन्दम्) सुखदायक (छन्दः) बलयुक्त (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल को प्रेरणा कर (विष्टम्भः) वैश्यों की रक्षा का हेतु (अधिपतिः) अधिष्ठाता पुरुष नृप के समान तू (वयः) न्याय विनय को प्राप्त हुए (छन्दः) स्वाधीन पुरुष को प्रेरणा कर (विश्वकर्मा) सब उत्तम कर्म करने हारे (परमेष्ठी) सब के स्वामी राजा के समान तू (वयः) चाहने योग्य (छन्दः) स्वतन्त्रता को (एधि) बढ़ाइये (वस्तः) व्यवहारों से युक्त पुरुष के समान तू (वयः) अनेक प्रकार के व्यवहारों में व्यापी (विबलम्) विविध बल के हेतु (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (वृष्णिः) सुख के सेचने वाले के सदृश तू (विशालम्) विस्तार युक्त (वयः) सुखदायक (छन्दः) स्वतन्त्रता को बढ़ा (पुरुषः) पुरुषार्थ युक्त जन के तुल्य तू (वयः) चाहने योग्य (तन्द्रम्) कुटुम्ब के धारण रूप कर्म और (छन्दः) बल को बढ़ा (व्याघ्रः) जो विविध प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार सूंघता है उस जन्तु के तुल्य राजा तू (वयः) चाहने योग्य (अनाधृष्टम्) दृढ़ (छन्दः) बल को बढ़ा (सिंहः) पशु आदि को मारने हारे सिंह के समान

पराक्रमी राजा तू (वयः) पराक्रम के साथ (छदिः) निरोध और (छन्दः) प्रकाश को बढ़ा (पष्ठवाट्) पीठ से बोझ उठाने वाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य तू (बृहती) बड़े (वयः) बलयुक्त (छन्दः) पराक्रम को प्रेरणा कर (उक्षा) सींचने हारे बैल के तुल्य शूद्र तू (वयः) अति बल का हेतु (ककुप्) दिशाओं और (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (ऋषभः) शीघ्रगंता पशु के तुल्य भृत्य तू (वय.) बल के साथ (सतोबृहती) उत्तम बड़ी (छन्दः) स्वतन्त्रता की प्रेरणा कर ॥ ९ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलु०-और पूर्व मन्त्र से उप पद की अनुवृत्ति आती है स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्राह्मण आदि वर्णों को स्वतन्त्र वेदादि शास्त्रों का प्रचार आलस्यादि त्याग और शत्रुओं का निवारण करके बड़े बल को सदा बढ़ाया करे ॥ ९ ॥

अनड्वानित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराड्-
ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः पंचाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयं उष्णिक्छन्दस्तुर्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष (अनड्वान्) गौ और बैल के समान बलवान् हो के तू (पङ्क्तिः) प्रकट (छन्दः) स्वतंत्र (वयः) बल की प्रेरणा कर (धेनुः) दूध देने हारी गौ के समान तू (जगती) जगत् के उपकारक (छन्दः) आनन्द की वयः कामना को बढ़ा (त्र्यविः) तीन भेड़ बकरी और गौ के अध्यक्ष के तुल्य वृद्धि युक्त हो के तू (त्रिष्टुप्) कर्म उपासना

और ज्ञान की स्तुति के हेतु (छन्दः) स्वतंत्र (वयः) उत्पत्ति को बढ़ा (दित्यवाट्) पृथिवी खोदने से उत्पन्न हुए जौ आदि को प्राप्त कराने हारी क्रिया के तुल्य तू (विराट्) विविध प्रकाश युक्त (छन्दः) आनन्दकारक (वयः) प्राप्ति को बढ़ा (पंचाविः) पंच इन्द्रियों की रक्षा के हेतु ओषधि के समान तू (गायत्री) गायत्री (छन्दः) मंत्र के (वयः) विज्ञान को बढ़ा (त्रिवत्सः) कर्म उपासना और ज्ञान को चाहने हारे के तुल्य तू (उष्णिक्) दुःखों के नाशक (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) पराक्रम को बढ़ा और (तुर्यवाट्) चारों वेदों की प्राप्ति कराने हारे पुरुष के समान तू (अनुष्टुप्) अनुकूल स्तुति का निमित्त (छन्दः) सुखसाधक (वयः) इच्छा को प्रतिदिन बढ़ाया कर ॥ १० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलु०—जैसे खेती करने हारे लोग बैल आदि साधनों की रक्षा से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके सब को सुख देते हैं वैसे ही विद्वान् लोग विद्या का प्रचार करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते ।
भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च वि बाधसे ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्य के समान वर्त्तमान स्त्रीपुरुषो (युवम्) तुम दोनों (अव्यथमानाम्) जमी हुई बुद्धि को प्राप्त हो के (इष्टकाम्) ईंट के समान गृहाश्रम को (दृंहतम्) दृढ़ करो जैसे (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पृष्ठेन) पीठ से आकाश को बाधते हैं वैसे तुम दुःख और शत्रुओं की बाधा करो हे पुरुष जैसे तू इस अपनी स्त्री की पीड़ा को (विबाधसे) विशेष करके हटाता है वैसे यह स्त्री भी तेरी सकल पीड़ा को हरा करे ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलु०-जैसे बिजुली और सू-र्य्य जल वर्षा के ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं वैसे ही स्त्री पुरुष कुटुम्ब को बढ़ावें जैसे प्रकाश और पृथिवी आकाश का आवरण करते हैं वैसे ही गृहाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करें ॥ ११ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वकर्मर्षिः । वायुर्देवता । विकृति-श्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः । विश्वस्मै प्राणायाऽपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय वायुष्ट्वाऽभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि (विश्वकर्मा) सम्पूर्ण शुभ कर्म करने में कुशल पति जिस (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विज्ञान वा सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) उत्तम विस्तृत विद्या वाली (अन्तरिक्षस्य) प्रकाश के (पृष्ठे) एक भाग में (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान (व्यानाय) व्यान और (उदानाय) उदानरूप शरीर के वायु तथा (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा (चरित्राय) और शुभ कर्मों के आचरण के लिये (अन्तरिक्षम्) जलादि को (यच्छ) दिया कर (अन्तरिक्षम्) प्रशंसित शुद्ध किये जल से युक्त अन्न और धनादि को (दृंह) बढ़ा और (अन्तरिक्षम्) मधुरता आदि गुण युक्त रोग नाशक आकाशस्थ सब पदार्थों को (माहिंसीः) मत नष्ट कर जिस (त्वा) तुझ को (वायुः) प्राण के तुल्य प्रिय पति (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुख रूप क्रिया (छर्दिषा) प्रकाश और (शन्तमेन) अति सुखदायक विज्ञान से तुझ को (अ

भिपातु) सब ओर से रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिव्य सुख देने वाली क्रिया के साथ वर्त्तमान पति रूप देवता के साथ (अंगिरस्वत्) व्यापक वायु के समान (ध्रुवा) निश्चल ज्ञान से युक्त (सीद) स्थिर हो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलु०—जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे जिस से निरन्तर आनन्द बढ़े ॥ १२ ॥

राज्ञ्यसीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । दिशो देवताः ।
विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

पदार्थः-हे स्त्रि जो तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्य (राज्ञी) प्रकाशमान (असि) है (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त (असि) है (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के सदृश (सम्राट्) चक्रवर्ती राजा के सदृश अच्छे गुण युक्त पृथिवी पर प्रकाशमान (असि) है (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा के तुल्य (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (असि) (बृहती) बड़ी (दिक्) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य (अधिपत्नी) घर में अधिकार को प्राप्त हुई (असि) है सो तू सब पति आदि को तृप्त कर ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे दिशा सब ओर से अभिव्याप्त बोध कराने हारी चंचलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुभगुण कर्म और स्वभावों से युक्त होवे ॥ १३ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वायुर्देवता । स्वराट्
ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर भी उक्तविषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

पदार्थः-हे स्त्रि जिस (ज्योतिष्मतीम्) बहुत विज्ञान वाली (त्वा) तुझ को (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान की पुष्टि के लिये (अन्तरिक्षस्य) जल के (पृष्ठे) ऊपरले भाग में (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों का चाहने हारा पति (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर जो (वायुः) प्राण के समान प्रिय (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) देवस्वरूप पति के साथ (ध्रुवा) दृढ़ (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के समान (सीद) स्थिर हो ॥ १४ ॥

भावार्थः-स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम के साथ आप विद्वान् हो के शरीर आत्मा का बल बढ़ाने के लिये अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान देवे। यहांतक ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ १४ ॥

नभश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋतवो देवताः। स्वराडुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब वर्षा ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव दे-

भिपातु) सब ओर से रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिव्य सुख देने वाली क्रिया के साथ वर्त्तमान पति रूप देवता के साथ (अंगिरस्वत्) व्यापक वायु के समान (ध्रुवा) निश्चल ज्ञान से युक्त (सीद) स्थिर हो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलु०—जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे जिस से निरन्तर आनन्द बढ़े ॥ १२ ॥

राज्ञ्यसीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । दिशो देवताः ।
विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

पदार्थः-हे स्त्रि जो तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्य (राज्ञी) प्रकाशमान (असि) है (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त (असि) है (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के सदृश (सम्राट्) चक्रवर्त्ती राजा के सदृश अच्छे गुण युक्त पृथिवी पर प्रकाशमान (असि) है (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा के तुल्य (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (असि) (बृहती) बड़ी (दिक्) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य (अधिपत्नी) घर में अधिकार को प्राप्त हुई (असि) है सो तू सब पति आदि को तृप्त कर ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे दिशा सब ओर से अभिव्याप्त बोध कराने हारी चंचलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुभगुण कर्म और स्वभावों से युक्त होवे ॥ १३ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वायुर्देवता । स्वराड्
ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर भी वही विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्यो-
तिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्याना-
य विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टेऽधिपतिस्तया
देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीद॥ १४॥

पदार्थः-हे स्त्रि जिस (ज्योतिष्मतीम्) बहुत विज्ञान वाली (त्वा) तुझ को (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान की पुष्टि के लिये (अन्तरिक्षस्य) जल के (पृष्ठे) ऊपरले भाग में (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों का चाहने हारा पति (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर जो (वायु) प्राण के समान प्रिय (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) देवस्वरूप पति के साथ (ध्रुवा) दृढ़ (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (सीद) स्थिर हो॥ १४॥

भावार्थः-स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम के साथ आप विद्वान् हो के शरीर आत्मा का बल बढ़ाने के लिये अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान देवे। यहांतक ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ॥ १४॥

नभश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋतवो देवताः। स्वरा-
डुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब वर्षा ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः
श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ
ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय
सव्रताः। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथि-
वी इमे वार्षिकावृतू अभिकल्पमानाइन्द्रमिवदे-

वा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवे सीदतम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों जो (नभः) प्रबंधित मेघोंवाला श्रावण (च) और (नभस्यः) वर्षा का मध्य भागी भाद्रपद (च) ये दोनों (वार्षिकौ) वर्षा ऋतु के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित होने के लिये हैं जिन में (अग्नेः) उष्णता (अन्तःश्लेषः) जिन के मध्य में शीत का स्पर्श (असि) होता है जिन के साथ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि समर्थ होते हैं उन के योग में तुम दोनों (कल्पेताम्) समर्थ हो जैसे ऋतु योग से (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधी वा (अग्नयः) अग्नि (पृथक्) जल से अलग समर्थ होते हैं वैसे (सव्रताः) एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम (समनसः) एक प्रकार का ज्ञान देने हारे (अग्नयः) तेजस्वी लोग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (इमे) (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि वर्षा ऋतु के गुणों में समर्थ होते हैं उन को (वार्षिकौ) (ऋतू) वर्षाऋतुरूप (अभिकल्पमानाः) सब ओर से सुख के लिये समर्थ करते हुए विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) बिजुली के समान प्रकाश और बल को (तया) उस (देवतया) दिव्य वर्षा ऋतु के साथ (अभिसंविशन्तु) सम्मुख हो कर अच्छे प्रकार स्थित होवें (अन्तरा) उन दोनों महीनों में प्रवेश करके (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान परस्पर प्रेम युक्त (ध्रुवे) निश्चल (सीदतम्) रहो ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान वर्षा ऋतु में वह सामग्री ग्रहण करें जिस से सब सुख होवें ॥ १५ ॥

इषश्चेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । ऋतवो देवताः ।
भुरिगुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अथ शरद् ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में किया है ॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे शारदावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवे सीदतम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इषः) चाहने योग्य क्वार महीना (च) और (ऊर्जः) सब पदार्थों के बलवान् होने का हेतु कार्त्तिक (च) ये दोनों (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित हुए होने के लिये होते हैं जिन के (अन्तःश्लेषः) मध्य में किञ्चित् शीतस्पर्श (असि) होता है वे (द्यावापृथिवी) अवकाश और पृथिवी को (कल्पेताम्) समर्थ करें (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (अग्नयः) सब कार्यों के सिद्ध करने हारे (अग्नयः) शरीर के अग्नि (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ये) जो (अन्तरा) बीच में (समनसः) मन के सम्बन्धी (अग्नयः) बाहर के भी अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि को (कल्पेताम्) समर्थ करें (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के दोनों महीनों में (इन्द्रमिव) परमैश्वर्य के तुल्य (अभिकल्पमानाः) सब ओर से आनन्द की इच्छा करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) प्रवेश करें (तया) उस (देवतया) दिव्य शरद्ऋतु रूप देवता के नियम के साथ (ध्रुवे) निश्चल सुख वाले (सीदतम्) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोगों को (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित हुए होने के लिये भी होने योग्य हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं उन का यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो ॥ १६ ॥

आयुर्मइत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिगति जगती छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे स्त्री वा पुरुष तू शरद् ऋतु में (मे) मेरी (आयुः) अवस्था की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (व्यानम्) व्यान की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (पिन्व) अच्छी शिक्षा से युक्त कर (मे) मेरे (मनः) मन को (जिन्व) तृप्त कर (मे) मेरे (आत्मानम्) चेतन आत्मा की (पाहि) रक्षा कर और (मे) मेरे लिये (ज्योतिः) विज्ञान का (यच्छ) दान कर ॥ १७ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री की जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें ॥ १७ ॥

माच्छ इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिगति जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये इस वि० ॥

माच्छन्दः प्रमाच्छन्दः प्रतिमाच्छन्दो अ-

स्रीवयश्छन्दः पंक्तिश्छन्दः उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप्छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप्छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (मा) परिमाण का हेतु (छन्दः) आनन्द कारक (प्रमा) प्रमाण का हेतु बुद्धि (छन्दः) बल (प्रतिमा) जिस से प्रतीति निश्चय की क्रिया हेतु (छन्दः) स्वतन्त्रता (अस्रीवयः) बल और कान्ति कारक अन्नादि पदार्थ (छन्दः) बलकारी विज्ञान (पङ्क्तिः) पांच अवयवों से युक्त योग (छन्दः) प्रकाश (उष्णिक्) स्नेह (छन्दः) प्रकाश (बृहती) बड़ी प्रकृति (छन्दः) आश्रय (अनुष्टुप्) सुखों का आलम्बन (छन्दः) भोग (विराट्) विविध प्रकार की विद्याओं का प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (गायत्री) गाने वाले का रक्षक ईश्वर (छन्दः) उस का बोध (त्रिष्टुप्) तीन सुखों का आश्रय (छन्दः) आनन्द और (जगती) जिस में सब जगत् चलता है उस (छन्दः) पराक्रम को ग्रहण कर और जान के सब को सुख युक्त करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य निश्चय के हेतु आनन्द आदि से साध्य धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते हैं वे सुखों से शोभायमान होते हैं ॥ १८ ॥

पृथिवी छन्द इत्यस्य विश्वदेवर्षिः । पृथिव्यादयो देवताः ।
आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणिच्छन्दो वाक्छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यञ्छन्दो गौश्छन्दोऽजाछन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो तुम लोग जैसे (पृथिवी) भूमि (छन्दः) स्वतन्त्र (अन्तरिक्षम्) आकाश (छन्दः) आनन्द (द्यौः) प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (समाः) वर्ष (छन्दः) बुद्धि (नक्षत्राणि) सारे लोक (छन्दः) स्वतन्त्र (वाक्) वाणी (छन्दः) सत्य (मनः) मन (छन्दः) निष्कपट (कृषिः) खेती (छन्दः) सम्पत्ति (हिरण्यम्) सुवर्ण (छन्दः) सुखदायी (गौः) गौ (छन्दः) आनन्द हेतु (अजा) बकरी (छन्दः) सुख का हेतु और (अश्वः) घोड़े आदि (छन्दः) स्वाधीन हैं वैसे विद्या विनय और धर्म के आचरण विषय में स्वाधीनता से वर्त्तो ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि शुद्ध विद्या क्रिया और स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य बढ़ावें ॥ १९ ॥

अग्निर्देवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।
भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो तुम लोगों को योग्य है कि (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (देवता) दिव्य गुण वाला (वातः) पवन (देवता) शुद्धगुणयुक्त (सूर्यः) सूर्य (देवता) अच्छे गुणों वाला (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (देवता) शुद्ध गुणयुक्त (वसवः) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (देवता) दिव्यगुण वाले (रुद्राः) प्राण आदि ११ ग्यारह वा मध्यम कक्षा विद्वान् (देवता) शुद्ध गुणों वाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम

हे विद्वान् लोग (देवता) शुद्ध (मरुतः) मनन कर्त्ता विद्वान् ऋत्विज् (देवता) दिव्य गुण वाले (विश्वे) सब (देवता) अच्छे गुणों वाले सब मनुष्य वा दिव्य पदार्थ (देवता) देव संज्ञा वाले हैं (बृहस्पतिः) धन वा ब्रह्माण्ड का रक्षक परमात्मा (देवता) (इन्द्रः) बिजुली धन (देवताः) दिव्य गुण युक्त और (वरुणः) जल वा श्रेष्ठ वाला पदार्थ (देवता) अच्छे गुणों वाला है इन को तुम निश्चय ॥ २० ॥

भावार्थः—इस संसार में जो अच्छे गुणों वाले पदार्थ हैं वे दिव्य गुण और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं और जो देवों का देव होने से महादेव सब का धारक रचक रक्षक सब की व्यवस्था और प्र- लय करने हारा सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है उस के अधिष्ठान उपासना को सब मनुष्य जानें ॥ २० ॥

मूर्द्धासीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृ- दनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् स्त्री कैसी हो इस वि० ॥

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी। आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे स्त्री जो तू सूर्य के तुल्य (मूर्द्धा) उत्तम (असि) है (राट्) प्रकाशमान विद्युत् के समान (ध्रुवा) निश्चल शुद्ध (असि) है (धरुणा) पुष्टि करने हारी (धर्त्री) आधार रूप पृथिवी के तुल्य (ध- रणी) धारण करने हारी (असि) है उस (त्वा) तुझे (आयुषे) जीवन के लिये उस (त्वा) तुझे (वर्चसे) अन्न के लिये उस (त्वा) तुझे (कृष्यै) खेती होने के लिये और उस (त्वा) तुझ को (क्षेमाय) रक्षा होने के लिये मैं सब ओर से ग्रहण करता हूं ॥ २१ ॥

भावार्थः—जैसे स्थित उत्तमांग शिर से सब का जीवन राज्य में रहते खेतों से अन्न आदि पदार्थ और निवास में रक्षा होती है सो यह सब का आधार भूमि माता के तुल्य मान्य करने हारी पृथिवी है वैसे ही विद्वान् स्त्री को होना चाहिये ॥ २१ ॥

यन्त्रीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर स्त्री कैसी होवे इस वि० ॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरि-
त्री । इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो तू (यन्त्री) यन्त्र के तुल्य स्थित (राट्) प्रकाशयुक्त (यन्त्री) यन्त्र का निमित्त पृथिवी के समान (असि) है (यमनी) आकर्षण शक्ति से नियम करने हारी (ध्रुवा) आकाश सदृश दृढ़ निश्चल (धर्त्री) सब शुभगुणों का धारण करने वाली (असि) है (त्वा) तुझ को (इषे) इच्छा सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को (ऊर्जे) पराक्रम की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को (रय्यै) लक्ष्मी के लिये और (त्वा) तुझ को (पोषाय) पुष्टि होने के लिये मैं ग्रहण करता हूं ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमा युक्त आकाश के समान निश्चल और यन्त्र कला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है वह कुल का प्रकाश करने वाली है ॥ २२ ॥

आशुस्त्रिवृदित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । गर्भा इत्युत्तरस्य भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ संवत्सर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र० ॥

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्त-

दशो धरुणं एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः संविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः । गर्भाः पञ्चविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो बृध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम लोग इस वर्त्तमान संसार में (आशुः) शीघ्र (त्रिवृत) शीत और उष्ण के बीच वर्त्तमान (भान्तः) प्रकाश (पञ्चदशः) पन्द्रह प्रकार का (व्योमा) आकाश के समान विस्तार युक्त (सप्तदशः) सत्रह प्रकार का (धरुण) धारण गुण (एकविंशः) इक्कीस प्रकार का (प्रतूर्त्तिः) शीघ्र गति वाला (अष्टादशः) अठारह प्रकार का (तपः) सन्तापी गुण (नवदशः) उन्नीस प्रकार का (अभीवर्त्तः) सन्मुख वर्त्तने वाला गुण (सविंशः) इक्कीस प्रकार की (वर्चः) दीप्ति (द्वाविंशः) बाईस प्रकार का (सम्भरणः) अच्छे प्रकार धारण कारक गुण (त्रयोविंशः) तेईस प्रकार का (योनि) संयोग वियोगकारी गुण (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार की (गर्भाः) गर्भ धारण की शक्ति (पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार का (ओजः) पराक्रम (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (क्रतुः) कर्म वा बुद्धि (एकत्रिंशः) इकत्तीस प्रकार की (प्रतिष्ठा) सबकी स्थिति का निमित्त क्रिया (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीस प्रकार की (ब्रध्नस्य) बड़े ईश्वर की (विष्टपम्) व्याप्ति (चतुस्त्रिंशः) चौंतीस प्रकार का (नाकः) आनन्द (षट्त्रिंशः) छत्तीस प्रकार का (विवर्त्तः) विविध प्रकार से वर्त्तने का आधार (अष्टाचत्वारिंशः) अड़तालीस प्रकार का (धर्त्रम्) धारण और (चतुष्टोमः) चार स्तुतियों का आधार है उन को यथावत् जानो ॥ २३ ॥

भावार्थ—जिस संवत्सर के सम्बन्धी भूत भविष्यत् और वर्त्तमान काल आदि अवयव हैं उस के सम्बन्ध से ही ये सब संसार के व्यवहार होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥ २३ ॥

अग्नेर्भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । मेधाविनो देवताः ।

भुरिग्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ मनुष्य किस प्रकार विद्या पढ़ के कैसा आचरण करें यह वि० ॥

अग्नेर्भागोसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः । इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रꣳस्पृतं पञ्चदश स्तोमः । नृचक्षसां भागोसि धातुराधिपत्यं जनित्रꣳ स्पृतꣳ सप्तदश स्तोमः । मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वातं स्पृत एकविꣳश स्तोमः ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जो तू (अग्नेः) सूर्य्य का (भागः) विभाग के योग्य संवत्सर के तुल्य (असि) है सो तू (दीक्षायाः) ब्रह्मचर्य्य आदि की दीक्षा का (स्पृतम्) प्रीति से सेवन किये हुए (आधिपत्यम्) (ब्रह्म) ब्राह्मण कुल के अधिकार को प्राप्त हो और (त्रिवृत्) शरीर वाणी और मन के साधनों से शुद्ध वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुति के योग्य (इन्द्रस्य) बिजुली वा उत्तम ऐश्वर्य्य के (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (स्पृतम्) प्रीति से सेवने योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म के अनुकूल राजकुल के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो और तू (पञ्चदशः) पन्द्रह का पूरक (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता (नृचक्षसाम्) मनुष्यों में कहने योग्य पदार्थों के (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है

सो तूं (धातुः) धारण कर्त्ता के (स्पृतम्) ईप्सित (जनित्रम्) जन्म और (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तूं (सप्तदशः) सत्तरह संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के योग्य (मित्रस्य) प्राण का (भागः) विभाग के समान (असि) है सो तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ जलों के (आधिपत्यम्) स्वामीपन को प्राप्त हो जो तू (वातः स्पृतः) सेवित पवन और (एकविंशः) इक्कीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के साधन के समान (असि) है सो तू (दिवः) प्रकाशरूप सूर्य्य से (वृष्टिः) वर्षा होने का हवन आदि उपाय कर ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष बाल्यावस्था से लेकर सज्जनों ने उपदेश की हुई विद्याओं के ग्रहण के लिये प्रयत्न कर के अधिकारी होते हैं वे स्तुति के योग्य कर्मों को कर और उत्तम हो के विधान के सहित काल को जान के दूसरों को जनावें ॥ २४ ॥

वसूनां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । वस्वादयो लिंगोक्ता देवताः । स्वराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं चतुर्विंशस्तोमः । आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृतः पञ्चविंशस्तोमः । अदित्यै भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यमोजस्पृतं त्रिणवस्तोमः देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिशं स्पृताश्चतुष्टोमः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो तू (वसूनाम्) अग्नि आदि आठ वा प्रथम कक्षा के विद्वानों का (भागः) सेवने योग्य (असि) है जो (रुद्राणाम्) दश प्राण आदि ग्यारहवां जीव वा मध्य कक्षा के विद्वानों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो (चतुर्विंशः) चौवीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता (आदित्यानाम्) बारह महीनों वा उत्तम कक्षा के विद्वानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है जो तू (चतुष्पात्) गौ आदि पशुओं का (स्पृतम्) सेवन कर (मरुताम्) मनुष्य वा पशुओं के (आधिपत्यम्) अधिष्ठाता हो जो तू (पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (अदित्यै) अखण्डित आकाश का (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है जो तू (पूष्णः) पुष्टि कारक पृथिवी के (स्पृतम्) सेवने योग्य (ओजः) बल को प्राप्त होके (आधिपत्यम्) अधिकार को (प्राप्नुहि) प्राप्त हो जो तू (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (देवस्य) सुखदाता (सवितुः) पिता का (भागः) विभाग (असि) है जो तू (बृहस्पतेः) बड़ी वेदरूपी वाणी के पालक ईश्वर के दिये हुए (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (चतुष्टोमः) चार वेदों से कहने योग्य स्तुति कर्त्ता है जो तू (गर्भाः) गर्भ के तुल्य विद्या और शुभ गुणों से आच्छादित (स्पृताः) प्रीतिमान् उत्साही जिन को जानते हैं उन (समीचीः) सम्यक् प्राप्ति के साधन (स्पृताः) प्रीति का विषय (दिशः) पूर्व दिशाओं को जान ॥ २५ ॥

यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृ-
ताश्चत्वारिᳬश स्तोमः । ऋभूणां भागोऽसि
विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतᳬस्पृतं त्रयस्त्रिᳬ-
श स्तोमः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जो तू (यवानाम्) मिले हुए पदार्थों का सेवन करने हारा शरद् ऋतु के समान (असि) है जो (अयवानाम्) पृथक् २ रहने वाले पदार्थों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो कर (स्पृताः) प्रीति से (प्रजाः) पालने योग्य प्रजाओं को प्रेमयुक्त करता है और (चतुश्चत्वारिंशः) चवालीस संख्या का पूर्ण करने वाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (भूतम्) हो चुके (स्पृतम्) सेवन किये हुवे (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो कर और (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के विषय के समान (असि) है सो तू हम लोगों से सत्कार के योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्रमें वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि जो ये पीछे के मन्त्रों में शरद् ऋतु के गुण कहे हैं उन का यथावत् सेवन करें यह शरद् ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सहश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋतवो देवताः । पूर्वस्य भुरिगति-
जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ये अन्त इत्युत्तरस्य भु-
रिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ हेमन्त ऋतु के विधान को अगले मन्त्र में कहा है ।

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तः-
श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप

ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

पदार्थः— हे मित्रजन जो (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) वृद्ध श्रेष्ठ जनों के होने के लिये (सहः) बलकारी मार्गशीर्ष (च) और (सहस्यः) बल में प्रवृत्त हुआ पौष (च) ये दोनों महीने (हैमन्तिकौ) (ऋतू) हेमन्त ऋतु में हुए अपने चिह्न जानने वाले (अङ्गिरस्वत्) सब ऋतु के प्राण के समान (सीदतम्) स्थिर हैं जिस ऋतु के (अन्तःश्लेषः) मध्य में स्पर्श होता है उस के समान तू (असि) है सो तू उस ऋतु से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां और (अग्नयः) लपेटाई से युक्त अग्नि (पृथक्) पृथक् २ (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ऐसा जान (ये) जो (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (अन्तरा) भीतर प्रविष्ट होने वाले (सव्रताः) नियमधारी (समनसः) अविरुद्ध विचार वाले लोग (इमे) इन (ध्रुवे) दृढ़ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (कल्पन्ताम्) समर्थित करें (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य के तुल्य (हैमन्तिकौ) (ऋतू) हेमन्त ऋतु के दोनों महीनों को (अभिकल्पमानाः) सम्मुख हो कर समर्थ करने वाले (देवाः) दिव्य गुण विद्वानों के समान (अभिसंविशन्तु) आवेश करें वे सज्जन लोग (तया) उस (देवतया) प्रकाशस्वरूप परमात्मा देव के साथ प्रेम बद्ध हो के नियम से आहार और विहार करके सुखी हों ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वानों को योग्य है कि यथायोग्य सुख के लिये हेमन्त ऋतु में पदार्थों का सेवन करें और वैसे ही दूसरों को भी सेवन करावें ॥ २७ ॥

एकयेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ईश्वरो देवता ।
निचृद्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ यह ऋतुओं का चक्र किसने रचा है इस वि० ॥

एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत् । तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् । पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् । सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताऽधिपतिरासीत् ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (अधिपतिः) सब का अध्यक्ष परमेश्वर (आसीत्) है उसकी (एकया) एक वाणी से (अस्तुवत) स्तुति करो और जिस ने सब (प्रजाः) प्रजा के लोगों को वेदद्वारा (अधीयन्त) विद्यायुक्त किये हैं जो (ब्रह्मणस्पतिः) वेद का रक्षक (अधिपतिः) सब का स्वामी परमात्मा (आसीत्) है जिस ने यह (ब्रह्म) सकल विद्यायुक्त वेद को (असृज्यत) रचा है उस की (तिसृभिः) प्राण उदान और व्यान वायु की गति से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (भूतानि) पृथिवी आदि भूतों को (असृज्यन्त) रचा है जो (भूतानाम्) सब भूतों का (पतिः) रक्षक (अधिपतिः) रक्षकों का भी रक्षक (आसीत्) है उस की सब मनुष्य (पञ्चभिः) समान वायु चित्त बुद्धि अहंकार और मन से (अस्तुवत) स्तुति करें जिस ने (सप्तऋषयः) पांच मुख्य प्राण, महत्तत्त्व-समष्टि और अहंकार सात पदार्थ (असृज्यन्त) रचे हैं जो (धाता) धारण वा पोषण कर्त्ता (अधिपतिः) सब का स्वामी (आसीत्)

है उसकी (सप्तभिः) नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और इच्छा तथा प्रयत्नों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि सब जगत् के उत्पादक न्यायकर्त्ता परमात्मा की स्तुति करें सुनें विचारें और अनुभव करें। जैसे हेमन्त ऋतु में सब पदार्थ शीतल होते हैं वैसे ही परमेश्वर की उपासना करके शान्ति शील होवें ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ईश्वरो देवता । पूर्वस्यार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । त्रयोदशभिरित्युत्तरस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह जगत् का रचने वाला कैसा है इस वि० ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत् । एकादशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवा अधिपतय आसन् । त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् । पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् । सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जिस ने (पितरः) रक्षक मनुष्य (असृज्यन्त) उत्पन्न किये हैं जहां (अदितिः) रक्षा के योग्य (अधिपत्नी) अत्यन्त रक्षक माता (आसीत्) होवे उस परमात्मा की (नवभिः) नव प्राणों से (अस्तुवत) गुण प्रशंसा करो जिस ने (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (असृज्यन्त) रचे हैं जहां (आर्त्तवाः) उन २ ऋतुओं के गुण (अधि-

पतयः) ऋतुओं के विषय में अधिकारी (आसन्) होते हैं उन को (एका-दशभिः) दश प्राण और ग्यारहवें आत्मा से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस से (मासाः) चैत्रादि बारह महीने (असृज्यन्त) रचे हैं (पंचदशभिः) पन्द्रह तिथियों के सहित (संवत्सरः) संवत्सर (अधिपतिः) सब काल का अधिकारी रचा (आसीत्) है उस को (त्रयोदशभिः) दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा और दो प्रतिष्ठाओं से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस से (इन्द्रः) परम संपत्ति का हेतु सूर्य (अधिपतिः) अधिष्ठाता उत्पन्न किया (आसीत्) है जिसने (क्षत्रम्) राज्य वा क्षत्रिय कुल को (असृज्यत) रचा है उसको (सप्तदशभिः) दश पांव की अंगुली दो जंघा, दो जानु, दो प्रतिष्ठा और एक नाभि से ऊपर का अंग इन सत्रहों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (बृहस्पतिः) बड़े २ पदार्थों का रक्षक वैश्य (अधिपतिः) अधिकारी रचा (आसीत्) है और (ग्राम्याः) ग्राम के (पशवः) गौ आदि पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस परमेश्वर की पूर्वोक्त सब पदार्थों से युक्त होके (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो आप लोग जिस ने काल के विभाग करने वाले सूर्य आदि पदार्थ रचे हैं उस परमेश्वर की उपासना करो ॥ २९ ॥

नवदशभिरित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । जगदीश्वरो देवता ।
पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पञ्चविंशत्येत्यस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह वि० ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम् । एकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् । त्रयोविꣳशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्य-

न्त पूषाधिपतिरासीत् । पञ्चविंशत्यास्तुवता-
ऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् ।
सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो
रुद्रा आदित्या अनुव्यायँस्त एवाधिपतय आ-
सन् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जिसने उत्पन्न किये (अहोरात्रे) दिन और रात्रि (अधिपत्नी) सब काम कराने के अधिकारी (आस्ताम्) हैं जिसने (शूद्रार्य्यौ) शूद्र और आर्य्य द्विज ये दोनों (असृज्येताम्) रचे हैं उस की (नवदशभिः) दश प्राण पांच महाभूत मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने उत्पन्न किया (वरुणः) जल (अधिपतिः) प्राण के समान प्रिय अधिष्ठाता (आसीत्) है जिसने (एकशफाः) जुड़े एक खुरों वाले घोड़े आदि (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (एकविंशत्या) मनुष्यों के इक्कीस अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने बनाया (पूषा) पुष्टिकारक भूगोल (अधिपतिः) रक्षा करने वाला (आसीत्) है जिसने (क्षुद्राः) अति सूक्ष्म जीवों से ले कर नकुल पर्य्यन्त (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (त्रयोविंशत्या) पशुओं के तेईस अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने बनाया हुआ (वायुः) वायु (अधिपतिः) पालने हारा (आसीत्) है जिस ने (आरण्याः) वन के (पशवः) सिंह आदि पशु (असृज्यन्त) रचे हैं (पञ्चविंशत्या) अनेकों प्रकार के छोटे २ वन्य पशुओं के अवयवों के साथ अर्थात् उन अवयवों की कारीगरी के साथ (अस्तुवत) प्रशंसा करो जिसने बनाये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (ऐताम्) प्राप्त हैं जिस के बनाने से (वसवः) अग्नि आदि आठ पदार्थ वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (रुद्राः) प्राण आदि वा मध्यम विद्वान् (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम विद्वान् (अनुव्यायन्)

अनुकूलता से उत्पन्न हैं (ते) (एव) वे अग्नि आदि ही या विद्वान् लोग (अधिपतयः) अधिष्ठाता (आसन्) होते हैं उस की- (सप्तविंशत्या) सत्ताईस वन के पशुओं के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिसने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र डाकू मनुष्य भी रचे हैं जिसने स्थूल तथा सूक्ष्म प्राणियोंके शरीर अत्यन्त छोटे पशु और इन की रक्षा के साधन पदार्थ रचे और जिस की सृष्टि में न्यून विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो॥३०॥

नवविंशत्येत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त वि० ॥

नवविꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत् । एकत्रिꣳशतास्तुवत प्रजा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसन् । त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन्प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जिनके बनाने से (सोमः) ओषधियों में उत्तम ओषधि (अधिपतिः) स्वामी (आसीत्) है जिस ने उन (वनस्पतयः) पीपल आदि वनस्पतियों को (असृज्यन्त) रचा है उस परमात्मा की (नवविंशत्या) उनतीस प्रकार के वनस्पतियों के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो । और जिस ने उत्पन्न किये (यवाः) मसृणरूप दर्शन पर्वत आदि (च) और त्रसरेणु आदि (अयवाः) भिन्न २ प्रकृति के अवयव सत्व रजस् और तमोगुण (च) तथा परमाणु आदि (अधिपतयः) मुख्य कारणरूप अव्यक्त (आसन्) हैं उन (प्रजाः) प्रसिद्ध ओषधियों को जिसने (असृज्यन्त) रचा है उस ईश्वर की (एकत्रिंशता) इकतीस

प्रजा के अवयवों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो। जिस के प्रभाव से (भूतानि) प्रकृति के परिणाम महत्तत्व के उपद्रव (अशाम्यन्) शान्त हों जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक (परमेष्ठी) परमेश्वर के समान आकाश में व्यापक हो के स्थित परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है उस की (उपस्थियता) महाभूतों के तेंतीस गुणों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो ॥३१॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने लोकों की रक्षा के लिये वनस्पति आदि ओषधियों को रच के धारण और व्यवस्थित किया है उसी की उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

इस अध्याय में वसन्तादि ऋतुओं के गुण वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की संगति पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह चौदहवां अध्याय पूरा हुआ ॥



अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

अग्ने जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजा और राजपुरुषों को क्या २ करना चाहिये इस वि० ॥

अग्ने जातान् प्र णुदा नः सुपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः । अधि॑नो ब्रूहि सुमना अहेडँस्तव स्याम शर्मँस्त्रिवरूथ उद्भौ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् वा सेनापते आप (नः) हमारे (जातान्) प्रसिद्ध (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र, नुद) दूर कीजिये । हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बलवान् राजन् आप (अजातान्) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (नुद) प्रेरणा कीजिये और हमारा (अहेडन्) अनादर न करते हुए (सुमनाः) प्रसन्न चित्त आप (नः) (प्रति) हमारे प्रति (अधिब्रूहि) अधिक उपदेश कीजिये जिससे हम लोग (तव) आप के (उद्भौ) उत्तम पदार्थों से युक्त (त्रिवरूथे) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों सुखों के हेतु (शर्मन्) घर में (स्याम) सुखी होवें ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा आदि न्यायाधीश सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं को निश्चय करके वश में करें और किसी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधर्मी का सत्कार भी कभी न करें जिस से सब सज्जन लोग विश्वास पूर्वक राज्य में बसें ॥ १ ॥

सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहसा जातान् प्रणुदा नः सुपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो

नुदस्व । अधि नो ब्रूहि सुमनुस्यमा॑नो वृयथंस्या॑म प्रणु॑दा नः सुप॑त्नान् ॥ २ ॥

पदार्थः-हे (जातवेदः) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुए राजन् आप (नः) हमारे (सहसा) बल के सहित (जातान्) प्रसिद्ध हुए (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्रणुद) जीतिये और उन (प्रति) (अजातान्) युद्ध में छिपे हुए शत्रुओं के सेवक मित्रभाव से प्रसिद्धों को (नुदस्व) पृथक् कीजिये तथा (सुमनस्यमानः) अच्छे प्रकार विचारते हुए आप (नः) हमारे लिये (अधिब्रूहि) अधिकता से विजय के विधान का उपदेश कीजिये (वयम्) हम लोग आप के सहायक (स्याम) होवें जिन (नः) हमारे (सपत्नान्) विरोध में प्रवृत्त सम्बन्धियों को आप (प्रणुद) मारें उन को हम लोग भी मारें ॥ २ ॥

भावार्थः-राजा को चाहिये कि जो राज्य के सेवक शत्रुओं के निवारण करने में यथाशक्ति प्रयत्न न करें उन को अच्छे प्रकार दण्ड देवें और जो अपने सहायक हों उन का सत्कार करें ॥ २ ॥

षोडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । दम्पती देवते । ब्राह्मी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अब स्त्री पुरुष का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

षो॒डशी स्तोम॒ ओजो॒ द्रवि॑णं चतुश्चत्वारि॒ꣳश स्तोमो॒ वर्चो॒ द्रवि॑णम् । अ॒ग्नेः पुरी॑षम॒स्यप्सो॒ नाम॒ तां त्वा॒ विश्वे॑ अ॒भि गृ॑णन्तु दे॒वाः । स्तोम॑पृष्ठा घृ॒तव॑ती॒ह सी॑द प्र॒जाव॑द॒स्मे द्रवि॒णा य॑जस्व ॥३॥

पदार्थः-जो (षोडशी) प्रशंसित सोलह कलाओं से युक्त (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ओजः) पराक्रम (द्रविणम्) धन जो (चतुश्चत्वारिंशः) चवालीस संख्या को पूरण करने वाला ब्रह्मचर्य का आचरण (स्तोमः) स्तुति का साधन (नाम) प्रसिद्ध (वर्चः) पढ़ना और (द्रविणम्) बल को देती है जो (अग्नेः) अग्नि की (पुरीषम्) पूर्त्ति को प्राप्त (अप्सः) दूसरे के पदार्थों के भोग की इच्छा से रहित (असि) हो उस (त्वा) पुरुष तथा (ताम्) स्त्री की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (स्तोमपृष्ठा) इष्ट स्तुतियों को जनाने वाली (घृतवती) प्रशंसित घी आदि पदार्थों से युक्त (इह) इस गृहाश्रम में (सीद) स्थित हो और (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) बहुत सन्तानों के हेतु (द्रविणा) धन को (यजस्व) दिया कर ॥ ३ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सोलह कलारूप जगत् में विद्यारूप यज्ञ को फैला और गृहाश्रम करके विद्यादान कर्मों को निरन्तर किया करें ॥ ३ ॥

एवश्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवता । निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुख पदार्थ यह वि० ॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दो अङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः ॥ ४ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम लोग उत्तम प्रयत्न से (एवः) (छन्दः) आनन्ददायक ज्ञान (वरिवः) सत्य सेवनरूप (छन्दः) सुखदायक (शम्भूः) सुख का अनुभव (छन्दः) आनन्दकारी (परिभूः) सब ओर से पुरुषार्थी (छन्दः) सत्य का प्रकाशक (आच्छत्) दोषों का हटाना (छन्दः) जीवन (मनः) संकल्प विकल्पात्मक (छन्दः) प्रकाशकारी (व्यचः) शुभ गुणों की व्याप्ति (छन्दः) आनन्दकारक (सिन्धुः) नदी के तुल्य चलना (छन्दः) स्वतन्त्रता (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीरता (छन्दः) प्रयोजनसिद्धिकारी (सरिरम्) जल के तुल्य कोमलता (छन्दः) जल के समान शान्ति (ककुप्) दिशाओं के तुल्य उज्ज्वल कीर्ति (छन्दः) प्रतिष्ठा देने वाला (त्रिककुप्) अध्यात्मादि तीन सुखों का प्राप्त करने वाला कर्म (छन्दः) आनन्दकारक (काव्यम्) दीर्घदर्शी कवि लोगों ने बनाया (छन्दः) प्रकाशकविज्ञानदायक (अङ्कुपम्) टेढ़ी गति वाला जल (छन्दः) उपकारी (अक्षरपङ्क्तिः) परलोक (छन्दः) आनन्दकारी (पदपङ्क्तिः) यह लोक (छन्दः) सुखसाधक (विष्टारपङ्क्तिः) सब दिशा (छन्दः) सुख का साधक (क्षुरः) छुरा के समान पदार्थों का छेदक सूर्य (छन्दः) विज्ञानस्वरूप (भ्रजः) प्रकाशमय (छन्दः) स्वच्छ आनन्दकारी पदार्थ सुख के लिये सिद्ध करो ॥ ४ ॥

भावार्थः- जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म में पुरुषार्थ करने से सब के हित होना अच्छा समझते हैं वे सब सृष्टि के पदार्थों से सुख लेने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

भुरिगतिजगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावें यह वि० ॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सꣳस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्द एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रश्छन्दो अङ्काङ्कं छन्दः ॥ ५ ॥

पदार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि (आच्छत्) अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति करने हारा कर्म (छन्दः) प्रकाश (प्रच्छत्) प्रयत्न से दुष्ट स्वभाव को दूर करने वाला कर्म (छन्दः) उत्साह (संयत्) संयम (छन्दः) बल (वियत्) विविध यत्न का साधक (छन्दः) धैर्य्य (बृहत्) बहुत बुद्धि (छन्दः) स्वतन्त्रता (रथन्तरम्) समुद्ररूप संसार से पार करने वाला पदार्थ (छन्दः) स्वीकार (निकायः) संयोग का हेतु वायु (छन्दः) स्वीकार (विविधः) विशेष करके पदार्थों के रहने का स्थान अन्तरिक्ष (छन्दः) प्रकाशरूप (गिरः) भोगने योग्य अन्न (छन्दः) ग्रहण (भ्रजः) प्रकाशरूप अग्नि (छन्दः) ले लेना (संस्तुप्) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों को जनाने हारी वाणी (छन्दः) आनन्द कारक (अनुष्टुप्) सुनने के पीछे शास्त्रों को जनाने हारी मन की क्रिया (छन्दः) उपदेश (एवः) प्राप्ति (छन्दः) प्रयत्न (वरिवः) विद्वानों की सेवा (छन्दः) स्वीकार (वयः) जीवन (छन्दः) स्वाधीनता (वयस्कृत्) अवस्था वर्द्धक जीवन के साधन (छन्दः) ग्रहण (विष्पर्द्धाः) विशेष करके जिससे ईर्ष्या करे वह (छन्दः) प्रकाश (विशालम्) विस्तीर्ण कर्म (छन्दः) ग्रहण करना (छदिः) विघ्नों का हटाना (छन्दः) सुखों को पहुंचाने वाला (दूरोहणम्) दुःख से चढ़ने योग्य (छन्दः) बल (तन्द्रम्) स्वतन्त्रता करना (छन्दः) प्रकाश और (अङ्काङ्कम्) गणित विद्या का (छन्दः) सम्यक् स्थापन करना स्वीकार और प्रचार के लिये प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधीनता का निरन्तर स्वीकार करें ॥ ५ ॥

रश्मिनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विद्वांसो देवताः। विराडभिकृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये यह वि० ॥

रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्म्मणा धर्मं जिन्वान्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रति-

धिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रव-याऽह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीञ्जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसू-ञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जिन्व ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष तू (रश्मिना) किरणों से (सत्याय) वर्त्तमान में हुए सूर्य्य के तुल्य नित्य सुख और स्थूल पदार्थों के लिये (सत्यम्) अव्यभिचारी कर्म को (जिन्व) प्राप्त हो (प्रेतिना) उत्तम ज्ञान युक्त (धर्मणा) न्याय के आचरण से (धर्मम्) धर्म को (जिन्व) जान (अन्वित्या) खोज के हेतु (दिवा) धर्म के प्रकाश से (दिवम्) सत्य के प्रकाश को (जिन्व) प्राप्त हो (सन्धिना) सन्धि रूप (अन्तरिक्षेण) आकाश से (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (जिन्व) जान (पृथिव्या) भूगर्भविद्या के (प्रतिधिना) सम्बन्ध से (पृथिवीम्) भूमि को (जिन्व) जान (विष्टम्भेन) शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा (वृष्ट्या) वर्षा की विद्या से (वृष्टिम्) वर्षा को (जिन्व) जान (प्रवया) कान्तियुक्त (अह्ना) प्रकाश की विद्या से (अहः) दिन को (जिन्व) जान (अनुया) प्रकाश के पीछे चलने वाली (रात्र्या) रात्री की विद्या से (रात्रीम्) रात्रि को (जिन्व) जान (उशिजा) कामनाओं से (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं की विद्या से (वसून्) उन अग्नि आदि वसुओं को (जिन्व) जान और (प्रकेतेन) उत्तम विज्ञान से (आदित्येभ्यः) बारह महीनों की विद्या से (आदित्यान्) बारह महीनों को (जिन्व) तत्त्वस्वरूप से जान ॥ ६ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जैसे पदार्थों की परीक्षा से अपने आप पदार्थविद्या को जानें वैसे ही दूसरों के लिये भी उपदेश करें ॥ ६ ॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

गृहाश्रमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये यह वि० ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व संसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसा-धीतेनाधीतञ्जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य तू (तन्तुना) विस्तारयुक्त (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (रायः) धनकी (पोषम्) पुष्टि को (जिन्व) प्राप्त हो (संसर्पेण) सम्यक् प्राप्ति से (श्रुताय) श्रवण के लिये (श्रुतम्) शास्त्र के सुन ने को (जिन्व) प्राप्त हो (ऐडेन) अन्न के संस्कार और (ओषधीभिः) यव तथा सोमलता आदि ओषधियों की

विद्या से (ओषधीः) ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (उत्तमेन) उत्तम धर्म के आचरण युक्त (तनूभिः) शुद्ध शरीरों से (तनूः) शरीरों को (जिन्व) प्राप्त हो (वयोधसा) जीवन के धारण करने हारे (आधीतेन) अच्छे प्रकार पढ़े से (आधीतम्) सब ओर से धारण की हुई विद्या को (जिन्व) प्राप्त हो (अभिजिता) सन्मुख शत्रुओं को जीतने के हेतु (तेजसा) तीक्ष्ण कर्म से (तेजः) दृढ़ता को (जिन्व) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विस्तारयुक्त पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो के सब प्राणियों का हित सिद्ध करें ॥ ७ ॥

प्रतिपदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः-हे पुरुषार्थिनि विद्वन् स्त्री जिस कारण तू (प्रतिपत्) प्राप्त होने के योग्य लक्ष्मी के तुल्य (असि) है इस लिये (प्रतिपदे) ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को जो (अनुपत्) पीछे प्राप्त होने वाली शोभा के तुल्य (असि) है उस (अनुपदे) विद्याऽध्ययन के पश्चात् प्राप्त होने योग्य (त्वा) तुझ को जो तू (संपत्) संपत्ति के तुल्य (असि) है उस (सम्पदे) ऐश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (तेजः) तेज के समान (असि) है इस लिये (तेजसे) तेज होने के लिये (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थः-सब सुख सिद्ध होने के लिये तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाले स्त्री पुरुष स्वयंवर विवाह से परस्पर एक दूसरे का स्वीकार करके आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

त्रिवृदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराड् ब्राह्मी जगती
छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा सङ्क्रमोऽसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जो तू (त्रिवृत्) सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के सह वर्त्तमान अव्यक्त कारण का जानने हारा (असि) है उस (त्रिवृते) तीन गुणों से युक्त कारण के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (प्रवृत्) जिस कार्य रूप में प्रवृत्त संसार का ज्ञाता (असि) है उस (प्रवृते) कार्यरूप संसार को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (विवृत्) जिस विविध प्रकार में प्रवृत्त जगत् का उपकार कर्त्ता (असि) है उस (विवृते) जगदुपकार के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (सवृत्) जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने हारा (असि) है उस (सवृते) साधर्म्य पदार्थों के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (आक्रमः) अनेक प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष का जानने वाला (असि) है उस (आक्रमाय) अन्तरिक्ष को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (संक्रमः) सम्यक् पदार्थों को जानता (असि) है उस (संक्रमाय) पदार्थ ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (उत्क्रमः) ऊपर मेघमंडल की गति का ज्ञाता (असि) है उस (उत्क्रमाय) मेघ मंडल की गति जानने के लिये (त्वा) तुझ को तथा हे स्त्रि जो तू (उत्क्रान्तिः) सम विषम पदार्थों के उल्लंघन के हेतु विद्या को जानने हारी (असि) है उस (उत्क्रान्त्यै) गमन विद्या के जानने के लिये (त्वा) तुझ को सब प्रकार ग्रहण करते हैं (अधिपतिना) अपने स्वामी के सह वर्त्तमान तू (ऊर्जा) पराक्रम से (ऊर्जम्) बल को (जिन्व) प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों के जाने बिना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता इसलिये कार्य कारण दोनों को यथावत् जान के अन्य मनुष्यों के लिये उपदेश करना चाहिये ॥ ९ ॥

राज्ञ्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। वसवो देवताः। पूर्वस्य विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणों वाले हैं यह वि०॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳश्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरꣳ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

पदार्थः—हे स्त्रि (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी जैसे जिस के (वसवः) अग्न्यादिक (देवाः) प्रकाशमान (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं वैसे तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के समान (राज्ञी) राणी (असि) है जैसे (हेतीनाम्) वज्रादि शस्त्रों का (प्रतिधर्त्ता) प्रत्यक्ष धारण करता (त्रिवृत्) विद्युत् भूमिस्थ और सूर्य रूप से तीन प्रकार वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुतियुक्त गुणों से सहित (अग्निः) महाविद्युत् धारण करने वाली है वैसे (त्वा) तुझ को तेरा पति मैं धारण करता हूं तू (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव्यथायै) पीड़ा न होने के लिये (उक्थम्) प्रशंसनीय (आज्यम्) घृत आदि पदार्थों को (श्रयतु) धारण कर (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (रथन्तरम्) रथादि से तारने वाले (साम) सिद्धान्त कर्म को (स्तभ्नातु) धारण कर जैसे (अन्तरिक्षे) आकाश में (दिवः) बिजुली का (मात्रया) लेश सम्बन्ध और (वरिम्णा) महा पुरुषार्थ से (देवेषु) विद्वानों में (प्रथमजाः) पूर्व हुए (ऋषयः) वेदार्थवित् विद्वान् (त्वा) तुझ को शुभ गुणों से विशाल बुद्धि करें (च) और जैसे (अयम्) यह (विधर्त्ता) विविध रीति से धारण कर्त्ता तेरा पति तुझ से वर्त्ते वैसे उस के साथ तू वर्त्ता कर (च) और जैसे (सर्वे) सब (संविदानाः) अच्छे विद्वान् लोग (नाकस्य) अविद्यमान दुःख के (पृष्ठे) मध्य में (स्वर्गे) जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख प्राप्ति (लोके) दर्शनीय है उस में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) तेरे पति को (सादयन्तु) स्थापन करें वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—पूर्व दिशा इस लिये उत्तम कहाती है कि जिस से सूर्य प्रथम वहां उदय को प्राप्त होता है। जो पूर्व दिशा से वायु चलता है वह किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है किसी में नहीं और यह अग्नि सब पदार्थों का धारण करता तथा वायु के संयोग से बढ़ता है जो पुरुष इन वायु और अग्नि को यथार्थ जानते हैं वे संसार में प्राणियों को सुख पहुंचाते हैं ॥१०॥

विराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। रुद्रा देवताः। पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वाऽप्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च

ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च साद-
यन्तु ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो तू (विराट्) विविध पदार्थों से प्रकाशमान (दक्षिणा) (दिक्) दक्षिण दिशा के तुल्य (असि) है जिस (ते) तेरा पति (रुद्राः) वायु (देवाः) दिव्य गुण युक्त वायु (अधिपतयः) अधिष्ठाताओं के समान (हेतीनाम्) वज्रों का (प्रतिधर्त्ता) निश्चय के साथ धारण करने वाला (पञ्चदश) पन्द्रह संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थों का ज्ञानी और (इन्द्रः) सूर्य (त्वा) तुझ को (पृथिव्याम्) पृथिवी में (श्रयतु) सेवन करे (अव्यथायै) मानस भय से रहित तेरे लिये (प्रउगम्) कथनीय (उक्थम्) उपदेश के योग्य वचन को (स्तभ्नातु) स्थिर करे तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (बृहत्) बहुत अर्थ से युक्त (साम) सामवेद को स्थिर करे और जैसे (अन्तरिक्षे) आकाशस्थ (देवेषु) कमनीय पदार्थों में (प्रथमजाः) पहिले हुए (ऋषयः) ज्ञान के हेतु प्राण (दिवः) प्रकाश कारक अग्नि के लेश और (वरिम्णा) बहुत्व के साथ वर्त्तमान हैं वैसे विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (प्रथन्तु) प्रसिद्ध करें जैसे (विधर्त्ता) विविध प्रकार के आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों का धारक (च) तथा पवित्र करने वाला (अधिपतिः) सब प्रकाशक पदार्थों में उत्तम सूर्य (त्वा) तुझ को पुष्ट करे वैसे (संविदानाः) सम्यक् विचारशील विद्वान् लोग हैं (ते) वे (सर्वे) सब (नाकस्य) दुःखरहित आकाश के (पृष्ठे) सेचक भाग में (स्वर्गे) सुख कारक (लोके) जानने योग्य देश में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) यज्ञविद्या के जानने हारे पुरुष को (सादयन्तु) स्थापित करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु॰—जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ वर्त्तमान सूर्य को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का आश्रय करके इस विद्या को जनावें वैसे स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान् हो के दूसरों को पढ़ावें ॥ ११ ॥

सम्राडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । आदित्या देवताः । पूर्वस्य निचृद् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे हों यह वि० ॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां
प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थ-
मव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपꣳ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋष

प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि जो तू (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के समान (सम्राट्) अच्छे प्रकाशित (असि) है उस (ते) तेरा पति (आदित्याः) बिजुली से युक्त प्राण वायु (देवाः) दिव्य सुखदाता (अधिपतयः) स्वामियों के तुल्य (अयम्) यह (सप्तदशः) सत्रह संख्या का पूरक (च) और (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वरुणः) जलसमुदाय के समान (हेतीनाम्) बिजुलियों का (प्रतिधर्त्ता) धारण करने वाला (अधिपतिः) स्वामी (त्वा) तुझ को (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (श्रयतु) सेवन करे (अव्यथायै) व्यथा से अचल के लिये (मरुत्वतीयम्) बहुत मनुष्यों के व्याख्यान से युक्त (उक्थम्) कथन योग्य वेदवचन तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वैरूपम्) विविध रूपों के व्याख्यान से युक्त (साम) सामवेद को (स्तभ्नातु) ग्रहण करे । और जो (दिवः) प्रकाश के (मात्रया) भाग से (वरिम्णा) बहुत्व के साथ (अन्तरिक्षे) आकाश में (प्रथमजाः) विस्तार युक्त कारण से उत्पन्न हुए (ऋषयः) गतियुक्त वायु (देवेषु) ज्ञान के हेतु अवयवों में वर्त्तमान हैं वैसे (त्वा) तुझ को विद्वान् लोग (प्रथन्तु) प्रसिद्ध उपदेश करें । जैसे (विधर्त्ता) जो विविध रसों का धारने हारा है (च) वह भी (अधिपतिः) अध्यक्ष स्वामी राजा प्रजाओं को सुख में रखता है वैसे (ते) तेरे मध्य में (सर्वे) सब (संविदानाः) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुए (त्वा) तुझको (च) और (यजमानम्) विद्वानों के सेवक पुरुष को (नाकस्य) दुःखरहित देश के (पृष्ठे) एक भाग में (स्वर्गे) सुख प्रापक (लोके) दर्शनीय स्थान में (सादयन्तु) स्थापित करें ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग पश्चिम दिशा और वहां के पदार्थों को दूसरों के लिये जानते हैं वैसे स्त्री पुरुष अपने सन्तानों आदि को विद्यादि गुणों से सुशोभित करें ॥ १२ ॥

स्वराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । मरुतो देवताः । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे दोनों कैसे हों यह वि० ॥

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविꣳशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थ-

मव्यथायै स्तभ्नातु । वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थ – हे स्त्रि जैसे (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा (असि) है वैसा (ते) तेरा पति हो जिस दिशा के (मरुतः) वायु (देवाः) दिव्यरूप (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं उन के सदृश जो (एकविंशः) इक्कीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति का साधक (सोमः) चन्द्रमा (हेतीनाम्) वज्र के समान वर्त्तमान किरणों का (प्रतिधर्त्ता) धारने हारा पुरुष (त्वा) तुझ को (पृथिव्याम्) भूमि में (अवतु) सेवन करे (अव्यथायै) इन्द्रियों के भय से रहित होने के लिये (निष्केवल्यम्) जिस में केवल एक स्वरूप का वर्णन हो वह (उक्थम्) कहने योग्य वेदभाग तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वैराजम्) विराट् रूप का प्रतिपादक (साम) सामवेद का भाग (स्तभ्नातु) ग्रहण करे (च) और जैसे जो मध्य में (अन्तरिक्षे) आकाश में स्थित (देवेषु) इन्द्रियों में (प्रथमजाः) मुख्य प्रसिद्ध (दिवः) ज्ञान के (मात्रया) भागों से (वरिम्णा) अधिकता के साथ वर्त्तमान (ऋषयः) बलवान् प्राण हैं वैसे (अयम्) यही इन प्राणों का (विधर्त्ता) विविध रीति से धारण कर्त्ता (च) और (अधिपतिः) अधिष्ठाता है (ते) वे (सर्वे) सब इस विषय में (संविदानाः) सम्यक् बुद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिज्ञा से (त्वा) तुझ को (प्रथन्तु) प्रसिद्ध करें और (नाकस्य) उत्तम सुखरूप लोक के (पृष्ठे) ऊपर (स्वर्गे) सुखदायक (लोके) लोक में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) यजमान पुरुष को (सादयन्तु) स्थित करें ॥ १३ ॥

भावार्थ –इस मन्त्र में वाचकलु०–जैसे विद्वान् लोग आधार के सहित चन्द्रमा आदि पदार्थों और आधार के सहित प्राणों को यथावत् जान के संसारी कार्यों में उपयुक्त करके सुख को प्राप्त होते हैं। वैसे अध्यापक स्त्री पुरुष कन्या पुत्रों को विद्या ग्रहण के लिये उपयुक्त करके आनन्दित करें ॥ १३ ॥

अधिपत्न्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥ प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानञ्च सादयन्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (बृहती) बड़ा (अधिपत्नी) सब दिशाओं के ऊपर वर्त्तमान (दिक्) दिशा के समान (असि) है उस (ते) तेरा पति (विश्वे) सब (देवा) प्रकाशक सूर्य्यादि पदार्थ (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं। वैसे जो (बृहस्पतिः) विश्व का रक्षक (हेतीनाम्) वज्र लोकों का (प्रतिधर्त्ता) प्रतीति के साथ धारण करने वाले सूर्य्य के तुल्य यह तेरा पति (त्वा) तुझको (च) और (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) सत्ताइस और तेंतीस (स्तोमौ) स्तुतिके साधन (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अव्यथायै) पीड़ा रहितता के लिये (वैश्वदेवाग्निमारुते) सब विद्वान् और अग्नि वायुओं के व्याख्यान करने वाले (उक्थे) कहने योग्य वेद के दो भागों का (श्रयताम्) आश्रय करे और जैसे (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा होने के लिये (शाक्वररैवते) शाक्वरी और रेवती छन्द से कहे अर्थों से (सामनी) सामवेद के दो भागों को (स्तभ्नीताम्) संगत करो। जैसे वे (अन्तरिक्षे) अवकाश में (प्रथमजाः) आदि में हुए (ऋषयः) धनञ्जय आदि सूक्ष्म स्थूल वायु रूप प्राण (देवेषु) दिव्य गुण वाले पदार्थों में (दिवः) प्रकाश की (मात्रया) मात्रा और (वरिम्णा) अधिकता से (त्वा) तुझ को प्रसिद्ध करते हैं उन को मनुष्य लोग (प्रथन्तु) प्रख्यात करें जैसे (अयम्) यह (अधिपतिः) स्वामी (विधर्त्ता) विविध प्रकार से सब को धारण करने हारा सूर्य्य है जैसे (संविदानाः) सम्यक् सत्यप्रतिज्ञा युक्त ज्ञानवान् विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (नाकस्य) (पृष्ठे) सुखदायक देश के उपरि (स्वर्गे) सुखरूप (लोके) स्थान में स्थापित करते हैं (ते) वे (सर्वे) सब (यजमानम्) तेरे पुरुष और तुझ को (सादयन्तु) स्थित करें वैसे तुम स्त्री पुरुष दोनों वर्त्ता करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सब के बीच की दिशा सबसे अधिक है वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का बल अधिक है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अयंपुर इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वसन्त ऋतुर्देवता । विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उ० ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ। पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ। दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

पदार्थः-जो (अयम्) यह (पुरः) पूर्वकाल में वर्त्तमान (हरिकेशः) हरितवर्ण केशों के समान हरणशील और प्रकाशकारी ताप से युक्त (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणें हैं (तस्य) उनका (रथगृत्सः) बुद्धिमान् सारथि (च) और (रथौजाः) रथ के ले चलने के वाहन (च) इन दोनों के तथा (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्राम के अध्यक्ष के समान अन्य प्रकार के भी किरण होते हैं उन किरणों की (पुञ्जिकस्थला) सामान्य प्रधान दिशा (च) और (क्रतुस्थला) प्रज्ञा कर्म को जतानेवाली उपदिशा (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में चलने वाली अप्सरा कहाती हैं जो (दङ्क्ष्णवः) मांस और घास आदि पदार्थों को खाने वाले व्याघ्र आदि (पशवः) हानिकारक पशु हैं उनके ऊपर (हेतिः) बिजुली गिरे। जो (पौरुषेयः) पुरुषों के समूह (वधः) मारनेवाले और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के तुल्य नाश करने वाले हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्र का प्रहार (अस्तु) हो और जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं (ते) वे उन पशुओं से (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे रक्षक हम लोग (यम्) जिस हिंसक से (द्विष्मः) विरोध करें (च) और (यः) जो हिंसक (नः) हम से (द्वेष्टि) विरोध करे (तम्) उसको हम लोग (एषाम्) इन व्याघ्रादि पशुओं के (जम्भे) मुख में (दध्मः) स्थापन करें ॥ १५ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे सूर्य के किरण हरे वर्ण वाले हैं उन के साथ लाल पीले आदि वर्ण वाले भी किरण रहते हैं वैसे ही सेनापति और ग्रामाध्यक्ष धर्म के रक्षक होवें। जैसे राजा आदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिंह आदि पशुओं को रोक के गौ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग अच्छी शिक्षा अधर्माचरण से पृथक् रख धर्म में चला के हम सब मनुष्यों की रक्षा करके द्वेषियों का निवारण करें। यह भी सब वसन्त ऋतु का व्याख्यान है ॥ १५ ॥

अयं दक्षिणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। ग्रीष्मर्तुर्देवता। प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी वैसा ही वि० ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानी-ग्रामण्यौ । मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षांसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १६ ॥

पदार्थः–हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब चेष्टारूप कर्मों का हेतु वायु (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से चलता है (तस्य) उस वायु के (रथस्वनः) रथ के शब्द के समान शब्द वाला (च) और (रथेचित्रः) रमणीय रथ में चित्र युक्त आश्चर्य कार्यों का करने वाला (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान वर्त्तमान (मेनका) जिस से मनन किया जाय वह (च) और (सहजन्या) एक साथ उत्पन्न हुई (च) ये दोनों (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष में रहने वाली किरणादि अप्सरा हैं जो (यातुधाना) प्रजा को पीड़ा देने वाले हैं उन के ऊपर (हेतिः) वज्र जो (रक्षांसि) दुष्ट कर्म करने वाले हैं उन के ऊपर (प्रहे- प्रकृष्ट वज्र के तुल्य (तेभ्य) उन प्रजापीड़क आदि के लिये (नमः) वज्र का प्र- (अस्तु) हो ऐसा करके जो न्यायाधीश शिक्षक हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्- रक्षा करें (ते) (वे) (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम् जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) व्याघ्र के समान मुख में (दध्मः) धारण करते हैं वैसा प्रयत्न करो ॥ १६ ॥

भावार्थ–इस मन्त्र में वाचकलु०–जो स्थूल सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग लेने को जानते हैं वे शत्रुओं का निवारण करके सब को आनन्दित करते हैं। यह भी ग्रीष्म ऋतु का शेष व्याख्यान है ऐसा जानो ॥ १६ ॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचस्य परमेष्ठी ऋषिः । वर्षर्तुर्देवता । विराट् कृतिश्छन्दः । निषादः । स्वरः ॥

फिर वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ । प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ । व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १७ ॥

पदार्थः–हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (पश्चात्) पीछे से (विश्वव्यचाः) विश्व

में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि है उस के (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामपति के समान (रथप्रोतः) रमणीय तेजस्वरूप में व्याप्त (च) और (असमरथः) जिस के समान दूसरा रथ न हो वह (च) ये दोनों (प्रम्लोचन्ती) अच्छे प्रकार सब ओषधि आदि पदार्थों को शुष्क कराने वाली (च) तथा (अनुम्लोचन्ती) पश्चात् शान्ति का हेतु प्रकाश (च) ये दोनों (अप्सरसौ) क्रियाकारक आकाशस्थ किरण हैं जैसे (हेतिः) साधारण वज्र के तुल्य तथा (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान (व्याघ्राः) सिंहों के तथा (सर्पाः) सर्पों के समान प्राणियों को दुःखदायी जीव हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्रप्रहार (अस्तु) हो और जो इन पूर्वोक्तों से रक्षा करें (ते) वे (नः) हमारे (अवन्तु) रक्षक हों (ते) वे (नः) हमको (मृडयन्तु) सुखी करें तथा (ते) वे हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे जिस को हम (एषाम्) इन सिंहादि के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें (तम्) उस को वे रक्षक लोग भी सिंहादि के मुख में धरें॥ १७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—यह वर्षा ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहार विहार करने चाहियें॥ १७॥

अयमुत्तरादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। वायुर्देवता। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी वैसा ही वि०॥

अयमुत्तरात्संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ। विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥ १८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (अयम्) यह (उत्तरात्) उत्तर दिशा से (संयद्वसुः) यज्ञ को संगत करने हारे के तुल्य शरद् ऋतु है (तस्य) उसके (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान (तार्क्ष्यः) तीव्र तेज को प्राप्त कराने योग्य आश्विन (च) और (अरिष्टनेमिः) दुःखों को दूर करने वाला कार्त्तिक (च) ये दोनों (विश्वाची) सब जगत् में व्यापक (च) और (घृताची) घी वा जल को प्राप्त कराने वाली दीप्ति (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों की गति हैं जहां (आपः) जल (हेतिः) वृद्धि के तुल्य वर्त्ताने और (वातः) जिस पवन (प्रहेतिः) अच्छे प्रकार बढ़ाने हारे के समान आनन्द दायक होता है उस वायु को जो लोग युक्ति से

साथ सेवन करते हैं (तेभ्यः) उनके लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उसको (एषाम्) इन जल वायुओं के (जम्भे) दुःखदायी गुणरूप मुख में (दध्मः) धरें वैसे तुम लोग भी वर्त्तो ॥ १८ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-यह शरद् ऋतु का शेष व्याख्यान है । इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के साथ कार्यों में प्रवृत्त हों ॥ १८ ॥

अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । हेमन्तर्तुर्देवता । निचृत्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमुपर्य्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ । उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (उपरि) ऊपर वर्त्तमान (अर्वाग्वसुः) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु है (तस्य) उस के (सेनजित्) सेना से जीतने वाला (च) और (सुषेणः) सुन्दर सेनापति (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के तुल्य वर्त्तमान अगहन और पौष महीने (उर्वशी) बहुत खाने का हेतु आन्तर्य दीप्ति (च) और (पूर्वचित्तिः) आदि ज्ञान का हेतु (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में रहने वाली (अवस्फूर्जन्) भयंकर घोष करते हुए (हेतिः) वज्र के तुल्य (विद्युत्) बिजुली के चलाने हारे और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) मिलें (ते) वे (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को हम लोग (एषाम्) इन हिंसक प्राणियों के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें । वैसे तुम लोग भी उस को धरो ॥ १९ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-यह भी हेमन्त ऋतु का शेष व्याख्या है । मनुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके बलवान् हों ॥ १९ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस प्रकार बल बढ़ाना चाहिये यह वि० ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाᳬरेताᳬसि जिन्वति ॥ २० ॥

पदार्थः-जैसे हेमन्त ऋतु में (अयम्) यह प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के बीच (मूर्द्धा) शिर के तुल्य सूर्यरूप से वर्त्तमान (ककुत्पतिः) दिशाओं का रक्षक हो के (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) पराक्रमों को (जिन्वति) पूर्णता से तृप्त करता है वैसे ही मनुष्यों को बलवान् होना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जाठराग्नि को सदा संयम से आहार विहार करके नित्य बल बढ़ाते रहें ॥ २० ॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्य क्या करें यह वि० ॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥

पदार्थः- हे मनुष्यो (अयम्) यह (अग्निः) हेमन्त ऋतु में वर्त्तमान (सहस्रिणः) प्रशस्त असंख्य पदार्थों से युक्त (शतिनः) प्रशंसित गुणों के सहित अनेक प्रकार वर्त्तमान (वाजस्य) अन्न तथा (रयीणाम्) धनों का (पतिः) रक्षक (मूर्द्धा) उत्तम अङ्ग के तुल्य (कविः) समर्थ है वैसे ही तुम लोग भी हो ॥ २१ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया अग्नियुक्त अन्न धन प्राप्त कराता है वैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को ऐश्वर्यवान् कर देता है ॥ २१ ॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) विद्वन् जैसे (अथर्वा) रक्षक (वाघतः) अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने हारा बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष (पुष्करात्) अन्तरिक्ष के (अधि) बीच तथा (मूर्ध्नः) शिर के तुल्य वर्त्तमान (विश्वस्य) संपूर्ण जगत् के बीच अग्नि को (निरमन्थत) निरन्तर मन्थन करके ग्रहण करे वैसे ही (त्वाम्) तुझ को मैं बोध करता हूं ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान आकाश तथा पृथिवी के सकाश से बिजुली का ग्रहण कर आश्चर्यरूप कर्मों को सिद्ध करें ॥ २२ ॥

भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जैसे यह प्रत्यक्ष अग्नि (नियुद्भिः) संयोग विभाग कराने हारी क्रिया तथा (शिवाभिः) मंगलकारिणीदीप्तियों के साथ वर्त्तमान (भुवः) प्रगट हुए (यज्ञस्य) कार्यों के साधक संगत व्यवहार (च) और (रजसः) लोक-समूह को (नेता) आकर्षण कर्त्ता हुआ सम्बन्ध कराता है और (यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशमान अपने स्वरूप में (मूर्द्धानम्) उत्तमाङ्ग के तुल्य वर्त्तमान सूर्य को धारण करता तथा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली (स्वर्षाम्) सुखदायक (जिह्वाम्) वाणी को चकृषे प्रवृत्त करता है वैसे तू शुभ-गुणों के साथ (सचसे) युक्त होता और सब विद्याओं को (दधिषे) धारण कराता है ॥ २३ ॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ईश्वर ने नियुक्त किया हुआ अग्नि सब जगत् को सुखकारी होता है वैसे ही विद्या के ग्राहक अध्यापक लोग सब मनुष्यों को सुखकारी होते हैं ऐसा सब को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अबोधीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् । यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (समिधा) प्रज्वलित करने के साधनों से यह (अग्निः) अग्नि (अबोधि) प्रकाशित होता है (आयतीम्) प्राप्त होते हुए (उषासम्) प्रभातसमय के (प्रति) समीप (जनानाम्) मनुष्यों की (धेनुमिव) दूध देने वाली गौ के समान है । जिस अग्नि के (यह्वाइव) महान् धार्मिक जनों के समान (प्र) उत्कृष्ट (वयाम्) व्यापक सुख की नीति को (उज्जिहानाः) अच्छे प्रकार प्राप्त करते

हुए (प्र) उत्तम (भानवः) किरण (नाकम्) सुख को (अच्छ) अच्छे प्रकार (मियते) प्राप्त करते हैं उस को तुम लोग सुमार्ग संयुक्त करो ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—जैसे दुग्ध देने वाली सेवन की हुई गौ दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुखी करती है और जैसे आप्त विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों की उन्नति करते हैं वैसे ही यह अग्नि है ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

अवोचामेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा है यह वि० ॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे। गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हम लोग जैसे (गविष्ठिरः) किरणों में रहने वाली बिजुली (दिवीव) सूर्य प्रकाश के समान (उरुव्यञ्चम्) विशेष करके बहुतों में गमन शील (रुक्मम्) सूर्य का (अश्रेत्) आश्रय करती है वैसे (मेध्याय) सब शुभ लक्षणों से युक्त पवित्र (वृषभाय) श्रेष्ठ (वृष्णे) वर्षा के हेतु (कवये) बुद्धिमान् के लिये (वन्दारु) प्रशंसा के योग्य (वचः) वचन को और (अग्नौ) जाठराग्नि में (नमसा) अन्न आदि से (स्तोमम्) प्रशस्त कार्यों को (अवोचाम) कहें ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—विद्वानों को चाहिये कि सुशील शुद्धबुद्धि विद्यार्थी के लिये परम प्रयत्न से विद्या देवें जिस से वह विद्या पढ़ के सूर्य के प्रकाश में घट पटादि को देखते हुए के समान सब को यथावत् ज्ञान करे ॥ २५ ॥

अयमिहेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ २६ ॥

पदार्थः—जो (इह) इस जगत् में (अध्वरेषु) रक्षा के योग्य व्यवहारों में (ईड्यः) खोजने योग्य (यजिष्ठः) अतिशय करके यज्ञ का साधक (होता) सुखादि का ग्रहणकर्ता (प्रथमः) सर्वत्र विस्तृत (अयम्) यह प्रत्यक्ष अग्नि (धातृभिः) धारणशील पुरुषों ने (धायि) धारण किया है (यम्) जिस को (वनेषु) किरणों में (विभ्वम्) व्यापकस्वरूप से (चित्रम्) अद्भुत अग्नि को (विशेविशे) मनुष्य

प्रजा के लिये (अप्नवानः) रूपवान (भृगवः) पूर्णज्ञानी (विरुरुचुः) विशेष करके प्रकाशित करते हैं उस अग्नि को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ २६ ॥

भावार्थः-विद्वान् लोग अग्निविद्या को आप धारके दूसरों को सिखावें ॥ २६ ॥

जनस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥२७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो (जनस्य) उत्पन्न हुए संसार का (गोपाः) रक्षक (जागृविः) जागने रूप स्वभाव वाला (सुदक्षः) सुन्दर बल का हेतु (घृतप्रतीकः) घृत से बढ़ने हारा (शुचिः) पवित्र (अग्निः) बिजुली (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) उत्पन्न करने योग्य ऐश्वर्य के लिये (अजनिष्ट) प्रकट हुआ है और (बृहता) बड़े (दिविस्पृशा) प्रकाश में स्पर्श से (भरतेभ्यः) सूर्यों से (द्युमत्) प्रकाश युक्त हुआ (विभाति) शोभित होता है उस को तुम लोग जानो ॥ २७ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐश्वर्य प्राप्ति का विशेष कारण सृष्टि के सूर्यों का निमित्त बिजुली रूप तेज है उस को जान के उपकार लिया करें ॥ २७ ॥

त्वामग्नइत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता विराडार्षी

जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणवत्प्रिय (अग्ने) विद्वन् जैसे (सः) वह (मथ्यमानः) मथन किया हुआ अग्नि प्रसिद्ध होता है वैसे तू विद्या से (जायसे) प्रकट होता है जिस को (महत्) बड़े (सहः) बलयुक्त (सहसः) बलवान् वायु से (पुत्रम्) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य (वनेवने) किरण २ वा पदार्थ २ में (शिश्रियाणम्) आश्रित (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित हितकारी (त्वाम्) उस अग्नि को (आहुः) कहते हैं (अङ्गिरसः) विद्वान् लोग (अन्वविन्दन्) प्राप्त होते हैं उस का बोध (त्वाम्) तुझे कराता हूं ॥ २८ ॥

भावार्थः-अग्नि दो प्रकार का होता है । एक मानस और दूसरा बाह्य इस में

भाभ्यन्तर को युक्त आहार विहारों से और बाह्य को मन्थनादि से सब विद्वान् सेवन करें वैसे इतर जन भी सेवन किया करें ॥ २८ ॥

सखा इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे होके अग्नि को जानें यह वि० ॥

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये । वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ २९ ॥

पदार्थ–हे (सखायः) मित्रो (क्षितीनाम्) मननशील मनुष्य (वः) तुम्हारे (ऊर्जः) बल के (नप्त्रे) पौत्र के तुल्य वर्त्तमान (सहस्वते) बहुत बल वाले (वर्षिष्ठाय) अत्यन्त बड़े (अग्नये) अग्नि के लिये जिस (सम्यञ्चम्) सुन्दर सत्कार के हेतु (इषम्) अन्न को (च) और (स्तोमम्) स्तुतियों को (समाहुः) अच्छे प्रकार कहते हैं वैसे तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो ॥ २९ ॥

भावार्थ–यहां पूर्व मन्त्र से (आहुः) इस पद की अनुवृत्ति आती है । कारीगरों को चाहिये कि सब के मित्र हो कर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थ विद्या का अनुष्ठान करें जो बिजुली कारणरूप बल से उत्पन्न होती है वह पुत्र के तुल्य है और जो सूर्यादि के सकाश से उत्पन्न होती है सो पौत्र के समान है ऐसा जानना चाहिये ॥२९॥

संसमिदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

वैश्य को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ ३० ॥

पदार्थः–हे (वृषन्) बलवन् (अग्ने) प्रकाशमान (अर्यः) वैश्य जो तू (संसमायुवसे) सम्यक् अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हो (इडः) प्रशंसा के योग्य (पदे) प्राप्ति के योग्य अधिकार में (समिध्यसे) सुशोभित होते हो (सः) सो तू (इत्) ही अग्नि के योग से (नः) हमारे लिये (विश्वानि) सब (वसूनि) धनों को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कर ॥ ३० ॥

भावार्थ–राजाओं से रक्षा प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिये और अपने राजपुरुषों के लिये संपूर्ण धन धारण करें ॥ ३० ॥

त्वामित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें यह वि० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम् हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ३१ ॥

पदार्थः-हे (पुरुप्रिय) बहुतों के प्रसन्न करने हारे वा बहुतों के प्रिय (चित्रश्रवस्तम) आश्चर्यरूप अन्नादि पदार्थों से युक्त (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् (विक्षु) प्रजाओं में (हव्याय) स्वीकार के योग्य अन्नादि उत्तम पदार्थों को (वोढवे) प्राप्ति के लिये जिस (शोचिष्केशम्) सुखाने वाली सूर्य की किरणों के तुल्य तेजस्वी (त्वाम्) आप को (जन्तवः) मनुष्य लोग (हवन्ते) स्वीकार करते हैं उसी को हम लोग भी स्वीकार करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थः-मनुष्य को योग्य है कि जिस अग्नि को जीव सेवन करते हैं उस से भार पहुंचाना आदि कार्य्य भी सिद्ध किया करें ॥ ३१ ॥

एनाव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जैसे मैं (वः) तुम्हारे लिये एना) उस पूर्वोक्त (नमसा) प्रहण के योग्य अन्न से (नपातम्) दृढ स्वभाव (प्रियम्) प्रीति कारक (चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेतनता कराने हारे (अरतिम्) चेतनता रहित (स्वध्वरम्) अच्छे रक्षणीय व्यवहारों से युक्त (अमृतम्) कारणरूप से नित्य (विश्वस्य) संपूर्ण जगत् के (दूतम्) सब ओर चलनेहारे (अग्निम्) बिजुली को और (ऊर्जः) पराक्रमों को (आहुवे) स्वीकार करूं वैसे तुम लोग भी मेरेलिये ग्रहण करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो हम लोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध करें उनको तुम लोग भी स्वीकार करो ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ॥ ३३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जैसे मैं (विश्वस्य) सब भूगोलों के (दूतम्) तपाने वाले सूर्यरूप (अमृतम्) कारणरूप से अविनाशि स्वरूप (विश्वस्य) संपूर्ण पदार्थों को (दूतम्) ताप से जलाने वाले (अमृतम्) जल में भी व्यापक कारणरूप अग्नि को स्वीकार करूं वैसे (विश्वभोजसा) जगत् के रक्षक (अरुषा) रूपवान् सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है (सः) वह (योजते) युक्त करता है और (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार ग्रहण किया हुआ (दुद्रवत्) शरीरादि में चलता है (सः) वह तुम लोगों को जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में पूर्व मंत्र से (मानुषे) इस पद की अनुवृत्ति आती है। तथा (विश्वस्य दूतममृतम्) इन तीन पदों की दो बार आवृत्ति से स्थूल है और सूक्ष्म दो प्रकार के अग्नि का ग्रहण होता है। यह सब अग्नि कारणरूप से नित्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

स दुद्रवदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता।
आर्च्युष्णिक् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत्स्वाहुतः। सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳ राधो जनानाम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! (सः) वह अग्नि (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान (दुद्रवत्) चलता है तथा (सः) वह (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार निमन्त्रण किये विद्वान् के तुल्य (दुद्रवत्) जाता है (सुब्रह्मा) अच्छे प्रकार चारों वेद के ज्ञाता (यज्ञः) समागम के योग्य (सुशमी) अच्छे शान्ति शील पुरुष के समान जो (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं और (जनानाम्) मनुष्यों का (देवम्) प्रकाशित (राधः) धन रूप है इस अग्नि को तुम लोग उपयोग में लाओ ॥ ३४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जो [illegible] धन पदार्थों को देने वाला तथा सब का धारक पृथिव्यादि पदार्थों का प्रकाशक अग्नि है उस का विचार सब को करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अग्ने वाजस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता।
उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥
फिर वह अग्नि कैसा है यह वि० ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो। अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥

पदार्थः-हे (सहसः) बलवान् पुरुष के (यहो) सन्तान (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् आप अग्नि के तुल्य (गोमतः) प्रशस्त गौ और पृथिवी से युक्त (वाजस्य) अन्न के (ईशान) स्वामी समर्थ हुए (अस्मे) हमारे लिये (महि) बड़े (वसु) धन को (धेहि) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-अच्छी रीति से उपयुक्त किया अग्नि बहुत धन देता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

स इधानस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

पदार्थः-हे (पुर्वणीक) बहुत सेना वाले राजपुरुष विद्वान् (गिरा) वाणी से (ईडेन्यः) खोजने योग्य (वसुः) निवास का हेतु (कविः) समर्थ (इधानः) प्रदीप्त (सः) उस पूर्वोक्त (अग्निः) अग्नि के समान (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (रेवत्) प्रशंसित धन युक्त पदार्थों को (दीदिहि) प्रकाशित कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-विद्वान् को चाहिये कि अग्नि के गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश के तुल्य मनुष्यों के लिये वेदार्थ की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

क्षपो राजन्नित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३७ ॥

पदार्थः-हे (तिग्मजम्भः) तीक्ष्ण अवयवों के चलाने वाले (राजन्) प्रकाशमान (अग्ने) विद्वान् जन (सः) सो पूर्वोक्त गुणयुक्त आप जैसे तीक्ष्ण तेज युक्त अग्नि (क्षपः) रात्रियों (उत) और (वस्तोः) दिन के (उत) ही (उषसः) प्रभात और सायंकाल के प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे (त्मना) तीक्ष्ण स्वभाव युक्त अपने आत्मा से (रक्षसः) दुष्ट जनों को रात्रि के समान (प्रतिदह) निश्चय करके भस्म कीजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे प्रभात दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि को जानते हैं वैसे राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है ऐसा जानें ॥ ३७ ॥

भद्रो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

पदार्थः-हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य वाले विद्वान् पुरुष जैसे (आहुतः) धर्म के तुल्य सेवन किया मित्ररूप (अग्नि) अग्नि (भद्रः) सेवने योग्य (भद्रा) कल्याणकारी (रातिः) दान (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) रक्षणीय व्यवहार (उत) और (भद्राः) कल्याण करने वाली (प्रशस्तयः) प्रशंसा होवें वैसे आप (नः) हमारे लिये हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ-इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सेवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं वैसे आप्त विद्वान् लोगों को भी जानें ॥ ३८ ॥

भद्रा उतेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह वि० ॥

भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । येना समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥

पदार्थः-हे (सुभग) शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष आप (येन) जिस से हमारे (वृत्रतूर्ये) युद्ध में (भद्रम्) कल्याणकारी (मनः) विचारशक्ति युक्त चित्त (उत) और (भद्राः) कल्याण करने हारी (प्रशस्तयः) [illegible] प्रजा और जिस से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) अत्यन्त स[illegible] हो वैसा कर्म (कृणुष्व) कीजिये ॥ ३९

भावार्थः-यहां (

विद्वान्

उत्तम

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

येना॑ समत्सु॑ सा॒सहो॒ऽर्व॑ स्थि॒रा त॑नु॒हि भूरि॒ शर्ध॑ताम् । व॒नेमा॑ ते अ॒भिष्टि॑भिः ॥ ४० ॥

पदार्थः-हे (सुभग) सुन्दर लक्ष्मी युक्त पुरुष आप (येन) जिस के प्रताप से हमारे (समत्सु) युद्धों में (सासहः) शीघ्र सहना हो उस को तथा (भूरि) बहुत प्रकार (शर्धताम) बल करते हुए हमारे (स्थिरा) स्थिर सेना के साधनों को (अवतनुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाइये (ते) आप की (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के अनुसार वर्त्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥ ४० ॥

भावार्थः-यहां भी (सुभग, नः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है विद्वानों को उचित है कि बहुत बलयुक्त वीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ावें जिस से ये लोग उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥ ४० ॥

अग्नितमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर वह क्या करे यह वि० ॥

अ॒ग्निं तं म॑न्ये॒ यो वसु॒रस्तं॒ यं यन्ति॑ धे॒नवः॑ । अस्त॒मर्व॑न्त आ॒शवोऽस्तं॒ नित्या॑सो वा॒जिन॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥ ४१ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष (यः) जो (वसु) सर्वत्र रहने वाला अग्नि है (यम) जिस (अग्निम) वाणी के समान अग्नि को (धेनवः) गौ (अस्तम) घर को (यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्यासः) कारण रूप से विनाश रहित (वाजिनः) वेग वाले (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) घोड़े (अस्तम) घर को प्राप्त होते हैं वैसे मैं (तम) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) मानता हूं और (स्तोतृभ्यः) स्तुति कारक विद्वानों के लिये (इषम) अच्छे अन्नादि पदार्थों को धारण करता हूं वैसे ही तू उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥ ४१ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें कि जैसे हम लोग आचरण करें वैसा तुम भी करो । जैसे गौ आदि पशु दिन में इधर उधर भ्रमण कर सायंकाल अपने घर आ के प्रसन्न होते हैं । वैसे विद्या के स्थान को प्राप्त हो के तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥ ४१ ॥

सो अग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः। समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳसुजातासः सूरयः इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४२ ॥

पदार्थः–हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष जैसे मैं (यः) जो (वसुः) निवास का हेतु (अग्निः) अग्नि है उस की (गृणे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूं (यम्) जिस को (धेनवः) वाणी (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (रघुद्रुवः) धीरज से चलने वाले (अर्वन्तः) प्रशंसित ज्ञानी (सुजातासः) अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने हारे विद्यार्थियों के लिये (इषम्) ज्ञान को (सम्) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे (सः) वह पढ़ाने हारा ईश्वरादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) ज्ञान से धारण कर ॥ ४२ ॥

भावार्थः–अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चला के पहुंचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुंचावें ॥ ४२ ॥

उभे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वह क्या करे यह वि० ॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि। उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४३ ॥

पदार्थः–हे (सुश्चन्द्र) सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष आप (सर्पिषः) घी के (दर्वी) चलाने पकड़ने की दो कर्छी से (श्रीणीषे) पकाने के समान (आसनि) मुख में (उभे) पढ़ने पढ़ाने की दो क्रियाओं को (आभर) धारण कीजिये। हे (शवसः) बल के (पते) रक्षक जन तू (उक्थेषु) कहने सुनने योग्य वेद विभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (उत्पुपूर्याः) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥ ४३ ॥

भावार्थः–जैसे ऋत्विज् लोग घृत को शोध कर्छी से अग्नि में होम कर और वायु तथा वर्षाजल को रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोध कर उन को विद्यादान देके आत्माओं को पवित्र कर सब को सुखी करें ॥ ४३ ॥

अग्नेतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

येना॑ समत्सु॑ सासहोऽव॑ स्थि॒रा त॑नुहि॒ भूरि॒ शर्ध॑ताम् । व॒नेमा॑ ते अ॒भिष्टि॑भिः ॥ ४० ॥

पदार्थः-हे (सुभग) सुन्दर लक्ष्मी युक्त पुरुष आप (येन) जिस के प्रताप से हमारे (समत्सु) युद्धों में (सासहः) शीघ्र सहना हो उस को तथा (भूरि) बहुत प्रकार (शर्धताम) बल करते हुए हमारे (स्थिरा) स्थिर सेना के साधनों को (अवतनुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाइये (ते) आप की (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के अनुसार वर्त्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥ ४० ॥

भावार्थः-यहां भी (सुभग, नः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है विद्वानों को उचित है कि बहुत बलयुक्त वीरपुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ावें जिस से ये लोग उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥ ४० ॥

अग्निंतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर वह क्या करे यह वि० ॥

अ॒ग्निं तं म॑न्ये॒ यो वसु॒रस्तं॒ यं यन्ति॑ धे॒नवः॑ । अस्त॒मर्व॑न्त आ॒शवोऽस्तं॒ नित्या॑सो वा॒जिन॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥ ४१ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष (यः) जो (वसुः) सर्वत्र रहने वाला अग्नि है (यम्) जिस (अग्निम्) वाणी के समान अग्नि को (धेनवः) गौ (अस्तम) घर को (यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्यासः) कारण रूप से विनाश रहित (वाजिनः) वेग वाले (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) घोड़े (अस्तम्) घर को प्राप्त होते हैं वैसे मैं (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) मानता हूं और (स्तोतृभ्यः) स्तुति कारक विद्वानों के लिये (इषम) अच्छे अन्नादि पदार्थों को धारण करता हूं वैसे ही तू उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥ ४१ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें कि जैसे हम लोग आचरण करें वैसा तुम भी करो । जैसे गौ आदि पशु दिन में इधर उधर भ्रमण कर सायंकाल अपने घर आ के प्रसन्न होते हैं । वैसे विद्या के स्थान को प्राप्त हो के तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥ ४१ ॥

सो अग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमःस्वरः॥
फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

सो अ॒ग्निर्यो वसु॑र्गृ॒णे सं यमा॒यन्ति॑ धे॒नवः॑। समर्व॑न्तो रघु॒द्रुव॒ः सꣳसु॑जा॒तासः॑ सू॒रय॒ इष॑ꣳ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥ ४२ ॥

पदार्थः-हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष जैसे मैं (यः) जो (वसुः) निवास का हेतु (अग्नि.) अग्नि है उस की (गृणे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूं (यम) जिस को (धेनवः) वाणी (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (रघुद्रुवः) धीरज से चलने वाले (अर्वन्तः) प्रदीपित ज्ञानी (सुजातासः) अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने हारे विद्यार्थियों के लिये (इषम) ज्ञान को (सम) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे (सः) वह पढ़ाने हारा ईंधनादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) ज्ञान से धारण कर ॥ ४२ ॥

भावार्थः-अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चला के पहुंचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुंचावें ॥ ४२ ॥

उभे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करे यह वि० ॥

उ॒भे सु॑श्चन्द्र स॒र्पिषो॒ दर्वी॑ श्रीणीष आ॒सनि॑। उ॒तो न॒ उत्पु॑पूर्या उ॒क्थेषु॑ शवसस्पत॒ इष॑ꣳ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥ ४३ ॥

पदार्थः-हे (सुश्चन्द्र) सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष आप (सर्पिषः) घी के (दर्वी) चलाने पकड़ने की दो कर्छी से (श्रीणीषे) पकाने के समान (आसनि) मुख में (उभे) पढ़ने पढ़ाने की दो क्रियाओं को (आभर) धारण कीजिये। हे (शवसः) बल के (पते) रक्षकजन तू (उक्थेषु) कहने सुनने योग्य वेद विभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इषम) अन्नादि पदार्थों को (उत्पुपूर्याः) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥ ४३ ॥

भावार्थः-जैसे ऋत्विज् लोग घृत को शोध कर्छी से अग्नि में होम कर और वायु तथा वर्षाजल को रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोध कर उन को विद्यादान देके आत्माओं को पवित्र कर सब को सुखी करें ॥ ४३ ॥

अग्नेतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अध्यापक जन हम लोग (ते) आप से (ओहैः) विद्या का सुख देने वाले (स्तोमैः) विद्या की स्तुति रूप वेद के भागों से (अद्य) आज (अश्वम्) घोड़े के (न) समान (भद्रम्) कल्याण कारक (क्रतुम्) बुद्धि के (न) समान तम उस (हृदिस्पृशम्) आत्मा के साथ सम्बन्ध करने वाले विद्या बोध को प्राप्त हो के निरन्तर (ऋध्याम) वृद्धि को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं । अध्येता लोगों को चाहिये कि जैसे अच्छे शिक्षित घोड़े से अभीष्ट स्थान में शीघ्र पहुंच जाते हैं जैसे विद्वान् लोग सब शास्त्रों के बोध से युक्त कल्याण करने हारी बुद्धि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफलों को प्राप्त होते हैं वैसे उन अध्यापकों से पूर्ण विद्या पढ़ प्रशंसित बुद्धि को पा के आप उन्नति को प्राप्त हों तथा वेद के पढ़ाने और उपदेश से अन्य सब मनुष्यों की भी उन्नति करें ॥ ४४ ॥

अधाहीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह वि० ॥

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जन जैसे तू (भद्रस्य) आनन्द कारक (दक्षस्य) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (साधोः) अच्छे मार्ग में प्रवर्त्तमान (ऋतस्य) सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की (बृहतः) बड़े विषय वा ज्ञानरूप (क्रतोः) बुद्धि से (रथीः) प्रशंसित रमण साधनयानों से युक्त (बभूथ) हूजिये वैसे (अध) मंगलाचरण पूर्वक (हि) निश्चय करके हम भी होवें ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई बुद्धि को प्राप्त हो के विद्वान् लोग बढ़ते हैं वैसे ही अध्येता लोगों को भी बढ़ाना चाहिये ॥ ४५ ॥

एभिर्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ४६ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष आप (नः) हमारे लिये (विश्वेभिः) सब (अनीकैः) सेनाओं के सहित राजा के तुल्य (सुमनाः) मन से सु दाता (भव) हूजिये (एभिः) इन पूर्वोक्त (अर्कैः) पूजा के योग्य विद्वानों के हित (नः) हमारे लिये (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाशक (अर्वाङ्) नीचों को उ करने को जानने वाले (स्वः) सुख के (न) समान हूजिये ॥ ४६ ॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०--जैसे राजा अच्छी शिक्षा युक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है वैसे ही बुद्धि आदि गुणों से विद्या से हुए क्लेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी होवें ॥ ४६ ॥

अग्निꣳ होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ४७ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऊर्ध्वया) ऊर्ध्वगति के साथ (स्वध्वरः) कर्म करने से अहिंसनीय (देवाच्या) विद्वानों के सत्कार के हेतु (कृपा) सा क्रिया से (देवः) दिव्य गुणों वाला पुरुष (शोचिषा) दीप्ति के साथ(आजुह्वानस अच्छे प्रकार हवन किये (सर्पिषः) घी और (घृतस्य) जल के सकाश से (विभ्र ष्टिम्) विविध प्रकार के ज्योतियों को (अनुवष्टि) प्रकाशित करता है उ (होतारम्) सुख के दाता (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में विद्यमा (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र के समान (वसुम्) धनदाता । दास्व न्तम्) दानशील (जातवेदसम्) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध (अग्निम्) तेजस्वी अग्नि (न) समान (विप्रम्) आप्त ज्ञानी का मैं (मन्ये) सत्कार करता हूं वैसे तुम लो भी उस को मानो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु० -जैसे अच्छे प्रकार सेवन कि विद्वान् लोग विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा से सब को आर्य करते हैं वैसे युक्ति सेवन किया अग्नि अपने गुण कर्म और स्वभावों से सब के सुख की उन्नति करत है ॥ ४७ ॥

अग्नेत्वन्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्नि-
र्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दी-
दिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे अग्ने विद्वान् (त्वम्) आप जैसे यह (वसुः) धनदाता (वसुश्रवाः) अन्न और धन का हेतु (अग्निः) अग्नि (रयिम्) धन को (दाः) देता है वैसे (नः) हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (त्राता) रक्षक (वरूथ्यः) श्रेष्ठ (उत) और (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये हे । (शोचिष्ठ) अतितेजस्वी (दीदिवः) बहुत प्रकाशों से युक्त वा कामना वाले विद्वान् जैसे हम लोग (त्वा) तुझको (सखिभ्यः) मित्रों से (सुम्नाय) सुख के लिये (नूनम्) निश्चय (ईमहे) मांगते हैं वैसे (तम्) उस तुझको सब मनुष्य चाहें जैसे मैं (द्युमत्तमम्) प्रशंसित प्रकाशों से युक्त तु को (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षि) प्राप्त होता हूं वैसे तू हम को प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे मित्र अपने मित्रों को चाहते और उ की उन्नति करते हैं वैसे विद्वान् सब का मित्र सब को सुख देवे ॥ ४८ ॥

येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निꣳ स्वराभरन्तः । त-
स्मिन्नहं नि दधे नाके अग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णबर्हिषम् ॥ ४९ ॥

पदार्थः-(येन) जिस (तपसा) धर्मानुष्ठानरूप कर्म से (इन्धानाः) प्रकाशमान (स्वः) सुख को (आभरन्तः) अच्छे प्रकार धारण करते हुए (ऋषयः) वेद का अर्थ जानने वाले ऋषि लोग (सत्रम्) सत्य विज्ञान से युक्त (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (आयन्) प्राप्त हों (तस्मिन्) उस कर्म के होते (नाके) दुःख रहित प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त (मनवः) विचारशील विद्वान् लोग (यम्) जिस (स्तीर्णबर्हिषम्) आकाश को आच्छादन करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (आहुः) कहते हैं उस को (अहम्) मैं (नि, दधे) धारण करता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थः-जिस प्रकार से वेदपारग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर बिजुली आदि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धियुक्त होना चाहिये ॥ ४९ ॥

सं पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥
विद्वानों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

सं पत्नी॑भि॒रनु॑ गच्छेम देवाः पु॒त्रैर्भ्रा॒तृभि॑रु॒त वा॒ हिर॑ण्यैः । नाकं॑ गृभ्णा॒नाः सु॑कृ॒तस्य॑ लो॒के तृ॒तीये॑ पृ॒ष्ठे अधि॑ रोच॒ने दि॒वः ॥ ५० ॥

पदार्थः-हे (देवाः) विद्वान् लोगो जैसे तुम लोग (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (गृभ्णानाः) ग्रहण करते हुए (दिवः) प्रकाशयुक्त (सुकृतस्य) सुन्दर वेदोक्त कर्म (अधि) में वा (रोचने) रुचिकारक (तृतीये) विज्ञान से हुए (पृष्ठे) जानने को इष्ट (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्त्तमान (पत्नीभिः) अपनी स्त्रियों (पुत्रैः) वृद्धावस्था में हुए दुःख से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) बन्धुओं (उत वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णादि के साथ (नाकम्) आनन्द को प्राप्त होते हो वैसे इन सब के सहित हम लोग भी (अनु, गच्छेम) अनुगत हों ॥५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री पुत्र, भाई, कन्या, माता, पिता, सेवक और परोसियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से धर्मात्मा पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ५० ॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

आ वा॒चो मध्य॑मरुहद्भुर॒ण्युर॒यम॒ग्निः सत्प॑ति॒श्चेकि॑तानः । पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या निहि॑तो॒ दवि॑द्युतदधस्प॒दं कृ॑णुतां॒ ये पृ॑त॒न्यवः॑ ॥ ५१ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष (चेकितानः) विज्ञानयुक्त (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक आप (वाचः) वाणी के (मध्यम) बीच हुए उपदेश को प्राप्त हो के जैसे (अयम्) यह (भुरण्युः) पुष्टिकर्त्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (निहितः) निरन्तर स्थिर किया (दविद्युतत्) उपदेश से सब को प्रकाशित करता। और धर्म पर (आ, रुहत्) आरूढ होता है उस के साथ (ये) जो लोग (पृतन्यवः)

भावार्थः-जिस प्रकार से वेदपारग विद्वान् लोग सत्य का अनुष्ठान कर ... आदि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को ... होना चाहिये ॥ ४९ ॥

तं पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः । नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ ५० ॥

पदार्थः-हे (देवाः) विद्वान् लोगो जैसे तुम लोग (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि ... (गृभ्णानाः) ग्रहण करते हुए (दिवः) प्रकाशयुक्त (सुकृतस्य) सुन्दर ... कर्म (अधि) में वा (रोचने) रुचिकारक (तृतीये) विज्ञान से हुए (पृष्ठे) ... को इष्ट (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्त्तमान (पत्नीभिः) अपनी स्त्रियों (पुत्रैः) वृद्धावस्था में हुए दुःख से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) बन्धुओं (उत, वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णादि के साथ (नाकम्) आनन्द को प्राप्त होते हो वैसे इन सब के सहित हम लोग भी (अनु, गच्छेम) अनुगत हों ॥५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री पुत्र, भाई, कन्या, माता, पिता, सेवक और परोसियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से धर्मात्मा पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ५० ॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः । पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् पुरुष (चेकितानः) विज्ञानयुक्त (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक आप (वाचः) वाणी के (मध्यम) बीच हुए उपदेश को प्राप्त हो के जैसे (अयम्) यह (भुरण्युः) पुष्टिकर्त्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (निहितः) निरन्तर स्थिर किया (दविद्युतत्) उपदेश से सब को ... और धर्म पर (आ, रुहत्) आरूढ़ होता है उस के साथ ...

युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं उनको (अधस्पदम्) अपने अधिकार से च्युत जैसे हो वैसा (कृणुताम्) कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः-विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड में सूर्यलोक को स्थापन करके सब को सुख पहुंचाता है । वैसे ही राज्य में विद्या और बल को धारण कर शत्रुओं को जीत के प्रजा के मनुष्यों का सुख से उपकार करें ॥ ५१ ॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगों को वर्त्तना चाहिये ॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योतुतामप्रयुच्छन् ।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥

पदार्थः-जो (अयम्) यह (वीरतमः) अपने बल से शत्रुओं को अत्यन्त व्याप्त होने तथा (वयोधाः) सब के जीवन को धारण करने वाला (सहस्रियः) असंख्य योद्धाजनों के समान योद्धा (सरिरस्य) आकाश के (मध्ये) बीच (विभ्राजमानः) विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होते हुए (अग्निः) अग्नि के तुल्य सेनापति आप (द्योतताम्) प्रकाशित हूजिये और (दिव्यानि) अच्छे (धाम) जन्म कर्म और स्थानों को (उप, प्र, याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा जनों के साथ निवास कर प्रमाद को छोड़ और जितेन्द्रियता से अवस्था बढ़ा के विद्या और धर्म के अनुष्ठान से पवित्र होके परोपकारी होवें ॥ ५२ ॥

संप्रच्यवध्वमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें यह वि० ॥

सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् । पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताꣳसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम लोग विद्वानों को (उपसंप्रयात) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (देवयानान्) धार्मिकों के (पथः) मार्गों से (संप्रच्यवध्वम्) सम्यक् चलो, धर्म को (कृणुध्वम्) करो । हे (अग्ने) विद्वान् पितामह (त्वयि) तुम्हारे बने रहते ही (पितरा) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्य को (कृण्वाना) करते हुए (युवाना) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो और स्वयंवर विवाह कर (पुनः)

पश्चात् (एतम्) गर्भाधानादि रीति से यथोक्त (तन्तुम्) सन्तान को (अन्वातनीत) अनुकूल उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

भावार्थः—कुमार स्त्री पुरुष धर्म युक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ आप धार्मिक हो पूर्ण युवावस्था की प्राप्ति में कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की कन्या परीक्षा कर अत्यन्तप्रीति के साथ चित्त से परस्पर [illegible] करके अपना इच्छा से विवाह कर धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने [illegible] संतोष कर के आप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चलें और जैसे धर्म के मार्गों को सरल करें वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें ॥ ५३ ॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही पूर्वोक्त वि० ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष तू (उद्बुध्यस्व) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सबके प्रति (प्रति, जागृहि) अविद्यारूप निद्रा को छोड़ के विद्या से चेतन हो (त्वम्) तू स्त्री (च) और (अयम्) यह पुरुष दोनों (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (सधस्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामि समय में सदा (इष्टापूर्त्ते) इष्ट सुख विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा सङ्ग करना और सत्य विद्या आदि का दान देना, यह इष्ट और पूर्णबल, ब्रह्मचर्य, विद्या की शोभा, पूर्णयुवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्त्त इन दोनों को (सं, सृजेथाम्) सिद्ध किया करो (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् [illegible] (च) और (यजमानः) यज्ञ करने वाले पुरुष तू इस एक स्थान में (अधि, सीदत) इस [illegible] स्थिर होओ ॥ ५४ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि सुगन्ध्यादि के होम से इस सुख देता और [illegible] सब पदार्थों की सामग्री पूरी करता है वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री पुरुष इस जगत् में [illegible] किया करें । जब विवाह के लिये दृढ़ प्रीति वाले स्त्री पुरुष हों तब विद्वानों को बुला के उनके समीप वेदोक्त प्रतिज्ञा करके पति और पत्नी बनें ॥ ५४ ॥

येन वहसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम् । तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ॥ ५५ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष विदुषी स्त्री वा तू (देवेषु) विद्वानों में (स्वः) सुख को (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (येन) जिस प्रतिज्ञा किये कर्म से (सहस्रम) गृहाश्रम के असंख्य व्यवहारों को (वहसि) प्राप्त होते हो तथा (येन) जिस विद्या से (सर्ववेदसम) सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो (तेन) उस से (इमम) इस गृहाश्रमरूप (यज्ञम) संगति के योग्य यज्ञ को (नः) हम को (नय) प्राप्त कीजिये ॥ ५५ ॥

भावार्थः-विवाह की प्रतिज्ञाओं में यह भी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिये आचरण करो वैसे हम माता पिता आचार्य और अतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्त्ताव करो ॥ ५५ ॥

अयन्त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

अ॒यं ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒ यतो॑ जा॒तो अरो॑चथाः । तञ्जा॒नन्न॑ग्न॒ आ रो॑हाथा॑ नो वर्धया र॒यिम् ॥ ५६ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) विद्वन् वा विदुषि (अयम) यह (ते) तेरा (ऋत्वियः) ऋतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ (योनिः) घर है (यतः) जिस विद्या के पठन पाठन से (जातः) प्रसिद्ध हुआ वा हुई तू (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उस को (जानन्) जानता वा जानती हुई (आ, रोह) धर्म पर आरूढ हो (अथ) इस के पश्चात् (नः) हमारी (रयिम) संपत्ति को (वर्धय) बढ़ाया कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः-स्त्री पुरुषों से विवाह में यह भी दूसरी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री पुरुष कृतकृत्य होते हो उस २ को सदैव प्रचारित किया करो और पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ को बढ़ा के उस को अच्छे मार्ग में खर्च किया करो । यह सब हेमन्त ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शिशिरर्त्तुर्देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है ॥

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे शैशिरावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे ईश्वर (मम) मेरी (ज्यैष्ठ्याय) ज्यैष्ठ्यता के लिये (तपः) ताप बढ़ाने का हेतु माघ महीना (च) और (तपस्यः) तापवाला फाल्गुण मास (च ये दोनों (शैशिरौ) शिशिर ऋतु में प्रख्यात (ऋतू) अपने चिह्नों को प्राप्त करने वाले सुखदायी होते हैं आप जिन के (अग्नेः) अग्नि के भी (अन्तःश्लेषः) मध्य में प्रविष्ट (असि) हैं उन दोनों से (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (सव्रताः) एक प्रकार के नियमों में वर्त्तमान (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (समनसः) एक प्रकार के मन के निमित्त वाले हैं वे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि के (अन्तरा) बीच में होने वाले (शैशिरौ) शिशिर ऋतु के साधक (ऋतू) माघ फाल्गुन महिनों को (अभिकल्पमानाः) समर्थ करते हैं । उन अग्नियों को (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य के तुल्य (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) ज्ञानपूर्वक प्रवेश करें । हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों (तया) उस (देवतया) पूजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान वर्त्तमान इन आकाश भूमि के तुल्य (ध्रुवे) दृढ़ (सीदतम्) स्थिर होओ ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमाल० —मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में ईश्वर से ही सुख चाहें ईश्वर विद्युत् अग्नि के बीच व्याप्त है इस कारण सब पदार्थ अपने २ नियम से कार्य में समर्थ होते हैं विद्वान् लोग सब वस्तुओं में व्याप्त बिजुली रूप अग्नियों के गुण दोष जाने स्त्री पुरुष गृहाश्रम में स्थिरबुद्धि होके शिशिर ऋतु के सुख को भोगें ॥ ५७ ॥

परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विदुषी देवता ।

भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री को क्या

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् । आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

पदार्थः-हे राजन् आप (यवसे) भूसा आदि के लिये (अश्वः) घोड़े के (न) समान प्रजाओं को (प्रोथत्) समर्थ कीजिये (यदा) जब (महः) बड़े (संवरणात्) आच्छादन से (अविष्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यस्थात्) स्थित होवें (आत्) पुनः (अस्य) इस (ते) आप का (व्रजनम्) चलने तथा (कृष्णम्) आकर्षण करने वाला (शोचिः) प्रकाश (अस्ति) है (अध) इस के पश्चात् (स्म) ही आपका (वातः) चलने वाला भृत्य (अनु, वाति) पीछे चलता है ॥ ६२ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालं०-जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट हो कर राज्य को बढ़ाती है ॥ ६२ ॥

आयोष्ट्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विदुषी देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाᳪ समुद्रस्य हृदये । रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः-हे स्त्रि (या) जो तू (द्याम्) प्रकाश (पृथिवीम्) भूमि और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ, भासि) प्रकाशित करती है उसे (रश्मीवतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (भास्वतीम्) शोभा को प्राप्त हुई (त्वा) तुझ को (आयोः) न्यायानुकूल चलने वाले चिरंजीवि पुरुष के (सदने) स्थान में और (अवतः) रक्षा आदि करते हुए के (छायायाम्) आश्रय में (आ, सादयामि) अच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (हृदये) बीच (आ) शुद्ध प्रकार से मैं स्थित कराता हूं ॥ ६३ ॥

भावार्थः-हे स्त्रि अच्छे प्रकार पालने हारे पति के आश्रयरूप स्थान में [illegible] के मध्य चंचलता रहित गम्भीरतायुक्त प्यारी तुझ को स्थिर करता हूं [illegible]
कर[illegible]ने [illegible] को सुखी रख और मुझ को भी [illegible]

[illegible] देवता आर्ष[illegible]
परस्पर कैसे हों यह

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवं दृंह दिवं मा हिंसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवं सीदतम् ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि (परमेष्ठी) परमात्मा (विश्वस्मै) समग्र (प्राणाय) जीवन सुख (अपानाय) दुःखनिवृत्ति (व्यानाय) नाना विद्याओं की व्याप्ति (उदानाय) उत्तम बल (प्रतिष्ठायै) सर्वत्र सत्कार और (चरित्राय) श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (दिवः) कमनीय सुन्दर व्यवहार के (पृष्ठे) आधार में (व्यचस्वतीम्) व्याप्त प्रसिद्ध प्रशंसा वाली (प्रथस्वतीम्) बहुविध विद्या से युक्त जिस (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापित करे सो तू (दिवम्) न्याय के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर (दिवम्) विद्या रूप सूर्य को (दृंह) दृढ़ कर (दिवम्) धर्म के प्रकाश को (मा हिंसीः) मत नष्ट कर (सूर्यः) चराचर जगत् का स्वामी ईश्वर (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सत्कार (शन्तमेन) अतिशय सुख और (छर्दिषा) सत्कार के प्रकाश से (त्वा) तुझ को (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे वह तेरा पति और दोनों (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (ध्रुवं) निश्चल (सीदतम्) स्थिर रहो ॥ ६४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर आज्ञा करता है कि जैसे विदुषी स्त्री सुखदायी होती है वैसे ही पुरुष परमेश्वर की सेवा उत्तम कर्मों का अनुष्ठान कर और दुष्ट कर्मों को छोड़ के परमेश्वर की उपासना से निरन्तर आनन्द किया करे ॥ ६४ ॥

सहस्रस्येत्यस्य परमेष्ठ्यृषिः। विद्वान् देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जिस से तू जिस कारण तू (सहस्रस्य) असंख्यात पदार्थों से युक्त जगत् के (प्रमा) प्रमाण करने वाले के तुल्य (असि) है (सहस्रस्य) असंख्य विविध पदार्थों के (प्रतिमा) [illegible] के तुल्य (असि) है

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् । आ
दस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२

पदार्थः-हे राजन् आप यवसे) भूसा आदि के लिये (अश्वः) घोड़े के
समान प्रजाओं को (प्रोथत्) समर्थ कीजिये (यदा) जब (महः) बड़े (सं
व) आच्छादन से (अविष्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यस्थात्) स्थित
त्) पुनः (अस्य) इस (ते) आप का (व्रजनम्) चलने तथा (कृष्णम्
करने वाला (शोचिः) प्रकाश (अस्ति) है (अध) इस के पश्चात् (स्म
(वातः) चलने वाला भृत्य (अनु, वाति) पीछे चलता है ॥ ६२ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालं०-जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट हो
द्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा स
को बढ़ाती हैं ॥ ६२ ॥

आयोष्ट्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विदुषी देवता । विराड् त्रि
धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह ।

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायांᳬ
समुद्रस्य हृदये । रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवी

पदार्थः-हे स्त्रि (या) जो तू (द्याम) प्रकाश (
रिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ, भासि)
वतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (भास्व
तुझ को (आयोः) न्यायानुकूल चलने वाले
और (अवतः) रक्षा आदि करते हुए के (
अच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य)
प्रकार से मैं स्थित कराता हूं ॥ ६३ ॥

भावार्थः-हे स्त्रि अच्छे प्रकार
तुल्य चंचलता रहित गम्भीर
धर्म का प्रकाश कर पति
रक्खें ॥ ६३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसि

(सहस्रस्य) असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा) तोलने की तुला के समान (...) है (साहस्रः) असंख्य पदार्थ और विद्याओं से युक्त (असि) है इस कारण (... स्राय) असंख्यात प्रयोजनों के लिये (त्वा) तुझ को परमात्मा व्यवहार में ... करे ॥ ६५ ॥

भावार्थ-इस मन्त्र में वाचकलु०—यहां पूर्वमन्त्र से परमेष्ठी, सादयतु इन दो की अनुवृत्ति आती है। तीन साधनों से मनुष्यों के व्यवहार सिद्ध होते हैं। ... यथार्थविज्ञान दूसरा पदार्थ तोलने के लिये तोल के साधन बाट और तीसरा ... आदि। यह *शिशिर ऋतु का वर्णन पूरा हुआ ॥ ६६ ॥*

इस अध्याय में ऋतुविद्या का प्रतिपादन होने से इस अध्याय के अर्थ ... अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये।

यह पन्द्रहवां अध्याय पूरा हुआ।